महाकवि बुध श्रीधर कृत

पासणाहचरिउ

सम्पादन एवं अनुवाद

डॉ. राजाराम जैन

महाकवि बुध श्रीधर (13वीं सदी) द्वारा रचित पौराणिक महाकाव्य, अपभ्रंश की एक अप्रतिम रचना। इसमें जैन शलाकापुरुष तीर्थंकर पार्श्वनाथ की कथावस्तु वर्णित है।

कथानायक पार्श्वनाथ के नौ जन्मों—भवान्तरों की यह कथा उस विराट जीवन का चित्र प्रस्तुत करती है, जिसमें अनेक भवों के अर्जित संस्कार उनके तीर्थंकरत्व की उत्पत्ति में सहायक होते हैं। पार्श्वनाथ की भव-भवान्तर की ये घटनाएँ रहस्यमयी और आश्चर्य पैदा करने वाली तो हैं ही, इनके निरूपण की शैली भी इतनी प्रभावक है कि सहज ही में काव्य-नायक के जीवन का विराट चित्र प्रस्तुत हो जाता है। कथा-प्रवाह सुनियोजित है और महाकाव्य की दृष्टि से सांगोपांग भी।

बुध श्रीधर मात्र कवि ही नहीं थे, वे मध्यकालीन श्रमण संस्कृति एवं भारतीय इतिहास के, विशेषकर दिल्ली के समकालीन तोमरवंशीय शासन एवं समाज-व्यवस्था के साक्षी और प्रखर अध्येता थे। यही कारण ही कि 'पासणाहचरिउ' का इतिवृत्त भले ही पौराणिक है, लेकिन कवि ने रूपक का सहारा लेकर इसमें समकालीन ऐतिहासिक तथ्यों को महाकाव्य के विस्तृत फलक पर चित्रित कर इसे इतिहासपरक पौराणिक काव्य-रचना का रूप दे दिया है।

प्राच्य विद्या जगत् के यशस्वी विद्वान डॉ. राजाराम जैन ने इस ग्रन्थ का श्रमसाध्य सम्पादन-अनुवाद किया है। साथ ही, विस्तृत एवं बहुआयामी प्रस्तावना लिखकर जिज्ञासु पाठकों के लिए उन्होंने इस ग्रन्थ की उपयोगिता बढ़ायी है।

भारतीय ज्ञानपीठ को प्रसन्नता है कि उसे अपभ्रंश की एक और महान कृति के प्रकाशन का अवसर प्राप्त हुआ।

मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला : अपभ्रंश ग्रन्थांक 24

महाकवि बुध श्रीधर कृत

पासणाहचरिउ

(पार्श्वनाथचरित)

अपभ्रंश मूल, हिन्दी अनुवाद, समीक्षात्मक अध्ययन
एवं शब्दानुक्रमणिका के साथ

सम्पादन एवं अनुवाद

डॉ. राजाराम जैन

पी-एच. डी., डी. लिट्.

भारतीय ज्ञानपीठ

प्रथम संस्करण : 2006 □ मूल्य : 320 रुपये

ISBN 81-263-1200-9

भारतीय ज्ञानपीठ

(स्थापना : फाल्गुन कृष्ण 9; वीर नि. सं. 2470; विक्रम सं. 2000; 18 फरवरी 1944)

पुण्यश्लोका माता मूर्तिदेवी की स्मृति में
साहू शान्तिप्रसाद जैन द्वारा संस्थापित
एवं
उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रमा जैन द्वारा सम्पोषित

मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला के अन्तर्गत प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी, कन्नड़, तमिल आदि प्राचीन भाषाओं में उपलब्ध आगमिक, दार्शनिक, पौराणिक, साहित्यिक, ऐतिहासिक आदि विविध विषयक जैन साहित्य का अनुसन्धानपूर्ण सम्पादन तथा उनके मूल और यथासम्भव अनुवाद आदि के साथ प्रकाशन हो रहा है। जैन-भण्डारों की ग्रन्थसूचियाँ, शिलालेख-संग्रह, कला एवं स्थापत्य पर विशिष्ट विद्वानों के अध्ययन-ग्रन्थ और लोकहितकारी जैन साहित्य ग्रन्थ भी इस ग्रन्थमाला में प्रकाशित हो रहे हैं।

•

प्रकाशक
भारतीय ज्ञानपीठ
18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110 003

आवरण : चन्द्रकान्त शर्मा

मुद्रक : विकास कम्प्यूटर ऐण्ड प्रिंटर्स, दिल्ली-110 032

© भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित

Moortidevi Jain Granthamala : Apabhransha Grantha No. 24

PĀSAṆĀHA-CARIU

(Pasrhvanath-charit)

of

Mahākavi Budha Śrīdhara

(Critically edited and translated from Apabhraṃśa into Hindi with exhaustive introduction, critical notes and word-Index.)

Edited and Translated
by
Dr. Raja Ram Jain
Ph.D., D.Lit.

BHARATIYA JNANPITH

First Edition : 2006 □ Price : Rs. 320

ISBN 81-263-1200-9

BHARATIYA JNANPITH

(Founded on Phalguna Krishna 9; Vira N. Sam. 2470; Vikrama Sam. 2000; 18th Feb. 1944)

MOORTIDEVI JAIN GRANTHAMALA

FOUNDED BY

Sahu Shanti Prasad Jain

In memory of his illustrious mother Smt. Moortidevi

and

promoted by his benevolent wife

Smt. Rama Jain

In this Granthamala critically edited Jain agamic, philosophical, puranic, literary, historical and other original texts in Prakrit, Sanskrit, Apabhramsha, Hindi, Kannada, Tamil etc. are being published in the original form with their translations in modern languages. Catalogues of Jain bhandaras, inscriptions, studies on art and architecture by competent scholars and popular Jain literature are also being published.

•

Published by

Bharatiya Jnanpith

18, Institutional Area, Lodi Road, New Delhi-110 003

Cover Design : Chandra Kant Sharma

Printed at : Vikash Computer & Printers, Delhi-110 032

© All Rights Reserved by Bharatiya Jnanpith

श्रद्धा-सुमन

- जिनका मात्र एक ही लक्ष्य था – भारत की सांस्कृतिक विरासत की सुरक्षा और उसके लिए दृढ़ संकल्प लेकर जो साधनाभावों के बीच भी समर्पित भाव से उसे साकार करने का अथक प्रयत्न करते रहे,

- जिन्होंने शौरसेनी जैनागमों तथा प्राकृत-अपभ्रंश की जीर्ण-शीर्ण प्राचीन दुर्लभ पाण्डुलिपियों का उद्धार तथा अधुनातम वैज्ञानिक पद्धति से उनके सम्पादन एवं प्रकाशन में अपने जीवन की समस्त ऊर्जा शक्ति खपा दी,

- ख्याति-कामना से दूर रहकर जिन्होंने यावज्जीवन अखण्ड साहित्य-साधना की तथा अपना बहुआयामी मौलिक चिन्तन-लेखन प्रस्तुत कर अन्तर्राष्ट्रिय प्रतिष्ठा अर्जित की,

- वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से शिक्षण-प्रशिक्षण एवं शोध-कार्यों द्वारा जिन्होंने नयी पीढ़ी को प्रेरित-प्रोत्साहित कर उसे मार्ग-दर्शन दिया तथा समाज को नयी चेतना प्रदान की,

- जो धूल से उठकर सुवासित चन्दन बने और प्रतिभा-पुत्रों के माथे के तिलक बन गये,

- और, जिनके चरण-कमलों में बैठकर मुझे दो-चार अक्षर सीखने का सौभाग्य मिल सका,

- अपने उन्हीं प्रातःस्मरणीय सरस्वती पुत्रों – **डॉ. हीरालाल जैन एवं डॉ. ए.एन. उपाध्ये** की पावन-स्मृति में यह श्रद्धा-सुमन समर्पित है।

श्रद्धावनत

–राजाराम जैन

प्राक्कथन

महाकवि **बुध श्रीधर** द्वारा अपभ्रंश भाषा में रचित **'पासणाह-चरिउ'** एक ऐतिहासिक महत्त्व का अनूठा काव्य है। इसका अध्ययन करने से यह स्पष्ट विदित होता है कि बुध श्रीधर केवल कवि एवं साहित्यकार ही नहीं हैं वरन् वे मध्यकालीन श्रमण संस्कृति एवं ढिल्ली (वर्तमान दिल्ली) के इतिहास के अविवादास्पद अध्येता भी माने जा सकते हैं। उनकी रचनाओं में शास्त्रीय एवं व्यावहारिक ज्ञान की व्यापकता और सार्वभौमिकता को देखकर आश्चर्यचकित हो जाना पड़ता है। ग्रन्थ-नायक 'पार्श्व' तथा अन्य कथा-प्रसंगों के माध्यम से कवि ने धर्म, दर्शन, अध्यात्म, आचार एवं सिद्धान्त के अतिरिक्त भूगोल, खगोल, इतिहास, संस्कृति, वेद-वेदांग, व्याकरण, नाट्यशास्त्र, लोक-संस्कृति एवं कला, आयुर्वेद, युद्ध-विद्या, रणनीति, राजनीति आदि ज्ञान-विज्ञान के विभिन्न पक्षों को भी उजागर किया है।

बुध श्रीधर ज्ञान के अथाह सागर हैं। ज्ञान-विज्ञान की नाना प्रकार की धाराएँ प्रवाहित होकर मानों उनके अगाध हृदय-सागर में आकर पैठ गयी हैं। उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों के प्रयोग एवं शृंगार, बीभत्स, रौद्र, जैसे रसों का प्रासंगिक सरित्प्रवाह तथा उनके शान्तरस में अवसान का सुरम्य चित्र प्रस्तुत करने की अद्‌भुत क्षमता इस कवि में है। यवनराज के युद्ध-प्रसंग में कवि ने सम्राट् पृथ्वीराज चौहान एवं मुहम्मद गौरी के भीषण युद्ध की झाँकी इस प्रकार प्रस्तुत की है मानों वह स्वयं उसका द्रष्टा हों।

महाकवि की दृष्टि में ग्रन्थ-नायक 'पार्श्व' जैसा आदर्श युवराज भीम एवं कान्त दोनों प्रकार के गुणों से संयुक्त है। वस्तुतः एक भावी उत्तराधिकारी सम्राट के लिए अपने साम्राज्य में शान्ति बनाये रखने के साथ-साथ उसे बाहरी शत्रुओं से सुरक्षा का भी ध्यान रखना अनिवार्य होता है। कवि ने नायक 'पार्श्व' में इन दोनों प्रकार की क्षमताओं को प्रदर्शित किया है।

महान् दार्शनिक प्लेटो ने अपने 'रिपब्लिक' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि "शासकों को उन स्वामिभक्त रक्षक कुत्तों के सदृश होना चाहिए जो अपने घर के सदस्यों के लिए तो कोमल, विनीत, संरक्षक एवं आज्ञाकारी हों तथा बाहरी लोगों के लिए अत्यन्त खूँखार एवं आक्रामक।" प्लेटो के अनुसार ही शासक को जहाँ एक ओर दार्शनिक होना चाहिए, वहीं दूसरी ओर उसमें सैन्य-संगठन एवं युद्ध-संचालन तथा रण-कौशल की क्षमता भी होना अनिवार्य है। बुध श्रीधर के नायक कुमार 'पार्श्व' पर ये सभी बिन्दु भलीभाँति घटित होते हैं। कुमार पार्श्व एक ओर जहाँ माता-पिता के परम भक्त, अपने मामा रविकीर्ति के विपत्तिकाल में अत्यन्त सहृदय एवं उनके सक्रिय सहयोगी, प्रजाजनों के प्रति अत्यन्त संवेदनशील, मानव-कल्याण अपि च प्राणि-कल्याण के प्रति चिन्तित, सहृदय एवं दयालु हैं, वहीं यवनराज के प्रति अत्यन्त क्रोधित तथा उसकी चुनौती स्वीकार कर उसे जड़-मूल से उखाड़ फेंकने के लिए एक रणवीर योद्धा के समान दृढ़संकल्पशील हैं।

कवि की दृष्टि का प्रसार चतुर्मुखी है। वह व्यापकता को लिये हुए है। जब वह स्वयं कौतूहलवश विहार करते हुए **(विहरंतें कोऊहल-वसेण)** यमुना पार कर दिल्ली आता है, तब वहाँ के सौन्दर्य से वह अत्यन्त प्रमुदित हो उठता है। उसके अनुसार वहाँ के नदी, नद, सरोवर, देवालय, उत्तुंग भवन, विशाल प्रेक्षण-गृह (Auditorium) अत्यन्त सुन्दर हैं एवं कातन्त्र-व्याकरण की पंजिका-टीका के समान **(कातंत इव पंजी – समिद्धु)** समृद्ध हैं तथा वहाँ की

चिकनी-चौड़ी सड़कें, अनुशासित नर-नारियाँ, विधि-व्यवस्था आदि चित्ताकर्षक हैं। इन सभी से वह इतना प्रभावित हो उठता है कि वह बाद में वहीं (दिल्ली) का निवासी बन जाता है।

प्राच्य विद्याजगत् **डॉ. राजाराम जैन** का अत्यन्त ऋणी रहेगा, जिन्होंने बुध श्रीधर के विशिष्ट कोटि के प्रस्तुत महाकाव्य—'पासणाहचरिउ' का सम्पादन एवं बहुआयामी मूल्यांकन कर उसे सार्वजनीन किया। इस तरह उन्होंने इस महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक महाकाव्य को काल-कवलित होने से बचा लिया है।

प्राचीन पाण्डुलिपियों की खोज तथा उनका सम्पादन, अनुवाद एवं बहुआयामी मूल्यांकन अत्यन्त ही श्रमसाध्य, धैर्यसाध्य, समयसाध्य एवं व्ययसाध्य कार्य है किन्तु संकल्प के दृढ़व्रती डॉ. जैन के साधनापूर्ण तपस्वी जीवन ने उन चुनौतियों को भी सहर्ष स्वीकार किया है। इसके फलस्वरूप पिछले लगभग 5 दशकों में इस क्षेत्र में उनके जो अविस्मरणीय अवदान हैं, पाण्डुलिपि–सम्पादन-जगत् उनकी कभी भी उपेक्षा नहीं कर सकेगा। मैं डॉ. राजाराम जैन के यशस्वी दीर्घ-जीवन के प्रति मंगल-कामना करता हूँ।

डॉ. कमलचन्द सोगाणी
निदेशक
अपभ्रंश साहित्य अकादमी, जयपुर (राजस्थान)

प्रस्तावना

तीर्थंकर पार्श्व : इतिहास के प्रांगण में

श्रमण-संस्कृति के विकास में तीर्थंकर पार्श्व का स्थान विशेष ऐतिहासिक महत्व का रहा है। 19वीं सदी के अन्तिम चरण तक भ्रमवश कुछ विद्वान् भगवान् महावीर को एक पौराणिक महापुरुष अथवा जैनधर्म का संस्थापक तथा उनके पूर्ववर्त्ती तेईस तीर्थंकरों को केवल Mysticle या Mythological मानते रहे, किन्तु हड़प्पा[1] के उत्खनन में उपलब्ध कुछ सीलों में वृषभांकित जटा-जूटाधारी नग्न-मूर्त्तियों तथा विश्व के प्राचीनतम साहित्य-ऋग्वेद[2] में उल्लिखित ऋषभ एवं अन्य जिनों, श्रीमद्भागवत[3] में वर्णित ऋषभचरित और अन्य कुछ शिलालेख[4] एवं प्राच्य-साहित्य के आधारों पर डॉ. हर्मन याकोवी[4], डॉ. आर.पी. चन्दा.[5], डॉ. संकलिया, लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, डॉ. प्राणनाथ, डॉ. एस राधाकृष्णन्[6], डॉ. बी सी लाहा[7], डॉ. के.पी. जायसवाल[8], डॉ. कामताप्रसाद एवं आचार्य विद्यानन्द प्रमृति प्राच्य एवं पाश्चात्य प्राच्य-विद्याविदों की सघन खोजों से उनके उक्त भ्रम दूर हो सके। प्रतीत होता है कि सुदूर अतीत में लेखनोपकरण सामग्री के सामान्यीकरण होने के पूर्व भक्तजनों को उनकी कण्ठ-परम्परा से प्राप्त जानकारी भले ही रही, उनकी स्तुतियाँ भी की जाती रही थी किन्तु ईस्वी सन् के प्रारम्भ तक उनका या अन्य शलाका-महापुरुषों का व्यवस्थित सर्वांगीण लिखित जीवनचरित उपलब्ध न था। इसीलिए आचार्य विमलसूरि (ईस्वी की दूसरी-तीसरी सदी के लगभग) को भी अपने प्राकृत-पउमचरियं के प्रणयन के समय स्पष्ट रूप से लिखना पड़ा था :—

णामावलिय णिबद्धं आयरियपरंपरागयं सव्वं।
वोच्छामि पउमचरियं अहाणुपुव्विं समासेण।। *1/8*

अर्थात् आचार्य-परम्परा से प्राप्त नामावली के आधार पर यथानुपूर्वी संक्षेप में मैं इस समस्त पउमचरिय-पद्मचरित (रामायण) की रचना कर रहा हूँ।

नामावली की यह जटिल समस्या केवल उक्त पउमचरियं के लेखनकाल तक ही सीमित न थी बल्कि समस्त त्रिषष्ठिशलाकामहापुरुषों एवं इतर महापुरुषों सम्बन्धी चरित-साहित्य के लेखन के लिए भी थी। महापुरुषों की परम्परा-प्राप्त संक्षिप्त नामावालियाँ अथवा कुछ महापुरुषों की अति संक्षिप्त घटनाएँ तो प्राचीन जैनागम-साहित्य में उपलब्ध थीं किन्तु किसी भी महापुरुष का व्यवस्थित, विकसित, विस्तृत एवं आलंकारिक शैली में लिखित जीवन-चरित उपलब्ध न था।

---

1 दे. विश्वधर्म की रूपरेखा-लेखक क्षुल्लक पार्श्वकीर्ति वर्णी (दिल्ली) 1958 पृ. 27-28

2. ऋग्वेद 8/8/24, 2/33/15, 10/15/1.3

3. श्रीमद्भागवत – पंचम स्कन्ध 3/20

4. Indian Antiquary Vol. IX, P. 163

5. Modern Review, August 1932

6. Indian Philosophy Vol. I, P. 287

7. Historical Gleanings, P. 78

8. कलिंगचक्रवर्त्ती महाराज खारवेल के शिलालेख का विवरण (ना. प्र. सभा काशी) पत्रिका भाग 8 में प्रकाशित लेख

प्राच्य भारतीय इतिहास के जैन एवं जैनेतर प्राच्य एवं पाश्चात्य अध्येताओं ने 20वीं सदी के प्रारम्भ से ही पार्श्व के जीवनचरित से सम्बन्धित सामग्री की खोजों के लिए सघन प्रयत्न किए हैं तथा ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक साक्ष्य, प्राचीन जैन एवं जैनेतर साहित्य तथा लोकानुश्रुतियों के प्रमाणों के आधार पर उनके अस्तित्व, काल, जीवन-परिचय, व्यक्तित्व एवं कृतित्व के सूत्र संयोजित करने के सराहनीय प्रयत्न किए हैं।

प्राच्यविद्याविद् डॉ. हर्मन याकोवी के अन्वेषण

डॉ. हर्मन याकोबी ने सम्भवतः सर्वप्रथम विविध साक्ष्यों के आधार पर पार्श्वनाथ का साधनाकाल एवं जीवन सम्बन्धी तथ्यों की खोज का प्रयत्न किया। उन्होंने अपने विशिष्ट अध्ययन के आधार पर यह घोषित किया कि बौद्वागमों में जिस णिग्गंठ-सम्प्रदाय की चर्चा है, वह पार्श्वनाथ की ही परम्परा थी। बौद्धों के मज्झिमनिकाय के 'महासिंहनादसुत्त' में बताया गया है कि गौतम बुद्ध ने जब दीक्षा ली, तो उन्हें कठोर तपस्या करनी पड़ी। उनके अनुसार बुद्ध की तपस्या की विशेषता थी—**"कठोर तपस्या, रूक्षता, जुगुप्सा एवं प्रविविक्तता"**। यह विशिष्टता निश्चय ही एक पार्श्वानुयायी की कठोर तपस्या थी[1]।

इसका समर्थन आचार्य देवसेन (सन् 933 ई.) कृत 'दर्शनसार'[2] से भी होता है। उसके अनुसार गौतम बुद्ध ने एक पार्श्वापत्य मुनि-पिहिताश्रव के पास दीक्षा ग्रहण की थी और वह बुद्धकीर्ति के नाम से प्रसिद्ध हुआ। किन्तु इतनी कठोर तपस्या से ऊबकर तथा पथभ्रष्ट होकर उसने रक्ताम्बर धारण कर लिये थे। यथा—

सिरिपासणाहतित्थे सरयूतीरे पलास-णयरत्थे।
पिहियासवस्स सिस्सो महासुदो बुद्धकित्ति-मुणी।।
तिमिपरणासणेहि अहिमयं पव्वज्जाओ परिभट्टो।
रत्तंवरं धरित्ता पविट्ठयं तेण एयंतं।। —*(दर्शनसार, माथा 6-7)*

अर्थात् श्री पार्श्वनाथ के तीर्थ-काल में सरयू नदी के तटवर्त्ती पलाशनगर में (आचार्य-मुनि) पिहितास्रव का एक शिष्य रहता था, जिसका नाम बुद्धकीर्ति-मुनि था, जो महाश्रुति अर्थात् अनेक आगम-शास्त्रों का ज्ञाता था—

किन्तु मत्स्य-भक्षी होने के कारण वह अपनी प्रव्रज्या से परिभ्रष्ट हो गया और उसने रक्ताम्बर धारण कर एकान्तमत (अथवा मध्यम-मार्ग) की स्थापना की।

डॉ. याकोबी की खोज के अनुसार पार्श्व ने तीर्थंकर महावीर के जन्म के लगभग 350 वर्ष पूर्व वाराणसी के एक राजा के यहाँ जन्म लिया। 30 वर्ष की आयु तक वे अपने माता-पिता के साथ परिवार में रहे, फिर सांसारिक भोगों की असारता का अनुभव कर दीक्षा ले ली और कठोर तपस्या की। इस प्रकार उनकी आयु 70 वर्ष की हो गई। कुल मिलाकर लगभग 100 वर्ष का आयुष्य पूर्ण कर उन्होंने सम्मेदशिखर (वर्तमान झारखण्ड में स्थित) से परिनिर्वाण प्राप्त किया। इस प्रकार याकोबी की खोज के मुख्य निष्कर्ष निम्न प्रकार रहे—

(1) तीर्थंकर पार्श्व ऐतिहासिक महापुरुष थे। तथा,
(2) तीर्थंकर महावीर के पूर्व एक ऐसा सम्प्रदाय प्रचलित था, जो "निर्ग्रन्थ-सम्प्रदाय" के रूप में प्रसिद्ध था और जिसके नायक पार्श्व-तीर्थंकर थे।

डॉ. याकोबी के उक्त तथ्यों ने परवर्त्ती विद्वानों के लिये पार्श्व विषयक ऐतिहासिक सामग्री की खोज के लिए निश्चय ही पर्याप्त प्रेरणाएँ देकर उन्हें मार्गदर्शन दिया।

---

1. S.B.E. Series, Vol. 45, Introduction, P. 31-35.
2. जैन हितैषी 3/5-6 (मई-जून 1917) में प्रकाशित पं. नाथूराम प्रेमी का निबन्ध देखिए।

तीर्थंकर पार्श्व के चरित का वर्णन आचार्य विमलसूरि के परवर्ती विभिन्न कालों, विभिन्न स्थानों एवं विभिन्न लोकप्रिय भाषाओं में होता रहा है। उनके दिव्य-चरित की परम्परा को ध्यान में रखते हुए भी कवियों ने कथानक तथ्यों, व्यक्तिगत कुछ नामों तथा नगरियों के नामों एवं कहीं-कहीं कुछ तिथियों में भी सम्भवतः प्रचलित अनुश्रुतियों के आधार पर यत्किचित् परिवर्तन भी किये है। अतः यहाँ पर प्रस्तुत पासणाहचरिउ के आलोक में उनका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है—

पार्श्व, मरुभूति एवं कमठ के भव-भवान्तर

जैन धर्म-दर्शन की पहिचान उसके कर्मसिद्धान्त से होती है और कर्मसिद्धान्त ही पुनर्जन्म की रीढ़ है। दोनों का अविनाभावी सम्बन्ध है। प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत एवं कन्नड़ आदि का समस्त प्रथमानुयोग-साहित्य-कर्म-बन्ध एवं पुनर्जन्म के वर्णनों से भरा पड़ा है। शलाकामहापुरुष-चरित साहित्य के अतिरिक्त भी वसुदेवहिण्डी (3-4सदी), समराइच्चकहा (8वीं सदी) तथा गोम्मटसार 10वीं सदी) आदि ग्रन्थ इस विषय के प्रमुख विश्लेषक ग्रन्थ माने जाते हैं।

जहाँ तक पार्श्व के पुनर्जन्मों का प्रश्न है, तिलोयपण्णत्ती (दूसरी-तीसरी सदी) में पार्श्व को प्राणत-कल्प से अवतरित बताया है[1]। यद्यपि यह सूत्र-शैली में ही वर्णित है। समवायांग-सूत्र[2] में भी संक्षिप्त रूप में पार्श्व के पूर्वजन्म का नाम 'सुदंसण' बतलाया गया है, जबकि कल्पसूत्र[3] में यह बतलाया गया है कि पार्श्व प्राणत-कल्प से अवतरे थे। इस आगम-ग्रन्थ में पार्श्व के तीर्थकर-भव का अपेक्षाकृत अधिक सुव्यवस्थित एवं विस्तृत चित्रण मिलता है। रविषेण ने अपने पद्मचरित[4] में पार्श्व को वैजयन्त-स्वर्ग से अवतरित बतलाया है। परवर्ती ग्रन्थकारों ने अपनी-अपनी अभिरुचि के अनुसार उक्त ग्रन्थों से तथ्यों को ग्रहण कर उन्हें संक्षिप्त या विस्तृत रूप में चित्रित किया है।

पार्श्व के साथ ही मरुभूमि एवं कमठ के भवान्तर भी जुडे हुए हैं, जिनका विस्तृत वर्णन भी कर्मसिद्धान्त एवं पुनर्जन्म के सिद्धान्त को पुष्ट करने हेतु रोचक शैली में किया गया है। विषय बहुत ही गम्भीर एवं विस्तृत है। इसकी समग्रता का वर्णन स्थानाभाव के कारण यहाँ शक्य नहीं। किन्तु प्रथमानुयोग के कुछ प्रमुख ग्रन्थों के आधार पर प्रस्तुत एक मानचित्र द्वारा संक्षेप में आगे स्पष्ट रूप से बतलाने का प्रयास किया जाएगा।

पार्श्व के कुल-गोत्र एवं माता-पिता

पार्श्व के वंश का प्रथम बार उल्लेख तिलोयपण्णत्ती में प्राप्त होता है। उसमें वंश को उग्रवंशी बताया गया है। बुध श्रीधर ने पार्श्व के वंश या गोत्र की चर्चा नहीं की है। आवश्यक-निर्युक्ति के अनुसार पार्श्व काश्यप-गोत्र के प्रतीत होते हैं क्योंकि इस ग्रन्थ में बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत तथा बाईसवें तीर्थंकर अरिष्टनेमि को गौतमवंश का कहकर शेष तीर्थंकरों को "कासव गुत्त" का कहा गया है[5]। उत्तरपुराण में भी पार्श्व के पिता को काश्यप-गोत्रोत्पन्न बताया गया है[6]। महाकवि पुष्पदंत[7] ने पार्श्व को उग्रवंशीय कहा है, जबकि देवभद्रसूरि (12वीं शताब्दी) ने आससेण को इक्ष्वाकु-कुलोत्पन्न लिखा है। हेमचन्द कृत त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरितम्[8] तथा श्वेताम्बर-परम्परा में लिखे गए

---

1. पा. मोदी,, भूमिका, पृ. 29
2. समवायांग 249
3. कल्पसूत्र 140
4. पद्मचरितम्
5. आवश्यक निर्युक्ति 338
6. उत्तरपुराण 73/75
7. तिसट्ठि: 94/22-23
8. त्रिषष्ठिशलाका. 93/94

अन्य ग्रन्थों में भी पार्श्व के वंश को 'इक्ष्वाकु' ही बतलाया गया है। महाकवि पउमकित्ति ने पार्श्व के वंश का स्पष्ट कथन तो नहीं किया किन्तु उन्होंने तीर्थकरों के वंश के संबंध में एक सामान्य कथन किया है कि कुछ तीर्थकर इक्ष्वाकुवंश में, कुछ हरिवंश में और कुछ सोमवंश में उत्पन्न हुए थे[1]।

तीर्थंकर पार्श्व के माता-पिता के नामों की सूचना कुछ अपवादों को छोड़कर प्रायः सर्वत्र एक सदृश उपलब्ध होती है। बुध श्रीधर ने पार्श्व के पिता का नाम हयसेन एवं माता का नाम वामादेवी बतलाया है। समवायांग[2] तथा आवश्यक-निर्युक्ति[3] में पार्श्व के पिता का नाम 'आससेण' तथा माता का नाम 'वामा' बताया गया है। समवायांग का अनुसरण कर उत्तरकालीन अनेक आचार्य-कवियों ने पार्श्व के माता-पिता के यही नाम निर्दिष्ट किये हैं। किन्तु गुणभद्र कृत (9वीं सदी) उत्तरपुराण में पार्श्व के माता-पिता का नाम क्रमशः ब्राह्मी और विश्वसेन बताया गया है[4]। आचार्य पुष्पदंत (9वीं सदी) तथा महाकवि वादिराज (10वीं सदी) ने उत्तरपुराण का ही अनुसरण किया है किन्तु वादिराज ने पार्श्व की माता का नाम ब्रह्मदत्ता (9/95) बतलाया है। अपभ्रंश महाकवि पउमकित्ति (10वीं सदी) तथा महाकवि रइधू (15वीं-16वीं सदी) ने उनके पिता को हयसेन कहा है। 'अश्व' और 'हय' नाम में कोई विशेष भेद नहीं प्रतीत होता। वस्तुतः दोनों ही पर्यायवाची शब्द हैं। तिलोयपण्णत्ती में पार्श्व की माता का नाम वर्मिला तथा पद्मचरित (20/59) में वर्मा देवी बतलाया गया है। प्रतीत होता है कि प्राकृत के वम्मा को संस्कृत रूप वर्मा प्रदान किया गया है।

जन्मस्थल, जन्मकाल एवं नामकरण

बुध श्रीधर ने पार्श्व की जन्मभूमि काशी देश में स्थित वाणारसी नगरी बतलाई है[5]। समवायांग[6] तथा उसके परवर्त्ती लिखित ग्रन्थों के अनुसार पार्श्व का जन्मस्थान वाणारसी ही है। यह नगरी अत्यन्त प्राचीन काल से भारत की एक प्रसिद्ध नगरी रही है। स्थानांग में स्पष्ट उल्लेख है कि वाणारसी जंबूद्वीप में दस सुप्रसिद्ध राजधानियों में से एक है[7]।

बुध श्रीधर ने पार्श्व का जन्म पौष कृष्ण एकादशी माना है। तिलोयपण्णत्ती में भी वही तिथि उल्लिखित है किन्तु कल्पसूत्र में पार्श्व का जन्म-समय पौष कृष्णा दशमी की मध्यरात्रि दिया गया है। इन ग्रन्थों के अनुसार दिगम्बर-श्वेताम्बर परंपराओं में यत्किंचित् तिथिभेद बना हुआ है।

आचार्य गुणभद्र[8] तथा उनके अनुसार ही महाकवि पद्मकीर्ति तथा बुध श्रीधर ने भी कहा है कि इन्द्र ने अभिषेक के बाद शिशु का नाम पार्श्व रखा था। किन्तु आवश्यक-निर्युक्ति[9] के अनुसार जब पार्श्व गर्भ में थे, तभी माता वामादेवी ने अपने पार्श्व (बगल) में एक काले सर्प के दर्शन किये थे, इस कारण बालक का नाम भी पार्श्व रख दिया गया। श्वेताम्बर-परम्परा के समस्त ग्रन्थकारों ने इसी परम्परा का अनुकरण किया है। जब कि बुध श्रीधर सहित दिगम्बर परम्परा में, आचार्य गुणभद्र कृत उत्तरपुराण का अनुकरण किया गया है।

---

1. पासणाह. (मोदी) – 17/13/9-10
2. समवायंग सुत्त 247
3. आवश्यक निर्युक्ति 388
4. उत्तरपुराण 73/75
5. पासणाह. 1/14
6. समवायांग 250/24
7. स्थानांग. 995
8. उत्तरपुराण 73/92
9. आवश्यक निर्युक्ति 1091

पार्श्व के वैराग्य का कारण

बुध श्रीधर ने कमठ नामक तापस के साथ हुई घटना तथा सर्प की मृत्यु को पार्श्व की वैराग्य-भावना का कारण बताया है[1]। उत्तर-पुराण में उक्त घटना का वर्णन तो किया गया, पर उसमें उसे पार्श्व की वैराग्य-भावना का कारण नहीं माना गया। इसी प्रकार महाकवि पुष्पदन्त तथा वादिराज ने कमठ के साथ हुई घटना का वर्णन तो किया, परन्तु उन्होंने भी सर्प की मृत्यु को पार्श्व की वैराग्य-भावना का कारण नहीं माना। पुष्पदंत ने पार्श्व की वैराग्य-भावना का वही कारण बतलाया है, जो गुणभद्र कृत उत्तर-पुराण में दिया गया है, पर वादिराज ने उस भावना का कोई कारण नहीं दिया। उन्होंने पार्श्व की सांसारिक भोग-विलासों के प्रति स्वाभाविक रूप से विरक्त-प्रवृत्ति कहकर उन्हें दीक्षा की ओर उन्मुख बतलाया है।

विरोधी कमठ या कमढ

आचार्य देवभद्रसूरि ने अपने सिरिपासनाहचरियं में कमठ को कमढ कहा है। उन्होंने उसकी (कमढ की) घटना का चित्रण तो किया किन्तु यह नहीं बताया कि उसके कारण पार्श्व को वैराग्य हुआ। उनके कथनानुसार पार्श्व ने वसन्त-ऋतु में एक बगीचे में जाकर नेमिनाथ के भित्तिचित्रों को देखा और उन्हीं से उन्हें वैराग्य हो गया।[2] आचार्य हेमचन्द्र कृत त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित में कमठ की घटना का वर्णन कर पार्श्व में उसी के कारण वैराग्य की उत्पत्ति बताई गई है[3]। आचार्य भावदेवसूरि तथा हेमाविजयगणि ने अपने ग्रन्थों में देवभद्रसूरि के उक्त कथन का अनुकरण किया है।

पार्श्व की दीक्षा का काल

बुध श्रीधर के अनुसार पार्श्व ने पौष कृष्ण एकादशी के दिन दीक्षा धारण की[4]। कल्पसूत्र[5] के अनुसार पार्श्व ने 30 वर्ष की आयु पूरी होने पर पौष कृष्णा एकादशी को आश्रमपद नामक उद्यान में दीक्षा ग्रहण की थी। समवायांग[6] तथा कल्पसूत्र[7] के उल्लेखानुसार वे विशाला नामकी शिबिका में विराजमान होकर नगर के बहिर्भाग में पधारे थे।

दीक्षाग्रहण करने पश्चात् महाकवि बुध श्रीधर ने पार्श्व द्वारा अष्टमभक्त ग्रहण करने का उल्लेख किया है[8]। आवश्यक निर्युक्तिकार तथा आचार्य पुष्पदन्त ने भी इसी तथ्य को सूचित किया है, जबकि तिलोयपण्णत्ती एवं कल्पसूत्र में पार्श्वद्वारा षष्ठभक्त ग्रहण किये जाने का उल्लेख मिलता है।

तपस्याकाल में पार्श्व मुनि पर किये गये भीषण उपसर्ग

महाकवि बुध श्रीधर ने दीक्षोपरान्त पार्श्व प्रभु के ध्यान-मग्न हो जाने पर असुर-देवयोनि में उत्पन्न कमठ द्वारा उन्हें ध्यान से विचलित करने के लिए किए गए विविध उपसर्गों का रोमांचकारी वर्णन किया है[9]। कल्पसूत्र में ऐसा कोई उल्लेख नहीं आया है कि पार्श्व को ध्यान से विचलित करने के लिए किसी ने उपसर्ग किया हो। किन्तु दिगम्बर एवं श्वेताम्बर दोनों ही परम्पराओं में पार्श्व के ध्यान में विघ्न डाले जाने का वर्णन कवियों द्वारा अवश्य किया गया है। यद्यपि इन वर्णनों में विघ्न डालने वाले के नाम में मतभेद है। उत्तरपुराण (गुणभद्र) तिसट्ठि. (पुष्पदन्त) तथा

---

1. पासणाह. 6/9-10
2. पासणाह. (मोदी) भूमिका पृ. 39
3. त्रिषष्ठि. 9/3/215
4. पासणाह. 6/12
5. कल्पसूत्र 157
6. समवायंग 250
7. कल्पसूत्र 157
8. पासणाह. 6/13/7
9. पासणाह 7/8-18 तथा 8/1-7

पासणाहचरिउ (रइधू) में उस विघ्नकर्त्ता का नाम शंबर दिया गया है जबकि महाकवि वादिराजसूरि ने (अपने पार्श्वनाथचरितम् में) उसका नाम भूतानंद[1] बतलाया है। सिरिपासणाहचरियं (देवभद्र), त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित (हेमचन्द्र) तथा श्वेताम्बर-परम्परा में लिखे गए अन्य समस्त ग्रन्थकारों ने उस विघ्नकर्त्ता का नाम मेघमालिन् बतलाया है। पउमकित्ति तथा बुध श्रीधर ने भी इसी नाम का अपने-अपने ग्रन्थ में उल्लेख किया है।

उपसर्ग-वर्णन की परम्परा कब से ?

पार्श्व प्रभु के तपस्याकाल में उपसर्गों के वर्णन करने की परम्परा कब से प्रारंभ हुई, यह कहना कठिन है। किन्तु अध्ययन करने से यही विदित होता है कि कल्पसूत्र की रचना के बाद और गुणभद्रकृत उत्तरपुराण की रचना के पूर्व यह परम्परा प्रारंभ हुई थी। कल्याणमंदिर स्तोत्र के अध्ययन से विदित होता है कि उसके प्रणयन-काल तक यह परम्परा बन चुकी थी कि पार्श्व को तप-ध्यान से च्युत करने के लिए कमठ ने विदेषवश अनेक उपसर्ग किये थे[2]। कल्याणमंदिर के उक्त संकेत से अनुमान होता है कि उसके प्रणेता आचार्य सिद्धसेन (छठवीं सदीं) के समय में कमठ नाम का कोई व्यक्ति पार्श्वनाथ के विरोधी के रूप में ज्ञात रहा होगा। किन्तु जब उत्तरकालीन ग्रन्थों में पार्श्व के पूर्व-जन्मों का विस्तृत वर्णन किया जाने लगा तब कमठ को पार्श्व के प्रथम भव का विरोधी मान लिया गया और अंतिम भव के विरोधी को नाना प्रकार के नाम दिये जाने लगे।[3]

पार्श्व पर किए उपसर्गों के प्रसंग में धरणेन्द्र नाम के नाग का उल्लेख अनेक कवियों ने किया है। उत्तरपुराण, त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित आदि ग्रन्थों में उसे उस नाम का ही जीव माना गया है, जिसे प्रारम्भ में कमठ ने अपने भीषण प्रहारों से मरणासन्न कर दिया था और पार्श्व ने जिसके कान में णमोकार-मंत्र पढ़ा था और जिसके फलस्वरूप वह देवयोनि प्राप्त कर सका था। महाकवि पउमकित्ति ने उसे केवल नाग कहा है, किन्तु उसके नाम आदि का उल्लेख नहीं किया[4], जब कि बुध श्रीधर ने उसे धरणेन्द्र-देव[5] के नाम से अभिहित किया है।

कैवल्य-प्राप्तिकाल

बुध श्रीधर के अनुसार कमठ द्वारा किए गए उपसर्गों की समाप्ति पर पार्श्वनाथ को केवलज्ञान उत्पन्न हो जाता है। केवलज्ञान के पूर्व छद्मस्थकाल के विषय में दिगम्बर एवं श्वेताम्बर दोनों की परम्पराओं में कुछ मतभेद है। कल्पसूत्र में यह काल 83 दिन का बतलाया गया है[6] जबकि तिलोयपण्णत्ती में वह काल 4 माह का बतलाया गया है।

बुध श्रीधर के अनुसार पार्श्व प्रभु को केवलज्ञान की प्राप्ति चैत्र मास की कृष्णपक्ष की चतुर्थी फाल्गुनी नक्षत्र के समय में हुई थी[7] जबकि अन्य दिगम्बर एवं श्वेताम्बर ग्रन्थकारों ने उसकी तिथि चैत्र बहुल चतुर्थी पूर्वाह्ण काल के विशाखा नक्षत्र में मानी है[8]।

---

1. पार्श्वनाथचरित (वादिराज) 10/88
2. दे.– प्राभारसम्भृतनभांसि रजांसि रोषद् उत्थापितानि कमठेन शठेन यानि।
   छायापि तैस्तव न नाथ हता हताशो ग्रस्तस्त्वमीभिरयमेव परं दुरात्मा कल्याणमन्दिर स्तोत्र– ।। 31 ।।
   अर्थात्— हे स्वामिन्, उस शठ कमठ ने क्रोधावेश में आकर आप पर भीषण धूलि उछाली, किन्तु आपके तप-तेज के प्रभाव से वह आपकी छाया तक पर यत्किंचित् भी आघात न पहुँचा सकी।
3. पासणाह. (मोदी) भूमिका पृ. 40
4. पासणाह. (मोदी) भूमिका पृ. 40
5. पासणाह. 6/10
6. कल्पसूत्र 158
7. पासणाह. (बुध.) 8/6
8. पासणाह. (मोदी), भूमिका पृ. 41

पार्श्व प्रभु चतुर्विध संघ सहित विहार करते हुए आगम-सूत्रों का अर्थ समझाते हुए गिरिराज सम्मेदाचल पर पहुँचे[1]।

भगवान् पार्श्व के गणधर

महाकवि बुध श्रीधर ने पार्श्व के गणधरों की संख्या 10 (दस) बतलाई है, जिनमें स्वयम्भू[2] प्रथम गणधर थे। अन्य के नामोल्लेख नहीं किये। महाकवि पउमकित्ति ने पार्श्व के गणधरों की संख्या का निर्देश नहीं किया है। किन्तु प्रथम गणधर का नाम स्वयंभू ही बतलाया हैं।[3] स्थानांग में पार्श्व के 8 गणधरों की संख्या तथा उनके नामों का उल्लेख है।[4] कल्पसूत्र[5] में स्थानांग का ही अनुसरण किया गया है। तिलोयपण्णत्ती[6] तथा आवश्यक-निर्युक्ति[7] में पार्श्व के दस गणधरों के उल्लेख हैं। यही संख्या आज समस्त परवर्त्ती ग्रन्थकारों को भी मान्य है। किन्तु उनके नामों के विषय में मतभेद हैं। तिलोयपण्णत्ती आदि में पार्श्व के प्रथम गणधर का नाम जहाँ स्वयंभू बताया गया है, वहीं देवभद्रसूरि कृत सिरिपासणाहचरियं में उसका नाम आर्यदत्त[8] बतलाया गया हैं

पार्श्व का चतुर्विध संघ

भगवान पार्श्व के चतुर्विध-संघ में मुनि, आर्यिका, श्रावक एवं श्राविका की जो संख्या भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में निर्दिष्ट है, उसका एक तुलनात्मक मानचित्र निम्न प्रकार है :—

	तिलोयपण्णत्ती	पा.चा. बुध श्रीधर	कल्पसूत्र	आवश्यक-निर्युक्ति
त्रिगुप्ति गुप्त साधु	-	1090	-	-
सभी प्रकार के तपस्वी	1900	-	-	-
मनःपर्यय-ज्ञानी, ध्यानी, मुनीन्द्र	-	900	-	-
पूर्वधर	350	400	350	-
शिक्षक	10900	1800	-	
अवधिज्ञानी	1400	1500	1400	-
केवली	10000	1500	10000	-
विक्रियाधरी	1000	1500	1100	-
वादीन्द्र	600	800	600	
आयिकाएँ	38000	38000	-	38000
श्रावक	100000	10000	165000	-
श्राविकाएँ	27000	300000	300000	-

1-2. पासणाह. (बुध.) 8/12/6

3. पासणाह. (पउम.) 15/12/5

4. स्थानांग 8/784, यथा— सुभे य अज्जघोसे य वसिट्ठे बंभयारि य।
सोमे सिरिहरे चेव वीरभद्दे जसेवि य।।

5. कल्पसूत्र 160

6. तिलोय. 4/966

7. आवश्यक. 290

8. सिरि पासणा. 5/46

पार्श्वनाथ के लोकोपकारी उपदेश

महाकवि बुध श्रीधर के अनुसार जिज्ञासु भक्तजनों के लिये पार्श्व ने अपने बिहार-स्थलों में प्रवचन-प्रसंगो में नौवी सन्धि में—त्रैलोक्य-वर्णन, लोकाकाश वर्णन, नरक-वर्णन, स्वर्ग-वर्णन, मध्यलोक-वर्णन तथा दसवीं से बारहवीं सन्धि तक में—श्रावकधर्म वर्णन, अणुव्रत, गुणव्रत, शिक्षा व्रत, जीवादि सप्ततत्त्व, 84 लाख योनियाँ, पुनर्जन्म, दातार के सप्त गुण, दान-प्रकार, पात्रभेद, ग्यारह प्रतिमाएँ आदि पर धर्मोपदेश दिये। इसी प्रकार पार्श्वचरित सम्बन्धी लिखित विभिन्न ग्रन्थों में भी पार्श्व के विभिन्न उपदेशों की चर्चाएँ की गई है, जो भले ही एकरूप न हों, फिर भी उन्हें अधिकांशतः एक दूसरे की पूरक मानी जा सकती हैं।

पार्श्व का निर्वाण-स्थल एवं परिनिर्वाण-तिथि

पार्श्वचरित सम्बन्धी समस्त ग्रन्थ इस विषय में एकमत हैं कि भगवान् पार्श्वनाथ को जहाँ से निर्वाण की प्राप्ति हुई, उस पावन-स्थल का नाम सम्मेदाचल अथवा सम्मेद-शिखर है। यह पर्वत-शिखर वर्तमान झारखण्ड राज्य के हजारीबाग जिले में स्थित है तथा वह जैनियों का अन्तर्राष्ट्रिय ख्याति का एक प्रमुख सिद्ध तीर्थस्थल है।

महाकवि बुध श्रीधर ने पार्श्व की निर्वाण-तिथि श्रावण शुक्ल सप्तमी बतलायी है जबकि तिलोयपण्णत्ती में श्रावण शुक्ल सप्तमी का प्रदोषकाल बतलाया गया है। महाकवि पउमकित्ति ने अपने पासणाहचरिउ में उसका उल्लेख नहीं किया। अन्य ग्रन्थों में उक्त तिथि का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। कल्पसूत्र के अनुसार भगवान् पार्श्व को विशाखा नक्षत्र की श्रावण शुक्ल अष्टमी के पूर्वाह्न में मोक्ष-प्राप्ति हुई। इस विषय में दिगम्बर-लेखक तिलोयपण्णति का और श्वेताम्बर-लेखक कल्पसूत्र का अनुसरण करते आए हैं। इतना अवश्य है कि पार्श्वनाथ की आयु के संबंध में किसी में भी कोई मतभेद नहीं। सभी के अनुसार भगवान् पार्श्वनाथ ने सौ वर्ष की आयु प्राप्त कर मोक्ष को प्राप्त किया था।

पार्श्व के तीर्थ की अवधि

जैन इतिहासकारों के अनुसार पूर्ववर्ती तीर्थंकर से प्रारम्भ होकर उत्तरवर्ती तीर्थंकर के जन्मकाल तक पूर्ववर्ती तीर्थंकर का तीर्थकाल कहलाता है। तीर्थंकर पार्श्व के तीर्थ की अवधि 250 वर्ष बतलाई गई है। समस्त पार्श्व-साहित्य के समस्त लेखक इस अवधि के विषय में एकमत है। तीर्थ से तात्पर्य वस्तुतः उस काल से है, जिसमें कि एक तीर्थंकर के उपदेश का तदनुसार ही कथन एवं तदनुसार आचार-पालन किया जाता है।

पार्श्वयुगीन निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय

स्थानांगसूत्र एवं समवायांगसूत्र के अनुसार उक्त निर्ग्रन्थ-सम्प्रदाय चातुर्यामी था[1]। बौद्ध-साहित्य के दीघनिकाय के अनुसार राजा श्रेणिक-बिम्बसार का पुत्र कुणिक (अजातशत्रु) भगवान बुद्ध के सम्मुख महावीर से हुई अपनी भेंट की सूचना देता हुआ कहता है—"निर्ग्रन्थ चातुर्याम-संवर से संयत होता है[2]।" इसी प्रकार की चर्चा संयुत्तनिकाय तथा अंगुत्तरनिकाय में भी मिलती है। उत्तराध्ययन-सूत्र के केशी-गौतम संवाद[3] में चातुर्याम की स्पष्ट चर्चा है, जिससे भी महावीर-पूर्व के निर्ग्रन्थ-सम्प्रदाय पर प्रकाश पड़ता है।

---

1. (1) सव्वातो पाणातिवायाओ बेरमणं (2) सव्वातो मुसावायाओ बेरमणं। (3) सव्वातो आदिन्नादाणाओ बेरमणं (4) सव्वातो बहिद्धादाणाओ बेरमणं। —(दे. ठाणांग. 324)
2. निग्गण्ठो चातुयामसंवरसंबुत्तो होति। कथं च महाराज निग्गण्ठो चातुयामसंवरसंबुत्तो होति ? इध महाराज निग्गण्ठो सव्ववारिवारितो च होति, सव्ववारियुतो च, सव्व वारिधुवो च सव्ववारिपुट्ठो च। एवं महाराज निग्गण्ठो चातुयामसंवरसंबुत्तो होति। दीघनिकाय सामंञफलसुत्तं।
3. दे. उत्तराध्ययन सूत्र का तेईसवाँ अध्ययन।

डॉ. याकोबी के अनुसार महावीर-पूर्व के जिस अग्रायणीय आदि चतुर्दश-पूर्व-साहित्य की चर्चा आती है और महावीर के पहले जो कोई प्रभावक सम्प्रदाय था, जो कि चातुर्याम का प्रचारक था, तीर्थंकर-पार्श्व उसके नायक थे[1]।

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि तीर्थंकर महावीर जैनधर्म के संस्थापक नहीं, वे उसके प्रचारक थे। उनके पूर्व 23 तीर्थंकर और भी हो चुके थे, उनमें से तीर्थंकर ऋषभ से लेकर तीर्थंकर नेमिनाथ तक, उनके जीवन-चरितों के अंकन में असम्भव जैसी लगने वाली अनेक बातें जुड़ गई, जिनसे सामान्य विचारक के मन में उनकी ऐतिहासिकता सन्दिग्ध जैसी लगने लगी, जैसे कि उनके आयुष्य, कुमार-काल एवं तीर्थकाल आदि को देखें, तो उनकी अवधि एवं अन्तराल में लाखों अथवा करोड़ों वर्षों का अन्तर बताया गया है। यद्यपि कि मानव-सृष्टि-विद्या (Anthropology) के अनुसार वे अब सत्य भी प्रतीत होने लगी हैं। उनकी आयु, कुमारकाल तथा तीर्थकाल आदि के विषय में जो जानकारी विविध साक्ष्यों से मिलती हैं, वह अब सम्भाव्य एवं विश्वासजनक प्रतीत भी होने लगी है।

अर्धमागधी-आगम-साहित्य के अनुसार वर्धमान महावीर के माता-पिता पासावचिज्ज (पार्श्वापत्यिक) थे[2]।

इस पासवचिज्ज अथवा पार्श्वापत्यिक शब्द के दो अर्थ स्पष्ट रूप से निकलते हैं—

(1) पार्श्वापत्यीय तीर्थंकर-पार्श्व के अनुयायी थे।

(2) और वे, चातुर्यामी अर्थात्, अहिंसा आदि चार यामों के प्रतिपालक थे। उत्तराध्ययन सूत्र के केशी-गौतम संवाद में स्पष्ट रूप से कहा गया है :—

चाउज्जामो य जो धम्मो जो इमो पंचसिक्खिओ।
देसिओ वड्ढमाणेण पासेण य महामुणि।।

अर्थात् हे महामुनि, चातुर्याम-धर्म का उपदेश पार्श्व ने किया और पंचशिक्षा अर्थात पंचयाम का उपदेश वर्धमान ने किया। इससे यह स्पष्ट है कि पार्श्वनाथ चातुर्याम के उपदेशक थे। उनके अनुयायी पार्श्वापत्यीय कहलाते थे। बदली हुई युग-परिस्थितियों में वर्धमान महावीर ने पाँच प्रकार की शिक्षाओं अर्थात् अहिंसादि पंचयाम की शिक्षाएँ दी।

शौरसेनी-जैनागमों तथा अन्य दिगम्बर जैन साहित्य में यद्यपि पार्श्वापत्य तथा चातुर्याम जैसे पद-वाक्य नहीं मिलते। किन्तु आचार्य पूज्यपाद (5वीं सदी) के अनुसार भगवान महावीर ने सर्वप्रथम 13 प्रकार के चारित्र का उपदेश दिया। इसके पूर्व अन्य किसी तीर्थंकर ने नहीं[3]।

पूज्यपाद के उक्त कथन का समर्थन उत्तराध्ययन सूत्र तथा उसके टीकाकार अभयदेवसूरि तथा शान्त्याचार्य के कथन से भी होता है। अभयदेवसूरि ने चतुर्थ याम— परिग्रह में ही ब्रह्मचर्यव्रत समाहित बताया है[4]। इसी प्रकार शान्त्याचार्य के अनुसार चातुर्याम वही है जो ब्रह्मचर्यात्मक पाँचवे महाव्रत सहित है[5]।

---

1. SBE Seried Vol. 45 P. 13
2. समणस्य णं भगवओ महावीरस्म अम्मा-पियरो पासावचिज्जा समणोवासगा या वि होत्था (आचारांग. 2/7) इस सूत्र के पासावचिज्ज की व्याख्या इस प्रकार की गई है—
   (क) पार्श्वापत्यस्य पार्श्वस्वामिशिष्यस्य अपत्यं शिष्यः पार्श्वापत्यीयः
   (ख) पार्श्वजिन शिष्याणामयं पार्श्वापत्यीयः —(भगवती. 1/9)
   (ग) पार्श्वनाथशिष्यः —(स्थानांग/9)
   (घ) चातुर्यामिक साधौ —(भगवती. 15)
3. चारित्रभक्ति 1-7
4. चतुर्थ याम-बहिद्धादाण-बहिर्धाआदान
5. चातुर्याम स एवं मैथुनविरमणात्मकः पंचमव्रतसहितः —(उत्तराध्ययन सूत्र टीका-सूत्र 23)

इस प्रकार भले ही पूज्यपाद ने चातुर्याम जैसे पद का प्रयोग न किया हो, फिर भी परोक्षतः उनका तात्पर्य वही है, जिसका समर्थन उत्तराध्ययनादि से होता है।

दिगम्बर एवं श्वेताम्बर दोनों मान्यताओं में यह एक तथ्य सामान्य है कि उनके साहित्य में यह उल्लेख नहीं मिलता कि तीर्थंकर ऋषभ द्वारा प्रतिपादित पंचयाम को पार्श्व ने अथवा उनके पूर्ववर्त्ती तीर्थंकरों ने संक्षिप्त कर उसे चातुर्याम के रूप में प्रतिपादित किया और महावीर ने पुनः वर्गीकरण कर विस्तार देकर उसे पंचयाम कहा।

मूलाचार (बट्टकेर) के सन्दर्भ-संकेत

तीर्थंकर महावीर की पाँच शिक्षाओं अथवा पाँच महाव्रतों के प्रचलन का स्पष्टीकरण बट्टकेर कृत मूलाचार में मिलता है, जिसके अनुसार मध्य के 22 तीर्थंकरों (अर्थात् अजित से नेमि तक) ने सामायिक की शिक्षा प्रदान की[1]। इस प्रसंग में भी दो शिक्षाओं (चातुर्याम एवं पंचयाम) का कारण प्रायः वही दिया गया है, जो उनकी भिन्नता के कारणों को समझाने के लिए इन्द्रभूति ने केशी को दिया था। तदनुसार चूँकि प्रथम ऋषभ तीर्थंकर के काल में ऋजुजड़-मनुष्य कठिनाई से शुद्ध भाव ग्रहण करते हैं और अन्तिम तीर्थंकर महावीर के काल में वक्रजड़-मनुष्य को कठिनाई से उचित मार्ग पर लाया जा सकता है। चूँकि मनुष्य प्रारम्भ और अन्त में कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य के भेद को नहीं समझ पाते, अतः उन्हें 5 महाव्रतों की शिक्षा प्रदान की गई क्योंकि वर्गीकृत पद्धति से इनका समझाना, विश्लेषण करना एवं समझना अपेक्षाकृत सरल है[2]।

उक्त तथ्य के समर्थन में मूलाचार की वे गाथाएँ विशेष महत्त्वपूर्ण हैं, जिनके अनुसार समस्त मानव-कर्मों से विरति का पालन 'सामायिक' है तथा उस विरति का वर्गों में विभाजन कर उनका पालन करना छेदोपस्थापना है। इस छेदोपस्थापना को ही पंचमहाव्रतों की संज्ञा प्रदान की गई है। यथा—

विरदो सव्व सावज्जं तिगुत्तो पिहिदिंदिओ।
जो सामाइयं णामं संजमट्ठाणमुत्तमं।। –मूलाचार 7/23,

वावीसं तिथ्थयरा सामायिय संजमं उवदिसंति।
छेदुवट्ठावणियं पुण भयवं उसहो य वीरो य।। –मूलाचार 7/36

आचक्खिदु विभजिदुं विण्णादुं चावि सुहदरं होदि।
एदेण कारणेण दु पंच महव्वदा पण्णत्ता।। –मूलाचार 7/37

देवनन्दि-पूज्यपाद ने भी इसके समर्थन में स्पष्ट घोषित किया है कि—

"सर्वसावद्य निवृत्तिलक्षणसामायिकापेक्षया एकं व्रतं तदेव छेदोपस्थापनापेक्षया पंचविधमिहोच्यते।

अर्थात्-जिसका लक्षण सर्वसावद्य (कर्मों) से निवृत्ति है, उस एक व्रत रूप सामायिक की अपेक्षा से उसे ही यहाँ छेदोपस्थापनारूप पाँच प्रकार का कहा गया है।

उक्त कथन चूँकि आचार्य पूज्यपाद ने पाँच महाव्रतों के प्रसंग में किया है, अतः उनका यहाँ पाँच प्रकार से तात्पर्य पाँच महाव्रतों से ही रहा है।

---

1. मूलाचार-गाथा 7/23-39
2. मूलाचार (पं. जिनदास पार्श्वनाथ फडकुले द्वारा सम्पा.) गाथा 7-39

आचार्य पूज्यपाद (5वीं सदी), अकलंक (आठवीं सदी) एवं पं. आशाधार (13 वीं सदी) के कथन

सर्वार्थसिद्धि[1] तत्वार्थराजवार्त्तिक[2], अनगारधर्मामृत (पं. आशाधर कृत)[3] तथा उत्तराध्ययन-सूत्र[4] में भी उक्त सामायिक एवं छेदोपस्थापना सम्बन्धी मूलाचार के सिद्धान्त के समर्थन में विस्तृत व्याख्याएँ उपलब्ध होती हैं। उत्तराध्ययन सूत्र में स्पष्ट बताया गया है कि "सामायिक करने से चाउज्जाम (चातुर्याम) धर्म का परिपालन होता है, जो इसे पालता है, उसका सामायिक-संयम होता है तथा जो सामायिक-संयम को विभाजित कर पाँच यामों में स्थित होता है, वह छेदोपस्थापक कहलाता है, आचारांग सूत्र के अनुसार वर्धमान महावीर ने दीक्षा के समय सामायिक-संयम ग्रहण किया था। यथा—**तओ णं समणे भगवं महावीरे दाहिणेणं दाहिणं वामेणं वामं पंचमुट्ठियं लोयं करेंता णमोक्कारं करेई। करेंता सव्वं में अकरणिज्जं पावकम्मं त्ति कट्टु सामाइयं-चरित्तं पडिवज्जइ[5]।।**

तात्पर्य यह कि मूलाचार में जिसे छेदोपस्थापना कहा गया है, उत्तराध्ययन सूत्र में वही चाउज्जाम धर्म है। सामायिक एक व्रत है तथा उसका पाँच भागों में विभाजन ही छेदोपस्थापना कहलायी। आचारांग-सूत्र एवं दिगम्बर-परम्परा के अनुसार पार्श्वनाथ सामायिक-संयम के उपदेशक थे। भगवती-व्याख्या, प्रज्ञति (25/7/785) में भी यही तथ्य उपलब्ध होता है।

पार्श्वयुगीन श्रावकः वर्तमान कालीन 'सराक'

बीसवीं सदी के प्रारम्भिक चरण में पारसनाथ पहाड़ (शिखर-सम्मेद) की तराई में पार्श्व विषयक प्राच्यकालीन साक्ष्यों की खोजबीन करने के प्रयत्न किए गए हैं। व्ययसाध्य, श्रमसाध्य एवं धैर्यसाध्य होने के कारण वह कार्य जैसा होना चाहिए था, वैसा तो नहीं हो पाया, फिर भी उस खोजबीन से जो तथ्य उभर कर आए, वे बड़े ही रोचक हैं।

इस खोज-प्रसंग में सन् 1910 के आसपास एक 'सराक' जाति का पता चला, जो पूर्व में तो आदिवासी, गोंड, भील, सौंर एवं पिछड़ी वन्य जातियों की कोटि में आती थीं किन्तु वह स्वयं अपने को "सराक" कहती थीं। वह अपने अग्रजों-पूर्वजों को भूल चुकी थी, अपना गौरवपूर्ण इतिहास एवं परम्परा भी भूल चुकी थी किन्तु अनजाने में ही वह परम्परा-प्राप्त संस्कारों को विस्मृत नहीं कर पाई थीं क्योंकि आज भी वह प्रायः शाकाहारी है, प्रायः अष्ट मूलगुणों की संस्कारवान् है। तामसिक भोजन तथा लहसुन, प्याज आदि के सेवन से प्रायः दूर, हिंसावाचक शब्द, यथा-काटो-काटो, टुकड़ा-टुकड़ा करो, मारो-मारो जैसे शब्द-प्रयोगों से दूर, रात्रिभोजन त्यागी, छनें हुए जल का सेवन करने वाले और अभक्ष्य-त्याग जैसे नियमों के यथासम्भव प्रतिपालक हैं।

उनके वर्तमान नाम तथा गोत्र-आदिदेव, ऋषभदेव, शान्तिदेव, अनन्तदेव, धर्मदेव, पार्श्वदेव आदि तीर्थकरों के नामों में सम्बन्धित मिलते हैं। वे तीर्थंकर पार्श्व को अपने कुलदेवता के रूप में मानते तथा पूजते हैं। सराक-बहुल पुरुलिया तथा बंगाल के अजीमगंज, देउलमीरा कॉटाबोनिया तथा अनाईजामबाद आदि स्थानों में उपलब्ध प्राच्यकालीन साढ़े पाँच फुट खडगासन पार्श्वमूर्ति तथा बॉकुडा जिले में बाहुलाडा ग्राम में 8वीं सदी की पार्श्व मूर्ति इसके प्रमुख प्रमाण हैं। यही नहीं, बिहार के कोल्हुआ पहाड़ से लेकर बंगाल, उड़ीसा तथा मध्यप्रदेश तक उत्खनन तथा गुफागृहों में प्राप्त पार्श्वमूर्तियाँ भी इसके जीवन्त प्रमाण हैं। उपलब्ध पुरातात्विक सामग्री के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि पूर्वोत्तर भारत का यह प्रदेश पार्श्व-संस्कृति का भक्त-अनुयायी था।

1-2. दोनों ग्रन्थों की 7/1 सूत्र की व्याख्याएँ देखिये

3. अनगारधर्मामृत 9/87

4. उत्तराध्ययन 28/8

5. *आचारांग सूत्र 1013*

एक अन्य साक्ष्य यह भी प्राप्त हुआ है कि बिहार-प्रान्त के गया एवं रफीगंज (औरंगाबाद) के मध्य कोल्हुआ एवं झारखण्ड स्थित सम्मेद-शिखर (पारसनाथ हिल्स) के पर्वत-शिखर को जोड़ने वाले पर्वत-खण्ड, बिहार एवं झारखण्ड-प्रान्तीय भूगोल एवं आम जनता की बोली में आज भी 'श्रावक पहाड़' एवं 'प्रचार-पहाड़' के नाम से जाने जाते हैं। इन पर्वतों में उकेरी हुई कुछ पार्श्वमूर्तियों, धरणेन्द्र-यक्ष एवं पद्मावती की मूर्तियाँ एवं उनकी जैन-गुफाएँ भी उपलब्ध हैं। उक्त पूरे प्रदेशों में उक्त सराक जाति निवास करती है, जो सम्भवतः किन्ही राजनैतिक एवं धार्मिक ऑधी-तूफानों की भीषण मार सहते-सहते मूल स्थानों को बरबस छोड़कर आज दुर्गति का जीवन जी रही है। वस्तुतः ये पार्श्व के सच्चे अनुयायी अथवा पार्श्वापत्य हैं। इनकी विधिवत् जनगणना नहीं हुई है। फिर भी ऐसा अनुमान किया जाता है कि इनकी संख्या सम्भवतः 15-20 लाख से भी अधिक होगी।

वर्तमान में यह सराक जाति-सराक, मॉझी, मण्डल, अधिकारी, चौधरी, आचार्य आदि उपनामों से भी जानी जाती है। इनमें से एक जाति "मारंगकुरु" (पर्वत का देवता) की पूजा करती है तथा वह उक्त पार्श्वनाथ की पहाड़ी को ही "मारंगकुरु" मानती है।

राँची एवं सिंहभूम जिलों की सराक जाति तीन विभागों में विभक्त हैं— (1) मूल-सराक (2) सिकरिया-सराक एवं (3) कड़ासी-सराक। वर्तमान में मूल-सराक एवं सिकरिया-सराक भी दो भागों में विभक्त हैं। आज भी वे भगवान ऋषभदेव के बताए हुए मार्ग-कृषि करो अथवा ऋषि-जीवन व्यतीत करो जैसे नियम के पालन का प्रयत्न करते हैं और न्यायोचित पद्धति से जीवन-यापन का प्रयत्न करते हैं। आज के समाज-शास्त्री एवं इतिहासकार प्राचीन जैन साहित्य तथा पुरातात्विक साक्ष्यों में संचित बहुआयामी सन्दर्भों के आधार पर इस क्षेत्र में यदि सघन निष्पक्ष शोध-कार्य करें, तो उन्हें ईसापूर्व की सदियों के अनेक प्रच्छन्न ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक रोचक तथ्य प्राप्त हो सकते हैं।

पार्श्वचरित सम्बन्धी उपलब्ध विविध साहित्य

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि जैनाचार्यों ने पार्श्व के समकालीन लोक-प्रचलित सन्दर्भों, पारम्परिक प्रवचन-वृत्तान्तों तथा लोकानुश्रुतियों के आधार पर पार्श्व के चरित का प्रथमतः त्रिषष्ठिशलाकामहापुरुषचरित के अन्तर्गत एकबद्ध ग्रन्थ के रूप में समस्त त्रेसठ-शलाका-महापुरुषों के साथ संक्षिप्त वर्णन किया है। ऐसे ग्रन्थों में प्राप्त प्रकीर्णक तथ्यों को प्रवाहपूर्ण कथानक के रूप में व्यवस्थित किया गया है। इनमें घटना की प्रधानता है। घटनाओं को आलंकारिक काव्यरूपों में ढालने के अवसर सम्भवतः ग्रन्थ-विस्तार के भय से कवियों को प्रायः अल्पमात्रा में ही प्राप्त हुए हैं। इस श्रेणी की रचनाओं में, जिन्हें कि महापुराण के अपरनाम से भी जाना जाता है, अभी तक आचार्य जिनसेन, पुष्पदन्त, शीलांक, वीरवर चामुण्डराय, हेमचन्द्र, दामनन्दि एवं रइधू द्वारा लिखित ग्रन्थ प्रमुख हैं। इनमें से जिनसेन, हेमचन्द्र एवं दामनन्दि के ग्रन्थ संस्कृत में, शीलांक का ग्रन्थ प्राकृत में, चामुण्डराय का ग्रन्थ कन्नड़ में (अद्यावधि अनुपलब्ध) तथा पुष्पदन्त एवं रइधू के ग्रन्थ अपभ्रंश में है। शीलांक द्वारा लिखित प्राकृत महापुराण-चउप्पन्नमहापुरिसचरियं के नाम से प्रसिद्ध है। शीलांक ने शलाका महापुरुषों के अंतिम वर्ग को ध्वंसात्मक प्रवृत्ति के होने के कारण उन्हें मान्यता प्रदान नहीं की, इसलिए 54 महापुरुषों का ही जीवन-चरित लिखा। इसमें सन्देह नहीं कि उक्त ग्रन्थ परवर्त्ती संस्कृत, प्राकृत, कन्नड एवं अपभ्रंश आदि के लेखकों के लिए पार्श्व-चरित सहित अन्य स्वतन्त्र चरित-काव्यों के लेखन के लिए भी प्रेरणा के स्रोत बनें।

आलंकारिक, काव्य-शैली के स्वतन्त्र पार्श्व-चरितों में **संस्कृत** के पार्श्वाभ्युदयकाव्य[1] (जिनसेन 9वीं सदी),

1. निर्णयसागर प्रेस बम्बई (सन् 1909) से प्रकाशित।

पार्श्वनाथचरित[1] (वादिराज, 11वीं सदी), पार्श्वनाथचरित[2] (माणिक्यचन्द्र सूरि 13वीं सदी), पार्श्वनाथचरित[3] (विनयचन्द्रसूरि, 13वीं सदी, अप्रकाशित) पार्श्वनाथचरित[4] (सर्वानन्दसूरि, 13वीं सदी), पार्श्वनाथपुराण[5] (सकलकीर्ति, 14-15वीं सदी), पार्श्वनाथचरित[6] (भावदेवसूरि, 14वीं सदी), पार्श्वनाथचरित[7] (पद्मसुन्दरगणि, 16वीं सदी), पार्श्वनाथचरित[8] (हेमविजयगणि, 16वीं सदी), पार्श्वनाथपुराण[9] (वादिचन्द्र, 16वीं सदी), पार्श्वनाथचरित[10] (उदयवीरगणि, 16वीं सदी) पार्श्वनाथपुराण[11] (चन्द्रकीर्ति, 16वीं सदी) आदि प्रमुख है।

प्राकृत में - पासणाहचरियं[12] (देवप्रभसूरि, 12वीं सदी) तथा **अपभ्रंश** में - पासणाहचरिउ[13] (पउमकित्ति 11वीं सदी), पासणाहचरिउ (बुध श्रीधर, 12वीं सदी) पासणाहचरिउ[14] (असवाल, 15वीं सदी, अप्रकाशित), पासपुराणु[15] (तेजपाल, 15वीं सदी)। पासणाहचरिउ[16] (देवचन्द्र, 15वीं सदी, अप्रकाशित) एवं पासणाहचरिउ (रइधू, 16वीं सदी) और आदियुगीन हिन्दी में पार्श्वपुराण[17] (महाकवि भूधरदास, 18वीं सदी) प्रमुख हैं।

पार्श्व सम्बन्धी चरित-साहित्य के अतिरिक्त पार्श्व सम्बन्धी शताधिक भक्तिपरक पूजाएँ, स्तोत्र एवं स्तुतियाँ भी लिखी गई। पूजाओं की जयमालाओं में भी पार्श्वचरित के सूत्रात्मक संकेत दिये गये हैं। स्तुतियों में प्राकृत-भाषा का उवसग्गहरस्तोत्र प्राचीनतम माना गया, जो डॉ. याकोबी के अनुसार आचार्य भद्रबाहु (प्रथम) कृत है, यदि यह तथ्य है, तो उसके अनुसार वह स्तोत्र ईसा पूर्व पाँचवीं शती के आसपास का सिद्ध होता है[18]।

विभिन्न पार्श्वचरितों में प्राप्त पार्श्व के पूर्व-भवों का तुलनात्मक संक्षिप्त मानचित्र

	(1) पहला भव					(2) दूसरा भव		(3) तीसरा भव	
ग्रन्थ का नाम	पिता का नाम	माता का नाम	पार्श्व की पूर्व योनि का नाम	कमठ की पूर्व योनि का नाम	पार्श्व के देह-त्याग का कारण	योनि का नाम, जहाँ पार्श्व का जीव उत्पन्न हुआ	योनि का नाम जहाँ कमठ का जीव उत्पन्न हुआ	पार्श्व का जीव, कहाँ उत्पन्न हुआ?	कमठ का जीव कहाँ उत्पन्न हुआ?
गुणभद्र कृत उत्तरपुराण 9वीं सदी	विश्वभूति	अनुंधरी	मरुभूति	कमठ	कमठ का क्रोधावेश	वज्रघोष हाथी	कुक्कुट सर्प	सहस्रार कल्प	धूमप्रभ नरक
पुष्पदन्त कृत महापुराण (तिसट्ठि.) 9वीं सदी	"	"	"	"	"	"	"	"	"
वादिराजसूरि कृत पार्श्व-चरित 10वीं सदी	"	"	"	"	"	पविघोष हाथी	सर्प	महाशुक्र	"
देवभद्रसूरिकृत सिरिपास. 12वीं सदी	"	"	"	"	"	करि (हाथी)	कुक्कुट सर्प	सहस्रार कल्प	"
हेमचन्द्रकृत त्रिषष्ठि. 13वीं सदी	"	"	"	"	"	"	"	"	"
पउमिकित्ति कृत पासणाह. 11वीं सदी	"	"	"	"	"	अशनि घोष	"	"	नरक
हेमविजयगणिकृत पार्श्वचरितम् 14वीं सदी	"	"	"	"	"	हाथी	"	"	पाँचवा नरक
महाकवि रइधूकृत पास. 15वीं-16वीं सदी	"	"	"	"	"	पविघोष हाथी	सर्प कुक्कुट	"	धूमप्रभ
बुध श्रीधर कृत पास. 12वीं सदी	"	"	"	"	"	अशनि घोष हाथी	कुक्कुट सर्प	सहस्रारस्वर्ग	पंचम नरक

1. माणिक दि. जैन ग्रन्थमाला बम्बई (सन् 1916) से प्रकाशित

2-17. दे. डॉ. राजाराम जैन द्वारा लिखित रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन (वैशाली, 1974 ई.)

18. S.B.E. Series, Vol. 45, Introducton

	(4) चौथा भव					(5) पाँचवा भव	
ग्रन्थ का नाम	पिता का नाम	माता का नाम	पार्श्व की पूर्व-योनि का नाम	कमठ की पूर्व–योनि का नाम	पार्श्व के देह-त्याग का कारण	पार्श्व का जीव, किस स्वर्ग में गया?	कमठ का जीव किस नरक में गया?
गुणभद्र कृत उत्तरपुराण 9वीं सदी	विद्युत्गति	विद्युन्माला	रश्मिवेग	अजगर	अजगर के निगलने से	अच्युत कल्प	छठवाँ नरक
पुष्पदन्त कृत महापुराण (तिसट्ठि.) 9वीं सदी	विद्युत्वेग	तडिन्माला	"	"	"	"	तमप्रभ नरक
वादिराजसूरि कृत पार्श्व-चरित 10वीं सदी	"	"	"	भुजंग	भुजंग के डँसने से	"	तमप्रभ नरक
देवभद्रसूरिकृत, सिरिपास. 12वीं सदी	विद्युत्गति	तिलकावती	किरणवेग	सर्पमहोरग	"	"	धूमप्रभ नरक
हेमचन्द्रकृत त्रिषष्ठि. 13वीं सदी	"	कनकतिलका	"	सर्पमहाहिः	"	द्वादश कल्प	तमप्रभ नरक
पउमकित्ति कृत पासणाह. 11वीं सदी	"	मदनावली	"	अजगर	अजगर के डँसने से	अच्युत कल्प	रौद्रनरक
हेमविजयगणिकृत पार्श्वचरितम् 14वीं सदी	विद्युत्गति	कनकतिलका	रश्मिवेग	सर्प महाहिः	सर्प के डँसने से	"	तमप्रभ
महाकवि रइधूकृत पास. 15वीं-16वीं सदी	अशनिगति	तडित्वेगा	अशनिवेग	अजगर	अजगर के निगलने से	"	पाँचवा नरक
बुध श्रीधर कृत पास. 12वीं सदी	विद्युत्वेग	रत्ना	किरणवेग अथवा- (रविवेग)	अजगर	अजगर के डँसने से	अच्युत कल्प	तमप्रभ छठवाँ नरक

	(6) छठवाँ भव					(7) सातवाँ भव	
ग्रन्थ का नाम	पिता का नाम	माता का नाम	पार्श्व की पूर्व-योनि का नाम	कमठ की पूर्व-योनि का नाम	पार्श्व के देह-त्याग का कारण	पार्श्व का जीव, किस स्वर्ग में गया?	कमठ का जीव किस नरक में गया?
गुणभद्र कृत उत्तरपुराण 9वीं सदी	वज्रवीर्य	विजया	वज्रनाभि चक्रवर्ती	भील कुरंगक	भील के बाण द्वारा	सुभद्रनामक ग्रैवेयक	नरक
पुष्पदन्त कृत महापुराण (तिसट्ठि.) 9वीं सदी	"	"	वज्रवाहू चक्रवर्ती	"	"	मध्यम ग्रैवेयक	नरक
वादिराजसूरि कृत पार्श्व. 10वीं सदी	"	"	चक्रनाभ चक्रवर्ती	"	"	सुभद्र ग्रैवेयक	सप्तम नरक
देवभद्रसूरिकृत, सिरिपास. 12वीं सदी	"	लक्ष्मीमति	वज्रनाभ	शबर कुरंगक	शबर के बाण द्वारा	ग्रैवेयक	सप्तम नरक
हेमचन्द्रकृत त्रिषष्ठि. 13वीं सदी	"	"	"	"	"	मध्यम ग्रैवेयक	सप्तम नरक
पउमकित्ति कृत पासणाह. 11वीं सदी	"	"	चक्रायुध	"	"	ग्रैवेयक	नरक
हेमविजयगणिकृत पार्श्वचरितम् 14वीं सदी	"	"	वज्रनाभ	"	"	मध्यम ग्रैवेयक	सप्तम नरक
महाकवि रइधू कृत पासणाह. 15-16वीं सदी	"	विजया	"	"	"	ग्रैवेयक	अंतिम नरक
बुध श्रीधर कृत पासणाह. 12वीं सदी	वज्रवीर	लक्ष्मीमति	चक्रायुध	कुरंगभील	कुरंगभील के बाण द्वारा	मध्यम ग्रैवेयक	तमप्रभ सप्तम नरक

	(8) आठवाँ भव					(9) नौवाँ भव	
ग्रन्थ का नाम	पिता का नाम	माता का नाम	पार्श्व की पूर्व-योनि का नाम	कमठ की पूर्व-योनि का नाम	पार्श्व के देह त्याग का कारण	पार्श्व का जीव, किस स्वर्ग में गया	कमठ का जीव किस नरक में गया
गुणभद्र कृत उत्तरपुराण 9वीं सदी	वज्रबाहु	प्रभंकरी	आनंद मण्डलेश्वर	सिंह	सिंह के खा डालने से	प्राणंत कल्प	नरक
पुष्पदन्त कृत महापुराण (तिसट्ठि.) 9वीं सदी	"	"	"	×	×	"	"
वादिराजसूरि कृत पार्श्व. 10वीं सदी	"	"	"	सिंह	सिंह के खा डालने से	आनत	तमप्रभ
देवभद्रसूरिकृत, सिरिपास. 12वीं सदी	कुलिशबाहु	"	कनकबाहु चक्रवर्ती	"	"	प्राणत	पंकप्रभा
हेमचन्द्रकृत त्रिषष्ठि. 13वीं सदी	"	सुदंसणा	सुवर्णबाहु चक्रवर्ती	"	"	दशम कल्प	चतुर्थ नरक
पउमकित्ति कृत पासणाह. 11वीं सदी	वज्रबाहु	प्रभंकरी	कनकप्रभ चक्रवर्ती	"	"	वैजयंत	रौद्र नरक
हेमविजयगणिकृत पार्श्वचरितम् 14वीं सदी	कुलिशबाहु	सुदंसणा	सुवर्णबाहु चक्रवर्ती	"	"	दशम कल्प	चतुर्थ नरक
महाकवि रइधू कृत पासणा. 15-16वीं सदी	वज्रबाहु	प्रभंकरी	आनंद चक्रवर्ती	"	"	चौदहवां कल्प	धूमप्रभ नरक
बुध श्रीधर कृत पासणा. 12वीं सदी	वज्रबाहु	प्रभंकरी	चक्रवर्ती चक्रायुध	सिंह	सिंह के खा डालने से	वैजयन्त	प्रथम नरक

उक्त पार्श्वचरितकारों की यह विशेषता रही है कि उन्होंने पार्श्व सम्बन्धी कथानक को प्राप्त-परम्पराओं के आलोक में यथारुचि विस्तार तो दिया ही, विभिन्न काव्य-शैलियों के प्रयोग कर जैनेतर विकसित श्रेण्य-साहित्य की श्रेणी में भी जैन-साहित्य को प्रतिष्ठित स्थान प्रदान कराया, यही नहीं, जैन कवियों की एक अन्य विशेषता यह भी रही, कि उन्होंने वर्णन-प्रसंगों में काल्पनिक उड़ानों के मध्य भी युगीन-परिस्थितियों एवं लोकजीवन की जीवन झाँकियाँ तो प्रस्तुत की ही, रचना के आदि अथवा अन्त में स्ववृत्त के साथ-साथ प्रायः अन्य सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक घटनाओं के तथ्य प्रस्तुत कर समकालीन ऐतिहासिक तथ्यों को भी सुरक्षित रखा है।

अपभ्रंश भाषा का पार्श्व सम्बन्धी चरित-साहित्य

अपभ्रंश-भाषा में पार्श्वचरित सम्बन्धी साहित्य अधिक मात्रा में उपलब्ध नहीं है। इसके तीन कारण हो सकते हैं—

1. विदेशी आक्रमणों के समय राजनैतिक अराजकता के कारण अनेक ग्रन्थ लुप्त-विलुप्त हो गए, अथवा,
2. विदेशी पर्यटकों द्वारा उनका अपहरण अथवा धन-लोलुपियों द्वारा विदेशों में तद्विषयक ग्रन्थ विक्रय कर दिये। अथवा,
3. भारत में ही वे कहीं कोने-अंधेरे में छिपे पड़े हैं।

उपलब्ध उक्त साहित्य का वर्गीकरण

जो ग्रन्थ उपलब्ध एवं ज्ञात हैं, उन्हें दो-दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है। प्रथमतः तो वे पार्श्वचरित, जो त्रिषष्ठिशलाकामहापुराण-पुरुषचरित (अपरनाम महापुराण) के अन्तर्गत संक्षेप में वर्णित हैं। ऐसी दो रचनाएँ अद्यावधि उपलब्ध हैं—

(1) अभिमानमेरु, काव्य-पिशाच जैसे विरुदधारी तथा प्रकृति से अत्यन्त स्वाभिमानी महाकवि पुष्पदन्त कृत तिसट्ठिमहापुराण-पुरिसगुणालंकारु (9वीं सदी)— इसमें ग्रन्थारम्भ में मगध सम्राट् श्रेणिक के प्रश्न के उत्तर स्वरूप भगवान महावीर के पट्टशिष्य गौतम-गणधर द्वारा शलाका-महापुरुषों के चरितों का कथन किया गया है। तदनुसार प्रस्तुत रचना में जैन-परम्परा के 63 महापुरुषों के चरितों का संक्षिप्त वर्णन है। ग्रन्थ का वर्ण्य-विषय 102 सन्धियों के कुल 1967 कडवकों में समाप्त किया गया है। इनमें से पासणाहचरिउ का कथानक सन्धि संख्या 93 एवं 94 के मात्र (15+15=) 30 कडवकों में वर्णित है।

इसमें कवि ने पार्श्वचरित के कथानक का प्रारम्भ उनके पुनर्जन्मों में से (1) मरुभूति, (2) वज्रनाभि, (3) आनतस्वर्गेन्द्र, (4) आनत एवं (5) पार्श्व तथा मरुभूति के भाई कमठ के पुनर्जन्मों में से (1) भिल्ल, (2) नारक, (3) सिंह, (4) नारक एवं (5) राजा महीपाल के भवों का वर्णन किया है।

इसमें सन्देह नहीं कि कथानक संक्षिप्त है किन्तु वह सरस, रोचक एवं प्रवाहपूर्ण है। सीधी-सादी सरलभाषा एवं मार्मिकता तथा प्रभावोत्पादकता की दृष्टि से उसका पुरुषार्थ एवं स्वाभिमान के चित्रण का एक उदाहरण देखिए—

खग्गें मेहें किं णिज्जलेण तरुणा सरेण किं णिप्फलेण ?
मेहें कामें किं णिद्दवेण मुणिणा कुलेण किं णित्तवेण ?
कव्वें णडेण किं णीरसेण रज्जें भोज्जें किं परवसेण? 57/7/1-3

अर्थात् पानी रहित मेघ एवं खड्ग से क्या लाभ? फल-विहीन वृक्ष एवं बाण से क्या लाभ? द्रवित न होने वाले मेघ एवं काम से क्या लाभ? तपरहित मुनि और अकर्मण्य कुल किस काम का? नीरस काव्य और नट से क्या लाभ? पराधीन राज्य और भोजन से क्या लाभ?

प्रस्तुत ग्रन्थ देवरी (सागर) निवासी एवं बम्बई प्रवासी पं. नाथूराम प्रेमी के सत्प्रयत्नों से माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला बम्बई की ओर से सर्वप्रथम प्रकाशित हुआ। इसका सम्पादन पूना के विद्वान् प्रो. डॉ. पी.एल. वैद्य द्वारा लगभग 12 वर्षों की एकान्त साधना एवं कठोर श्रम के बाद तीन खण्डों में उसका प्रकाशन किया गया। प्रथम खण्ड (आदिपुराण) में 37 संधियाँ एवं 769 कडवक, द्वितीय खण्ड (अजित से नमिनिर्वाण तक) में 38 से 80 तक 42 सन्धियाँ एवं 728 कडवक तथा तृतीय खण्ड (नेमि से वीर-निर्वाण आदि तक) में 81 से 102 संधियों में 470 कडवक। इन तीनों में कुल मिलाकर भूमिका सहित (704+591+374=) 1669 पृष्ठ हैं। इनका प्रकाशन सन् 1937 से 1941 तक सम्पन्न हुआ था[1]।

प्रस्तुत ग्रन्थ की आश्रयतदाता-प्रशस्ति बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। उसके अनुसार इस ग्रन्थ की रचना कवि पुष्पदन्त ने राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण तृतीय के महामात्य भरत के आश्रय में रहकर सन् 959 में की थी। आदिपर्व के लेखन के बाद कवि किसी कारणवश कुछ हतोत्साह हो गया था, किन्तु सरस्वती द्वारा स्वप्नदर्शन में प्रोत्साहन [2]पाकर उसके अगले अंश के लेखन को प्रारम्भ कर उसने उसे सन् 965 में समाप्त किया था।[3]

---

1. उक्त तिसट्ठि. के हरिवंशपुराण (सन्धि सं. 81-92) को हाम्बुर्ग (जर्मनी) के प्रो. एल. आल्सडॉर्फ ने सन् 1936 में रोमन लिपि में जर्मनी से प्रकाशित कराया था।
2. दे. तिसट्ठि. 38/2/2
3. दे. तिसट्ठि. 38/4-5

उक्त संस्करण के समाप्त हो जाने पर उसे अपने विषय का अपभ्रंश का आद्य गौरव ग्रन्थ मानकर प्राकृत, अपभ्रंश, संस्कृत एवं प्राचीन हिन्दी के महारथियों के विशेष अनुरोध पर प्रो. (डॉ.) देवेन्द्र कुमार जैन (इन्दौर) ने अल्मोड़ा के एक शासकीय कॉलेज में प्राध्यापकी करते हुए साधनाभावों के मध्य भी इस महाग्रन्थ के हिन्दी-अनुवाद का दुरूह कार्यारम्भ किया था और कठोर परिश्रम कर इसे पूर्ण किया था, जिसके प्रथम बार प्रकाशन का श्रेय भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली को है, जिसने उसे अभी हाल में 5 खण्डों में प्रकाशित किया है। दुर्भाग्य यही रहा कि अनुवादक इसके प्रकाशन को साक्षात् देखे बिना ही चल बसा।

यह ग्रन्थ जितना सरस, प्रेरक एवं रोचक है, उतना ही मार्गदर्शक भी। पं. नाथूराम प्रेमी को एक प्राच्यशास्त्र भण्डार में जब उसकी वि.सं. 1615 में लिखित पाण्डुलिपि मिली और उसके आदि एवं अन्त की प्रशस्ति पढ़ी, तो गद्‌गद् हो उठे।[1] सन् 1923 ई. में जब उन्होंने उसका विस्तृत मूल्यांकन कर अपना शोध-निबन्ध लिखा तथा प्रो. डॉ. हीरालाल जैन, प्रो. ए.एन. उपाध्ये तथा पं. जुगलकिशोर मुख्तार के सुझावों के बाद उसका संशोधित रूप जैन-गजट (सन् 1926) एवं अनेकान्त (4/6-8) में प्रकाशित कराया तो विद्वज्जगत् में उसकी विशेष प्रशंसा की गई। प्रो. हीरालाल जी तो उससे इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने संस्कृत का क्षेत्र बदल कर अपने को अपभ्रंश-साहित्य की खोज के लिए ही समर्पित कर दिया। पुष्पदन्त-साहित्य ने आधुनिक प्राच्य भाषा-जगत् को जो प्रेरणा दी और अभी तक अपभ्रंश-साहित्य की जितनी भी खोज-शोध हुई एवं उसका प्रकाशन हुआ है, उसका सारा श्रेय पुष्पदन्त-साहित्य तथा उसके आद्य पुरस्कर्ता पं. नाथूराम प्रेमी को है।

(2) उक्त श्रेणी का दूसरा ग्रन्थ है, महाकवि रइधू कृत तिसट्ठिमहापुराणपुरिसायारगुणालंकारु[2] (अपरनाम महापुराण)। इस ग्रन्थ की भाषा सान्ध्यकालीन अपभ्रंश है। यह ग्रन्थरत्न अद्यावधि अप्रकाशित है। इस ग्रन्थ का विस्तार 50 सन्धियों के कुल 1347 कडवकों में हुआ है। इनमें से पार्श्वनाथ का कथानक 35वीं सन्धि के केवल 25 कडवकों में उपलब्ध है। इनमें ग्रन्थारम्भ मगध नरेश श्रेणिक के प्रश्न एवं गौतम गणधर के उत्तर के साथ हुआ है। पार्श्वचरित का प्रारम्भ पार्श्व के भव-भवान्तर-कथन से हुआ है।

पार्श्व सम्बन्धी स्वतन्त्र प्रकाशित अपभ्रंश चरित-साहित्य

दूसरी विधा के ग्रन्थों में अपभ्रंश के अन्य उपलब्ध स्वतन्त्र पार्श्वनाथ-चरितों में *आचार्य पउमकित्ति विरचित पासणाहचरिउ (11वीं सदी, प्रकाशित, 18 सन्धियाँ तथा 315 कडवक), महाकवि बुध श्रीधर कृत पासणाहचरिउ* (12वीं सदी, प्रकाश्यमान, 12 सन्धियाँ तथा 235 कडवक) तथा महाकवि रइधू कृत पासणाहचरिउ (15वीं-16वीं सदी, प्रकाशित, 7 सन्धियाँ तथा 142 कडवक) ही प्रकाशित है।

यही है तीर्थंकर पार्श्व के इतिहास तथा उनसे सम्बन्धित बहुआयामी साहित्य-लेखन एवं प्रकाशन की संक्षिप्त पृष्ठभूमि। उसकी समग्रता पर विशद विचार कर पाना यहाँ सम्भव नहीं। अतः आगे अपभ्रंश-साहित्य के महत्व पर संक्षिप्त विचार कर प्रकृत-विषय—बुध श्रीधर कृत पासणाहचरिउ पर परिचयात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है—

---

1. दे. जैन साहित्य संशोधक शोध-पत्रिका (जुलाई, 1923)।
2. यह ग्रन्थ अद्यावधि अप्रकाशित है। इसकी सम्पादित प्रतिलिपि इन पंक्तियों के लेखक के पास सुरक्षित हैं। समय-समय पर एतद्विषयक निबन्ध विभिन्न शोध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। विशेष के लिये जैन सिद्धान्त भास्कर 28/1 जुलाई 1975 का अंक देखें।

अपभ्रंश-साहित्य का वैशिष्ट्य : एक दृष्टि

विश्व-वाङ्मय में मध्यकालीन बहुआयामी विस्तृत अपभ्रंश-साहित्य की तुलना में ठहरने वाले अन्य प्रतिस्पर्धी-*साहित्य के अस्तित्व की सम्भावना नहीं की जा सकती। अवसरानुकूल विभिन्न रसों की अमृत-स्रोतस्विनी प्रवाहित* करने के साथ-साथ श्रमण संस्कृति, किं वा, भारतीय संस्कृति के चिरन्तन आदर्शों की प्रतिष्ठा करने वाला वह एक ऐसा अनोखा साहित्य है, जिसके प्रबन्धात्मक आख्यानों में सर्वोदय-सिद्धान्त, अहिंसा एवं विश्व शान्ति के सार्वजनिक संदेशों के साथ-साथ अध्यात्म-दर्शन, धर्म एवं आचार तथा मानव-मूल्यों का अद्‌भुत समन्वय हुआ है। उनमें सौन्दर्य की पवित्रता एवं मादकता, प्रेम की निश्छलता एवं विवशता, प्रकृति-जन्य सरलता एवं मुग्धता, श्रमण-संस्था का कठोर आचरण, करुणा एवं दया का अजस्र-स्रोत, माता-पिता का वात्सल्य, पाप एवं दुराचारों का निर्मम दण्ड, वासना की मॉसलता का प्रक्षालन, आत्मा का सुशान्त निर्मलीकरण,रोमांस का आसव एवं संस्कृति के पीयूष का मंगलमय सम्मिलन, प्रेयस् एवं श्रेयस् का ग्रन्थि-बन्ध और इन सबसे ऊपर त्याग और कषाय-निग्रह का निदर्शन समाहित है।

इनके अतिरिक्त भी, उसमें समकालीन भारतीय इतिहास, संस्कृति, लोक-जीवन, समाज एवं परिवार के विविध रूप, ग्राम्य-जीवन के विविध चित्रण तथा साहित्य की प्रायः समस्त विधाओं के साथ-साथ समकालीन भाषा, जीवन को ऊर्जस्वित कर देने वाली लोकोक्तियों एवं मुहावरों के जीवन्त रूप भी उसमें उपलब्ध होते हैं।

देहली-दीपक-न्याय को चरितार्थ करने वाले इस साहित्य के माध्यम से जहाँ हम अपने अतीत की झाँकी ले सकते हैं, वहीं उसमें वर्तमान के लिए पथ-निर्देश भी खोज सकते हैं और उन्हीं के आधार पर भविष्य की रूपरेखाएँ भी चित्रित कर सकते हैं। यही कारण है कि भारत में आने वाले जितने भी मध्यकालीन विदेशी पर्यटक रहे, उनमें से अधिकांश ने अपभ्रंश (सचित्र एवं सामान्य) पाण्डुलिपियों के प्रति अपनी विशेष जिज्ञासा प्रदर्शित की। साथ ही, अन्य प्राच्य भारतीय पाण्डुलिपियों, जिनमें प्राकृत एवं संस्कृत की दुर्लभ पाण्डुलिपियाँ भी थी, इसके प्रत्यक्ष उदाहरण जर्मनी, फ्रांस, ब्रिटेन, जापान, इटली, नेपाल, तिब्बत, रूस एवं मंगोलिया आदि के वे प्राच्य शास्त्र-भाण्डार हैं, जहाँ वे आज भी सुरक्षित हैं। प्रवचनसार, मूलाचार एवं सिरिवालचरिउ (रइधू कृत) आदि की प्राचीनतम पाण्डुलिपियों की विदेशों में उपलब्धि की चर्चा मैं अन्यत्र कर चुका हूँ।

प्राच्यविद्याविदों के सर्वेक्षण के अनुसार इस समय जैन एवं जैनेतर लगभग एक लाख सत्ताईस हजार से भी अधिक भारतीय प्राचीन एवं मध्यकालीन पाण्डुलिपियॉ विदेशी शास्त्र भण्डारों में सुरक्षित हैं, जो प्रायः अप्रकाशित हैं और जिनमें से सहस्त्रों पाण्डुलिपियों का पूर्ण सूचीकरण, मूल्यांकन आदि अभी तक नहीं हो पाया है। उनमें अनेक ताड़पत्रीय एवं कर्गलीय जैन पाण्डुलिपियाँ भी हैं। बहुत सम्भव है कि अद्यावधि अनुपलब्ध घोषित ग्रन्थराज गन्धहस्तिमहाभाष्य एवं मध्यकालीन प्रशस्तियों में उल्लिखित अन्य अनेक ग्रन्थरत्न भी विदेशों के किन्हीं प्राच्य शास्त्र-भण्डारों में छिपे पड़े हों, तो कोई असम्भव नहीं।

भारत के नवांगी जैन मन्दिरों, मठों एवं व्यक्तिगत संग्रहालयों में सहस्रों की संख्या में जो पाण्डुलिपियाँ संग्रहीत हैं, उनका भी पूर्णतया सूचीकरण, मूल्यांकन एवं प्रकाशन नहीं हो सका है, जिसकी तत्काल आवश्यकता है।

प्राच्य भारतीय-विद्या की दृष्टि से अपभ्रंश की पाण्डुलिपियाँ विशेष महत्त्वपूर्ण इसलिए मानी गई, क्योंकि उनके लेखकों ने अपनी-अपनी रचनाओं में आत्म-परिचय, पूर्वकालीन एवं समकालीन साहित्य एवं साहित्यकारों, ऐतिहासिक एवं राजनैतिक घटनाओं तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का तथ्य मूलक, गुरुजनों द्वारा सुना हुआ अथवा आँखों देखा परिचय प्रस्तुत किया है। पूर्ववर्त्ती साहित्य एवं साहित्यकारों के नामोल्लेख कर साहित्यिक इतिहास के लेखन के लिए भी उन्होंने प्रचुर सामग्री प्रस्तुत की है। प्रतिलिपिकारों ने भी ग्रन्थान्त में समकालीन अनेक प्रकार की ऐतिहासिक सूचनाएँ दी हैं। इन उल्लिखित बहुमूल्य रचनाओं में से आज अनेक रचनाएँ दुर्भाग्य से अनुपलब्ध अथवा दुर्लभ ही हैं। इस कारण इतिहास-निर्माण के लिए अपेक्षित अनेकविध महत्वपूर्ण ऐतिहासिक-

कड़ियाँ विस्मृत अथवा लुप्त-विलुप्त हो चुकी हैं। इन तथ्यों की विस्तृत जानकारी मैंने समय-समय पर प्रकाशित अपने लेखों में दी है।

प्रबन्ध-काव्यों की विशेषताएँ

अपभ्रंश के प्रबन्धात्मक काव्यों में सामान्यतया निम्न विशेषताएँ प्रमुख रूप से उपलब्ध होती हैं—

1. पौराणिक पात्रों पर युग-प्रभाव, 2. प्रबन्ध-काव्यों में पौराणिकता रहने पर भी कवियों द्वारा स्वेच्छया प्रबन्धों का पुनर्गठन 3. प्रतिभा का चमत्कारी-प्रदर्शन 4. पौराणिक प्रबन्धों में काव्य-तत्व का संयोजन 5. प्रबन्धावयवों का सन्तुलन 6. मर्मस्थलों का संयोजन 7. प्रबन्ध-काव्यों में उद्देश्य-दृष्टि की समता किन्तु आद्यन्त-अन्विति की दृष्टि से पात्र-चरित्रों की पृथकता 8. सिद्धान्त-प्रस्फोटन के लिए आख्यान का प्रस्तुतीकरण 9. आचार के क्षेत्र में मौलिकता का प्रवेश 10. दार्शनिक-विषयों का काव्य के परिवेश में प्रस्तुतीकरण 11. कहीं-कहीं पर कथानक को बिना ब्यौरों के क्षिप्रगति से आगे बढ़ा देनें की प्रवृत्ति और 12. कहीं-कहीं गुण की अपेक्षा परिमाण का महत्त्व। इन्हीं तथ्यों के आलोक में प्रस्तुत पासणाहचरिउ का संक्षिप्त अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जा रहा है–

बुध श्रीधर कृत पासणाहचरिउ

बुध श्रीधर कृत प्रस्तुत "पासणाहचरिउ" (पार्श्वनाथ चरित) अद्यावधि अप्रकाशित है। इसका कथानक यद्यपि परम्परा-प्राप्त ही है, किन्तु कथावस्तु-गठन, भाषा-शैली, वर्णन-प्रसंग, समकालीन संस्कृति एवं इतिहास-सम्बन्धी सामग्री की दृष्टि से वह विशेष महत्त्वपूर्ण है।

इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि उसमें समकालीन दिल्ली का ऑखों देखा वर्णन उपलब्ध है। प्रतीत होता है कि दिल्ली-जनपद के सौभाग्य से ही उक्त पाण्डुलिपि काल-कवलित होने से बच सकी है। यद्यपि उसकी विभिन्न पाण्डुलिपियों की संख्या नगण्य अथवा अनुपलब्ध ही हैं।

मूल-प्रति परिचय

उक्त "पासणाहचरिउ" की एक प्रति आमेरशास्त्र भण्डार, जयपुर में सुरक्षित है, जिसमें कुल 99 पत्र हैं। उक्त भण्डार की ग्रन्थसूची के अनुसार उसके पत्रों की लम्बाई एवं चौड़ाई 10×6½" हैं। उसके प्रत्येक पत्र में 12 पंक्तियाँ तथा प्रत्येक पंक्ति में 35-40 वर्ण हैं। इसका प्रतिलिपि-काल वि0 सं.-1577 हैं। सन्दर्भित ग्रन्थ-सूची के अनुसार वह प्रति शुद्ध एवं सुलिपिबद्ध[1] है।

ग्रन्थकार बुध श्रीधर

अनेक बुध श्रीधरों की भिन्नाभिन्नता

जैन-साहित्य के इतिहास में अनेक विबुध एवं बुध-श्रीधरों के नाम एवं उनकी निम्नलिखित कृतियाँ उपलब्ध होती हैं— (1) पासणाहचरिउ, (2) वड्ढमाणचरिउ, (3) चंदप्पहरचरिउ, (4) संतिणाहचरिउ, (5) सुकुमालसामिचरिउ, (6) भविसयत्तकहा, (7) भविसयत्त-पंचमीचरिउ, (8) भविष्यदत्तपंचमी कथा, (9) विश्वलोचनकोश, एवं, (10) श्रुतावतार-कथा।

---

1. दे. आमेर शास्त्र भण्डार जयपुर की ग्रन्थ-सूचियाँ भाग 2।
   श्री प्राच्यविद्याविद् सिद्धान्ताचार्य बाबू अगरचंद जी नाहटा (बीकानेर) ने केकड़ी (राजस्थान) निवासी श्री. पं. दीपचंदजी पाण्ड्या द्वारा सन् 1970 के दशक में उक्त पाण्डुलिपि की प्रतिलिपि कराकर अत्यन्त कृपापूर्वक मुझे भेजी थी। श्रद्धेय नाहटा जी ने मुझसे यह भी अनुरोध किया था कि मैं स्वयं इसका सम्पादन-अनुवाद एवं समीक्षा कार्य करुँ। मेरे प्रति उनके विश्वास एवं स्नेह के लिये मैं उनका सदा आभारी रहूँगा। स्मृतिशेष उन दोनों के प्रति मेरा श्रद्धापूर्वक सादर प्रणाम।

इनमें से अन्तिम तीन रचनाएँ संस्कृत-भाषा में तथा प्रथम सात रचनाएँ अपभ्रंश-भाषा में निबद्ध हैं। अन्तर्बाह्य साक्ष्यों के आधार पर तथा उनकी प्रशस्तियों आदि में अंकित उनके रचनाकालों को ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि उन अन्तिम तीनों (क्रम सं. 8-10 तक) कृतियों के लेखक बुध श्रीधर भिन्न-भिन्न हैं। क्योंकि उनकी प्रशस्तियों तथा अन्य स्रोतों के अनुसार उनका रचना काल वि.सं. की 14वीं सदी से 17वीं सदी के मध्य है, जो कि प्रस्तुत पासणाहचरिउ के रचनाकाल (वि.सं. 1189) से लगभग 200 वर्षों के बाद की हैं। अतः उनका परस्पर में किसी भी प्रकार का मेल नहीं बैठता।

बुध श्रीधर की रचनाओं का रचना-क्रम एवं रचनाकाल

बुध श्रीधर कृत 'पासणाहचरिउ' एवं 'वड्ढमाणचरिउ' की प्रशस्तियों के अनुसार इन दोनों (अर्थात् प्रथम एवं द्वितीय) तथा 'चंदप्पहचरिउ', 'संतिणाहचरिउ', 'सुकुमालसामिचरिउ' एवं 'भविसयत्त-कहा' के लेखक बुध अथवा विबुध श्रीधर अभिन्न सिद्ध होते हैं।

'सुकुमालसामि चरिउ' रचना की प्रशस्ति के अनुसार उसकी 1200 ग्रन्थाग्र प्रमाण रचना कवि बुध श्रीधर ने वलडइ ग्राम के चौबीसी जिनमन्दिर में बैठकर वि.सं. 1208 की अगहन मास के कृष्ण पक्ष की तृतीया सोमवार के दिन समाप्त की थी।

भविसयत्तकहा की अन्त्य-प्रशस्ति के अनुसार कवि ने उसकी रचना वि.सं. 1230 में की थी। उसने लिखा है कि चन्दवार नामक नगर में स्थित माथुर कुलीन नारायण के पुत्र तथा वासुदेव के बड़े भाई सुपट्ट ने कवि श्रीधर से कहा कि हे कवि, आप मेरी माता रुप्पिणी के निमित्त पंचमीव्रत फल सम्बन्धी "भविसयत्त कहा" कि प्रणयन कर दीजिए।

'भविसयत्तपंचमीचरिउ' (सं. 7) का रचनाकाल उसकी अन्त्य प्रशस्ति के अनुसार वि.सं. 1530 (पंचदह जि सय फुडु तीसाहित्थ) है। अतः उसका लेखक उक्त पासणाहचरिउ के लेखक से स्पष्टतः ही भिन्न है।

इस प्रकार समग्र रूप में महाकवि बुध अथवा विबुध श्रीधर की रचनाओं का रचना-क्रम निम्न प्रकार सिद्ध होता है— 1. चंदप्पहचरिउ (अनुपलब्ध), 2. संतिणाहचरिउ (अनुपलब्ध), 3. पासणाहचरिउ (प्रकाश्यमान्), 4. वड्ढमाणचरिउ, 5. सुकुमालसामिचरिउ (वि.सं. 1208, अप्रकाशित), 6. भविसयत्तकहा (वि.सं. 1230, अप्रकाशित)।

उक्त तथ्यों से विदित होता है कि प्रस्तुत पासणाहचरिउ के प्रणेता महाकवि बुध श्रीधर ने उक्त ग्रन्थों की रचना वि.सं. 1189 से वि.सं. 1230 के मध्य लगभग 41 वर्षों में की थी[1]।

पारिवारिक परिचय

पासणाहचरिउ की प्रशस्ति में बुध[2] श्रीधर ने अपने पिता का नाम गोल्ह एवं माता का नाम वील्हा बतलाया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपना अन्य किसी भी प्रकार का पारिवारिक परिचय नहीं दिया है।[3]

'पासणाहचरिउ' की समाप्ति के लगभग एक वर्ष बाद प्रणीत अपने 'वड्ढमाणचरिउ'[4] में भी उन्होंने अपना मात्र उक्त परिचय ही प्रस्तुत किया है। वे गृहस्थ थे अथवा गृह-विरत त्यागी, इसकी कोई भी चर्चा उन्होंने नहीं की।

---

1. रचनाओं के विशेष परिचय के लिये मेरे द्वारा सम्पादित तथा भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित (1975 ई.) वड्ढमाणचरिउ की भूमिका देखिये।
2. कवि की कुछ प्रतियों में बुध तथा कुछ में विबुध विशेषणों के उल्लेख मिलते हैं। वस्तुतः वे दोनों कवि श्रीधर के ही विशेषण हैं।
3. दे. वड्ढमाणचरिउ भूमिका पृ. 10-11
4. दे. वड्ढमाणचरिउ भूमिका पृ. 10-11

कवि की 'बुध' अथवा 'विबुध' नामक उपाधि से विदित होता है कि वह सर्वत्र सम्मान-प्राप्त बहुज्ञ विद्वान् रहा होगा। किन्तु इससे भी उसके पारिवारिक-जीवन पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। जैसा कि पूर्व में लिखा जा चुका है 'पासणाहचरिउ'[1] एवं 'वड्ढमाणचरिउ'[2] की प्रशस्तियों के उल्लेखानुसार कवि ने 'चंदप्पहचरिउ' एवं 'संतिजिणेसरचरिउ' नाम की दो रचनाएँ और भी लिखी थी, किन्तु ये दोनों अभी तक अनुपलब्ध ही हैं। हो सकता है कि कवि ने अपनी इन प्रारम्भिक रचनाओं की प्रशस्तियों में स्वविषयक कुछ विशेष परिचय दिया हो, किन्तु यह सब तो उन रचनाओं की प्राप्ति के बाद ही कुछ कहा जा सकेगा।

कवि-काल-निर्णय

बुध श्रीधर की जन्म अथवा अवसान सम्बन्धी तिथियाँ भी अज्ञात हैं। उनकी जानकारी के लिए सन्दर्भ-सामग्री का सर्वथा अभाव है। इतना अवश्य है कि कवि की उपलब्ध पूर्वोक्त चार रचनाओं की प्रशस्तियों में उनका रचना-समाप्ति-काल अंकित है। तदनुसार 'पासणाहचरिउ' तथा 'वड्ढमाणचरिउ' का रचना-समाप्तिकाल क्रमशः वि.सं. 1189 एवं 1190 तथा 'सुकुमालचरिउ'[3] एवं 'भविसयत्तकहा'[4] का रचना-समाप्तिकाल क्रमशः वि.सं. 1208 और 1230 है। जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है, 'पासणाहचरिउ' एवं 'वड्ढमाणचरिउ' में जिन पूर्वोक्त 'चंदप्पहचरिउ' एवं 'संतिजिणेसरचरिउ' नामक अपनी पूर्वरचित रचनाओं के उल्लेख कवि ने किए हैं, वे अद्यावधि अनुपलब्ध ही हैं।

इन्हें छोड़कर बाकी उक्त चारों रचनाओं का रचना-समाप्ति-काल वि.सं. 1189 से 1230 तक का सुनिश्चित है। अब यदि यह मान लिया जाय कि कवि को उक्त दोनों प्रारम्भिक अनुपलब्ध रचनाओं के प्रणयन में लगभग 10 वर्ष लगे हों तथा उसने यदि 25 वर्ष की आयु से साहित्य-लेखन का कार्यारम्भ किया हो, तब अनुमानतः कवि की कुल आयु लगभग 76 वर्ष की सिद्ध हो सकती है और जब तक अन्य ठोस सन्दर्भ-सामग्री प्राप्त नहीं होती, तब तक मेरी दृष्टि से कवि का कुल जीवनकाल वि.सं. 1154 (1097 ई.) से वि.सं. 1230 (1173 ई.) के मध्य तक माना जा सकता है। यह भी सम्भव है कि वह अपनी अन्तिम रचना की समाप्ति के बाद भी कुछ वर्ष और जीवित रहा हो?

कवि-निवास, उसका साधना-स्थल तथा समकालीन राजा-अनंगपाल

'पासणाहचरिउ' की प्रशस्ति में कवि ने अपने को हरियाणा-देश का निवासी बतलाया है किन्तु उसने अपने नगर का उल्लेख नहीं किया है। उसने बताया है कि वह वहाँ से 'चंदप्पहचरिउ' की रचना-समाप्ति के बाद यमुना नदी पार करके ढिल्ली (दिल्ली) आया था। उस समय वहाँ राजा अनंगपाल का राज्य था, जिसने कि हम्मीर जैसे वीर राजा को भी पराजित किया था। (इस राजा अनंगपाल के विषय में आगे चर्चा की जाएगी)।

कवि की बहुज्ञता

बुध श्रीधर द्वारा लिखित साहित्य के आलंकारिक वर्णनों तथा प्रशस्ति-पद्यों से उसके पाण्डित्य सम्बन्धी यह जानकारी अवश्य मिलती है कि वह जहाँ अपभ्रंश-भाषा का असाधारण विद्वान् था, वहीं वह संस्कृत एवं प्राकृत-साहित्य एवं व्याकरण का भी प्रकाण्ड विद्वान् था। उसका यह ज्ञान केवल किताबी ज्ञान नहीं, बल्कि उसके रोम-रोम में वह समाया हुआ था। पाणिनि-पूर्व-कालीन शर्ववर्म कृत कातन्त्र-व्याकरण तो उसे इतना प्रिय था कि उसके चाक्षुष-प्रत्यक्ष में आने वाली समस्त सामग्रियाँ उसे कातन्त्र-व्याकरण की मधुरिमा में सराबोर ही दिखाई देती थी।

---

1. पास. 1/2/1-4
2. वड्ढ. 1/2/6
3. दे. वड्ढमाण. परिशिष्ट संख्या (ग) पृ. 299
4. दे. वड्ढमाण. परिशिष्ट संख्या (ग) पृ. 297

यहाँ तक कि जब वह ढिल्ली की सड़कों पर घूम रहा था, तो उसे उन सड़कों के सौन्दर्य-वर्णन के लिए कातन्त्र-व्याकरण की पंजिका के सौन्दर्य से अधिक सुन्दर अन्य कोई उपमान ही नहीं मिला और उसने अत्यन्त भावुक एवं प्रमुदित भाव से कह दिया—"हट्टमग्गु कातंत पिव पंजी समिद्धु"[1]

उसे ढिल्ली के जन-सामान्य की बोली तथा नाटक-मण्डलियों के संवादों अथवा कथनोपकथनों (Dialogues) में भी व्याकरण में प्रयुक्त सुवर्णों का सौन्दर्य ही सुनने देखने में आ रहा था[2]।

कवि के पाण्डित्य की एक अन्य विशेषता यह भी थी कि जहाँ उसे समकालीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं लोकजीवन का गहन अध्ययन था, वहीं उसे सामाजिक रीति-रिवाजों एवं सामान्य जनों के ज्ञान-विज्ञान एवं मनोविज्ञान तथा ग्रह-नक्षत्र, ज्योतिष-विद्या, रणनीति, युद्ध-कला आदि की भी जानकारी थी। उसकी दृष्टि इतनी पैनी एवं विशाल थी कि भ्रमण करते समय प्रायः समस्त वस्तुएँ उसके दृष्टिपथ से साक्षात्कार करती रहती थीं।

कवि को यह भी जानकारी थी कि किस देश के कौन-कौन से शस्त्रास्त्र प्रसिद्ध है[3] तथा विदेशी आक्रान्ता युद्ध-प्रयाण के समय गायों[4] को सब से आगे क्यों रखा करते थे?

वन्य-सम्पदा एवं पशु-पक्षियों तथा जंगली जानवरों का ज्ञान तो कवि को इतना अधिक था कि ऐसा प्रतीत होता है कि मलिक मुहम्मद जायसी ने उसी से प्रेरित होकर अपने पद्मावत में विविध प्रकार की वनस्पतियों (वसन्तखण्ड 187-189) एवं वन्य-प्राणियों (541) का वर्णन किया हो[5]। यही स्थिति उसके आर्थिक एवं भौगोलिक सम्बन्धी ज्ञान की भी है। उसने ये वर्णन अपनी कल्पना के आधार पर नहीं, बल्कि यथार्थ के आधार पर किये हैं, जहाँ उसे ढिल्ली-किल्ली एवं उनसे सम्बन्धित राजवंशों, वहाँ के कीर्ति-स्तम्भ के इतिहास की जानकारी थी, वहीं उसे ढिल्ली नगर के हाट-मार्ग, वहाँ की विक्रय हेतु प्रस्तुत विविध सामग्रियाँ, प्रेक्षागार, घुड़दौड के मनोरंजक उत्सव, खेतों की सिंचाई में प्रयुक्त रहँटों की घरघराहट, मयूरों के नृत्य, रंग-बिरंगे रेशमी वस्त्रों में सजी-धजी हाट-बाजार करती हुई युवतियाँ, विशाल अनंग-सरोवर, गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ आदि-आदि भी उसकी दृष्टि से ओझल न हो सकीं। कवि ने खुले मन से उनकी यथार्थता का मनोहारी चित्रण किया है। ये सभी वर्णन देखकर उसकी "बुध" अथवा विबुध उपाधि सार्थक प्रतीत होती है।

उक्त सामग्री निश्चय ही मध्यकालीन समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र एवं राजनीतिशास्त्र तथा लोक-जीवन के लेखकों के लिये उनके इतिहास-लेखन में सहायक सिद्ध हो सकती है।

पासणाहचरिउ : ग्रन्थ-परिमाण एवं वर्ण्य-विषय वर्गीकरण

प्रस्तुत 'पासणाहचरिउ' में कुल मिलाकर 12 सन्धियाँ एवं 235 कडवक हैं। कवि ने इसे 2500 ग्रन्थाग्र-प्रमाण कहा है। मध्यकालीन पाण्डुलिपियों की यह विशेषता है कि प्रतिलिपिकार उसके अन्त में ग्रन्थाग्र-प्रमाण की संख्या भी लिख दिया करते थे। यह सम्भवतः इसलिये आवश्यक था, जिससे कि परवर्त्ती प्रतिलिपिकार उसमें स्वेच्छया प्रक्षिप्तांश जोड़कर या कुछ अंश घटा कर उसकी प्रामाणिकता को सन्दिग्ध न बना सकें। प्रस्तुत ग्रन्थ के वर्ण्य-विषय का संक्षिप्त वर्गीकरण एवं उसकी कडवक संख्या निम्न प्रकार है—

---

1. पासणाह. 1/3/10
2. पासणाह. 1/17 घत्ता
3. पासणाह. 2/17/11, 3/11-13
4. पासणाह. 4/13/14
5. पद्मावत — संजीवन-भाष्य – प्रो. डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा सम्पादित।

सन्धि 1. मंगलाचरण एवं आद्य-प्रशस्ति-वर्णन के बाद वैजयन्त-विमान से कनकप्रभ देव का जीव चयकर महारानी वामादेवी के गर्भ में आया। (कडवक-21)

सन्धि 2. काशी-देश के राजा हयसेन के यहाँ पार्श्वनाथ का जन्म एवं उनकी बाल-लीलाएँ (कडवक-18)

सन्धि 3. राजा हयसेन के दरबार में यवन-नरेन्द्र के राजदूत का आगमन (कडवक-20)।

सन्धि 4. राजकुमार पार्श्व का यवन-नरेन्द्र से युद्ध तथा मामा रविकीर्ति द्वारा पार्श्व के पराक्रम की प्रशंसा (कडवक-24)

सन्धि 5. रविकीर्ति द्वारा पार्श्व से अपनी पुत्री-प्रभावती के साथ विवाह कर लेने का प्रस्ताव, किन्तु संयोगवश इसी बीच में वन में जाकर जलते हुए नाग-नागिनी को उनके अन्तिम समय में कुमार पार्श्व द्वारा मन्त्र-प्रदान एवं उसी समय उन्हें वैराग्य। (कडवक-15)

सन्धि 6-7. पार्श्व-तपस्या एवं उन पर कमठ द्वारा किया गया घोर उपसर्ग (कडवक-19+18=37)

सन्धि 8-9. कैवल्य-प्राप्ति, समवशरण-रचना तथा धर्मोपदेश (कडवक–12+21=33)

सन्धि 10. रविकीर्ति द्वारा दीक्षा-ग्रहण (कडवक-19)

सन्धि 11. धर्मोपदेश (कडवक-25)

सन्धि 12. (पार्श्व के भवान्तर तथा हयसेन द्वारा दीक्षा-ग्रहण एवं पार्श्व के लिये मोक्ष-प्राप्ति (कड़वक-18) तथा अन्त्य-प्रशस्ति।

कवि का समकालीन राजा अनंगपाल तोमर

कवि श्रीधर द्वारा उल्लिखित कौन था वह राजा अनंगपाल तोमर और क्यों पड़ा था उसका नाम अनंगपाल? इसकी सार्थकता के लिए प्राच्य भारतीय पुराणेतिहास तथा समकालीन अनुश्रुतियों का अध्ययन आवश्यक है। पुराकाल में दिल्ली का नाम इन्द्रप्रस्थ था, जिसमें पाण्डव-परीक्षित के बाद 66 राजाओं ने राज्य किया और जिनमें अन्तिम राजा का नाम राजपाल था। उसे कुमायूँ के राजा शुकवन्त ने मार डाला और उसे (शुकवन्त को) भी उज्जयिनी-नरेश विक्रमादित्य ने पराजित कर उससे इन्द्रप्रस्थ का राज्य हड़प लिया था किन्तु उसने इन्द्रप्रस्थ को अपनी राजधानी न बनाकर उज्जयिनी को अपना शासन-केन्द्र बनाया[1]।

इधर पराजित राजा शुकवन्त के वंशजों ने अवसर पाकर चम्बल-क्षेत्र (तंवरघार) में अपना शासन-केन्द्र स्थापित कर लिया, जो लगभग 700 वर्षों तक चला और इसी समय से इस राजवंश को 'तँवर या तोमर-कुल' कहा जाने लगा। उस समय कुरुक्षेत्र का प्रदेश अनंग-प्रदेश के रूप में प्रसिद्ध था। 'आइने-अकबरी' के अनुसार विल्हणदेव तोमर ने उक्त अनंगप्रदेश को अपना शासन-केन्द्र बनाया था। तत्पश्चात् उसने इन्द्रप्रस्थ में अपनी राजधानी स्थापित की और किसी विशेष कारणवश उसने उसका (इन्द्रप्रस्थ अथवा ढिल्ली का) नाम अनंगपुर रखा। तत्पश्चात् तो वहाँ के परवर्त्ती शासकों ने भी अपना विरुद अनंगपाल रखा। इस प्रकार अनंगपुर का प्रथम शासक अनंगपाल तोमर था, जो अपनी परम्परा का अनंगपुर अथवा ढिल्ली (दिल्ली) का प्रथम शासक था[2]। इसके बाद अनेक तोमर राजाओं ने वहाँ शासन किया।

त्रिभुवनपति-त्रिभुवनपाल अथवा अनंगपाल (तृतीय)

बुध श्रीधर ने प्रस्तुत पा.च. की प्रशस्ति में गयणमंडलालग्गु सालु के वर्णन-प्रसंग में चक्रवर्ती के समान जिस तोमर राजा का उल्लेख किया है, उसने उसे त्रिभुवनपति अथवा अनंगपाल कहते हुए उसे महान् योद्धा कहा है और उसे समुद्री शंख के आकार वाले गुजरात तक राज्य-विस्तार करने वाला बतलाया है[3]।

---

1. *विशेष के लिये देखिये 'दिल्ली के तोमर' 18/88*
2. *विशेष के लिये देखिये 'दिल्ली के तोमर' 18/883*
3. पासणाहचरिउ 1/3/15

दिल्ली के तोमरवंशी राजाओं की नामावली में त्रिभुवनपति का अपरनाम त्रिभुवनपालदेव[1] (अपरनाम विजयपाल देव) भी बतलाया गया है, जिसका राज्यकाल वि.सं. 1187-1208 (सन् 1130-1151) बतलाया गया है[2]। बुध श्रीधर ने इसी राजा को त्रिभुवनपति अथवा अनंगपाल तोमर (तृतीय) कहा है, जो उसके द्वारा विरचित पासणाहचरिउ के लेखन-समाप्ति-काल के समय ढिल्ली का शासक था[3]।

महाकवि केशवदास का एतद्विषयक सन्दर्भ

हिन्दी के महाकवि केशवदास, जिनके पूर्वज उक्त तोमर-राजाओं के पुरोहित थे और उसके बदले में तोमर-राजाओं ने उन्हें चम्बल-क्षेत्र में 700 ग्राम भेंट स्वरूप देकर अपना पुरोहित-सामन्त घोषित किया था[4]। उन्होंने अपने 'कविप्रया' नामक ग्रन्थ में उक्त त्रिभुवनपाल तोमर को सोमवंशी यदुकुल-कलश कहा है[5]। पं. हरिहर निवास द्विवेदी के अनुसार कवि केशव तोमर-राजाओं के लिए 'सोमवंशी यदुकुल-कलश' लिखते थे। अतः केशव का त्रिभुवनपाल नरेश, अनंगपाल तोमर तृतीय ही रहा होगा, जिसका समर्थन बुध श्रीधर के उक्त कथन से भी हो जाता है।

'इन्द्रप्रस्थ प्रबन्ध'[6] (अज्ञात कर्तृक, 18वीं सदी) नामक ग्रन्थ में उल्लिखित दिल्ली-शाखा के तोमर-वंशी 20 राजाओं में से उक्त अनंगपाल अन्तिम 20वाँ राजा था। इसकी वंशावली के अनुसार अनंगपाल नाम के तीन राजा हुए, जिनमें से बुध श्रीधर कालीन अनंगपाल तीसरा था। उसने अनेक शत्रुओं के समान ही जिस दुर्जेय हम्मीर-वीर को भी बुरी तरह पराजित किया था, प्रतीत होता है कि वह कांगड़ा नरेश हाहुलिराव-हम्मीर रहा होगा, जो एक बार हुँकार भरकर अरिदल में जा घुसता था और फिर उसे रौंद ही डालता था। इसके कारण हम्मीर को 'हाहुलिराव' की उपाधि प्रदान की गई थी, जैसा कि चंदवरदाई कृत 'पृथिवीराजरासो' के एक सन्दर्भ में मिलता है—

हाँ कहते ढीलन करिय हलकारिय अरि मथ्य।
तार्थे विरद हम्मीर को 'हाहुलिराव' सुकथ्य।।

सम्भवतः इसी हम्मीर-वीर को उक्त राजा अनंगपाल (तृतीय) ने हराया होगा। युद्ध में वीर हम्मीर के पराजित होते ही उसके साथ उसके अन्य साथी-राजा भी भाग खड़े हुए थे, जैसा कि पासणाहचरिउ में भी उल्लेख मिलता है। यथा— **सेंधव सोण कीर हम्मीर वि संगरु मेल्लि चल्लिया।।**

अर्थात् राजा हम्मीर के पराजित होते ही सिन्धु, सोन एवं कीर-नरेश भी संग्राम छोड़कर भाग गये।[7]

यह तो सर्वविदित ही है कि मुस्लिम आक्रान्ताओं को यह जानकारी हो गई थी कि हिन्दू लोग गायों को अवध्य मानते हैं तथा उन्हें माता कहकर पूजते हैं। अतः वे (मुस्लिम आक्रान्ता) युद्ध-प्रयाण के समय गायों को आगे रखकर चला करते थे। कवि ने इस तथ्य की ओर अन्योक्ति के माध्यम से संकेत भी किया है[8]—

---

1. दिल्ली के तोमर, पृ. 237
2. दिल्ली के तोमर, पृ. 237
3. पासणाहचरिउ, 1/4/1
4. दे. दिल्ली के तोमर, पृ. 236-237
   जगपावन वैकुण्ठपति रामचन्द्र यह नाम। मथुरामंडल में दिये तिन्हें सात सौ ग्राम।।
   सोमवंश यदुकुल कलश त्रिभुवनपाल नरेश। फेरि दिये कलिकालपुर तेई तिन्हें सुदेश।। –कवि-प्रिया (कविकेशवदास कृत)।
5. वही
6. राजस्थान पुरातत्व विद्या मन्दिर जोधपुर (1963) से प्रकाशित।
7. पासणाह 4/13/2
8. पासणाह 4/13/4

दंडाहउरिउ-अग्गए करेवि गोवालु व गोहणु चालंतउ।

अर्थात् दण्डाहत-पराजित शत्रुओं को वह आगे-आगे कर उसी प्रकार हाँकता था, जिस प्रकार कि ग्वाले अपनी गायों को। उक्त प्रसंग में कवि ने साम्प्रदायिक मोह न दिखाकर तथ्यपरक, लौकिक एवं उनके राष्ट्रीय रूप को प्रदर्शित किया है।

आश्रयदाता नट्टल साहू

जैसा कि पूर्व में लिखा जा चुका है कि प्रस्तुत रचना की आद्य-प्रशस्ति के अनुसार कवि अपने अपभ्रंश भाषात्मक 'चंदप्पहचरिउ' की रचना-समाप्ति के बाद कार्यव्यस्त असंख्य ग्रामों वाले हरयाणा-प्रदेश से चलकर जब यमुना पार दिल्ली आया, तब वहाँ उसकी सर्वप्रथम भेंट राजा अनंगपाल (तृतीय) के एक सभासद (अथवा मन्त्री) साहू अल्हण से हुई।

परिचयानन्तर साहू अल्हण सम्भवतः "चंदप्पहचरिउ" का सस्वर पाठ सुनकर कवि से इतना प्रभावित हुआ कि उसने उसे नगर के महान् साहित्य-रसिक एवं प्रमुख सार्थवाह साहू नट्टल से भेंट करने का आग्रह किया, किन्तु कवि बड़ा संकोची था। अतः उनसे भेंट करने की अनिच्छा प्रकट करते हुए उसने कहा कि— "हे साहू, संसार में दुर्जनों की कमी नहीं, वे कूट-कपट को ही विद्वत्ता मानते हैं, सज्जनों से ईर्ष्या एवं विद्वेष रखते हैं तथा उनके सद्गुणों की उपेक्षा कर वे उनके साथ दुर्व्यवहार करते हैं। वे उन्हें कभी तो मारते हैं और कभी टेढ़ी-मेढ़ी भौंहे दिखाते हैं *अथवा कभी वे उनका हाथ, पैर अथवा सिर तक तोड़ देते हैं। किन्तु मैं तो ठहरा सीधा, सादा, सरल-स्वभावी अतः* मैं किसी सेठ के घर जाकर उससे नहीं मिलना चाहता"[1]।

किन्तु अल्हण साहू द्वारा नट्टल की भद्रता के प्रति पूर्ण विश्वास दिलाने एवं बार-बार आग्रह करने पर कवि जब साहू नट्टल के घर पहुँचा, तो वह उसके मधुर-व्यवहार से बड़ा ही सन्तुष्ट हुआ। नट्टल ने प्रमुदित होकर कवि को स्वयं ही आसन पर बैठाया और उसे सम्मान-सूचक ताम्बूल प्रदान किया। उस समय नट्टल एवं श्रीधर दोनों के मन में एक साथ एक ही जैसी भावना उदित हो रही थी। वे परस्पर में सोच रहे थे कि—

जं पुव्व-जम्मि पविरइउ किं पि।
इह विहिवसेण परिणवइ तंपि।। (1/8/9)

अर्थात् "हमने पूर्वभव में ऐसा कोई सुकृत अवश्य किया था, जिसका कि आज हमें उसका मधुर फल साक्षात् मिल रहा है।"

कुछेक क्षणों के बाद साहू नट्टल के द्वारा आगमन-प्रयोजन पूछे जाने पर कवि ने उत्तर में कहा—"मैं अल्हण साहू के अनुरोध से ही आपके पास आया हूँ। उन्होंने मुझसे आपके अतिशय-गुणों की चर्चा की है और बताया है कि आपने ढिल्ली में एक उत्तुंग कलापूर्ण नाभेय (आदिनाथ) मन्दिर का निर्माण कराकर उस पर 'पंचरंगे झण्डे' को भी फहराया हैं। आपने जिस प्रकार उस भव्य-मन्दिर की प्रतिष्ठा कराई है, उसी प्रकार मुझसे 'पासणाहचरिउ' का प्रणयन करवाकर उसे भी प्रतिष्ठित कराइए, जिससे कि आपको पूर्ण सुख-समृद्धि प्राप्त हो सके तथा कालान्तर में जो मोक्ष-प्राप्ति का भी कारण बन सके। इसके साथ-साथ आप चन्द्रप्रभ स्वामी की एक मूर्ति भी अपने पिता के नाम से उस मन्दिर में प्रतिष्ठित कराइए।"[2]

नट्टल अपने मन की मुराद पूरी होती देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। अतः उसने भी कवि के लिए अत्यावश्यक

---

1. दे. पास. 1/7/1-8
2. पास. अन्त्य प्रशस्ति 3

सुख-सुविधा सम्पन्न आवास तथा साहित्यिक सन्दर्भ-सामग्री के साथ-साथ लेखनोपकरण-सामग्री की उत्तम व्यवस्था कर दी तथा ग्रन्थ के प्रणयनोपरान्त उसने (नट्टल ने) उसका सार्वजनिक सम्मान कर उसे पुरस्कृत भी किया।

पासणाहचरिउ की प्रशस्ति एवं पुष्पिकाओं के अनुसार साहू नट्टल अपने समय का सबसे बड़ा सार्थवाह था। देश-विदेश में उसके उच्चकोटि के व्यापारिक सम्बन्ध थे। उसने अपनी व्यापारिक सुविधा के लिए-अंग, बंग कलिंग, गौड़, केरल, कर्नाटक, चोल, द्रविड, पांचाल, सिन्धु, खस, मालवा, लाट, जट्ट, भोट्ट (भूटान), नेपाल, टक्क, कोंकण, महाराष्ट्र, भादानक, हरयाणा, मगध, गुजरात, सौराष्ट्र आदि देशों में अपनी व्यापारिक कोठियाँ (Chambers for Business Centres) भी स्थापित की थीं और उनके माध्यम से वह आयात (Import) एवं निर्यात (Export) किया करता था[1]।

वह ढिल्ली के तोमर राजा अनंगपाल (तृतीय) का विश्वस्त-पात्र, तथा सम्भवतः राज्य-सभासद एवं आर्थिक सलाहकार भी था। वह सुचरित, उदार, सज्जन, जिनवाणी-भक्त एवं स्वाध्याय-प्रेमी श्रावक था। लेखकों एवं कवियों का आदर-बहुमान कर उन्हें निरन्तर पुरस्कृत करता रहता था। पर्यूषण में वह दशधर्मो का पालन करता था। वह अत्यन्त विनीत, निरभिमानी, गुरुजनों, वरिष्ठजनों तथा माता-पिता का परम भक्त, महामुनियों का उपासक, दानी और अग्रवाल-वंश का तिलक माना जाता था[2]।

श्रीधर ने अपनी प्रशस्तियों एवं पुष्पिकाओं में नट्टल का आलंकारिक भाषा-शैली में विविध गेयपदों में जैसा हृदयावर्जक परिचय दिया है, वह अपभ्रंश के "अभिमानमेरु" जैसे विरुदधारी महाकवि पुष्पदन्त और उनके आश्रयदाता महामन्त्री भरत एवं नन्न का बरबस स्मरण करा देता है[3]।

गयणमंडलालग्गु सालु

बुध श्रीधर ने दिल्ली के जिस "गयणमंडलालग्गु सालु" की चर्चा की है, क्या था वह गगनचुम्बी सालु ? उसका अर्थ गगनचुम्बी कीर्तिस्तम्भ है और बतलाया गया है कि उसका निर्माण राजा अनंगपाल ने एक दुर्धर शत्रु पर अपनी विजय के उपलक्ष्य में कराया था।

बुध श्रीधर ने भी उसका उल्लेख नाभेय-मन्दिर के निर्माण के प्रसंग में किया है। यथार्थतः जितने भी मध्यकालीन कलापूर्ण जैन मन्दिरों का निर्माण हुआ, उनकी यह विशेषता रही है कि उनमें उनकी भव्यता, विशालता, उत्तुंगता तथा सुरक्षा की दृष्टि से गगनचुम्बी कलापूर्ण उपवन-सम्पन्न एक विशाल चतुर्दिक परकोट, जिसके मुख्य प्रवेश द्वार के भीतर तथा मुख्य वेदिका के सम्मुख एक उत्तुंग कलापूर्ण मानस्तम्भ भी निर्मित कराया जाता था। चूँकि नट्टल ने उक्त मन्दिर शास्त्रोक्त-पद्धति से निर्मित कराया था, अतः उसमें मानस्तम्भ अवश्य रहा होगा और वह मानस्तम्भ भी 'गयणमंडलालग्गु' ही रहा होगा।

कुतुबुद्दीन ऐबक द्वारा कुतुब-मीनार एवं कुतुब्बुल-इस्लाम-मस्जिद का निर्माण

मुहम्मद गोरी की मृत्यु के बाद उसके परम विश्वस्त गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक (वि.सं. 1250) ने जब दिल्ली के शासन की बागडोर संभाली, तभी नाभेय-मन्दिर, उसके मानस्तम्भ तथा अनंग-सरोवर के आसपास जितने भी धर्मायतन एवं कीर्तिस्तम्भ, मानस्तम्भ आदि थे, सभी को तोड़-फोड़कर उनकी वास्तुओं से उसने कुतुब-मीनार एवं कुतुब्बुल-इस्लाम-मस्जिद का निर्माण करा दिया था। इस प्रकार तोमरकालीन धर्मायतन, मानस्तम्भ, कीर्तिस्तम्भ,

1. पास. अन्त्य प्रशस्ति 3।
2. पास. अन्त्य प्रशस्ति 3।
3. विशेष के लिये देखिये भारतीय ज्ञानपीठ (कलकत्ता) द्वारा प्रकाशित 'ज्ञानोदय' (सचित्र मासिक जन. 1962, पृ. 88-90 में प्रकाशित मेरा निबन्ध।

राजप्रासाद, एवं अनंग-सरोवर आदि के अवशेष पासणाहचरिउ की प्रशस्ति में, क्वचित् कदाचित् इतिहास के पृष्ठों में तथा वर्तमानकालीन महरौली के भूखण्ड पर धुंधले रूप में बिखरे पड़े हैं।

Daily Tribune (चण्डीगढ़) की सूचना

चण्डीगढ से प्रकाशित Daily Tribune के दिनांक 24/8/1976 के अंक में एक लेख प्रकाशित हुआ था[1], जिसके अनुसार दिल्ली के सुलतानों ने जैनियों एवं हिन्दू-मन्दिरों को तोड़-फोड़कर कुतुबमीनार का निर्माण कराया था। इसका समर्थन इस तथ्य से हुआ कि पुरातत्ववेत्ताओं के अपने सर्वेक्षण के क्रम में उन्हें कुतुबमीनार के निचले भागों में जैन तीर्थकरों तथा हिन्दू अवतारों की मूर्तियों का पता चला था। उनकी इन खोजों से वे समस्त भ्रान्त धारणाएँ निर्मूल हो गईं, जब यह कहा जाता था कि यह मीनार दिल्ली के अन्तिम सम्राट पृथ्वीराज चौहान ने अपनी बेटी के यमुना-दर्शन हेतु बनवाई थी।

उक्त ऐतिहासिक स्मारक-कुतुबमीनार के जीर्णोद्धार कराते समय भी अप्रत्याशित रूप से उसके मलवे में से जैन तीर्थकरों की 20 तथा एक भगवान विष्णु की, इस प्रकार कुल मिलकार 21 मूर्तियाँ उस समय उपलब्ध हुई थीं। प्राकृतिक एवं मानवीय प्रताडनाओं तथा धूलिधूसरित रहने पर भी इन मूर्तियों के कला-वैभव में कोई अन्तर नहीं आया है। ये सभी उपलब्ध मूर्तियाँ पार्श्ववर्त्ती एक संग्रहालय में सुरक्षित रखी गई हैं।

उक्त ट्रिब्यून के अनुसार इस कुतुबमीनार की बनावट इस्लामी है। कुतुबमीनार को बनवाने वाले दिल्ली के पहले सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबक (वि.सं. 1250) के शहर गजनी में कुतुबमीनार के दो नमूने टूटी-फूटी अवस्था में अभी तक सुरक्षित हैं। यह तथ्य है कि सम्राट पृथ्वीराज चौहान की हार के बाद ही कुतुबमीनार के निर्माण के लिये उसकी नींव उक्त सुल्तान द्वारा रखी गई तथा सुल्तान के उत्तराधिकारी अल्तुतमश ने उस कार्य को वि.सं. 1287 में पूरा कराया था।

उक्त ट्रिब्यून के अनुसार ही— "कुतुबमीनार के पास जिस स्थल पर लोहे की लाट लगी हुई है, वहाँ जैनियों का बावन-शिखरों वाला एक भव्य जैन मन्दिर था। उसकी बाहरी तथा भीतरी दीवारों पर तीर्थंकर प्रतिमाएँ खड्गासन एवं पद्मासन दोनों ही मुद्राओं वाली स्थापित थीं। कुतुबमीनार बनाते समय उसके निचले भागों में सम्भवतः इसी जैन मन्दिर की मूर्तियों को दबा दिया गया था।"

"अशोककालीन लोहे की लाट किसी अन्य स्थान से ले आकर मुगल-काल में यहाँ आरोपित की गई है।"

उक्त ट्रिब्यून के कथन से तो यही विदित होता है कि नट्टल साहू द्वारा निर्मित नाभेय (आदिनाथ) मन्दिर का विशाल परिसर वर्तमानकालीन कुतुबमीनार के परिसर से लेकर वर्तमान कालीन अशोककालीन लोहे की लाट के परिसर तक विस्तृत था।

मुहम्मद गोरी का आक्रमण

महाकवि बुध श्रीधर ने कुमार पार्श्व के माध्यम से जिस यवनराज की चर्चा की है तथा कुमार पार्श्व के साथ जिस प्रकार से भयंकर युद्ध का वर्णन किया गया है, कौन था वह यवनराज ?

इस तथ्य के स्पष्टीकरण के लिये प्रस्तुत पासणाहचरिउ की प्रशस्ति तथा मध्यकालीन भारतीय इतिहास का अध्ययन करना आवश्यक है। पासणाहचरिउ के रचना-समाप्तिकाल वि.सं. 1189 (सन् 1132 ई.) के अथवा बुध श्रीधर के अन्तिम रचना-समाप्ति-काल (वि.सं. 1230, सन् 1173) के लगभग दो दशक बाद ही दिल्ली के तत्कालीन सम्राट् और राजा अनंगपाल तोमर (तृतीय) के दौहित्र सम्राट् पृथ्वीराज चौहान पर मुहम्मद गौरी ने (वि.सं. 1248 (सन् 1191) में आक्रमण कर दिया और 5 दिन के भीषण युद्ध के बाद गोरी ने पृथ्वीराज चौहान को अपने पिंजडे में बन्द कर लिया।

---

1. विशेष के लिये देखिये मध्य एशिया और पंजाब में जैनधर्म। –(पं. हीरालाल दुग्गड़, दिल्ली 1979), पृ. 369

भारत पर हमला करने वाला यह मुहम्मद गोरी पहला हमलावर न था। इसके पूर्व भी और अधिक नहीं तो आठवीं सदी से ही भारत में मुसलमान आक्रान्ताओं का आगमन प्रारम्भ हो चुका था। इस विषय में सुप्रसिद्ध इतिहासकार इलियट और डाउसन (History of India, Vol. I), इब्न हाकल (A Comprehensive History of India, Vol. V), मिनहाज सिराज (तबकाते नासिरी) एवं मुहम्मद ऊफी आदि ने पर्याप्त प्रकाश डाला है। उन आक्रमणों से भारत की सामाजिक तथा धार्मिक व्यवस्थाएँ छिन्न-भिन्न होने लगी थीं।

महाकवि बुध श्रीधर को उक्त पृष्ठभूमि की जानकारी थी। उसी की झाँकी उसने पा.च. के एक दुष्ट पात्र यवनराज, जो कि कालिन्दी नदी के तटवर्त्ती जनपद का शासक था, के माध्यम से प्रस्तुत की है। इस प्रसंग में यह भी ध्यातव्य है कि कवि ने पार्श्व एवं रविकीर्ति के यवनराज के साथ युद्ध में जिन शस्त्रास्त्रों का प्रयोग बतलाया है, वे अधिकांशतः वहीं हैं, जो मध्यकालीन युद्धों में प्रयुक्त होते थे।

नट्टल साहू के विषय में कुछ भ्रान्तियाँ

कुछ विद्वानों ने 'पासणाहचरिउ' की प्रशस्ति का प्रमाण देते हुए नट्टल साहू द्वारा दिल्ली में पार्श्वनाथ-मन्दिर के निर्माण कराए जाने का उल्लेख किया है[1] और विद्वज्जगत् में अब लगभग वही धारणा भी बनती जा रही है कि साहू नट्टल ने दिल्ली में पार्श्वनाथ का मन्दिर बनवाया था, जब कि वस्तुस्थिति उससे सर्वथा भिन्न है। यथार्थतः नट्टल ने दिल्ली में पार्श्वनाथ मन्दिर नहीं, नाभेय (आदिनाथ)-जिन-मन्दिर का निर्माण कराया था, जैसा कि आद्य-प्रशस्ति में स्पष्ट उल्लेख मिलता है :—

तित्थयरु पइट्ठावियउ जेण पढमउ को भणियइँ सरिसु तेण।।
कारावि णाहेयहो णिकेउ पविइण्णु पंचवण्णा सुकेउ।।
पइँ पुणु पइट्ठ पविरइउ जेम पासहो चरित्तु जइ पुणु वि तेम।। (पास. 1/9-2)

अर्थात् हे नट्टल साहू, आपने नाभेय-निकेत (आदिनाथ-जिन-मन्दिर) का निर्माण कराकर, उस पर पाँच वर्णवाले ध्वज को फहराया है। जिस प्रकार आपने उक्त मन्दिर का निर्माण कराकर उसका प्रतिष्ठा कराई, उसी प्रकार यदि मैं 'पार्श्वनाथचरित' की रचना भी करूँ, तो आप उसकी भी उसी प्रकार प्रतिष्ठा कराइये।

उक्त वार्त्तालाप कवि श्रीधर एवं नट्टल साहू के बीच का है। उस कथन में "पार्श्वनाथचरित" नामक ग्रन्थ के निर्माण एवं उसके प्रतिष्ठित किए जाने की चर्चा तो अवश्य आई है, किन्तु "पार्श्वनाथचरित नामक मन्दिर" के निर्माण की कोई चर्चा नहीं और कुतुबुद्दीन ऐबक ने नट्टल साहू द्वारा निर्मित जिस विशाल जैन मन्दिर को ध्वस्त करके उस पर 'कुव्वतु-ल-इस्लाम' नाम की मस्जिद का निर्माण कराया था, वह पार्श्वनाथ का नहीं, आदिनाथ का ही मन्दिर था। 'पार्श्वनाथ मन्दिर' के निर्माण कराए जाने के समर्थन में डॉ. कस्तूरचन्द काशलीवाल, डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री एवं पं. परमानन्द शास्त्री जैसे विद्वानों ने जो भी सन्दर्भ प्रस्तुत किए हैं, उनमें से किसी एक से भी उक्त तथ्य का समर्थन नहीं होता। प्रतीत होता है कि उक्त "पासणाहचरिउ" को ही भूल से "पार्श्वनाथ-मन्दिर" मान लिया गया, जो सर्वथा भ्रमात्मक है।

इसी प्रकार साहू नट्टल को अल्हण साहू का पुत्र भी मान लिया गया, जो कि वास्तविक तथ्य के सर्वथा विपरीत है। मूल ग्रन्थ का विधिवत् अध्ययन न करने अथवा उसकी भाषा को न समझने या अनुमानिक आधारों पर प्रायः ऐसी ही भ्रमपूर्ण बातें कर दी जाती है, जिनसे ऐतिहासिक तथ्यों का क्रम लड़खड़ा जाता है।

पासणाहचरिउ की प्रशस्ति के अनुसार अल्हण एवं नट्टल दोनों वस्तुतः घनिष्ठ मित्र तो थे किन्तु पिता-पुत्र नहीं। अल्हण साहू राजा अंनगपाल तोमर (तृतीय) की राज्यसभा का सभासद अथवा राज्यमंत्री था, जबकि नट्टल

1. दिल्ली जैन डाइरेक्टरी, पृ. 4

साहू दिल्ली नगर का एक सर्वश्रेष्ठ सार्थवाह, साहित्य-रसिक, उदार, दानी एवं कुशल राजनीतिज्ञ। वह अपने व्यापार के कारण अंग, बंग, कलिंग, गौड, केरल, कर्नाटक, चोल, द्रविड, पांचाल, सिन्धु, खश, मालवा, लाट, जट्ट, नेपाल, टक्क, कोंकण, महाराष्ट्र, भादानक, हरियाणा, मगध, गुर्जर एवं सौराष्ट्र जैसे देशों में प्रसिद्ध तथा वहाँ के राजदरबारों में उसे सम्मान प्राप्त था। वहाँ उसकी व्यापारिक कोठियाँ भी थीं। कवि ने इसी नट्टल साहू के आश्रय में रहकर 'पासणाहचरिउ' की रचना की थी। इस रचना की आदि एवं अन्त की प्रशस्तियों एवं पुष्पिकाओं में साहू नट्टल के कृतित्व एवं व्यक्तित्व का विशद परिचय प्रस्तुत किया गया है। अतः अल्हण नट्टल का पिता नहीं, मित्र था।

पृथिवीराजरासो का श्रीमन्त शाह ही क्या नट्टल साहू था ?

पृथिवीराजरासो में एक श्रीमन्त शाह[1] का उल्लेख आया है। पृथिवीराज चौहान जब राजकुमारी संयोगिता के साथ रंगरेलियों में आसक्त होकर राज्यकार्य की उपेक्षा कर रहा था और उसी समय उसके अनजाने में मुहम्मद गोरी ने जब अपनी पूरी तैयारी के साथ दिल्ली पर चढ़ाई कर दी, तब प्रजाजनों के अत्याग्रह से उक्त शाह ने ही निर्भीकतापूर्वक पृथिवीराज को विषम स्थिति की पूर्ण सूचना देकर उसे युद्ध के लिए उकसाया था। सैनिक तैयारियों, युद्ध-प्रयाण एवं भीषण युद्ध की सूचनाएँ देकर कवि ने युद्धों का सुन्दर वर्णन भी किया है। किन्तु यहाँ विचारणीय प्रश्न यह है कि वह शाह था कौन, और उसका नाम क्या था, इसकी सुनिश्चित सूचना चन्दवरदाई ने नहीं दी है। बहुत सम्भव है ढिल्ली (दिल्ली) का वह श्रीमन्त शाह स्वयं महासार्थवाह नट्टल साहू ही हो ? वस्तुतः यह एक गम्भीर खोज का विषय है।

पासणाहचरिउ में वर्णित ढिल्ली-दिल्ली एवं उसका विश्वव्यापी आकर्षण

मध्यकालीन विदेशी आक्रमणों के बाद सिन्ध एवं पश्चिमोत्तर भारत की स्थिति में अनेक प्रकार के परिवर्तन हुए। छोटे-छोटे राजे-रजवाड़े समाप्त हो गए तथा अरबों के आक्रमणों को रोकने हेतु क्षत्रिय-शक्तियों का उदय हुआ। महाकवि केशव[2] ने इन उभरी हुई परिस्थितियों में 'वीर बुन्देला-चरित' लिखा और क्षत्रिय-सामन्तों की सेना की कल्पना 'पद्मिनी' के रूप में करते हुए उक्त सेना का मस्तिष्क 'सीसौदिया', वाणी 'वड-गूजर', कान 'सोलंकी' नेत्र 'चौहान' तथा 'कछवाहे' को उसका सुन्दर कपोल कहा है, साथ ही उनकी यह युक्ति भी प्रसिद्ध है—

तोमर मनमथ मन पडिहार पद राठौर सरूप पँवार।।

इस प्रकार कवि केशव ने उभरती हुई क्षत्रिय-शक्ति की चर्चा तो की और प्रच्छन्न रूप से यह संकेत भी किया कि तत्कालीन दिल्ली पर तोमरों, चौहानों एवं राठौरों का दबदबा बना रहा किन्तु उन्होंने स्वयं दिल्ली के इतिहास पर कुछ प्रकाश नहीं डाला।

इसमें सन्देह नहीं कि महाभारत-काल से ही दिल्ली नगर का कई दृष्टियों से विशेष महत्त्व रहा है। उसके स्वर्णिम अतीत, सुसमृद्ध एवं सौन्दर्य ने विश्व को ऐसा आकर्षित किया कि बड़े-बड़े देशों ने भी अपने यहाँ दिल्ली-नगर की स्थापनाएँ की। अमेरिका के ही विभिन्न प्रान्तों में 7 दिल्ली-नगर उसी नाम से प्रसिद्ध हैं। यथा—

(1) कैलिफोर्निया के मरसेड नामक उपक्षेत्र में, दिल्ली (2) लसा अनीमास के कोलोरेडो क्षेत्र में, (3) डेलावर के आइओवा क्षेत्र में, (4) रेडउड (मेनिया-पोलिस) में, (5) डेलावर (न्यूयार्क) में बैकहम (ओकलाहोमा) में, एवं (7) रिचलैंड की दिल्ली-नगरियाँ प्रसिद्ध हैं।

---

1. संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो सम्पा. – पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी (इलाहाबाद 1952 ई.), पृ. 132
2. *दे. दिल्ली के तोमर, पृ. 190*

इसी प्रकार कनाडा के ओंटारियो प्रान्त में भी दिल्ली नगर स्थापित एवं प्रसिद्ध है, भले ही वहाँ भारतीय-दिल्ली के समान लाल किला, कुतुबमीनार आदि न हों, फिर भी, वहाँ के निवासी अपने को दिल्ली वाला कहलाने में गौरव का अनुभव करते हैं।

कहा जाता है कि अमीर खुसरो (12वीं-13वीं सदी) दिल्ली से इतना अधिक आकर्षित था कि उसने प्रारम्भ में अपने एक मित्र से कहा था— कि "या तो मुझे घोड़ा ला दो या अस्तबल के दरोगा से जाकर कहो कि वह मुझे सामान ढोने वाला कोई सहायक दे दे या किसी को हुक्म दे दो कि मुझे कोई सवारी मिल जाय, जिससे कि मैं उस पर बैठकर देला (दिल्ली) जा सकूँ।"

ढिल्ली-दिल्ली : स्थापना सम्बन्धी विभिन्न मान्यताएँ

वस्तुतः दिल्ली का इतिहास बहुरंगी है। युगों-युगों से वह विविध कथा-वार्ताओं की नायिका रही है। यह भी एक रहस्य बना हुआ रहा कि आखिर दिल्ली का नाम दिल्ली कब और कैसे रखा गया ?

डॉ. डंकन फोर्वस के अनुसार वह डेल्हे अर्थात् उच्चस्थल पर स्थित होने के कारण पड़ा। उसका एक नाम दिल अथवा दिलवाली भी बताया जाता है, जो वहाँ के निवासियों के कारण प्रसिद्ध हुआ (जैसे दिलवाला)। ठक्कुर फेरु के उल्लेखानुसार उस समय उसका सिक्का दिलवाल के नाम से ही प्रसिद्ध था। कुछ लोगों का यह भी विचार है कि एक पिलपिले स्थल का नाम दिल अथवा दिली था क्योंकि उसकी भूमि में कीली आदि गाड़ना सम्भव न था।

कुछ विद्वानों का यह भी कथन है कि दिल्ली उत्तर, दक्षिण, पूर्व या पश्चिम वासियों के लिये दहलीज या चौखट के समान थी। कुछ विद्वानों का यह भी विचार है कि कन्नौज के राजा दिलू ने अपने नाम पर दिल्ली की स्थापना कराई थीं। कुछ विद्वानों के अनुसार पाण्डवों ने कई पीढ़ियों तक जिस इन्द्रप्रस्थ नगरी में राज्य किया था, वह तो उजड़ गई और उसी भूमि पर दिल्ली की स्थापना की गई।

इसका एक दूसरा पक्ष यह भी है कि भारत-भ्रमण करने वाले चीनी यात्रियों-फाहियान एवं ह्वेनत्सांग ने अपने भारत-भ्रमण के क्रम में जहाँ अनेक प्रसिद्ध नगरों की चर्चा की, वहीं उन्होंने दिल्ली का नामोल्लेख तक नहीं किया। गुप्तवंश के बाद वर्धन-वंश के सम्राट हर्षवर्धन के काल में अवश्य ही दिल्ली को ढिली या ढिल्ली के रूप में उल्लिखित पाया गया है। वर्तमान दिल्ली के पालम क्षेत्र की एक प्राचीन बावड़ी में एक शिलालेख भी मिला है, जिससे विदित होता है कि वह ढिल्ली, हरियाणा-जनपद की एक नगरी के रूप में प्रसिद्ध थी। इसका समर्थन बुध श्रीधर के पासणाहचरिउ की आद्य-प्रशस्ति से भी होता है।

दिल्ली के महत्व से आकर्षित होकर कुछ प्राचीन उल्लेखों एवं प्रशस्तियों के आधार पर कुछ इतिहासकारों ने पुनः उसकी स्थापना के विषय में अन्य खोजें भी की हैं, जो निम्न प्रकार हैं—

(क) अबुल फज्ल[1] के अनुसार गुप्त या बलभी सं. 416 (सन् 734 के लगभग) दिल्ली की स्थापना की गई।

(ख) खड्गराय[2] कृत गोपाचल-आख्यान के अनुसार बिल्हण देव ने वि.सं. 792 (सन् 735) में दिल्ली की स्थापना की।

(ग) मुहणोत नैणसी ख्यात[3] के अनुसार तोमर-राज्य (ढिल्ली) की स्थापना वि.सं. 809 वैसाख सुदी 13 (सन् 752) के दिन सम्पन्न हुई। और,

(घ) राजावली[4] (वि.सं. 1685 के अनुसार प्रथम तोमरवंशी राजा आदि-राणा-जाजू हुआ, जिसका राज्यकाल वि.सं. 839 (सन् 782) था[5]।

1-4. दे. दिल्ली के तोमर, पृ. 190।

5. दिल्ली के तोमर, पृ. 191।

इन तथ्यों के आलोक में विचार करें तो यह स्पष्ट विदित होता है कि दिल्ली नगर की स्थापना सन् 734 से 782 के मध्य कभी हुई होगी और उसमें क्रमशः अनेक क्षत्रिय राजाओं ने शासन किया।

बुध श्रीधर ने ढिल्ली के जिस राजा अनंगपाल की चर्चा की है, वह तोमर राजवंश का तृतीय अनंगपाल था, जो उस समय ढिल्ली का शासक था। नट्टल के आश्रय में रहकर बुध श्रीधर ने अपना पासणाहचरिउ उसी के शासनकाल में अर्थात् वि.सं. 1189 (1132 ई.) में लिखकर समाप्त किया था। दुर्दम वीर हम्मीर को पराजित करने के उपलक्ष्य में इसी अनंगपाल तृतीय को सम्भवतः त्रिभुवपति, त्रिभुवनपालदेव एंव विजयपालदेव जैसे विरुदों से सम्मानित भी किया गया होगा। इसी विजय के उपलक्ष्य में दिल्ली में एक कीर्तिस्तम्भ[1] का भी निर्माण कराया गया था, जिसका संकेत पासणाचरिउ[2] की प्रशस्ति में भी मिलता है।

पृथिवीराजरासो एवं इन्द्रप्रस्थ-प्रबंध में ढिल्ली विषयक कुछ महत्वपूर्ण भविष्यवाणियाँ :

पूर्वोक्त इन्द्रप्रस्थ-प्रबन्ध में तोमरवंशी राजा अनंगपाल (प्रथम) के वर्णन-प्रसंग में किल्ली-ढिल्ली की एक कथा भी वर्णित है, जिसमें भविष्यवाणी की गई है कि ढिल्ली पर मुसलमानों के बाद राइवंश, तत्पश्चात् सीसौदिया और पुनः मुसलमानों का राज्य होगा[3]। चन्दवरदाई कृत पृथिवीराजरासो में भी इसी प्रकार की भविष्यवाणी उपलब्ध होती है[4]। यथा—

अनंगपाल छक्क बैबुद्धि जोइसी-उक्किकल्लिय।
भयौ तूंअर मतिहीन करि किल्लिय तें ढिल्लिय।।
कहै व्यास जग-ज्योति आगम आगम हौं जानौं।
तूंअर ते चहुआन अंत ह्वै, तुरकानौ।।

अर्थात् हे तोमर नरेश, तूने मूर्खतावश किल्ली हिलाकर उसे ढिल्ली कर दी है। इसका परिणाम यही जान पड़ता है कि तोमरों का राज्य चौहान पावेंगे और फिर अन्त में यहाँ तुर्कों का राज्य होगा।

पूर्वोक्त किल्ली-ढिल्ली के प्रसंग में इन्द्रप्रस्थ-प्रबन्ध (1/68-92) के अनुसार नगर की स्थापना के लिए व्यास ने अनंगपाल (प्रथम) को चिरकाल तक राज्य करने हेतु निर्धारित भूखण्ड में एक किल्ली (स्तम्भ) गाड़ने को कहा। अनंगपाल ने उसे भूखण्ड में इतना गहरा ठोक दिया कि वह शेषनाग के शीर्ष में जा गढ़ी। व्यास ने इस प्रक्रिया को उत्तम कहा और उसने उस स्थल (नगर) का नाम 'किल्ली' रख दिया तथा अनंगपाल को बताया कि अब किल्ली पर तुम आजीवन राज्य करते रहोगे। किन्तु कुछ ही समय बाद उस अनंगपाल (प्रथम) ने जिज्ञासावश उस किल्ली को उखाड़ कर देखा, तो उसका अन्तिम भाग रक्तरंजित था। जब उसने वह किल्ली पुनः ठोकना चाही, तो वह ठीक तरह से न ठुक सकी। वह ढीली ही रह गयी। चन्दवरदाई के अनुसार वस्तुतः अनंगपाल (प्रथम) की बुद्धि ही भ्रष्ट हो गई थी। अतः उसके इस दुष्कृत्य के कारण ही वह किल्ली-नगरी ही ढिल्ली-नगरी के रूप में प्रसिद्ध हुई।

मध्यकालीन साहित्य में ढिल्ली विषयक प्रचुर उल्लेख

पूर्वोक्त इन्द्रप्रस्थ-प्रबन्ध में विविध प्रसंगों में ढिल्ली (1/90/5/82) ढिल्लीपति (8/9), ढिल्यां (1/89/11/5/11/9) ढिल्लीपुरे (11/10) जैसे उल्लेख ही मिलते हैं। कहीं भी उसे दिल्ली नहीं कहा गया।

---

1. दे. दिल्ली के तोमर, पृ. 1990
2. पासणाहचरिउ, 1/3/1
3. इन्द्रप्रस्थ-प्रबन्ध 4/68-92
4. दे. सम्राट् पृथिवीराज, पृ. 119 (कलकत्ता, 1950)

चन्दवरदाई द्वारा अपने पृथिवीराजरासो में भी अनेक स्थल पर ढिल्ली शब्द का ही प्रयोग किया गया है[1]।

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है, बुध श्रीधर ने अपने पा.च. की आद्य-प्रशस्ति में पूर्व-प्रचलित-परम्परा के अनुसार ही दिल्ली को ढिल्ली[2] के नाम से ही अभिहित किया है। यह प्रतिलिपिकार की गलती से नही लिखा गया, बल्कि वह उसकी एक समकालीन यथार्थता थी।

पं. ठक्कुर फेरु, बिजोल्या-शिलालेख, इन्द्रप्रस्थ-प्रबन्ध,
कुछ अप्रकाशित पाण्डुलिपियों एवं पृथिवीराजरासो के तद्विषयक प्रमाण

सुप्रसिद्ध द्रव्यपरीक्षक एवं वास्तुविद् पं. ठक्कुर फेरु तोमरकालीन ढिल्ली की टकसाल के मुद्रा-विशेषज्ञ थे। उन्होंने अपने 'रत्नपरीक्षादि सप्तग्रन्थ संग्रह' (पृ. 31) में ढिल्ली राज्य में प्रचलित तोमर-राजाओं की मुद्राओं को 'ढिल्लिकासत्कमुद्रा' कहकर उनके धातु-द्रव्यों तथा उनमें मिश्रणों से बनने वाली विभिन्न मुद्राओं (सिक्कों) के मूल्य एवं वजन के विषय में कहा है[3]—

अणग मयणप्पलाहे पिथउपलाहे य चाहडपलाहे।
सय मज्झि टंक सोलह रुप्पउ उणवीस करि मुल्लो।।

–एता ढिल्लिकासत्कमुद्रा राजपुत्र–तोमरस्य

इसी प्रकार बिजौल्या के वि.सं. 1226 (सन् 1169) के एक शिलालेख में दिल्ली को ढिल्लिका नाम से अभिहित किया गया है।

प्रतोल्यां च बलम्यां च येन विश्रामितं यशः।
ढिल्लिका ग्रहण श्रान्तमासिका लाभलीभ्मतः।। 22।।

वि.सं. 1685 (सन् 1628) में लिखित दिल्ली की एक "राजावली कथा" मिली है, जो अद्यावधि अप्रकाशित है। उसका नाम ही— **"अथ ढीली-स्थान की राजावली लिख्यते"**[4] है।

इसी प्रकार एक अजैन गुटका सं. 392 में भी इसका उल्लेख मिलता है। उसका नाम है अथ **"ढिल्ली पातिसाहि कौ व्यौरो"**[5]

बुध श्रीधर के उल्लेखानुसार उसके समय में उक्त ढिल्ली नगर हरियाणा-प्रदेश का एक प्रमुख नगर माना जाता था।

'पृथिवीराजरासो' में पृथिवीराज चौहान के प्रसंगों में दिल्ली के लिए 'ढिल्ली' शब्द का ही अनेक स्थलों पर प्रयोग हुआ है। इसमें इस नामकरण की एक मनोरंजक कथा भी कही गई है, जिसे तोमरवंशी राजा अनंगपाल की पुत्री अथवा पृथिवीराज चौहान की माता ने स्वयं पृथिवीराज को सुनायी थी। तदनुसार राज्य की स्थिरता के लिये जग-ज्योति नामक एक ज्योतिषी के आदेशानुसार अनंगपाल (प्रथम) द्वारा जिस स्थान पर कीली गाडी गई थी, वह स्थान प्रारम्भ में 'किल्ली' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। किन्तु उस कील को ढीला कर देने से उस स्थान का नाम 'ढिल्ली' पड़ गया, (जो कालान्तर में दिल्ली के नाम से जाना जाने लगा) 18वीं सदी तक दिल्ली के 11 नामों में से 'ढिल्ली' भी एक नाम माना जाता रहा, जैसा कि 'इन्द्रप्रस्थप्रबन्ध' (अज्ञातकर्तृक) में एक उल्लेख मिलता है—

शक्रपन्था इन्द्रप्रस्थ शुभकृत योगिनीपुरः।
दिल्ली ढिल्ली महापुर्या जिहानाबाद इष्यते।।

---

1. दे. सम्राट पृथिवीराज, पृ. 102, 119, 149, 170, 180, 185, 216 आदि आदि
2. पा.च. 1/2/16
3. दिल्ली के तोमर पृ. 313
4-5. ये पाण्डुलिपियाँ दिल्ली के पंचायती जैन मन्दिर में गुटका सं. 99 में सुरक्षित हैं।

सुषेणा महिमायुक्ता शुभाशुभकरा इति।
एकादश मित नामा दिल्लीपुरी च वर्त्तते।। (1/14-15)

अर्थात् (1) शक्रपन्था, (2) इन्द्रप्रस्थ, (3) शुभकृत, (4) योगिनीपुर, (5) दिल्ली, (6) ढिल्ली, (7) महापुरी, (8) जिहानाबाद (9) सुषेणा, (10) महिमायुक्ता, एवं (11) शुभाशुभकरा ये दिल्ली के नाम कहे जाते हैं।

उक्त नामों में से मध्यकालीन हस्तलिखित अपभ्रंश पाण्डुलिपियों में योगिनीपुर, ढिल्ली एवं जिहानाबाद के प्रचुर मात्रा में उल्लेख मिलते हैं। जिहानाबाद के स्थान पर कहीं-कहीं सम्राट् शाहजहाँ के नाम पर शाहजहाँनाबाद नाम भी मिलता है और हमारी दृष्टि से यह नाम भी उचित प्रतीत होता है।

इस प्रकार पासणाहचरिउ में राजा अनंगपाल, राजा हम्मीर-वीर एवं ढिल्ली के उल्लेख ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्वपूर्ण हैं। इन सन्दर्भों तथा समकालीन साहित्य एवं इतिहास के तुलनात्मक अध्ययन से मध्यकालीन भारतीय इतिहास के कई प्रच्छन्न अथवा जटिल-रहस्यों का उदघाटन सम्भव है।

बुध श्रीधर द्वारा वर्णित ढिल्ली (दिल्ली) नगर-वर्णन

पासणाहचरिउ की आद्य-प्रशस्ति में महाकवि बुध श्रीधर ने ढिल्ली का स्वयं अपनी आँखों द्वारा देखा हुआ वर्णन किया है। जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि महाकवि हरयाणा देश का निवासी था और वहाँ उसने अपनी एक अपभ्रंश रचना–**'चंदप्पहचरिउ'** का प्रणयन कर जब कुछ थकावट का अनुभव किया, तो उसे शान्त करने हेतु वह यमुना पार कर कुछ समय के लिये भ्रमणार्थ दिल्ली आया था। उस समय यह नगर **ढिल्ली** के नाम से जाना जाता था।

ढिल्ली के चतुर्दिक बिखरे हुए वैभव को देखकर वह आश्चर्यचकित हो रहा था। सूर्य की गति को अवरुद्ध करने वाले गोपुर-द्वार, गगनचुम्बी बहुमंजिली अट्टालिकाएँ, पाताल को छूने वाली गहरी खाई, भंगुर-तरंगों वाला अनंग-सरोवर, घण्टारवों से गुंजित धर्मायतन, उन्नत प्राकार, पवनवेगी तुरंगों की घुड़दौड़, कातन्त्र-व्याकरण की पंजिका[1] –टीका के समान सुन्दर-सुन्दर राजमार्ग, सिद्ध-वैयाकरण[2] के समान निर्दोष-वर्णों का उच्चारण करने वाले नागरिक गण आदि को देखकर वह बहुत ही प्रभावित हुआ था। इन सबसे भी अधिक प्रभावित हुआ वह 'गयणमंडलालग्गु सालु' देखकर।

ढिल्ली के नट्टल साहू द्वारा निर्मित नाभेय (ऋषभ)-जिनालय

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि नट्टल ने ढिल्ली में नाभेय जिनालय का निर्माण कराया था और कवि ने उसी सन्दर्भ में गयणमंडलालग्गु सालु की चर्चा भी की है। क्या था यह गयणमंडलालग्गु सालु ? (अर्थात् गगन-मण्डल को छूता हुआ साल—स्तम्भ) (Tower) इस साल-स्तम्भ के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं।

मेरी दृष्टि से यह साल एक जैन-मानस्तम्भ होना चाहिए क्योंकि समकालीन तोमरवंशी राजा अनंगपाल (तृतीय) के प्रिय पात्र राज्य को आर्थिक दृष्टि से समृद्ध बनाने वाले सुप्रसिद्ध महासार्थवाह नट्टल साहु ने ढिल्ली-पत्तन में एक विशाल उत्तुंग एवं कलापूर्ण नाभेय-मन्दिर (आदिनाथ-मन्दिर) का निर्माण कराया था और जिसकी प्रधान वेदिका के सम्मुख उन्नत कलापूर्ण मानस्तम्भ भी निर्मित कराया होगा। इसी मन्दिर-शिखर पर नट्टल ने विशेष समारोह में पंचरंगी-झण्डा भी फहराया था[3]।

---

1. शर्ववर्म कृत कातन्त्र-व्याकरण पर अनेक विद्वानों द्वारा लिखित पंजिका टीकाएँ।
2. आचार्य हेमचंद्र कृत सिद्धहैम-व्याकरण।
3. पासणाह. 1/9/1

जिनालय की शास्त्रीयता एवं कलात्मकता

तिलोयपण्णत्ती (यतिवृषभ-दूसरी सदी के आसपास) के अनुसार जैन मन्दिर की शास्त्रीय संरचना में मन्दिर की चारों दिशाओं में एक-एक वेदिका तथा उसके बहिर्भाग में अशोक, सप्तपर्णी, चम्पक तथा आम्र के उपवन होते हैं। इनमें चैत्यवृक्ष भी होते हैं। इन चैत्यवृक्षों के चारों ओर कलात्मक तोरण, अष्टमंगल तथा मानस्तम्भ के ऊपर चतुर्मुखी चार-चार जिन-प्रतिमाएँ सुशोभित रहती हैं।

वह जिनालय तीन प्राकारों (कोटों) के मध्य निर्मित रहता है। प्रत्येक प्राकार की चारो दिशाओं में एक-एक गोपुर-द्वार रहता है। इन प्राकारों की मध्यवर्ती गलियों में एक-एक मानस्तम्भ, नौ-नौ स्तूप, वन, ध्वजा-पताकाएँ और चैत्य होते हैं। उनके चारों ओर उपवन, मेखलाएँ एवं वापिकाएँ होती हैं। महाध्वजाओं में माला, सिंह, गज, वृषभ, गरुड़, मयूर, अम्बर, हंस, कमल और चक्र के चिन्ह निर्मित रहते हैं।

उक्त विषयक वर्णन बड़ा विस्तृत है किन्तु यहाँ पर चूँकि 'गयणमंडलालग्गु सालु' का प्रसंग है, अतः केवल इसी विषय पर यहाँ चर्चा की जा रही है। उक्त जिनालय के निर्माण में भक्ति-भरित नट्टल साहू ने शास्त्रीय पद्धति का ध्यान रखते हुए एक उत्तुंग मानस्तम्भ का भी निर्माण अवश्य कराया होगा क्योंकि उसके पास न तो भूमि की कमी थी और न अर्थ या अन्य साधनों की। उसी मानस्तम्भ की उत्तुंगता, कलात्मकता एवं भव्यता को देखकर ही कवि ने उसे "गयणमंडलालग्गु सालु" कहा होगा।

उसके लिए प्रेरक सूत्र

वस्तुतः 7वीं सदी से 14वीं सदी तक का कालखण्ड दक्षिण एवं उत्तर-भारत में कलापूर्ण जिनालयों के निर्माण के लिये एक स्वर्णयुग ही था। विषय-विस्तार के भय के कारण यदि यहाँ दक्षिण भारत के कलापूर्ण भव्य मन्दिरों एवं मूर्त्तियों की चर्चा न भी करें, तो भी उत्तर भारत के माउण्ट आबू में नट्टल काल के निकट-अतीत में ही सन् 1030 ई. में विमलशाह द्वारा 18 करोड़ 53 लाख मुद्राओं के व्यय से 52 लघु जिनालयों के मध्य एक विमल-वसही के नाम से प्रसिद्ध उत्तुंग शिखर वाले कलापूर्ण नाभेय (ऋषभ) जिनालय का निर्माण कराया जा चुका था।

उसके लगभग 200 वर्षों के पश्चात् वस्तुपाल-तेजपाल ने भी सन् 1230 ई. में, कलापूर्ण विस्तृत जिनालय का निर्माण कराया था, जिसमें लगभग 12 करोड़ 53 लाख मुद्राओं का व्यय किया गया और जो णूवसही के नाम से प्रसिद्ध है। इनका निर्माण 700 कुशल कारीगरों ने किया था। पश्चाद्वर्त्ती राणकपुर में भी उसी प्रकार के कला-वैभव से सम्पन्न जिनालयों के निर्माण की रूपरेखा तैयार की जा रही थी।

उक्त कालखण्ड में बुन्देलखण्ड के देवगढ़, खुजराहो एवं अहार (टीकमगढ़, मध्यप्रदेश) में भी कलावैभव से सम्पन्न जिनालयों के निर्माण की होड़ जैसी लगी थी और निर्माताओं से प्रेरित एवं उत्साहित होकर सिद्धहस्त कारीगरों ने भी जब दर्शकों को विस्मित कर देने वाले कला-पुंज को बिखेरा था, तब फिर भला नट्टल साहू उनसे पीछे क्यों रहते ? अतः उन्होंने भी सम्भवतः विमलवसही के निर्माण से प्रेरणा लेकर वैसे ही विशाल प्रांगण में 52 कलापूर्ण जिनमन्दिरों के मध्य विशाल नाभेय (ऋषभ) मन्दिर का निर्माण कराया था और समकालीन सुरुचिसम्पन्न परम्परा के अनुसार विशाल प्रांगण वाले उस मन्दिर में मूल गर्भगृह, गूढ़-मण्डप, नव-चौकी, रंगमण्डप, द्वारमण्डप, खटक, चतुर्दिक विस्तृत दीवारों के साथ-साथ छोटे-छोटे मन्दिर (कुलिकाएँ) और हस्तिशाला आदि अवश्य ही निर्मित कराई गई होंगी। दीवालों, द्वारों, खम्भों, मण्डपों, तोरणों तथा छतों पर आकर्षक फूल-पत्तियाँ, लताएँ, ज्ञान के प्रतीक दीपक, घण्टे-घण्टियाँ, अश्व, गज, सिंह, मत्स्य एवं देवाकृतियों से उन्हें अवश्य ही सुसज्जित कराया गया होगा। खम्भों एवं उनके मध्यवर्ती शिलापट्टों पर आगम-परम्परानुसार ही अनेक जैन-सूत्र एवं सूक्तियों के भी अंकन एवं देवों, यक्ष-यक्षिणियों तथा शलाका-महापुरुषों के चित्र भी चित्रित कराये गये होंगे।

इनके अतिरिक्त भी तीर्थंकर से सम्बन्धित दीक्षापूर्व के दृश्य, राज दरबार, जुलूस, बारात-गमन, विवाह-मण्डप,

नाटक-संगीत-मण्डली, युद्धदृश्य आदि-आदि के मनोहारी दृश्य अवश्य ही चित्रित कराए गये होंगे, और जब कुशल कारीगर, चित्रकार आदि दिन-रात कार्य करते-करते थक जाते होंगे, तब साहू नट्टल अपनी धर्मपत्नी के साथ उनका उत्साह बढ़ाने के लिए वीरवर चामुण्डराय, विमलशाह एवं वस्तुपाल-तेजपाल के समान ही उनके पास पहुँचते रहते होंगे और नाना-प्रकार से उन्हें प्रोत्साहित करते रहे होंगे।

उत्तर एवं दक्षिण भारत में प्रचुर मात्रा में इतने विशाल एवं प्रचुर मात्रा में उत्तुंग एवं कलापूर्ण जिनमन्दिरों, मूर्तियों का निर्माण तथा विविध विषयक साहित्य-लेखन क्यों किया गया ? इसका एक अतिसंक्षिप्त उत्तर यही दिया जा सकता है कि विदेशी आक्रान्ताओं एवं अन्य ईर्ष्यालुओं एवं विद्वेषियों द्वारा श्रमण-संस्कृति की कलापूर्ण धरोहरों तथा जिनवाणी को जिस प्रकार से नष्ट-भ्रष्ट एवं क्षतिग्रस्त किया गया था, उसकी क्षति-पूर्ति हेतु ही समाज में वह एक बहुआयामी साहसपूर्ण निर्भीक नव-निर्माण एवं जागरण का रचनात्मक कार्यक्रम था, जो समय की बलवती माँग भी थी।

उक्त जिनालय की अवस्थिति (Location)

नट्टल साहू द्वारा निर्मित उक्त नाभेय-मन्दिर का प्रांगण दिल्ली का वही प्रक्षेत्र था, जो आज महरौली (मेर्वावली) के नाम से प्रसिद्ध है। वस्तुतः 11वीं-12वीं सदी की दिल्ली इसी प्रक्षेत्र में बसी थी। तोमरवंशी राजा अनंगपाल (तृतीय) के पूर्वजों ने वास्तुशास्त्रीय दृष्टिकोण से शुभ-मुहूर्त्त में उसे यहाँ बसाया था।

बहुत सम्भव है कि वर्तमान में महरौली या मेर्वावली में जिस स्थल पर आज अहिंसा-स्थली बनी हुई हैं, उसी स्थल के आसपास साहू नट्टल का नाभेय-मन्दिर बनवाया गया हो और पूर्वागत परम्परा को ध्यान में रखते हुए दिल्ली की जैन समाज ने उसी को केन्द्र बिन्दु बनाकर आधुनिक अहिंसा-स्थली का निर्माण कराया हो ? वस्तुतः यह एक अन्वेषणीय विषय है।

जहाँ नट्टल का जिनालय बना, वह भूमिखण्ड, सम्भवतः धर्मायतनों के लिये ही सुनिश्चित था। वहीं पर अनंग-सरोवर भी था, इतिहासकारों के अनुसार 40 फुट गहरा, 169 फुट लम्बा तथा 162 फुट चौडा था। वह अलाउद्दीन खिलजी (सन् 1259-1316) के समय तक पूर्णतया जल-प्रपूरित था। उसी के एक किनारे नट्टल ने उक्त जिनालय भी बनवाया था। कहा जाता है कि उस समय उसके आसपास कुछ जैनेतर धर्मायतन भी थे और वह प्रक्षेत्र सर्वधर्मसमन्वय का एक अद्भुत उदाहरण बना हुआ था। इतिहासकारों की मान्यता है कि उक्त सरोवर एवं धर्मायतनों के समीप ही राजा अनंपाल का राजप्रसाद भी था। इतिहासकारों के सर्वेक्षण के अनुसार अनंग-सरोवर एवं राजप्रासाद के मध्य में एक लौह-स्तम्भ भी स्थापित किया गया था और उसके दक्षिण-पश्चिम में एक कीर्तिस्तम्भ का निर्माण कराया गया था, जिसका प्रवेश-द्वार मन्दिर की ओर उत्तर-मुखी रखा गया था।[1]

पासणाहचरिउ में वर्णित समकालीन कुछ ऐतिहासिक झाँकियाँ

'पासणाहचरिउ' यद्यपि एक पौराणिक-महाकाव्य है, उसमें पौराणिक इतिवृत्त तथा दैवी-चमत्कार आदि प्रसंगों की कमी नहीं। फिर भी चूँकि कवि बुध श्रीधर का युग संक्रमणकालीन था। कामिनी एवं कांचन के लालची मुहम्मद-गोरी (1173-1206 ई.) के आक्रमण प्रारम्भ हो चुके थे, उसकी विनाशकारी लूट-पाट ने उत्तर-भारत में हड़कम्प मचा दिया था। हिन्दू राजाओं में पारपरिक फूट के कारण उनमें भी पारस्परिक कलह मची हुई थी। दिल्ली के तोमर राजा अनंगपाल को अपनी सुरक्षा हेतु कई युद्ध करने पड़े थे। कवि ने जिस हम्मीर वीर को अनंगपाल द्वारा पराजित किए जाने की चर्चा की है, वह घटना कवि की आँखों देखी रही होगी। कवि ने कुमार पार्श्व के यवनराज के साथ[2] तथा त्रिपृष्ठ के हयग्रीव के साथ[3] जैसे क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित युद्ध-वर्णन किए हैं, वे वस्तुतः कल्पना-प्रसूत नहीं,

1. दे. दिल्ली के तोमर, पृ. 158
2. पास. 4/6-21
3. बुध श्रीधर कृत वड्ढ. 5/11-13

बल्कि उनके माध्यम से हिन्दू-मुसलमानों अथवा हिन्दू राजाओं के पारस्परिक युद्धों के आँखों देखे अथवा विश्वस्त गुप्तचरों द्वारा सुने गये तथा युद्ध की विनाशलीला से झुलसे एवं आतंकित लोगों की करुण-व्यथाओं के संजीव चित्रण जैसे प्रतीत होते हैं।

ये युद्ध इतने भयंकर थे कि लाखों विधवाओं एवं अनाथ बच्चों के करुण-कन्दन देख-सुनकर संवेदनशील कवि को लिखना पड़ा था—

तणुरुह दुक्करु रणंगणु रिअवाणांवलि विहिय णहंगणु।
संगरणामु जि होई भयंकरु तुरय-दुरय-रह सुहड खयंकरु।। पास. 3/14/3-5

उसने उन युद्धों में प्रयुक्त जिन शस्त्रास्त्रों की चर्चा की है, वे पौराणिक, ऐन्द्रजालिक अथवा दैवी नहीं, बल्कि खुरपा, कृपाण, तलवार, धनुषबाण जैसे वे ही शस्त्र-अस्त्र हैं[1] जो कवि के समय में लोक-प्रचलित थे। आज भी वे हरियाणा एवं दिल्ली प्रदेश में उपलब्ध हैं और उन्हीं नामों से जाने जाते हैं।

युवराज पार्श्व, रविकीर्ति और यवनराज

बुध श्रीधर ने पा.च. की तीसरी, चौथी एवं पाँचवी सन्धि में पार्श्व के यवनराज के साथ हुए युद्ध का वर्णन किया है। पार्श्व ने यह युद्ध अपने मामा रविकीर्ति द्वारा अपनी सहायता के लिए की गई प्रार्थना पर किया था और इसके लिए वे अपने पिता की आज्ञा लेकर रणक्षेत्र में पहुँचे थे। इस युद्ध में पार्श्व की विजय हुई। तत्पश्चात् रविकीर्ति ने अपनी कन्या का विवाह पार्श्व से कर देने का निश्चय किया।

पार्श्व का विवाह — विभिन्न मत

महाकवि विमलसूरी (तीसरी सदी) ने अपने 'पउमचरियं' में ऐसे ही एक प्रसंग का उल्लेख किया है, जिसके अनुसार राजा जनक की राजधानी को जब यवनों ने घेर लिया तब उन्होंने उनके साथ लोहा लेने के लिए महाराज दशरथ से सहायता माँगी थी। समाचार पाते ही राजा दशरथ ने उनकी सहायता हेतु राम को युद्ध के लिए भेजा था। राम ने जाकर यवनों से भीषण युद्ध किया और उन्हें बुरी तरह पराजित किया[2]। प्रतीत होता है युग-प्रभावित महाकवि पउमकित्ति, बुध श्रीधर तथा अन्य परवर्ती अपभ्रंश-कवियों ने पउमचरियं के इस कथानक को अपने-अपने ग्रन्थों में उसे अपनी-अपनी शैली में ग्रहण किया है[3]।

समवायांग-सूत्र तथा कल्पसूत्र में बुध श्रीधर द्वारा वर्णित उक्त प्रसंग की कोई चर्चा नहीं है और उनमें पार्श्व के विवाह के सम्बन्ध में भी कोई उल्लेख नहीं आया है। स्थानांगसूत्र में पार्श्व के विषय में यह सूचना अवश्य दी गई है कि उन्होंने कुमार-काल में ही दीक्षा ग्रहण कर ली थी[4]। श्वेताम्बर-परम्परा के अनुसार कुमार-काल से तात्पर्य उनके राज्याभिषेक से पूर्व की स्थिति का है, न कि विवाह-पूर्व की कुमारावस्था का। उस परम्परा के अनुसार पाँच तीर्थंकर-वासुपूज्य, मल्लि, अरिष्टनेमि, पार्श्व और महावीर ने कुमार-काल में ही दीक्षा ग्रहण की थी[5]।

बुध श्रीधर के अनुसार युवराज पार्श्व ने यवनराज को पराजित कर अपने मामा रविकीर्ति के साथ उसकी

---

1. पास. 2/17/11, 3/11-13
2. दे. पउमचरिउं 27वाँ उद्देश्य
3. पासणाह. 3/2 (डॉ. पी के मोदी द्वारा सम्पादित) की भूमिका, पृ. 38
4. पासणाह. (मोदी) भूमिका, पृ. 38
5. दे. वीरं अरिट्ठनेमिं पासं मल्लिं च वासपुज्जं च। एए मोत्तूण जिणे अवसेसा आसि राजाणो।
   रायकुलेसु वि जाता विसुद्धं सेसु खत्तिय कुलेसु। ण इत्थियाभिसेया कुमार पव्वइया।। आवश्यक निर्युक्ति-256, 257।।

राजधानी कुशस्थल में प्रवेश किया था और उसी समय रविकीर्ति ने अपनी बेटी प्रभावती के परिणय का प्रस्ताव पार्श्व के सम्मुख रखा था[1]?

किन्तु तिलोयपण्णत्ती तथा पउमचरियं में पार्श्व के कुशस्थल जाने तथा वहाँ उनके विवाह की चर्चा का कोई उल्लेख नहीं है। उत्तरपुराण में भी पार्श्व के कुशस्थल जाने या युद्ध में भाग लेने की चर्चा नहीं है और न वहाँ पार्श्व के विवाह की योजना का भी कोई प्रसंग उठाया गया है। महाकवि पुष्पदन्त तथा वादिराज के ग्रन्थों में भी वही स्थिति है किन्तु देवभद्रसूरि ने इस प्रसंग का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। यद्यपि कुशस्थल के राजा के नाम में एकरूपता नहीं है। देवभद्रसूरि के अनुसार कुशस्थल के राजा का नाम प्रसेनजित था और पिता का नाम नरवर्म[2], जबकि बुध श्रीधर ने कुशस्थल के राजा का नाम रविकीर्ति या भानुकीर्ति तथा उसके पिता का नाम शक्रवर्मा माना है। इस प्रसंग में देवभद्रसूरि ने यह कथन भी किया है कि प्रसेनजित की कन्या किन्नरियों द्वारा पार्श्व की यशोगाथा सुनकर उनके प्रति आकृष्ट हुई थी। देवभद्रसूरि ने रविकीर्ति और पार्श्व में कोई पारस्परिक संबंध नहीं बताया जबकि बुध श्रीधर ने रविकीर्ति को स्पष्ट ही पार्श्व का मामा कहा है। देवभद्रसूरि के अनुसार पार्श्व को युद्ध में जाने का अवसर ही नहीं आया क्योंकि यवनराज ने अपने मंत्रियों द्वारा पार्श्व की अलौकिकता संबंधी वार्ताएँ सुनकर स्वयं ही पार्श्व के सम्मुख आत्मसमर्पण कर दिया था। देवभद्रसूरि ने यवन के इस आत्मसमर्पण के बाद ही पार्श्व और प्रभावती के विवाह की चर्चा की है, बुध श्रीधर ने विवाह के प्रसंग का उल्लेख तो किया किन्तु तदनुसार उनका विवाह सम्पन्न नहीं हो सका क्योंकि उसके पूर्व ही उन्हें वैराग्य हो गया। देवभद्रसूरि के परवर्त्ती प्रायः समस्त श्वेताम्बर-लेखकों ने उनके ग्रन्थ का अनुकरण किया है।

पासणाहचरिउ : महाकाव्यत्व

कथावस्तु-गठन एवं शिल्प

प्रस्तुत चरित-काव्य की कथा का मूल-स्रोत आचार्य गुणभद्र (9वीं सदी) कृत उत्तरपुराण है। उसके 37वें पर्व में पार्श्वनाथ की कथा वर्णित है। महाकवि बुध श्रीधर ने उत्तरपुराण से मूलस्रोत अपनाकर भी कथा-नियोजन में चातुर्य का प्रदर्शन किया है। उत्तरपुराण अथवा अन्य पार्श्वनाथ-चरितों के प्रायः आरम्भ में ही पार्श्वनाथ की पूर्व-भवावली आरम्भ हो जाती है। तत्पश्चात् पार्श्वनाथ की मूलकथा आती है। पर प्रस्तुत चरित-काव्य में प्रथमतः कवि ने मूलकथा का अंकन किया है और बाद में मूलकथा को रसमय एवं उसमें जिज्ञासा-वृत्ति को उत्पन्न करने के हेतु सहकारी अवान्तर-कथा के रूप में भवावली को निबद्ध किया है।

बुध श्रीधर का यह शिल्प काव्य-तत्व की दृष्टि से अनुपम है। यतः काव्य के पाठक को भवान्तरों के जाल में प्रथम ही उलझ जाने के कारण मूलकथा तक पहुँचने में बहुत ही प्रयास करना पड़ता है। वह सरल और सीधे रूप में आदर्श-चरित को प्राप्त नहीं कर पाता। नैतिक, आध्यात्मिक और सामाजिक आदर्श, जिन्हें वह अपने नायक के जीवन से ग्रहण करना चाहता है, कथा में बहुत दूर तक उस नायक के यथार्थ स्वरूप से अज्ञात ही बना रहता है। लम्बी-चौड़ी भवावलियाँ नदी के आवर्त्तों-विवर्त्तों के प्रतारण के समान पाठक की चेतनावृत्ति को मूर्च्छित जैसा बना देती हैं। फलतः कुछ दूर तक भावों के प्रवाह में बहने के उपरान्त ही मूलकथा का वह सन्दर्भांश पाठक के हाथ आ पाता है, जिसका सम्बल पाकर ही वह समस्त कथा में अन्विति कर पाता है।

बुध श्रीधर ने सर्वप्रथम काव्य की शैली में मूलकथा आरम्भ की है। यवनराज के साथ युद्ध करने के बाद पार्श्वनाथ संसार-विरक्त होकर तपश्चरण करने लगते हैं। पूर्वभव का शत्रु—कमठ का जीव, विविध रूपों में उन

1. पासणाह. 6/5-6
2. पासणाह. (मोदी) भूमिका, पृ. 38

पर उपसर्ग करता है। उपसर्ग के दूर होने पर उन्हें कैवल्य की प्राप्ति हो जाती है और अन्तिम बारहवीं-सन्धि के कुछ ही कडवकों में पूर्व-भवावली का वर्णन किया गया है।

बुध श्रीधर द्वारा कथा के इस रूप-परिवर्तन से वस्तु-विन्यास में कार्य-कारण संबंध घटित हो गया है, जिससे कथावस्तु में विश्वसनीयता, उत्कण्ठा, संघर्ष और भविष्य-संकेत यथास्थान उत्पन्न होते चले गए हैं। इस परिवर्तन से जहाँ कथानक-नियोजन में सफलता प्राप्त हुई, वहीं इस चरित को काव्य का स्वरूप भी प्राप्त हो गया है। प्रबन्धकाव्य या महाकाव्य के कवि के लिए एक अनिवार्य शर्त यह है कि वह कथासूत्र का न्यास इस रूप में करे, जिससे कि रसज्ञ-व्यक्ति मूलकथानक का आस्वादन करता हुआ चरमोत्कर्ष की ओर आकृष्ट हो सके। आलंकारिकों ने इसी कौशल का नाम प्रबन्ध-वक्रता बतलाया है। आचार्य कुन्तक ने अपने क्रोक्ति-जीवित" में लिखा है[1]—

"कथाविच्छेद-वैचित्र्य से प्रबन्ध में एक ऐसी सुन्दरता आ जाती है, जो पूर्वोत्तर कथा-निर्वाह के द्वारा कदापि नहीं आ सकती। अतः कुशल कलाकार प्रबन्ध-सौन्दर्य के निर्वाह के निमित्त चरित-नायक के व्यक्तित्व को आरम्भ में ही प्रस्तुत कर देता है और अनुषांगिक-कथासूत्रों का नियोजन उस शैली में करता है, जिस में सारा प्रबन्ध एकरस होकर चमत्कार का उत्पादक बन सके।"

उक्त कथन से स्पष्ट है कि बुध श्रीधर ने परम्परा-प्राप्त कथा के दो टुकड़े कर प्रथम में उस टुकड़े का सन्निवेश किया है, जो मूलकथा का अंग है। इसी प्रकार से इसी को अंगी भी कहा जा सकता है क्योंकि भवावलि की कथा तो इस मूल कथा का एक अंगमात्र है।

प्रबन्ध-नियोजन एवं निर्वाह

प्रबन्ध के चार प्रधान अवयव होते हैं— 1. इतिवृत्त, 2. वस्तु-व्यापार-वर्णन, 3. संवादतत्त्व, एवं 4. भाव-व्यंजना।

प्रबन्ध-निर्वाह में क्रमबद्धता का रहना तो अनिवार्य है ही, पर कथा के मर्मस्थलों की पहिचान भी आवश्यक है। जो कवि मर्मस्थलों की परख रखता है, उसे ही प्रबन्ध के सृजन में सफलता प्राप्त होती है। बुध श्रीधर ने प्रस्तुत चरित-काव्य के प्रबन्ध में चार ऐसे मर्मस्थलों का नियोजन किया है, जिनके कारण इसके प्रबन्ध-गठन में उसे अपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। हम यहाँ उनके उक्त मर्मस्थलों का उद्‌घाटन प्रस्तुत प्रसंग में आवश्यक समझते हैं।

कुछ मार्मिक स्थल

(1) प्रस्तुत चरित-काव्य का प्रथम मर्मस्थल वह है, जब कुमार पार्श्व युवावस्था को प्राप्त हो जाते हैं। तब वे शौर्य, वीर्य आदि गुणों के साथ ज्ञान-विज्ञान की विविध कलाओं एवं विविध नीतियों में पारंगत हो जाते हैं। उनका क्षत्रियोचित वीर-तेज सर्वत्र अपनी आभा से दिशाओं को प्रोद्‌भाषित कर देता है। इसी काल में उनके मामा रविकीर्ति का दूत महाराज हयसेन की राजसभा में आता है और निवेदन करता है कि रविकीर्ति के पिता शक्रवर्मा के दीक्षित हो जाने के उपरान्त रविकीर्ति को कमजोर पाकर उनके प्रतिवेषी यवनराज ने उनकी कन्या राजकुमारी प्रभावती का हाथ माँगा है और साथ ही यह भी कहा है कि यदि प्रभावती उसे समर्पित न की जायेगी तो वह समस्त राज्य को धूलिसात् कर देगा।[2] रविकीर्ति के दूत द्वारा यह सन्देश सुनकर महाराज हयसेन अत्यन्त क्रुद्ध हो उठते हैं और स्वयं ही युद्ध में जाने के लिए अपनी सेना को तैयार होने का आदेश देते हैं। चारों ओर रणध्वनि सुनाई पड़ने लगती है। वीरों की हुंकारें मूर्तिमान् रौद्ररस के रूप में उपस्थित होने लगती हैं[3]।

---

1. प्रधानवस्तु सम्बन्धा तिरोधान विधायिना। कार्यान्तरान्तरायेण विच्छिन्न विरसा कथा।
   तत्रैव तस्य निष्पत्तेर्निनिबन्धरसोज्ज्वलाम्। प्रबन्धस्यानुवध्नाति नवां कामपि वक्रताम्।। —(वक्रोक्ति जीवित 4/20-21)
2. पासणाह. 3/1-8
3. पासणाह. 3/11-12

जब कुमार पार्श्व को इस सैन्य-सज्जा और रण-प्रयाण की सूचना मिलती है, तब वे स्वयं पिता के समक्ष उपस्थित होते हैं और अपनी शक्ति एवं रणक्षमता का परिचय देते हुए अपने पिता से अनुरोध करते हैं कि—*"मैं अकेला ही युद्ध में जा सकता हूँ। मेरे रहते हुए आपको युद्ध में जाने की क्या आवश्यकता*[1]*?*

कुमार पार्श्व युद्ध में जाकर अपूर्व वीरता का प्रदर्शन करते हैं और पराक्रमी यवनराज को बुरी तरह परास्त कर विजयी बनते हैं[2]।

मामा रविकीर्ति पार्श्व की इस वीरता से प्रसन्न हो जाता है और अपनी पुत्री प्रभावती के साथ विवाह करने के लिये कुमार पार्श्व से आग्रह करता है[3]।

उक्त सन्दर्भांश द्वारा नायक के अन्तर्द्वन्द्व का सुन्दर उद्घाटन हुआ है। इसे कवि ने दो स्थलों में निर्दिष्ट किया है।

प्रथमांश वह है, जब पिता युद्ध के लिए प्रस्थान करने की तैयारी करते हैं। लोक-मर्यादा-रक्षक पुत्र (पार्श्व) इसे अपनी वीरता के लिये चुनौती समझता है। अतः वह पिता को रोक कर युद्ध-क्षेत्र में स्वयं के प्रस्थान करने की अनुमति माँगता है। इधर पुत्र-वात्सल्य-विभोर पिता अपने पुत्र को युद्ध में जाने देना नहीं चाहता। बुध श्रीधर ने इसी अन्तर्द्वन्द्व का सुन्दर चित्रण किया है[4]।

दूसरा अन्तर्द्वन्द्व रविकीर्ति द्वारा प्रभावती के साथ पाणिग्रहण करने की प्रार्थना के अवसर का है। अनिन्द्य लावण्यवती चन्द्रवदनी प्रभावती का सौन्दर्य युवक-पार्श्व को अपनी ओर आकृष्ट करना चाहता है, पर जनता-जनार्दन का कल्याण करने के लिये कटिबद्ध पार्श्व के अन्तस् में एक क्षण पर्यन्त अन्तर्द्वन्द्व के पश्चात् ही ज्ञानरश्मि प्रस्फुटित हो जाती है और वे संकेत द्वारा ही अपनी हृदगत् भावनाओं को निवेदित कर देते हैं[5]।

उक्त प्रसंग उपस्थित कर बुध श्रीधर ने वस्तुतः इस मर्मस्पर्शी संदर्भाश का नियोजन कर नायक के चरित को उदात्त तो बनाया ही, साथ ही कथावस्तु को रसप्लावित भी किया है।

(2) दूसरा मर्मस्थल वह है जब पार्श्वनाथ अपने मामा रविकीर्ति के साथ तापस के दर्शनार्थ वन में पहुँचते हैं। उस तापस को पंचाग्नि तप करते हुए देख कर तथा काष्ठ में नाग-नागिनी को अपने ज्ञानबल से शीघ्र ही दग्ध होने वाला जानकर वे तापस से कहते हैं कि अज्ञानपूर्वक किया गया तप कर्मक्षय का हेतु नहीं होता। पार्श्व के उक्त वचनों को सुनकर तापस (कमठ) अत्यन्त क्रोधित होकर कहता है कि इस तप को तुम क्यों अज्ञानपूर्वक कह रहे हो ? नाग-नागिनी कहाँ जल रहे हैं ? प्रत्यक्ष रूप से उन्हें दिखलाओ। यह सुन पार्श्व ने कहा कि जो लकड़ी पंचाग्नि में जल रही है, उसी को काट कर देखो, उसमें जलते हुए नाग-नागिनी दिखलाई पड़ जावेंगे। यह नाग पूर्व-जन्म का तुम्हारा रूप भी था[6]। पार्श्व के उक्त वचनानुसार वह अर्द्धदग्ध-काष्ठ तीक्ष्ण-कुठार से काटा जाता है और उसमें से छिन्न-भिन्न रक्त में सने हुए नाग-नागिनी निकल पड़ते हैं[7]। मरणासन्न देखकर करुणावतार पार्श्व द्रवित हो उन्हें नमस्कार-मन्त्र सुनाते हैं, जिसके प्रभाव से वे मर कर धरणेन्द्र एवं पद्मावती के रूप में उत्पन्न होते हैं[8]।

---

1. पासणाह. 3/15
2. पासणाह. 3/17
3. पासणाह. 6/6
4. पासणाह. 3/13-14
5. पासणाह. 6/10/5-15
6. पासणाह. 6/9/3-4
7. पासणाह. 6/10/2
8. पासणाह. 6/10/7-8

प्रस्तुत कथांश भी उक्त प्रबन्ध का मर्मस्थल है। यतः इसने देहली-दीपक-न्याय से कथा के पूर्व एवं उत्तर दोनों भागों को आलोकित किया है।

(3) प्रस्तुत प्रबन्ध-काव्य का तीसरा मर्मस्थल पार्श्व के पूर्वभवों में वर्णित मरुभूति का भव है। कमठ उसका भाई है, जो दुराचारी और अनैतिक है। मरुभूति की पत्नी के साथ वह अवसर पाकर दुराचार करता है[1]। पोदनपुराधीश राजा अरविंद कमठ के इस कुकृत्य से अत्यधिक रुष्ट हो जाता है और उसे राज्य से निष्कासित कर देता है[2]। मरुभूति का करुण हृदय भ्रातृ-वात्सल्य से भर जाता है और अपने भाई को क्षमा कर देने हेतु राजा से प्रार्थना करता है। किन्तु न्याय-परायण नृपति अरविन्द आततायी को दंड देना राजधर्म के अनुकूल समझता है। फलतः उसे कमठ को राज्य-निर्वासन का दंड देना पड़ता है।

निर्वासित होने पर कमठ के मन में भयंकर प्रतिशोधाग्नि उत्पन्न होती है। वह अपने भाई मरुभूति को ही इस अपमान का प्रधान कारण समझता है और तप द्वारा शक्ति का अर्जन कर उससे बदला चुकाना चाहता है और इधर मानवता की प्रतिमूर्ति मरुभूति को कमठ के निर्वासन से घोर पश्चाताप होता है। वह अपने भाई को सभी तरह से सुखी और सानन्द देखना चाहता है। अतएव राजा अरविन्द के द्वारा निषेध किये जाने पर भी वह कमठ को वन से वापिस लौटाने के लिये चल देता है[3]। वह कमठ की तलाश में वन-वन की खाक छानता-फिरता है और अन्त में सिन्धु नदी के किनारे उसे एक पाषाण-शिला के ऊपर तप करते देख, वह उसके पास पहुँच जाता है। अपनी निर्दोषिता बतलाने के लिये और बीती हुई बातें भूल कर घर लौट चलने के लिये वह प्रार्थना करता है। कमठ क्रोधाभिभूत हो मरुभूति के इस निश्छल-व्यवहार में भी दुष्टता की गन्ध पाता है और सात्विक प्रमाण के लिये झुके हुए उस बेचारे मरुभूति पर पाषाण-शिला गिरा कर वह दुष्ट उसका काम तमाम कर डालता है[4]।

कथा का उक्त स्थल समस्त कथा को अनुप्राणित करता है। कमठ के बैर का बीज वपन यहीं से होता है। आश्चर्य यह है कि यह एकांगी बैर जन्म-जन्मान्तरों तक चलता चला जाता है। बुध श्रीधर ने यद्यपि यह सन्दर्भांश परम्परा से ही ग्रहण किया है, पर अपनी कल्पना का पुट भी जहाँ-तहाँ जड़ दिया है, जिससे कथावस्तु में रसमयता उत्पन्न हो गई है। चरित-काव्य के लिये जिस प्रकार मर्मस्पर्शी कथांश की आवश्यकता थी, उसे कवि ने उपमा और उत्प्रेक्षाओं के वातावरण में उपस्थित कर दिया है।

(4) कथा का चौथा मर्मस्थल वह है, जहाँ राजकुमार पार्श्व तीर्थंकर पार्श्वनाथ बनने के लिये प्रयत्नशील होते हैं। यह सत्य है कि कारण के बिना कार्य की उत्पत्ति नहीं होती। सबल कारण मिलते ही कार्य उत्पन्न हो जाता है। जिस प्रकार हवा का एक झोंका भस्मावृत्त अग्नि को निरावरण कर उद्दीप्त कर देता है, उसी प्रकार कोई भी सबल निमित्त किसी भी संवेगी को सहज में ही विरक्त बना देता है।

जलते हुए नाग-नागिनी जन-कल्याण के लिये तत्पर पार्श्वनाथ को एक नया विरक्ति का सन्देश सुनाते हैं। उन्हें संसार का मोहक सौन्दर्य फीका-फीका दिखलाई पड़ने लगता है, फलतः वे दीक्षित होकर तपश्चर्या में संलग्न हो जाते हैं[5]।

काव्य का अन्तिम लक्ष्य फल-प्राप्ति है। बुध श्रीधर ने अपने उदात्त चरित-नायक पार्श्वनाथ को फल की ओर

---

1. पासणाह. 11/8-9
2. पासणाह. 11/11
3. पासणाह 11/12
4. पासणाह. 11/13
5. पासणाह. 6/10-12

अग्रसर कर प्रबन्ध-निर्वाह में मर्मस्थल कर संचार किया है। यों तो उनके समस्त भवान्तरों की अवान्तर-कथाएँ ही मर्मस्थल है, जो मूल कथानक में रस-संचरण की क्षमता उत्पन्न करती हैं। अतः यह मानना तर्कसंगत है कि महाकवि ने प्रस्तुत चरित-काव्य में मर्मस्थलों की योजना स्पष्ट रूप में की है।

वस्तु-व्यापार वर्णन

यद्यपि वस्तु-व्यापार-वर्णनों में कवि पौराणिकता की सीमा में ही आबद्ध है, तो भी अवसर आने पर नगर, वन, उषा, सन्ध्या, युद्ध, राज्य, सेना, पशु-पक्षी आदि वर्णनों में भी वह पीछे नहीं रहता। इन वर्णनों में कुछ ऐसे वर्णन भी है, जो घटनाओं में चमत्कार उत्पन्न करते हैं और कुछ ऐसे हैं जो परिस्थितियों का निर्माण कर ही समाप्त हो जाते हैं। बुध श्रीधर काशी देश की वाणारसी नगरी का स्वाभाविक चित्रण करते हुए वहाँ के निवासियों एवं समृद्धि का ऐसा वर्णन करता है, जिससे प्रबन्धांश प्रबन्ध की अगली कड़ी को पूर्णतया जोड़ने में समर्थ होता है।

परिस्थिति-निर्माण के लिये जिन वस्तुओं की योजना कवि ने की है, उनमें भगवान पार्श्वनाथ का जन्माभिषेक विशेष महत्वपूर्ण है। चतुर्जाति के देव एकत्र होकर उन्हें सुमेरु पर्वत पर ले जाते हैं तथा अत्यन्त उत्साहपूर्वक बड़े ही समारोह के साथ उनका जन्माभिषेक सम्पन्न करते हैं[1]। यह जन्माभिषेक निम्न परिस्थितियों का निर्माण करता है—

(1) तीर्थंकरत्व के पौराणिक अतिशयों और महिमाओं के प्रदर्शन द्वारा धीरोदात्त नायक के विराट और भव्य रूप का प्रस्तुतिकरण। पुराणकार इन पौराणिक सन्दर्भों को केवल महान व्यक्तियों के ईश्वरत्व या महत्त्व के प्रतिष्ठापन हेतु आयोजित करता हैं, पर काव्य-स्रष्टा, इन महत्वों द्वारा काव्योत्कर्ष के लिए धरातल का निर्माण करता है। जिस प्रकार कुशल कृषक भूमि को उर्वर बनाने के लिये खेत को गहराई पूर्वक जोतता है, उसी प्रकार काव्य-कला का मर्मज्ञ कवि पौराणिक अतिशयों को संचित कर काव्य के विराट फलक पर नवीन चित्रांकन का कार्य सम्पन्न करता है। अतएव स्वप्न-दर्शन, स्वप्न-फल, तीर्थकर-जन्म और इसी प्रकार के अन्य पौराणिक-अतिशय काव्य की ऐसी पृष्ठभूमि का निर्माण करते हैं, जिससे नायक का चरित्र उदात्त बनता है और रसोत्कर्ष भी वृद्धिंगत होता है। बुध-श्रीधर ने अपने वस्तु-व्यापारों द्वारा प्रस्तुत काव्य में अन्तर्द्वन्द्व, भावनाओं के घात-प्रतिघात एवं संवेदनाओं के गम्भीरतम् संचार को उत्पन्न किया है। कवि का सूक्ष्म पर्यवेक्षण वस्तुओं के चित्रण में सदा सतर्क रहा है। अतः संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है कि 'पासणाहचरिउ' के सीमित वस्तु-व्यापार वर्णन भी काव्य को प्रबन्ध-पटुता से परिपूर्ण बनाते हैं।

संवाद-तत्त्व

काव्य-सौष्ठव के लिए संवाद-तत्त्व नितान्त आवश्यक हैं। जिस प्रकार व्यावहारिक जीवन में मनुष्य की बातचीत उसके चरित्र की मापदण्ड बनती है, उसी प्रकार पात्रों के कथनोपकथन, उनके चरित्र एवं क्रिया-कलापों को उद्भाषित करते हैं। मनुष्य की बाह्य-आकृति एवं उसकी रूप-सज्जा केवल इतना ही बतला सकती है कि अमुक व्यक्ति सम्पन्न है अथवा दरिद्र, किन्तु मनोभावों की गहरी छानबीन संवाद या वार्तालापों के द्वारा ही संभव है। कर्मठता, अकर्मण्यता, उदारता, त्याग, साधुता, दुष्टता, दया, प्रेम एवं ममता आदि वृत्तियों एवं भावनाओं की यथार्थ जानकारी संवादों से ही सम्भव है।

बुध श्रीधर ने प्रस्तुत चरित-काव्य में अनेक वर्ग और जातियों के पात्रों का समावेश कर उनके वार्तालापों के द्वारा जातिगत विशेषताओं एवं उनके विभिन्न मनोवेगों का सुन्दर विवेचन किया है। उन संवादों को निम्न श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं :— (1) शृंखलाबद्ध संवाद, एवं (2) उन्मुक्तक संवाद।

शृंखलाबद्ध-संवाद वे हैं, जो प्रस्तुत चरित-काव्य में कुछ समय तक धाराप्रवाह रूप में चलते रहते हैं। यद्यपि

---

1. *पासणाह. 2/7*

इस चरित-काव्य में उक्त श्रेणी के संवाद नगण्य ही हैं। राजसभाओं के बीच होने वाले संवाद उक्त विधा के अंतर्गत आते हैं। बुध श्रीधर ने सभाओं के बीच होने वाले वार्त्तालापों में भी क्षिप्रगति का ही प्रदर्शन किया है। इसका मूल कारण यह है कि पासणांहचरिउ को चरित-काव्य का रूप देने के कारण वर्णन और संवेगों को ही महत्व प्रदान किया गया है। संवादों को लम्बायमान नहीं किया गया किन्तु इतना होने पर भी राजसभाओं के बीच सम्पन्न होने वाले नगण्य संवादों में भी पर्याप्त मार्मिकता है।

प्रस्तुत काव्य के संवादों में सिद्धान्त या आत्मतत्त्वों की सघनता पुराण के समान नहीं है, क्योंकि पुराण के संवाद बहुत ही विस्तृत होते हैं और वे संवाद से भाषण का स्थान ग्रहण कर लेते हैं, पर काव्य के संवाद उस करेंच (कोंच) की फली के समान हैं, जिसका हलका सा स्पर्श ही घंटों तक तीक्ष्ण कंडू उत्पन्न करने की क्षमता रखता है। महाकवि ने अपने इन क्षिप्रगामी संवादों को इसी प्रकार का प्रभावोत्पादक बनाया है।

उन्मुक्तक संवाद के अन्तर्गत उन संवादों को लिया जा सकता है, जिनमें पात्र प्रश्नोत्तर के रूप में अपने मानसिक वेगों को प्रस्तुत कर देते हैं। कभी-कभी इस प्रकार के संवाद समस्या के समाधान के साथ-साथ किसी सिद्धान्त-विशेष का भी प्रतिपादन प्रस्तुत करते हैं। उदाहरणार्थ हम यहाँ "पासणाहचरिउ" के कुछ प्रमुख संवादों को प्रस्तुत करते हैं—

(1) काशी नरेश हयसेन और रविकीर्ति के दूत का संवाद (3/2-7)
(2) पार्श्वनाथ का अपने पिता के साथ युद्ध-विषयक संवाद (3/13-15)
(3) पार्श्वनाथ और तापस का संवाद (6/9) एवं,
(4) मरुभूति और राजा अरविन्द का संवाद (11/12)

काशी नरेश हयसेन की राजसभा में राजा रविकीर्ति का दूत आता है। वह अपने स्वामी की अन्तर्व्यथा को महाराज हयसेन के सम्मुख उपस्थित कर देता है। महाकवि ने राजदूत के सन्देश को इतने आकर्षक और मनोहर ढंग से प्रस्तुत किया है कि उससे आजकल के राजदूत का आभास होने लगता है। उसके प्रत्येक कथन में तर्क के साथ भावनाओं को उद्वेलित करने की पूर्ण क्षमता है।

वह अपने कथन को हृदयस्पर्शी बनाने के लिये सर्वप्रथम रविकीर्ति के पिता शक्रवर्मा की संसार-विरक्ति और दीक्षा-ग्रहण कर सुख-संवाद उपस्थित करता है[1]। महाराज हयसेन अपने श्वसुर के आत्मकल्याण की बात अवगत कर हृदय में आनन्दित होते हैं।

रविकीर्ति का दूत यहीं पर विराम नहीं ले लेता, वह महाराजाधिराज के उत्तराधिकारी रविकीर्ति की अल्पशक्ति एवं दुर्दमनीय यवनराज की अनीति की उद्घोषणा कर हयसेन में क्रोध का संचार भी करता है[2]। यतः मनोविज्ञान की दृष्टि से वीरता की भावना जागृत करने के लिये क्रोध का आवेग आना अत्यावश्यक है। महाकवि के इस सन्दर्भ की तुलना हम महाकवि कालिदास के अभिज्ञान-शाकुन्तल[3] में निरूपित उस स्थल से कर सकते हैं, जिसमें शक्र का सारथी मातलि शकुन्तला के विछोह में डूबे हुए शोकमग्न दुष्यन्त में वीरत्व के संचार के लिये उसके परम मित्र विदूषक की छिपे रूप में प्रताड़ना करता है। विदूषक की चीत्कार दुष्यन्त को क्रोधाभिभूत कर देता है, जिससे दुष्यन्त में वीरत्व का संचार हो जाता है और मातलि इन्द्र की सहायता के लिये दुष्यन्त को स्वर्ग में ले जाता है।

रविकीर्ति का दूत भी यवनराज की अनीति की ऐसी अतिरंजना के साथ वर्णन करता है, जिससे हयसेन रणक्षेत्र में ससैन्य जाने के लिए तैयार हो जाते हैं[4]। दूत के आमर्षोत्पादक कथन का उत्तर भी हयसेन बड़े ही सन्तुलित

1. पासणाह. 3/2
2. पासणाह. 3/5-7
3. अभिज्ञान-शाकुन्तलम, छठवाँ अंक।
4. पासणाह. 3/7-9

रूप में देते हैं। प्रस्तुत संवाद से हमारे समक्ष तीन तत्व उपस्थित होते हैं—

(1) बुध श्रीधर संवादों के माध्यम से मनोवेगों को संचारित करते हैं।

(2) आत्मीय और कौटुम्बिक मान-अपमान प्रत्येक सहृदय व्यक्ति के लिये निजी मान-अपमान बन जाता है। महाकवि साधारणीकरण की कला में कितना पटु है, यह सहज ही जाना जा सकता है। हयसेन जब यह अवगत करते हैं कि उन जैसे शक्तिशाली सम्राट् के रहते हुए उनके साले रविकीर्ति का यवनराज अपमान करे, यह कैसे सम्भव है ? फलतः वे रविकीर्ति के अपमान को अपना ही अपमान समझते हैं।

(3) बुध श्रीधर को अपने नायक के चरित्र का सदा ध्यान रहता हैं और वातावरण एवं परिस्थितियों का ऐसा निर्माण करता है, जिससे नायक का चरित्र उज्जवल हो उठता है। प्रस्तुत संवाद यद्यपि रविकीर्ति के दूत और हयसेन के बीच चल रहा है, पर इसका प्रतिफल तत्काल ही नायक के चरित्र पर पड़ता है और नायक को वीरता दिखलाने का अवसर उपस्थित हो जाता है।

जब कुशस्थल की रक्षा के हेतु राजा हयसेन ससैन्य प्रस्थान की तैयारी करने लगते हैं, तो रणभेरी की आवाज सुन कर पार्श्व सभास्थल में उपस्थित हो पिता से विनम्र अनुरोध करते हैं कि—"मुझ जैसे समर्थ पुत्र के रहते हुए आपको रण-हेतु प्रयाण करने का कष्ट करना उचित नहीं[1]।" पुत्र के इन वचनों को सुनकर पिता वात्सल्यवश नाना तरह के तर्क उपस्थित कर पुत्र को युद्ध में जाने से रोकते हैं। पिता-पुत्र में सम्पन्न हुआ यह संवाद मार्मिक होने के साथ-साथ लोक-मर्यादा-पूर्ण भी है। कुमार पार्श्व पिता की बातों का उत्तर बड़ी ही विनम्रता और शालीनता के साथ प्रस्तुत करते हैं। पिता भी हृदय के अथोर प्यार को निकालकर पुत्र के रण में सम्मिलित न होने के लिए आग्रह करते हैं किन्तु अन्त में युवक पार्श्व का आग्रह पिता को स्वीकार करना पड़ता है[2]।

प्रतीत होता है कि महाकवि ने उक्त संवाद को संस्कृत के महाकाव्यों से ग्रहण किया है। बाल्मीकि-रामायण एवं महाभारत में इस प्रकार के कई संवाद आये हैं। "समराइच्चकहा" और "कुवलयमालाकथा" में भी इस प्रकार के संवादों की कमी नहीं है। भारतीय काव्य-परम्परा में शत्रु के आक्रमण करने पर या मित्र-राज्य की सहायता के लिए प्रस्थान करने पर पुत्र अपने पिता को रोककर रण क्षेत्र में जाने के लिये स्वयं ही तैयार हो जाता है। भारतीय प्रबन्ध-काव्य-परम्परा में पिता-पुत्र के वात्सल्य को उभारने के लिए काव्य-नायक, जो प्रायः पुत्र ही रहता है, के चरित्र को उदात्त और आकर्षक रूप में चित्रित करने के लिए इस प्रकार के संवाद उपयोगी होते हैं। फलतः "पासणाहचरिउ" में कवि ने परम्परा से संवाद को ग्रहण करके भी इससे एक नवीन उद्देश्य की सिद्धि की है।

पार्श्वनाथ तेईसवें तीर्थंकर हैं। तीर्थंकरों में शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ एवं अरहनाथ, जो कि तीर्थंकर होने के साथ-साथ चक्रवर्ती भी हैं, जिन्होंने शान्ति और सुव्यवस्था के हेतु आतताइयों का दुर्दमन कर अहिंसा-संस्कृति का प्रसार किया है, बुध श्रीधर के मस्तिष्क में तीर्थंकर-चक्रवर्ती का प्रत्यय था। फलतः वे अपने नायक को भी तीर्थंकर चक्रवर्ती के रूप में देखना चाहते थे। अतः हमारा अनुमान है कि उन्होंने कुमार पार्श्व के युद्ध में जाने तथा उसमें सक्रिय रूप में भाग लेने की कल्पना कर नायक को एक नया ही स्वरूप प्रदान किया है। जहाँ तक अन्य पार्श्वनाथ-चरितों के अध्ययन का प्रश्न हैं, वहाँ तक हम यह कह सकते हैं कि कवि की यह कल्पना लगभग मौलिक हैं। यतः प्रस्तुत महाकाव्य का कवि पौराणिक महाकाव्य के लिखते समय भी अपने नायक को आरम्भ से ही देवत्व के वातावरण में खचित करना नहीं चाहता। आदर्श मानवीय गुणों का आविर्भाव कर ऐसे चरित्र का रसायन तैयार करता है, जिससे मानवता अजर-अमर हो जाती है। बुध श्रीधर ने भी प्रस्तुत पौराणिक चरित-काव्य के नायक पार्श्व को आरम्भ से

---

1. *पासणाह. 3/15*
2. पासणाह. 3/13-14

ही तीर्थंकर या देवत्व की चहारदीवारी से नहीं घेरा है। अतः इस संवाद में जहाँ पिता-पुत्र के वात्सल्य की संयमित धारा प्रवाहित हो रही है, वहाँ नायक के चरित का वीर्य और पौरुष भी झाँकता हुआ दिखाई पड़ रहा है। अतएव यह संवाद मर्मस्पर्शी एवं रसोत्कर्षक है।

तीसरा संवाद तापस और कुमार पार्श्व के बीच सम्पन्न हुआ है। इस संवाद में बताया गया है कि कुशस्थल को शत्रुओं से खाली कराकर और रविकीर्ति के शत्रु यवनराज को परास्त कर जब पार्श्व वहाँ कुछ दिन तक रह जाते हैं, तो वे एक दिन अपने मामा रविकीर्ति के साथ भ्रमण करते हुए भीम-वन में पहुँचते हैं। वहाँ वे देखते हैं कि एक तापस पंचाग्नि-तप कर रहा है, तो उन्हें उसकी अज्ञानता पर दया उत्पन्न हो जाती है और वे द्रवीभूत हो उसे समझाने लगते हैं[1]— "हे तपस्विन्, तुम्हारा यह अज्ञानतापूर्ण तप संसारवर्धक है.... आदि-आदि।"

पार्श्व के इस कथन को सुनकर तपस्वी क्रोधाभिभूत हो जाता है और कहने लगता है—"अरे, तुम मेरे इस तप को किस प्रकार अज्ञानतापूर्ण कह रहे हो ? मैं कितना घोर कष्ट सहन कर बैकुण्ठ-प्राप्ति के लिए यह साधना कर रहा हूँ।" तपस्वी के इन वचनों को सुनकर, पार्श्वनाथ ने पुनः कहा-"महानुभाव, आप जो तपश्चरण कर रहे हैं, वह निश्चय ही अज्ञानतापूर्वक किया जा रहा है। अग्निकुण्ड में जिस काष्ठ को जलाया जा रहा है, उस काष्ठ के भीतर एक नाग और नागिनी वर्तमान है। ये दोनों प्राणी अब तुम्हारी इस तपाग्नि में भस्म होना ही चाहते हैं। यदि मेरी बातों का विश्वास न हो, तो इस काष्ठ को बीच से काटकर देखो, नाग और नागिनी अर्धदग्ध प्राप्त हो जावेंगे।" पार्श्वनाथ के इन उत्तेजनापूर्ण वचनों को सुनकर काष्ठ को बीच से छिन्न-भिन्न किया गया, तो उसमें से सचमुच ही छिन्न-भिन्न नाग-नागिनी निकल आये[2]। इस संवाद से निम्नलिखित तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है—

जैन-सिद्धान्त की मान्यता है कि तीर्थंकर छद्मस्थावस्था में किसी को उपदेश नहीं देते। जब उन्हें पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है, तभी उनका धर्मोपदेश आरम्भ होता है। पार्श्वनाथ ने छद्मस्थावस्था में ही तापस को सम्बोधित किया है। यद्यपि महाकवि ने इस सन्दर्भांश को परम्परा से ही ग्रहण किया है, क्योंकि संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश के कवियों ने इस घटना को इसी रूप में सर्वत्र निबद्ध किया है। हाँ, यह सत्य है कि कथानक को जटिल करने की शैली सभी की भिन्न-भिन्न है। पता नहीं, आगमिक-परम्परा का यत्किंचित् उल्लंघन यहाँ किस प्रकार हुआ है ? अन्तरतल में प्रवेश करने पर हमें ऐसा प्रतीत होता है कि मित्र-सम्मत उपदेश सम्भवतः छद्मस्थावस्था में भी दिया जा सकता है। अतः हम इसे उपदेश न मानकर मात्र एक हितैषी-मित्र की सम्मति ही मानें, तो अधिक उचित होगा।

चौथा संवाद मरुभूति एवं राजा अरविन्द के बीच सम्पन्न हुआ है। कमठ जब मरुभूति की पत्नी के साथ दुराचार करता है, तो न्याय-परायण राजा अरविन्द वास्तविक परिस्थिति की जानकारी मरुभूति से प्राप्त करता है। इस प्रसंग में उन दोनों के बीच हुआ वार्त्तालाप बहुत ही मर्यादित है। मरुभूति के कथनोपकथन में भ्रातृ-वात्सल्य अधिक टपकता है। यद्यपि दुराचारी कमठ के कारण उसके कुल में कलंक लग रहा है, तो भी वह स्नेहवश अपने भाई की रक्षा करना चाहता है। इस प्रसंग में मरुभूति का वार्त्तालाप स्नेह से आप्लावित है[3]। अतः इस संवाद द्वारा महाकवि ने निम्न तथ्यों की अभिव्यंजना की है—

(1) निश्छल और निष्कपट मरुभूति के व्यवहार द्वारा सभी जन्मों में नायक के चरित का उदात्तीकरण।

---

1. पासणाह 6/9
2. पासणाह. 6/9
3. पासणाह 11/11-12

पार्श्वनाथ, जबकि मरुभूति के रूप में जन्म धारण किये हुए थे, अपने विरोधी कमठ को निर्दोष सिद्ध करते हैं। अपने निश्छल-स्वभाव के कारण कमठ के सहस्रों दोष भी उन्हें गुण ही प्रतीत होते हैं। सम्भवतः भाई का ऐसा अनुराग बहुत ही कम स्थलों पर देखने को मिलेगा। अपनी पत्नी के साथ दूसरे के द्वारा किये गये दुराचार को तिर्यंच भी सहन नहीं करते, फिर मनुष्यों की तो क्या बात ही क्या ? मरुभूति जैसा महान् व्यक्ति कमठ के द्वारा अपनी पत्नी के साथ दुराचार कर लिये जाने पर भी अपना भाई होने के कारण उसे क्षमा कर देता है। अतः इस संवाद द्वारा कवि ने स्वभावतः ही नायक के आदर्श चरित को चित्रित किया है[1]।

(2) बुध श्रीधर समकालीन राजनीति से भी सुपरिचित हैं। राजा अरविन्द प्रजापालक एवं न्यायनीति-परायण है[2]। वह अपने राज्य में किसी भी प्रकार की अनीति को प्रश्रय नहीं देना चाहता। जब वह देखता है कि उसी के अमात्य मरुभूति की पत्नी के साथ उसका बड़ा भाई कमठ दुराचार कर लेता है, तो वह मर्यादा की रक्षा के हेतु सर्वप्रथम मरुभूति से ही यथार्थ जानकारी प्राप्त करता है। इससे ध्वनित होता है कि समाज के उत्पात एवं उपद्रवों का परिज्ञान राजा को अपने परम विश्वस्त एवं निकटवर्ती व्यक्तियों से ही प्राप्त होता था[3]।

(3) प्रबन्ध-काव्य के लिये यह आवश्यक है कि विभिन्न परिस्थितियों और वातावरणों में नायक का व्यक्तिगत परीक्षण किया जाय। बुध श्रीधर ने उक्त संवाद द्वारा नायक के चरित्र एवं कथावस्तु के मूलबीज को इस प्रकार स्थापित किया है, जिससे कि कथा बटवृक्ष की तरह उत्तरोत्तर वृद्धिंगत होती जाती है। अतः प्रस्तुत संवाद में पर्याप्त स्वाभाविकता दृष्टिगोचर होती है।

(4) प्रबन्ध-काव्य का चौथा तत्व भावाभिव्यंजना है। महाकवि ने प्रस्तुत काव्य में उक्त तत्व का सुन्दर समावेश किया है। पुराण-निरूपित कथानक होने पर भी उसके वर्णनों को इतना सरस बनाया गया है कि जिससे उसे पढ़ते ही हृदय की रागात्मक वृत्तियों में सिहरन उत्पन्न हो जाती है। मननशील प्राणों के आन्तरिक सत्य का आभास, जो कि जीवन के स्थूल-सत्य से भिन्न है, प्रकट हो जाता है और जीवन की अन्तश्चेतना तथा सौन्दर्य-भावना उद्‌बुद्ध होकर चिरन्तन सत्य की ओर अग्रसर करती है।

बुध श्रीधर घटना-वर्णन, दृश्य-योजना, परिस्थिति-निर्माण और चरित्र-चित्रण में इतने अधिक नहीं उलझे है, जिनसे उनके भाव अस्पष्ट ही रह जावें। भाव, रस और अनुभूतियों को सर्वत्र ही अभिव्यंजित करने की उन्होंने सफल चेष्टा की है। बैर की परम्परा, प्राणी के अनेक जन्म-जन्मान्तरों तक किस प्रकार चलती है, और कौन-सी ऐसी भावनाएँ हैं, जो इस बैर को अचार और मुरब्बा बना कर कर्मबन्ध का सबल हेतु बना देती हैं ? तथ्य यह है कि जिस प्रकार अचार का मुरब्बा पुराना होने पर स्वादिष्ट मालूम पड़ता है, उसी प्रकार बैर भी पुरातन होने के बाद अनन्तानुबन्धी शत्रुता के रूप में परिणत हो जाता है और अनेक जन्म-जन्मान्तरों तक इसका फल भोगना पड़ता है। बुध श्रीधर ने पार्श्वनाथ के नौ भवों द्वारा एक ओर अहिंसा और जीवन-साधना का उत्कृष्ट उदाहरण उपस्थित किया है, तो दूसरी ओर हिंसा और कषायों के प्रचण्ड ताण्डव का। पार्श्वनाथ का जीव-मरुभूति, अहिंसा-संस्कृति का प्रतीक है, तो कमठ हिंसा-प्रधान संस्कृति का। दूसरे शब्दों में यों कहा जा सकता है कि श्रमण एवं श्रमणेतर संस्कृतियों का संघर्ष ही प्रस्तुत काव्य का उदात्त-तत्व है, और इसी भाव-भूमि को कवि ने पार्श्वनाथ के चरित द्वारा अभिव्यक्त किया है।

पौराणिक महाकाव्यत्व

प्रस्तुत 'पासणाहचरिउ' एक सफल पौराणिक महाकाव्य है। इसमें पौराणिक शलाका-महापुरुष—तीर्थंकर पार्श्व की कथावस्तु वर्णित है। पौराणिक महाकाव्य में अप्राकृतिक और अलौकिक घटनाओं के साथ-साथ धर्मोपदेश,

1. पासणाह. 11/12
2. पासणाह 11/5-6
3. पासणाह. 11/11/7-8

दार्शनिक मान्यताएँ, सिद्धान्त-निरूपण, आचार-विषयक तथ्य एवं स्वप्न-दर्शनादि सन्दर्भों का रहना आवश्यक माना जाता है। यद्यपि पौराणिक या चरित-महाकाव्य का लेखक कथावस्तु में से उन्हीं सूत्रों को ग्रहण करता है, जो काव्य-शैली को रसमय बनाने की क्षमता रखते हों, क्योंकि महाकाव्य के लिये एक अनिवार्य शर्त यह है कि उसकी समस्त घटनाएँ रसमय बिन्दु की ओर अग्रसर होना चाहिए। यदि यह क्षमता कवि या लेखक में नहीं है, तो वह अपने काव्य को उच्च काव्य-कोटि में नहीं रख सकता। बुध श्रीधर ने प्रस्तुत पासणाहचरिउ में ऐसे कथानकों की ही योजना की है, जिनके द्वारा महदुदेश्य की पूर्ति समभव हो सके। इसका कथा-प्रवाह या अलंकृत-वर्णन सुनियोजित और सांगोपांग बन पड़ा है।

पार्श्वनाथ के मरुभूति, अशनिघोष-हाथी, सहस्रार-स्वर्ग का देव, किरणवेग विद्याधर, अच्युतस्वर्गदेव, चक्रायुध, मध्यम ग्रैवेयकदेव, चक्रवर्ती चक्रायुध एवं वैजयन्त देवरूप नौ भवों का जीवन्त लम्बा कथानक रसात्मकता या प्रभावान्विति उत्पन्न करने में पूर्ण समर्थ है। तीर्थंकर पार्श्वनाथ के एक जन्म की ही नहीं, नौ जन्मों की कथा उस विराट जीवन का चित्र प्रस्तुत करती है, जिस जीवन में अनेक भवों के अर्जित संस्कार तीर्थकरत्व को उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं। प्रस्तुत काव्य में महत्प्रेरणा से अनुप्राणित होकर मोक्ष-प्राप्ति रूप महदुद्देश्य सिद्ध होता है। यद्यपि रहस्यमय एवं आश्चर्योत्पादक घटनाएँ भी इस ग्रन्थ में वर्णित हैं, पर इन घटनाओं के निरूपण की काव्यात्मक शैली इतनी गरिमामयी और उदात्त है कि जिससे नायक के विराट जीवन का ज्वलन्त चित्र प्रस्तुत हो जाता है। संस्कृत के लक्षण-ग्रन्थों के अनुसार महाकाव्य में निम्न तत्वों का रहना आवश्यक माना गया है—

(1) सर्गबन्धत्व,
(2) समग्र-जीवन-निरूपण, अतएव इतिवृत्त का अष्टसर्ग प्रमाण या इससे अधिक होना,
(3) नगर, पर्वत, चन्द्र, सूर्योदय, उपवन, जलक्रीडा, ऋतु-वर्णन, मधुपान एवं उत्सवों का वर्णन,
(4) उदात्त-गुणों से युक्त नायक की चतुर्वर्ग-प्राप्ति का निरूपण,
(5) कथावस्तु में नाटक के समान सन्धियों का गठन
(6) कथा के आरम्भ में मंगलाचरण, आशीर्वाद आदि का रहना एवं सर्गान्त में आगामी कथावस्तु का सूचन करना,
(7) शृंगार, वीर और शान्त इन तीन रसों में किसी एक रस का अंगी रूप में और शेष सभी रसों का अंगरूप में निरूपण आवश्यक है। यतः कथावस्तु और चरित्र में एक निश्चित एवं क्रमबद्ध विकास तथा जीवन की विविध सुख-दुखमयी परिस्थितियों का संघर्ष-पूर्ण चित्रण रसपरिपाक के बिना संभव नहीं।
(8) सर्गान्त में छन्द-परिवर्तन-कथा का विकास और रसप्रभाव की अबाध-गति के लिये एक सर्ग में एक ही छन्द के प्रयोग का नियम है, पर सर्गान्त में छन्द का परिवर्तन होना आवश्यक है। चमत्कार-वैविध्य या अद्भुतरस की निष्पति के हेतु एक सर्ग में अनेक छन्दों का व्यवहार करना अनिवार्य जैसा है।
(9) महाकाव्य में विविधता और यथार्थता दोनों का ही सन्तुलन रहता है तथा इन दोनों के भीतर से ही विविध भावों का उत्कर्ष दृष्टिगोचर होता है। यही कारण है कि महाकाव्य-प्रणेता प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ नर-नारी के सौन्दर्य का चित्रण, समाज के विविध रीति-रिवाज एवं उसके बीच विकसित होने वाले आचार-व्यवहार का निरूपण भी करता है।
(10) महाकाव्य का नायक उच्चकुलोत्पन्न क्षत्रिय या देवता होता है, उसमें धीरोदात्त गुणों का रहना आवश्यक है। नायक का आदर्श-चरित्र समाज में सद्वृत्तियों का विकास एवं दुष्प्रवृत्तियों का विनाश करने में सक्षम होता है।
(11) महाकाव्य का उद्देश्य भी महत् होता है। धर्म, अर्थ, काम ओर मोक्ष की प्राप्ति के लिये वह प्रयत्नशील रहता है। उसमें संघर्ष, साधना, चरित्र-विकास आदि का रहना भी अनिवार्य होता है। महाकाव्य का निर्माण युग-प्रवर्तनकारी परिस्थितियों के बीच में सम्पन्न किया जाता है।

प्रस्तुत पासणाहचरिउ में चतुर्विंशाति तीर्थंकरों को नमस्कार एवं उसकी स्तुति, तोमरवंशी राजा अनंगपाल तथा अपने आश्रयदाता नट्टल साहू की प्रशस्ति के अनन्तर कथावस्तु का आरम्भ किया गया है। नगर, वन नदी-सरोवर आदि का सुन्दर चित्रण उपलब्ध है। इसमें पद्धड़िया, घत्ता, दुबई, भुजंगप्रयात, त्रोटक, मोत्तियदाम, रड्डा, चन्द्रानन आदि छन्दों के प्रयोग किए गये हैं। इसमें बारह सन्धियाँ तथा 235 कडवक हैं। शान्त रस अंगीरस के रूप में प्रस्तुत हुआ है। गौणरूप में में शृंगार, वीर, भयानक और रौद्ररसों का परिपाक हुआ है। महाकाव्य के महदुद्देश्य-मोक्ष-पुरुषार्थ का चित्रण किया गया है। कथा के नायक पार्श्वनाथ धीरोदात्त हैं, वे त्याग, सहिष्णुता, उदारता, सहानुभूति आदि गुणों के द्वारा विविध आदर्श उपस्थित करते हैं।

प्रबन्धोचित गरिमा और कथावस्तु का गठन एवं महाकाव्योचित वातावरण का निर्माण कवि ने मनोयोगपूर्वक किया है। अतएव इतिवृत्त, वस्तुवर्णन, रसभाव एवं शैली की दृष्टि से एक पौराणिक महाकाव्य सिद्ध होता है। नख-शिख चित्रण द्वारा नारी-सौन्दर्य[1] के उद्घाटन में भी कवि पीछे नहीं रहा। पौराणिक आख्यान के रहते हुए भी युग-जीवन का चित्रण बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। धार्मिक और नैतिक आदर्शों के साथ प्रबन्ध-निर्वाह में पूर्ण पटुता प्रदर्शित की गई है। यद्यपि यह प्रशस्ति-मूलक महाकाव्य हैं, पर उसमें मानव-जीवन के समस्त भाव तरंगित है। पात्रों के चरित्रांकन में भी कवि किसी से पीछे नहीं है। मनोवैज्ञानिक द्वन्द्व, जिनसे महाकाव्य में मानसिक तनाव उत्पन्न होता है, पिता-पुत्र एवं तापस-संवाद में वर्तमान है।

पासणाहचरिउ में रस, अलंकार, गुण आदि सभी काव्योपकरण समाविष्ट हैं। बुध श्रीधर ने प्रस्तुत काव्य में उन घटनाओं और वर्णनों का नियोजन किया है, जिनके द्वारा मन के प्रसुप्त-भावों को जागृत होने में विशेष आयास नहीं करना पड़ता। कवि ने भावनाओं का बिम्ब ग्रहण कराने में अलंकारों का सुन्दर नियोजन किया है। भावों का प्रत्यक्षीकरण करने के हेतु अनेक उपमानों और प्रतीकों का आलम्बन ग्रहण किया है। प्रस्तुत काव्य में प्रयुक्त अलंकार, रस एवं गुणों का संक्षेप में यहाँ विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है—

अलंकार-प्रयोग

यह सत्य है कि यत्नपूर्वक अलंकार-विधान से ही काव्य में सौन्दर्य का समावेश होता है। आचार्य वामन, दण्डी एवं मम्मट प्रभृति अलंकार-शास्त्रियों ने काव्य-रमणीयता के लिये अलंकारों का समावेश आवश्यक माना है। तथ्य यह है कि भावानुभाव-वृद्धि करने में या रसोत्कर्ष को प्रस्तुत करने में अलंकार बहुत ही सहायक होते हैं। अलंकारों द्वारा काव्यगत अर्थ का सौन्दर्य चित्तवृत्तियों को प्रभावित कर उन्हें भाव-गाम्भीर्य तक पहुँचा देता है। रसानुभूति को तीव्रता प्रदान करने की क्षमता अलंकारों में सर्वाधिक होती है। अलंकार भावों को स्पष्ट एवं रमणीय बनाकर रसात्मकता को वृद्धिंगत करते हैं।

आधुनिक काव्य-शास्त्रियों के मत में काव्य की आत्मा मुख्य रूप से भाव, विचार और कल्पना में है। इन्हीं के कारण काव्य में स्थायित्व आता है। अलंकार कविता-कामिनी के स्थायित्व को और भी अधिक सुन्दर बना देते हैं। यही कारण है कि आचार्य वामन ने 'सौन्दर्यमलंकारः' 'काव्यं ग्राह्यमलंकारात्' जैसे अनुशासन-वाक्य अंकित किये हैं। मानव स्वभावतः ही सौन्दर्य-प्रिय प्राणी है। उसकी यह सौन्दर्य-प्रियता जीवन के अथ से इति तक प्रत्येक क्षेत्र में बनी रहती है। सर्वदा सुन्दर वस्तुओं का चयन कर कार्यों को सुन्दरता से सम्पादित करने की वह आकांक्षा रखता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषण करने पर मानव की यह प्रवृत्ति ही अलंकार-विधान का मूल है। अतएव मानव-हृदय एवं अलंकारों का घनिष्ट सम्बन्ध स्वीकार करना पड़ता है।

बुध श्रीधर ने ऐसे ही अलंकारों का प्रयोग किया है, जो रसानुभूति में सहायक होते हैं। पासणाहचरिउ में उन्हीं

---

1. पासणाह. 1/13

स्थलों पर अलंकृत-पद्य आये हैं, जहाँ भावोद्दीपन का अवसर दिखाई पड़ा है। यतः भावनाओं के उद्दीपन का मूल कारण है मन का ओज, जो मन को उद्दीप्त कर देता है तथा मन में आवेग और संवेग उत्पन्न कर पूर्णतया उसे द्रवित कर देता है।

शब्दालंकारों की दृष्टि से अपभ्रंश-भाषा स्वयं ही अपना ऐसा वैशिष्ट्य रखती है, जिससे बिना किसी आयास के ही अनुप्रास का सृजन हो जाता है। परन्तु कुशल कवि वही है, जो अनुप्रास के द्वारा किसी विशेष भावना को किसी विशेष रूप से उत्तेजित कर सके। 'पासणाहचरिउ' में कई स्थलों में अनुप्रास की ऐसी योजना प्रकट हुई है, जिसने भावों को जल में फेंके हुए पत्थर के टुकड़े के समान असंख्यात लहरें उत्पन्न कर भावों को आस्वाद्य बना दिया है। उदाहरणार्थ यहाँ कुछ पंक्तियाँ उद्धतकर काव्य के वैशिष्ट्य को प्रस्तुत किया जाता है—

पेक्खेवि रुहिरारुण तणु भुअंगु गुरुयरपहार दुहपीडियंगु। (6/10/6)
एउ चिंतेवि सरोसें पयणिय दोसें करयले करेवि कुठारउ।
सविस विसहरु कट्ठहो तरु पब्भट्ठहो कमठें दिण्णु पहारउ।। (6/9/13-14)

उक्त पद्य-पंक्तियों में भुअंगु, पीडियंगु में अनुप्रास है तथा अन्त्यनुप्रास तो इस पद्य में सर्वत्र ही विद्यमान है। बुध श्रीधर ने 'रुहिरारुण', द्वारा क्षत-विक्षत नाग-युगल का बहुत की करुणापूर्ण चित्र उपस्थित किया है। इसी प्रकार 'कुठारउ' और 'पहारउ' जैसे अनुप्रास का नियोजन कर उक्त पद्य पंक्तियों में काठ की कठोरता को कुठार द्वारा जिस प्रकर छिन्न-भिन्न किया गया, उसी प्रकार तपस्वी के मान-रूपी काठ का नाग-युगल के प्रत्यक्षीकरण रूप कुठार द्वारा छिन्न-भिन्न एवं रुहिरारुण होना भी संकेतित है। वे हेतु की सूचना तो देते ही हैं, पंचाग्नितप की निस्सारता और इन्द्रिय-निग्रह रूप तप की महत्ता भी प्रकट करते हैं। कवि का यह अनुप्रास-नियोजन शान्त रस के उत्कर्ष में बहुत ही सहायक है। एक ओर मानी-तापस के मान का खण्डन और दूसरी ओर क्षत-विक्षत नाग-दम्पति का अहिंसा-साधना द्वारा उद्धार, ये दोनों ही तथ्य समस्त कडवक को शान्तरस के आस्वाद के योग्य बना देते हैं।

बुध श्रीधर ने संगीत-तत्व को उत्पन्न करने के लिए ऐसे-ऐसे अनुप्रासों की भी योजना की है, जिनमें भावगत चमत्कार न होते हुए भी संगीत एवं लय की दृष्टि से वे पर्याप्त महत्त्व रखते हैं। यथा—

छंदालंकारु-सद्दवियारु णिग्घंटोसहि-सारु।
पर-पुर संचारु रइवित्थारु सयललोयवावारु।। 2/17

उक्त घत्ता में भी अनुप्रास की छटा दर्शनीय है। कवि ने ओसहिसारु, लोयवावारु में रु के अनुप्रास द्वारा जहाँ संगीत की मधुर झंकार उपस्थित की है, वहीं कथा-विधान में उपस्थित आन्तरिक भावधारा भी प्रवाहित की है।

पासणाहचरिउ में श्रुत्यनुप्रास, वृत्यनुप्रास, छेकानुप्रास एवं अन्त्यनुप्रास के साथ-साथ यमकालंकार का प्रयोग भी भावोत्कर्ष के लिये हुआ है। कवि ने रूप, गुण और क्रिया का तीव्र अनुभव कराने के हेतु इस अलंकार का प्रयोग किया है। यहाँ एक उदाहरण देकर ही प्रस्तुत काव्य की मार्मिकता पर प्रकाश डालने की चेष्टा की जायेगी। महाकवि अनंगपाल तोमर के पराक्रम और शासन-पटुता का चित्रण करता हुआ कहता है—

दुज्जण-हिययावणि-दलण-सीरु दुण्णय-णीरय-निरसण-समीरु।
बलभर कंपाविय णायराउ माणियण-मण-संजणिय राउ।।

उक्त पद्य में "दलणसीरु तथा णिरसण-समीरु पद विचारणीय हैं। दलण शब्द का अर्थ दलना अर्थात् पराजित करना और इस पद का सम्बन्ध पर-बल के साथ है। राजा अनंगपाल शत्रु-सैन्य को पराजित करने वाला था।" णयणभिव (1/3/16) पद का सम्बन्ध प्रजाजनों के साथ है, जो निज-प्रजा के शासन का अर्थ प्रकट करता है। इस प्रकार दलणसीरु एवं निरसणसमीरु दोनों पद समान होते हुए भी भिन्नार्थक हैं। इसी भांति राउ पद राग अर्थ का

द्योतक है और दूसरा 'राउ' शब्द राजा का वाचक है। अतएव 'राउ' पद की आवृत्ति भी भिन्नार्थक होने के कारण यहाँ यमकालंकार है। उक्त दोनों ही उदाहरण भागावृत्ति के हैं।

अर्थालंकारों में इस ग्रन्थ में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, स्वभावोक्ति, अर्थान्तरन्यास, काव्यलिंग, समासोक्ति और अतिशयोक्ति का प्रयोग विशेष रूप से हुआ है। प्रायः सभी अलंकार भावों को सजाने का कार्य सम्पन्न करते हैं। यहाँ क्रमशः उनके उदाहरण प्रस्तुत कर उक्त कथन की पुष्टि की जा रही है। कवि ने ढिल्ली (दिल्ली) के तोमरवंशी राजा त्रिभुवनपति (अनंगपाल) के पराक्रम, दया, दाक्षिण्यादि गुणों का वर्णन करते हुए कहा है—

णयणमिव स-तारउ सरु व स-हारउ पउरमाणु कामिणियणुव्व।
संगरु व स-णायउ णहु वस रायउ णिंहय कंसु णारायणुव्व।। 1/3/16-17

बुध श्रीधर ने अपने आश्रयदाता की माता मेमडिय के रूप-सौन्दर्य का चित्रण अनेक उपनामों के द्वारा प्रस्तुत किया है। कवि कहता है कि :—

मेमडिय णाम तहो जाय भज्ज सीलाहरणालंकिय सलज्ज।
बंधवजण-मण-संजणिय सोक्ख हंसीव उहय सुविसुद्ध पक्ख।। 1/5/7-8

अर्थात् वह मेमडिय मूर्तिमान् प्रणय के समान स्नेहशीला थी तथा शील रूपी आभूषणों से अलंकृत, सलज्ज तथा शीलगृह के समान शील का आगार थी। और परिवार की सेवा या परिवार का संवर्द्धन शुद्ध शील की तरह करती थी। वह उस खान के समान थी, जो श्रेष्ठ रत्नों को उत्पन्न करने वाली है, श्रेष्ठ सन्तति को उत्पन्न करती थी। दोनों पक्षों से सुविशुद्ध उसका गमन हंसिनी के समान और वाणी कोयल के समान मधुर थी।

उत्प्रेक्षालंकार की दृष्टि से अपभ्रंश-भाषा ही अत्यन्त समृद्ध हैं। 'णं' जो कि संस्कृत शब्द ननु का प्रतिनिधि है, उत्प्रेक्षा को उत्पन्न करने में सक्षम है। बुध श्रीधर ने अपने इस काव्य-ग्रन्थ में बड़ी सुन्दर-सुन्दर उत्प्रेक्षाएँ प्रस्तुत की हैं। उदाहरणार्थ पार्श्व की शिशु अवस्था की अपूर्वता सम्बन्धी कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्धत की जाती हैं—

....णं बालदिवायरु सुरदिसाए णं धणणिहि कलसुल्लउ रसाए।
णं जगगुरुत्तु केवल-सिरीए णं सील सउच्चत्तणु-हिरीए।
णं कामएउ पच्चक्खु जाउ णं सिसुमिसेण सुरवइ जि आउ।
णं सुम्मइ जो जगि धम्मणामु सो एहु अवयरिउ दिण्ण कामु।। 2/1/5-8

रस-परिपाक

मात्र शब्दाडम्बर ही कविता नहीं है, उसमें हृदयस्पर्शी चमत्कार का होना भी अत्यन्त आवश्यक है और यह चमत्कार ही रस है। इसी कारण शब्द और अर्थ काव्य के शरीर हैं और रस प्राण। प्राण पर ही शरीर की सत्ता-कार्यशीलता निर्भर हैं अतएव रसाभाव में कोई भी काव्य निर्जीव और निष्प्राण है।

काव्य के दो पक्ष होते हैं-भावपक्ष और कलापक्ष। कलापक्ष में काव्य के वे उपकरण गृहीत हैं, जिनसे काव्य का रूपक सज्जित किया जाता है। भावपक्ष में काव्य का अंतरंग आता है। किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति विशेष-विशेष अवस्थाओं में जो मानसिक स्थिति होती है, उसे भाव कहते हैं और जिस वस्तु या व्यक्ति के प्रति यह भाव व्यक्त होता है, उसे विभाव कहा जाता है। यह दो प्रकार का होता है, आलम्बन और उद्दीपन। जिसका आधार लेकर किसी की कोई मनस्थिति उद्बुद्ध होती है या जिस पर किसी का भाव टिकता है, वह आलम्बन विभाव है। जहाँ यह भाव उठता है, उसे आश्रय कहते हैं। आलम्बन के चेष्टा, शृंगार आदि तथा देश, काल, चन्द्र, ज्योत्स्ना आदि उद्दीपन विभाव हैं। साहित्य की भाषा में उसे विभाव कहा जायेगा, जिसे कि व्यवहार-जगत में कारण कहते हैं। *जिस प्रकार मोमबत्ती सलाई से जल जाती है, बांसुरी फूंक भरते ही बज उठती है, उसी प्रकार रति-शृंगार-भावना,*

नायिका के दर्शन, चेष्टा आदि से जाग उठती है। अतः नायिका शृंगार-रस का प्रधान आलम्बनभूत कारण है और चेष्टा आदि गौण-उद्दीपक कारण है।

महाकवि बुध श्रीधर ने प्रस्तुत पौराणिक महाकाव्य में आलम्बन और आश्रयमें होने वाले व्यापारों का सुन्दर अंकन किया है, जिससे रसोद्रेक में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं आने पाई है। वीणा के घर्षण से जिस प्रकार तारों में झंकृति उत्पन्न होती है, उसी प्रकार हृदयग्राही राग-भावनाएँ काव्य के आवेष्टन में आवेष्टित होकर रस का संचार करती हैं। यों तो इस काव्य का अंगीरस शान्त है, पर शृंगार, वीर और रौद्र-रसों का भी सम्यक् परिपाक हुआ है। महाकवि ने यवनराज के साथ युद्ध के लिए प्रस्थान, संग्राम में चमकती हुई तलवारें, लड़ते हुए वीरों की हुंकारें एवं योद्धाओं के शौर्य-वीर्य का सुन्दर जीता-जागता चित्र उपस्थित किया है।[1]

पासणाहचरिउ का अंगीरस शान्त है, किन्तु शृंगार, वीर और रौद्र-रसों का भी उसमें सम्यक् परिपाक हुआ है। कवि ने युद्ध के लिए प्रस्थान, संग्राम में चमचमाती तलवारों, लड़ते हुए वीरों की हुंकारों एवं योद्धाओं के शौर्य-वीर्य-वर्णनों आदि में वीर-रस की सुन्दर उद्भावना की है। पार्श्व कुमार को उसके पिता राजा हयसेन जब युद्ध की भयंकरता समझाकर उन्हें युद्ध में न जाने की सलाह देते हैं, तब पार्श्व को देखिए, वे कितना वीरता-रससिंक्त उत्तर देते हैं—

णहयलु तलु करेमि महि उप्परि वाउ वि बंधमि जाइ ण चप्परि।
पाय-पहारें गिरि-संचालमि णीरहि णीरु, णिहिलु पच्चालि।
इंदहो इंद-धणुह उद्दालमि फणिरायहो सिरिसेहरु टालमि।
कालहो कालत्तणु दरिसावमि धणवइ धण-धारा वरिसावमि।
अग्गिकुमारहो तेउ णिवारमि वारुण सुरु वरिसंतउ धारमि।
तेल्लोकु वि लीलएँ उच्चायामि करयल-जुअलें रवि-ससि छायमि।
तारा-णियरइँ गयणहो पाडमि कूरग्गह-मंडलु णिद्धाडमि।
णहयर-रायहो गमणु णिरुभमि दिक्करिहिं कुंभयलु णिसुंभमि।
णीसेसु वि णहयलु आसंधमि जायरुव धरणीहरु लंघमि।।
विज्जाहर-पय-पूरु वहावमि सूलालंकिय-करु संतावमि।
मयणहो माण मडप्फरु भंजमि भूअ-पिंसाय-सहासइँ गंजमि।।
दीसउ मज्झु परक्कमु बालहो उअरोहेण समुण्णय-भालहो।। पास. 3/15/1–12

शृंगार-रस के भी जहाँ-तहाँ उदाहरण मिलते हैं। कवि ने नगर, वन, पर्वत नर एवं नारियों के सौन्दर्य का चित्रण किया है, किन्तु यह शृंगार रतिभाव को पुष्ट न कर विरक्ति को ही पुष्ट करता है। *माता वामादेवी के सौन्दर्य का* वर्णन इसके लिए सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। (दे. 1/13)

कवि ने स्वतंत्र रूप से भी रौद्र-रस का सुन्दर निरूपण किया है। राजा अरविन्द कमठ के दुराचार से खिन्न होकर क्रोधातुर हो जाता है और उसे भृत्यों द्वारा डॉट-फटकार कराने के बाद उसे देश से निकाल देता है।

जइ जाइ पेक्खु ता सइँ जि मुक्खु विद्दउ सिंचिय अण्णा रुक्खु
भाउज्जहे वयणे णियइ जाम सहुँ भायरेण पिय दिट्ठु ताम।।
कोहाणल जालालिंगियंगु गउ रायगेहु णं खय-पयंगु।।
जंपंतउ भायर तणउ वित्तु तं सुणिवि णिवहो परिखुहिय चित्तु
जाणमि जेण जि अण्णाय रासि तेण जे मइँ सो परिहरिउ आसि।
इउ भणिवि णिवेणाढत्त भिच्च दुप्पिच्छ दच्छ दिढयर णिभिच्छ

1. इसके लिए पा.च. की चौथी एवं पंचमी सन्धि दृष्टव्य।

घत्ता– **तेहिं जि जाएविणु हक्क करेविणु कमठ बद्धु पच्चारिउ।**
खर उवरि चडाविवि लोयहँ दाविवि णियं णयरहो णीसारिउ।। 11/11/5-12

उक्त पद्य में आलम्बन कमठ है, आश्रय अरविन्द नृपति है, उद्दीपन कमठ का दुराचार एवं अनीति है और स्थायी भाव क्रोध है। मुखमण्डल का लाल हो जाना, भर्त्सना करना, ललकारना आदि अनुभाव हैं। उग्रता, अमर्ष, असूया, आवेग आदि संचारी हैं। कवि ने उक्त पंक्तियों में रौद्ररस का जीता-जागता चित्र प्रस्तुत किया है। यहाँ साधारणीकरण इस अवस्था तक पहुँच गया है कि अन्य कोई व्यक्ति भी दुराचारी एवं दुष्ट कमठ जैसे व्यक्ति को अपने सामने देखकर क्रोधाभिभूत हुए बिना नहीं रहेगा।

पार्श्वनाथ विरक्त होकर जब वन चले जाते हैं और जब यह दुखद समाचार वाणारसी नगरी में पहुँचता है, तब माता-पिता प्रजाजन आदि सभी शोक सागर में डूब जाते हैं। दहाड़ मारकर रोने लगते हैं और चारों ओर से हाहाकार की ध्वनि सुनाई पड़ने लगती है। इसके पूर्व कुशस्थल का राजा रविकीर्ति एवं राजकुमारी प्रभावती भी शोक सागर में डूब जाती हैं। उक्त प्रसंगों में कवि ने पार्श्व के वियोग में करुण-रस का मूर्तिमान चित्र उपस्थित किया है[1]।

उक्त सन्दर्भित प्रसंग में शोक स्थायी भाव है, पर यह शोक भी एक प्रकार से विकसित होकर हर्ष में परिणत हो जाता है। पार्श्वनाथ के द्वारा दीक्षाग्रहण करने से उनके भौतिक सम्पर्क का वियोग आलम्बन-विभाव है। वाणारसी एवं कुशस्थल का जन-समूह जिसमें कि करुणरस का उद्रेक हेाता है, आश्रय है। पार्श्वनाथ के प्रति ममता, उनके *श्रेष्ठ गुणों का स्मरण, एवं सत्कर्यों का चिन्तन उद्दीपन-विभाव है, रुदन, उच्छ्वास, हाहाकार-शब्द, प्रलाप आदि अनुभाव हैं। विषाद, उन्माद आदि संचारी-भाव हैं। इस प्रकार करुण-रस की समस्त सामग्री का कवि ने यहाँ समवाय* किया हैं।

शान्त-रस तो इस काव्य में सर्वत्र अनुस्यूत है। पार्श्व विरक्त होकर तप करने चले जाते हैं और वन में जाकर केशलुंच आदि करते हैं। उक्त सन्दर्भ में शान्तरस का सुन्दर परिपाक हुआ है[2]।

उक्त प्रसंग में निर्वेद स्थायी भाव है। मतान्तर से तत्वज्ञान को भी स्थायीभाव माना जा सकता है। संसार की असारता, शरीर की अनित्यता, अंजुली के जल की तरह आयु का क्षीण होना आलम्बन है। पार्श्वनाथ आश्रय हैं। द्वादश-भावनाओं का चिन्तन, अर्धदग्ध नाग-दम्पति का दर्शन, दर्शन-मोहनीय एवं चरित्र-मोहनीय कर्म के क्षयोपशम का प्रादुर्भाव एवं अनित्यता का चिन्तन उद्दीपन है। छिन्न-भिन्न नाग-नागिनी को देखकर कातर होना, संसार के स्वार्थ-संघर्षों से घबरा कर संसार-त्याग की तत्परता अनुभाव है। धृति, मति, उद्वेग, ग्लानि एवं निर्वेद संचारी भाव हैं। कवि ने इस प्रसंग में रस-सामग्री का विश्लेषण किया है। अनुप्रेक्षाएँ वैराग्य को उद्दीप्त करने में पूर्ण सहायक हैं। जिस प्रकार पवन अग्नि को दीप्त बना कर प्रज्वलित बना देता है, उसी प्रकार उक्त भावनाएँ भी वैराग्य को कई गुना वृद्धिंगत कर् देती है। पार्श्व सोचते हैं कि वास्तविक सुख निर्वाण में है। अनादिकाल से लगे हुए कर्मों के संस्कार इस जीव को जन्म-मरण के कष्ट देते हैं। जब तक ध्यानाग्नि में साधन-प्रक्रिया द्वारा इन कर्म-संस्कारों की आहुति न दी जावेगी, शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती।

भाषा

पासणाहचरिउ एक प्रौढ़ अपभ्रंश रचना है, किन्तु उसमें उसने जहाँ-जहाँ अपभ्रंश के सरल शब्दों के प्रयोग तो किए ही हैं, साथ ही उसने तत्कालीन लोक-प्रचलित कुछ ऐसे शब्दों के भी प्रयोग किए हैं, जो आधुनिक बोलियों के समकक्ष हैं। उनमें से कुछ शब्द तो आज भी हुबहू उसी रूप में प्रचलित हैं। इस प्रकार की शब्दावली से कवि

1. पासणाह. 6/15-18
2. पासणाह. 6/10-12

की कविता में प्राणवत्ता, वर्णन-प्रसंगों में सहजता, रोचकता एवं गतिशीलता आई है। उदाहरणार्थ कुछ शब्द यहाँ प्रस्तुत है :—

बार-बार (बारम्बार 3/8/1), हल्ला (शोरगुल 4/18/4), फाड़ (4/18/4), फाड (4/9/1), थोड़ (10/5/3), अज्जकल्ल (10/14/7), डमरू (3/10/11, 3/11/5), पतला (1/13/10), हौले-हौंले (धीरे-धीरे 3/17/2), चप्प (चॉपना 5/7/8), चॉपना 7/11/4), चुल्ली (चूल्हा 4/1/4), लक्कड़ (6/8/12) पण्ही (जूता 4/9/4) कुमलाना (मुरझाना 3/18/8), खुरप्प (खुरपा 4/19/13, 5/11/9), धोवन (धौन 3/18/2), लट्ठी (लाठी 3/11/4), थट्ट (भीड़ 3/6/12), चिंध (धज्जी 4/9/1), तोड़ (तोड़ना 4/9/8), धुत्त (नशे में चूर 3/13/2), चोजु (आश्चर्य 1/13/9), अंधार (अन्धेरा 3/19/7), रेल्ल (धक्का-मुक्की 7/13/14), पेल्ल (3/8/4), बोल्लाविय (बुलाना 3/8/4), उट्ठिउ (उठा 3/8/10), झाडंत (झाड़कर 7/9/8), ढुक्क=ढूँकना, झाँकना 3/17/11, 4/19/7), बुड्ढ (डूबना 3/18/2), पाडंत (7/9/8) टालंत (टालना 7/9/9), कड्ढ (निकालना 4/20/18), चिक्कार (ध्वन्यात्मक 5/1/5, 5/3/14) आदि।

उपर्युक्त शब्दावली में अधिकांश शब्द हरयाणवी, राजस्थानी, बुन्देली एवं बघेली में आज भी हुबहू उसी प्रकार यत्किचिंत् हेर-फेर के साथ प्रयुक्त होते हैं।

कवि श्रीधर अपभ्रंश के साथ-साथ संस्कृत भाषा के भी समानाधिकारी विद्वान् थे, यह उनकी अन्त्य-प्रशस्ति में लिखित संस्कृत-श्लोकों से स्पष्ट ज्ञात होता है। शार्दूलविक्रीडित, वसन्ततिलका, मन्दाक्रान्ता, दुबइ, घत्ता एवं आर्याछन्दों में अपने आश्रयदाता नट्टल साहू को आशीर्वाद देते हुए कवि लिखता है—

पश्चाद्बभूव शशिमण्डलभासमानः ख्यातः क्षितीश्वरजनादपि लब्धमानः।
सद्दर्शनामृत-रसायन-पानपुष्टः श्रीनट्टलः शुभमना क्षपितारिदुष्टः।।

उक्त सन्दर्भ-सामग्रियों के आधार पर "पासणाहचरिउ" अपभ्रंश-साहित्य की एक महनीय कृति सिद्ध होती है। स्थानाभाव के कारण न तो उक्त रचना के सर्वांगीण अध्ययन को प्रस्तुत करने का अवसर मिल सका और जो सन्दर्भ-सामग्री एकत्रित भी हुई, उसे भी अनेक सीमाओं में बँधे रहने के कारण पूरा विस्तार नहीं दिया जा सका। फिर भी जो संक्षिप्त अध्ययन किया जा सका, उसे ही यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

पा.च. में वर्णित आचार और सिद्धान्त वर्णन

पौराणिक काव्य में नायक के उदात्त चरित के साथ-साथ आचार, दर्शन एवं सिद्धान्त सम्बन्धी मान्यताओं का रहना आवश्यक माना गया है। महाकवि बुध श्रीधर ने प्रस्तुत चरित-काव्य में जैनागम का सार गागर में सागर की तरह भर दिया है। गुणभद्राचार्य कृत उत्तरपुराण एवं अन्य पार्श्वनाथ-चरितों में यह सिद्धान्त उतने विकसित रूप में नहीं दिखाई पड़ता, जिस प्रकार महाकवि जिनसेनाचार्य अपने महापुराण में तथ्यों और सिद्धान्तों को अंकित कर उसे धर्म-कथा का रूप प्रदान कर सके हैं। महाकवि बुध श्रीधर ने प्रस्तुत रचना में अपनी पूर्वकालीन समस्त परम्पराओं को समाविष्ट करने का प्रयत्न किया है।

समवशरण में राजा अर्ककीर्ति द्वारा धर्मोपदेश के निमित्त प्रार्थना करने पर भगवान् पार्श्वनाथ श्रावक धर्म[1] के मूल रूप सम्यक्त्व का उपदेश देते हैं। यतः धर्म का आधार सम्यक्त्व ही है। जब तक जीवन में सम्यक् श्रद्धा नहीं, आस्था नहीं, तब तक सद्वृत्तियों का प्रादुर्भाव होना शक्य नहीं। मिथ्यात्व-भाव व्यक्ति के अन्तरंग को तो कलुषित करते ही हैं, साथ ही उसे जीवन में गतिशील होने से भी रोकते हैं। यह सम्यग्दर्शन शरीर के अष्टांगों के समान अष्टांगपूर्ण है। यदि एक भी अंग विकृत हुआ अथवा एक भी अंग की कमी हुई तो जिस प्रकार शरीर अपूर्ण है और कार्यकारी शक्ति से रहित है। ठीक उसी प्रकार जीवन में अष्टांग के बिना धार्मिकता भी अपूर्ण है।

---

1. पासणाह. 10/3-7

कवि ने सम्यक्त्व के स्वरूप में देव-शास्त्र और गुरु के श्रद्धान को तो स्थान दिया ही है, साथ ही उन कारणों का भी विवेचन किया है, जिनसे सम्यक्त्व की उत्पत्ति और समृद्धि होती है। उत्पत्ति में स्वाध्याय एवं ध्यान के अतिरिक्त मोह, माया, प्रमाद का त्याग, दया-धर्म के प्रति अनुराग, पाप-कर्म के प्रति विचिकित्सा आदि भी परिगणित हैं। सम्यक्त्व की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है :—

.....	**सम्मत्तहो जिणवइणा पउत्तु।**
सम्मत्त पहावें सुरयणाहँ	**संदोहँ णिम्मल परम मणाहँ।**
पुज्जिज्जइ णरु तिहुअणे वि मोक्खु	**पुणु जाइ संजणइ परम सोक्खु।**

घत्ता— **गुण-जुत्तहो सम्मत्तहो विवरीए मिच्छत्तें।**
भवसायर असुहायरि पांडिज्जइ अक्खत्तें।। पासणाह. 10-4/8-12

तदन्तर कवि ने पंचाणुव्रतों का निरूपण किया है। अहिंसाणुव्रत में संकल्पी हिंसा के त्याग के साथ-साथ आचार-विचार, रहन-सहन एवं भोजन-पान की शुद्धि को भी महत्व दिया है। कवि ने आर्ष-परम्परा के अतिरिक्त अपने अनुभव और आचार के आधार पर भोजन-शुद्धि एवं आचार-विचार को भी अहिंसाव्रत में परिगणित किया है। दया, दान, पूजा आदि भी इस व्रत के धारी के लिए आवश्यक है साथ ही, कन्द, फल, मूल का त्याग एवं अभक्ष्यत्याग भी अनिवार्य है। (10/5-6)

सत्याणुव्रत का स्वरूप परम्परा-प्राप्त ही है। कवि ने सत्याणुव्रती के लिये विवेकपूर्वक भाषण करने पर जोर दिया है। वह हित, मित एवं यथार्थ वचनों को ही इस व्रत में परिगणित करता है। (10/6)

अचौर्याणुव्रत के अन्तर्गत अदत्त वस्तुओं के ग्रहण का परित्याग बताया गया है। ब्रह्मचर्याणुव्रत में परस्त्रियों को बहिन, माता और सुता के समान समझने पर जोर दिया गया है। कवि कहते हैं कि चेतन-अचेतन सभी प्रकार की स्त्रियों का त्याग अवश्य है। दासी, वेश्या आदि के प्रति आसक्ति भी ब्रह्मचर्याणुव्रती के लिए सर्वथा वर्जित है। परिग्रह-परिमाणुव्रत में अंतरंग मूर्च्छा के त्याग पर जोर दिया गया है। कवि ने धन-धान्य, सोना-चाँदी आदि दसों प्रकार के परिग्रह का त्याग अनिवार्य बताया है। (10/6)

इसी प्रकार कवि ने तीन गुणव्रतों एवं चार शिक्षाव्रतों (10/6-7) का भी संक्षिप्त विवेचन किया है। अनर्थदण्डव्रत में पापोपदेश आदि पाँचों का त्याग आवश्यक बताया है। सामायिक, प्रोषधोपवास और अतिथि-संविभाग व्रतों का वर्णन भी बड़ा सुन्दर किया है। इसके बाद कवि ने रात्रिभोजन-त्याग को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया है, जलगालन, सप्तव्यसन-त्याग एवं द्वादश-अनुप्रेक्षाओं आदि का विशद एवं सरस विवेचन किया है।

आचार एवं तत्व-दर्शन के साथ-साथ सृष्टि-विद्या के वर्णन में ही धर्म-सिद्धांत की पूर्णता मानी जाती है। यतः लोक-संस्थान, लोक-विस्तार, लोकाकृति तथा इस पृथ्वी पर सन्निविष्ट द्वीप, सागर, कुलाचल, नदियों आदि का विवेचन भी अत्यावश्यक है[1]। जब तक कोई भी धर्म-जिज्ञासु इस लोक की रचना के संबंध में अपनी जिज्ञासा की तृप्ति नहीं कर लेता तब तक उसकी धर्म-धारणा की ओर प्रवृत्ति नहीं हो सकती। महाकवि बुध श्रीधर ने आचार्य नेमिचंद्र सिद्धांत-चक्रवर्ती के त्रिलोकसार एवं जिनसेनाचार्य के हरिवंशपुराण के आधार पर लोक-विवेचन किया है। तात्विक-दृष्टि से इस लोक-वर्णन में कोई भी नवीनता नहीं है। कवि ने परंपरा-प्राप्त तथ्यों और मान्यताओं को अपनी शैली में प्रस्तुत किया है।

अन्त में कवि ने क्षपक-श्रेणी द्वारा कर्मक्षय की प्रक्रिया विस्तारपूर्वक प्रस्तुत की है। इस प्रक्रिया का आधार आचार्य पूज्यपाद कृत 'सर्वार्थसिद्धि' नामक ग्रन्थ है।

---

1. इसके लिए नौवीं-दसवीं सन्धियाँ देखिये।

पा.च. में कुछ रोचक वर्णन-प्रसंग

कवि श्रीधर भावों के अद्‌भुत चितेरे हैं। यात्रा-मार्गों में चलने वाले चाहे सैनिक हों अथवा अटवियों में उछल-कूद करने वाले बन्दर, वन-विहारों में क्रीड़ाएँ करने वाले प्रेमी-प्रेमिकाएँ हों अथवा आश्रमों में तपस्या करने वाले तापस, राजदरबारों में सूर-सामन्त हों अथवा साधारण प्रजाजन, उन सभी के मनोवैज्ञानिक-वर्णनों में कवि की लेखनी ने अद्‌भुत चमत्कार दिखलाया है। इस प्रकार के वर्णनों में कवि की भाषा भावानुगामिनी एवं विविध रस तथा अलंकार उनका हाथ जोड़कर अनुकरण करते हुए दिखाई देते हैं।

पार्श्वप्रभु विहार करते हुए तथा कर्वट, खेड, मंडव आदि पार करते हुए जब एक भयानक अटवी में पहुँचते हैं, तब वहाँ उन्हें मदोन्मत्त गजाधिप, द्रुतगामी हरिण, भयानक सिंह, घुरघुराते हुए मार्जार एवं उछल-कूद करते हुए लंगूरों का वर्णन देखिए, कितना स्वाभाविक बन पड़ा है—

.....	**सिर लोलिर लंगूल।।**
केवि कूर घुरुहुरहिं	**दूरत्थ फुरुहुहरहिं।।**
केवि करहिं ओरालि	**ण मुवंति पउरालि।।**
केवि दाढ़ दरिसंति	**अइ विसु विरसंति।।**
केवि भूरि किलिकिलहिं	**उल्लेवि वलि मिलहिं।।**
केवि णिहय पडिकूल	**महि हणिय लंगूल।।**
केवि करु पसारंति	**हिंसण ण पारंति।।**
केवि गयणयले कमहिं	**अणवरउ परिभमहिं।।**
केवि अरुण णयणेहिं	**भंगुरिय वयणेहिं।।**
केवि लोय तासंति	**केवि अकियत्थ रूसंति।।**
केवि धुणहिं संविसाण	**कंपविय रिपाण।।**
केवि दुट्‌ठ कुपंति	**पक्खिहि झडप्पंति।।**
केवि पहु ण पावंति	**डसणत्थु धावंति।।** (पास. 7/14/6-16)

अन्य वर्णन-प्रसंगों में कवि का कवित्व चमत्कार-पूर्ण बन पड़ा है। इनमें कल्पनाओं की उर्वरता, अलंकारों की छटा एवं रसों के अमृतमय-प्रवाह दर्शनीय हैं। इस प्रकार के वर्णनों में वसन्त ऋतु-वर्णन[1] अटवी-वर्णन[2], सन्ध्या[3], रात्रि[4] एवं प्रभात वर्णन[5] तथा नन्दन वन-वर्णन[6] आदि प्रमुख है। कवि की दृष्टि में सन्ध्या किसी के जीवन में हर्ष उत्पन्न करती है, तो किसी के जीवन में विषाद। वस्तुतः वह हर्ष एवं विषाद का विचित्र संगमकाल है। जहाँ वह कामीजनों, चोरों, उल्लुओं एवं राक्षसों के लिए श्रेष्ठ वरदान है, वहीं पर वह नलिनी-दल के लिए घोर-विषाद का काल। उस काल में वह उसी प्रकार मुरझा जाता है, जिस प्रकार इष्टजन के वियोग में बन्धु-बान्धवगण। सूर्य के डूबते ही उसकी समस्त किरणें अस्ताचल में तिरोहित हो गयी हैं। इस प्रसंग में कवि उत्प्रेक्षा करते हुए कहता है कि "विपत्तिकाल में अपने कर्मों को छोड़कर और कौन किसका साथ दे सकता है ? सूर्य के अस्त होते ही अस्ताचल

1. पासणाह. 6/4
2. पासणाह. 6/7
3. पासणाह. 3/18
4. पासणाह. 3/19
5. पासणाह. 3/20
6. पासणाह. 10/1

पर लालिमा छा गयी है, वह ऐसी प्रतीत होती है, मानों अन्धकार के गुफा-ललाट पर किसी ने सिंदूर का तिलक ही जड़ दिया हो। यथा :—

अत्थइरि सिहरिव रत्तु व पट्टलु तम-विलउ।
संझए अवरदिसि पयंसियहो णं सिंदूर-कउ-तिलउ।। पास. 3/17/13–14

अन्धकार में गुफा-ललाट पर सिन्दूर के तिलक की कवि-कल्पना सचमुच ही अद्‌भुत एवं नवीन है।

कवि का रात्रि-वर्णन भी कम चमत्कारपूर्ण नहीं। वह कहता है कि समस्त संसार घोर अन्धकार की गहराई में डूबने लगा है, इस कारण विलासिनियों के कपोल रक्ताभ हो उठे हैं, तथा उनके नीवी-बन्ध शिथिल होने लगे हैं। कवि कहता है—

च्छुडु णीवी गण-संझ-विलासिनी।
अरुणत्तण गुण-घुसिण विलासिनी।। 3/18/3

बालक पार्श्व का बाल-लीला-वर्णन

कवि श्रीधर ने शिशु पार्श्व की लीलाओं का भी बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। उनकी बाल एवं किशोर-लीलाएँ, उनके असाधारण-सौन्दर्य एवं अंग प्रत्यंग की भाव-भंगिमाओं के चित्रणों में कवि की कविता मानों सरसता का स्रोत बनकर उमड़ पड़ी है। कवि कहता है[1] कि— "शिशु पार्श्व कभी तो माता के अमृतमय दुग्ध का पान करते, कभी अँगूठा चूसते, कभी मणि-जटित चमचमाती गेंद खेलते, तो कभी तुतली बोली में कुछ बोलने का प्रयास करते। कभी तो वे स्वयं रेंग-रेंगकर चलते और कभी परिवार के लोगों की अंगुली पकड़कर चलते। जब वे माता-पिता को देखते तो अपने को छिपाने के लिए वे हथेलियों से अपनी ऑखें ही ढँक लेते थे।"

चन्द्रमा को देखकर वे हॅस देते थे। उनका जटाजूट धारी शरीर निरन्तर धूलि-धूसरित रहता था। खेलते समय उसकी करधनी की शब्दायमान किंकिणियाँ सभी को मोहती रहती थी[2]। कवि के इस बाल-लीला वर्णन ने हिन्दी के भक्तकवि सूरदास को सम्भवतः सर्वाधिक प्रभावित किया है। उनकी कृष्ण की बाल-लीलाओं के वर्णनों की सदृशता तो दृष्टिगोचर होती ही हैं, कहीं-कहीं अर्धालियों में भी यत्किचिंत् हेर-फेर के साथ उनका उपयोग कर लिया गया प्रतीत होता है। यथा—

श्रीधर – अविरल धूल धूसरियगत्त..। पास. 2/15/5
सूर – धूरि धूसरियगत्त...। 10/100/3
श्रीधर – हो हल्लरु....(ध्वन्यात्मक) पास. 1/15/10
सूर – हलरावै (ध्वन्यात्मक) सूरसागर 10/128/8
श्रीधर – खलियक्खर वयणिहिं वज्जरंतु। पास. 2/14/3
सूर – बोलत श्याम तोतरी बतियॉ। सूरसागर 10/147
श्रीधर – परिवरंगुलि लग्गउ सरंतु। 2/14/4
सूर – हरिकौ लाइ अंगुरी चलन सिखावत। सूरसागर 10/128/8

इस प्रकार दोनों कवियों के वर्णनों की सदृशताओं को देखते हुए यदि संक्षेप में कहना चाहें तो कह सकते हैं कि श्रीधर का संक्षिप्त बाल-वर्णन सूरदास कृत कृष्ण की बाल-लीलाओं के वर्णन के रूप में पर्याप्त परिष्कृत एवं विकसित हुआ है।

---

1. पासणाह. 2/14/1-7
2. पासणाह. 2/14/12, 2/15/4-5

वनस्पति-वर्णन

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि कवि श्रीधर की विविध वनस्पतियों का वर्णन भी कम आश्चर्यजनक नहीं। अटवी-वर्णन के प्रसंग में विविध प्रकार के वृक्ष, पौधे, लताएँ, जिमीकन्द आदि के वर्णनों में कवि ने मानों सारे प्रकृति-जगत् को साक्षात् उपस्थित कर दिया है, आयुर्वेद एवं वनस्पतिशास्त्र के इतिहास की दृष्टि से कवि की यह सामग्री बड़ी महत्वपूर्ण है। कवि द्वारा वर्णित वनस्पतियों का वर्गीकरण निम्न प्रकार किया जा सकता है[1]—

शोभावृक्ष	–	हिंताल, तालूर, साल, तमाल, मालूर, धव, धम्मन, वंस, खदिर, तिलक, अगरत्य, प्लक्ष, चन्दन।
फलवृक्ष	–	आम्र, कदम्ब, नींबू, जम्बीर, जामुन, मातुलिंग, नारंगी, अरलू, कोरंटक, अंकोल्ल, फणिस, प्रियंगु, खजूर, तिन्दुक, कैथ, ऊमर, कठूमर, चिंचिणी (चिलगोजा) नारियल, वट, सेंवल, ताल।
पुष्पवृक्ष	–	चम्पक, कचनार, कणवीर (कनैर), टउह, बबूल, जासवण्ण (जाति, शिरीष) पलाश, बकुल, मुचकुन्द, अंक, मधुवार।
फल एवं पुष्पलताएँ	–	लवंग, पूगफल, सिरिहिल्ल, सल्ल, केतकी, कुरवक, कर्णिकार, पाटलि, सिन्दूरी, द्राक्षा, पुनर्नवा, बाण, वोर, कच्चूर।
कन्द	–	जिमीकन्द, पीलू, मदन एवं गंगेरी।

बुध श्रीधर के उक्त वनस्पति-वर्णन ने परवर्ती कवियों में सूफी कवि जायसी को सम्भवतः बहुत अधिक प्रभावित किया है। इस प्रसंग में जायसीकृत पद्मावत[2] के सिंहलद्वीप वर्णन (2/10-13) एवं वसन्तखण्ड (2/10-13) के अंश पासणाहचरिउ के उक्त अंश से तुलनीय हैं। दोनों के अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि जायसी के उक्त वर्णन श्रीधर के वर्णन के पल्लवित एवं परिष्कृत रूप हैं।

पार्श्व के लिए प्रदत्त लौकिक शिक्षाएँ

पासणाहचरिउ में कुमार पार्श्व के लिए जिन शिक्षाओं को प्रदान किए जाने की चर्चा आई हैं, वे प्रायः समकालीन लोक-प्रचलित एवं क्षत्रिय राजकुमारों तथा अमीर-उमराओं को दी जाने वाली लौकिक शिक्षाएँ ही हैं। कवि ने इस प्रसंग में किसी प्रकार का साम्प्रदायिक व्यामोह या अतिशयोक्ति न दिखाकर विशुद्ध यथार्थ लौकिक एवं राष्ट्रीय-रूप को ही प्रदर्शित किया है। इनमें मध्यकालीन शिक्षा-प्रणाली का संकेत मिलता है। इन शिक्षाओं का विभाजन निम्न चार वर्गों में किया जा सकता है[3]—

1. **आत्मविकास एवं जीवन को सर्वांगीण बनाने वाली विद्याएँ (साहित्य)** — श्रुतांग, वेद, पुराण, आचार-शास्त्र, व्याकरण, सप्तभंगी-न्याय, लिपिशास्त्र, लेखन-क्रिया (चित्र-निर्माण-विधि) सामुद्रिक-शास्त्र, कोमल काव्य-रचना, देश्यभाषा-कथन, नवरस, छन्द, अलंकार, शब्द-शास्त्र एवं न्यास-दर्शन।
2. **राष्ट्रीय-सुरक्षा हेतु आवश्यक विद्याएँ** — गज एवं अश्वविद्या शरशस्त्रादि संचाल, व्यूहन, संरचना, असि एवं कुन्तसंचालन, मुष्टि एवं मल्लयुद्ध (Boxing and Wrestling) असि-बन्धन, शत्रु-नगर-रोधन, रणमुख में ही शत्रु-रोधन, अग्नि एवं जल-बन्धन, वज्र-शिला-बँधन, अश्व-धेनु एवं गजचक्र का मूल बन्धन।

---

1. पासणाह. 7/2
2. डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा सम्पादित एवं साहित्य सदन चिरगाँव, झाँसी (सन् 1955) से प्रकाशित।
3. पासणाहचरिउ, 2/17

3. **व्यावहारिक विद्याएँ (कलाएँ)** — अंजन-लेपन, नर-नारी-अंग-मर्दन, सुर-भवन (मन्दिर) आदि में लेपन (चित्रकारी) का ज्ञान, नर-नारी-वशीकरण, पाँच प्रकार के घण्टों का वादन, चित्रोत्पल कर्म, स्वर्ण-कर्म, तरु (काष्ठ)-सूत्र कर्म, कृषि एवं वाणिज्य-विद्याएँ, काल-परिवंचण (अर्थात् अचूक औषधिशास्त्र का ज्ञान एवं औषधि-निर्माण विद्या), सर्प-विद्या का ज्ञान, नवरसयुक्त भोजन-निर्माण-विधि एवं रति-विस्तार (कामशास्त्र का ज्ञान)।
4. **संगीत एवं वाद्य-सम्बन्धी-विद्याएँ** — मन्दल, टिविल, ताल, कंसाल, भंभा, झल्लरी, मन्दल, ताल, कंसाल, भेरी, झल्लरी, काहल, करड, कंबु, डमरु, डक्क, हुडक्क एवं ट्टटरी का ज्ञान।

उपर्युक्त विद्याओं की सूची में एक भी अलौकिक-विद्या का उल्लेख नहीं। कवि ने पार्श्व के माध्यम से उन्हीं समकालीन लोक-प्रचलित विद्याओं का वर्णन किया है, जो उत्तरदायित्वपूर्ण मध्यकालीन राष्ट्राध्यक्ष को सामाजिक-विकास के लिए अत्यावश्यक, उन्नत, प्रभावपूर्ण, तथा सर्वांगीण व्यक्तित्व-विकास के लिए अनिवार्य थी। इसीलिए कवि का नायक-पार्श्व, जैन होकर भी चारों वेदों एवं अष्टादश पुराणों का अध्येता बताया गया है क्योंकि उसके राज्य में विविध धर्मानुयायियों का निवास था। कवि की दृष्टि से धर्म-निरपेक्ष राज्य ही सौहार्द एवं सौमनस्य के लिये कल्याणकारी हो सकता है। संगीत में भी जिन वाद्यों की चर्चा कवि ने की है, वे भी देवकृत अथवा पौराणिक वाद्य नहीं अपितु वे वाद्य हैं, जो हरियाणा में आज भी उन्हीं नामों से जाने जाते हैं तथा भांगड़ा या अन्य नृत्यों में प्रायः उन्हीं का अधिक प्रयोग होता है।

भौगोलिक वर्णन

कवि श्रीधर मात्र भावनाओं के ही चितेरे नहीं, अपितु, उन्होंने जिस भू-खण्ड पर जन्म लिया था, उसके कण-कण के अध्ययन का भी प्रयास किया था। यही कारण है कि पासणाहचरिउ में विविध नगर एवं देशवर्णन, नदी, पहाड़, सरोवर, वनस्पतियाँ विविध मनुष्य-जातियाँ, उनके विविध-व्यापार, भारत-भूमि का तत्कालीन राजनैतिक विभाजन, बिविध देशों के प्रमुख-उत्पादन तथा उनके आयात-निर्यात सम्बन्धी अनेक भौगोलिक सामग्रियों के चित्रण भी कवि ने किये हैं। उदाहरणार्थ कुछ सामग्री यहाँ प्रस्तुत की जाती है।

कुमार पार्श्व जिस समय काशीराज्य के युवराज पद पर प्रतिष्ठित किए जाते हैं, उस समय जिन-जिन देशों के नरेश उन्हें सम्मान-प्रदर्शन हेतु तलवार हाथ में लेकर उनके राजदरबार में पधारे थे, उन-उन देशों के वर्गीकृत नाम इस प्रकार है[1]—

पूर्व-भारत	–	वज्रभूमि, अंग, बंग, कलिंग, मगध, चम्पा एवं गउड देश।
उत्तर भारत	–	हरयाणा, पार्वतिक (हिमालय प्रदेश के राजा) टक्क, चौहान, जालन्धर, हाण एवं हूण, बज्जर (बजीरिस्तान)।
पश्चिम भारत	–	गुर्जर, कच्छ एवं सिन्धु।
दक्षिण भारत	–	कर्नाटक, महाराष्ट्र चोड एवं राष्ट्रकूट।
मध्य भारत	–	मालवा, अवध, चन्दिल्ल, भादानक एवं कलचुरी।

युवराज पार्श्व द्वारा आगत रणधुरन्धर विविध नरेशों का सम्मान

युवराज पार्श्व जब यवनराज के साथ युद्ध करने हेतु प्रस्थान करने लगते हैं, तब उनका साथ देने के लिये आये हुए निम्न नरेशों के लिये पार्श्व ने उनके अनुकूल निम्न वस्तुएँ भेंट स्वरूप प्रदान कर सम्मानित किया था[2]—

---

1. *पासणाह. 2/18*
2. *पासणाह. 4/5*

— कीर देश के राजा के लिये बहुमूल्य हार पहिनाकर,
— पांचाल देश के राजा के लिये मणिमयी मेखला पहिनाकर,
— टक्क देश के राजा के लिये स्वर्णमयी हार की लड़ी पहिनाकर,
— जालन्धर नरेश के लिये प्रालम्ब (लम्बा हार) पहिनाकर,
— सोन देश के राजा को मुकुट पहिनाकर बाण सहित तूणीर से निबद्ध कर,
— सिन्धु देश के राजा के लिये केयूर प्रदान कर,
— हम्मीर राजा को चित्ताकर्षक कंकण प्रदान कर,
— मालव नरेश को सुन्दर कंकणों से प्रसाधित कर,
— खश नरेश को सरोपा भेंट कर,
— नेपाल नरेश को चूडारत्न प्रदान कर।

प्रतीत होता है कि 11वीं-12वीं सदी में हरयाणा, दिल्ली एवं काशी में उक्त वस्तुओं का विशेष विशेषज्ञता के साथ निर्माण किया जाता था तथा उनका दूसरे देशों में निर्यात भी किया जाता रहा होगा। असम्भव नहीं कि इन वस्तुओं के व्यापार से कवि श्रीधर के आश्रयदाता साहू नट्टल का भी सम्बन्ध रहा हो, क्योंकि साहू नट्टल का जिन-जिन देशों से व्यापारिक सम्बन्ध बतलाया गया है, उस सूची में उक्त देशों के नाम भी आते हैं[1]। मध्यकालीन भारत की आर्थिक एवं व्यापारिक-दृष्टि से तो ये उल्लेख महत्वपूर्ण हैं ही, तत्कालीन, कला, सामाजिक-अभिरुचि एवं विविध-निर्माण-सामग्री के उपलब्धि-स्थलों तथा उद्योग-धन्धों की दृष्टि से भी उनका अपना विशेष महत्त्व है।

युवराज-पार्श्व के साथ युद्ध में भाग लेने वाले नरेश एवं उनके द्वारा शासित राज्य

बुध श्रीधर के अनुसार (पार्श्व के) काशी-देश की ओर से यवनराज के साथ लोहा लेने वाले राज्यों की सूची इस प्रकार है[2] :—

— नेपाल, जालन्धर, कीरट्ठ एवं हम्मीर, इन्होंने हाथियों के समान चिंघाड़ते हुए।
— सिन्धु, सोन एवं पांचाल-उन्होंने भीम के समान मुखवाले बाण छोड़ते हुए।
— मालव, आस, टक्क एवं खश, कर्नाटक, लाट, कोंकण, बराट, ताप्तितट, द्रविड, भृगुकच्छ, कच्छ, वत्स, डिडीर, विन्ध्य, कोसल, महाराष्ट्र एवं सौराष्ट्र के राजाओं ने दुर्दम यवनराज के साथ विषम-युद्ध करके।

प्रतीत होता है कि उक्त राज्यों ने अपना महासंघ बनाकर काशी-नरेश का साथ दिया होगा, और इनकी सम्मिलित-शक्ति ने यवनराज को बार-बार पीछे धकेल दिया होगा।

इतने देशों के नामों के एक साथ उल्लेख अपना विशेष महत्व रखते हैं। यवनराज सुबुक्तगीन एवं उसके उत्तराधिकारियों तथा मुहम्मद गोरी के आक्रमणों से जब धन-जन, सामाजिक एवं राष्ट्रीय-प्रतिष्ठा की हानि एवं देवालयों का विनाश किया जा रहा था, तब प्रतीत होता है कि राष्ट्रीय-सुरक्षा एवं समान-स्वार्थों को ध्यान में रखते हुए पड़ोसी एवं सुदूरवर्त्ती राज्यों ने उक्त यवनराजाओं के आक्रमणों के प्रतिरोध में सम्भवतः तोमरवंशी राजा अनंगपाल तृतीय के साथ अथवा अपना कोई स्वतन्त्र महासंघ बनाया होगा। कवि ने सम्भवतः उसी की चर्चा पार्श्व एवं यवनराज के युद्ध के माध्यम से प्रस्तुत की है। यथार्थतः यह विषय बड़ा रोचक एवं गम्भीर-शोध का विषय है, शोधकर्त्ताओं एवं इतिहासकारों को इस दिशा में अनुसन्धान करना चाहिए।

---

1. पासणाह. अन्त्य प्रशस्ति।
2. पासणाह. 4/11-12

कवि ने प्रसंगवश हरयाणा, कुशस्थल, कालिन्दी, वाराणसी एवं मगध आदि के भी सुन्दर वर्णन किए हैं तथा छोटी-छोटी भौगोलिक इकाइयों— जैसे-कर्वट, खेड, मडम्ब, आराम, द्रोणमुख, संवाहन, ग्राम, पट्टन, पुर, नगर आदि के भी उल्लेख किए हैं। पूर्वोक्त वर्णनों एवं इन उल्लेखों को देखकर यह स्पष्ट है कि कवि को मध्यकालीन-भारत का आर्थिक, व्यापारिक, प्राकृतिक, मानवीय एवं राजनैतिक-भूगोल का अच्छा ज्ञान था। कवि द्वारा प्रस्तुत यह सामग्री निश्चय ही तत्कालीन प्रामाणिक इतिहास तैयार करने में सहायक सिद्ध हो सकती है।

कृतज्ञता - ज्ञापन

प्राचीन पाण्डुलिपियों की खोज, संग्रह, उद्धार, सम्पादन-अनुवाद एवं तुलनात्मक समीक्षा-कार्य जितना दुरूह, जटिल एवं धैर्यसाध्य है, उससे भी अधिक कठिन है उसके प्रकाशन की व्यवस्था। प्रस्तुत पाण्डुलिपि की प्रतिलिपि मुझे परमश्रद्धेय बाबू अगरचन्द जी नाहटा (बीकानेर, राजस्थान) से सन् 1970 के दशक में प्राप्त हुई थी। उन्होंने विश्वासपूर्वक मुझसे अपनी इच्छा व्यक्त की थी कि मैं इसका सम्पादन करुँ और उनकी अभिलाषा का समादर करते हुए मैंने भी उस पर कार्य करने की प्रतिज्ञा कर ली। ग्रन्थ का वर्ण्य-विषय बड़ा रोचक लगा तथा उसकी प्रशस्ति में उपलब्ध ऐतिहासिक तथ्यों ने मुझे बड़ा उत्तेजित किया और उसी से ऊर्जस्वित होकर मैं उसके सम्पादन-कार्य में जुट गया। विविध पारिवारिक, शैक्षणिक एवं सामाजिक कार्यों की व्यस्तता के साथ-साथ प्रस्तुत कार्य भी चलता रहा और लगभग 7-8 वर्षों में सम्पादनादि कार्य समाप्त भी कर दिया किन्तु प्रयत्न करने पर भी जब उसके प्रकाशन की कोई व्यवस्था न हो सकी, तब निराश होकर उसे एक बस्ते में बाँधकर किनारे रख देना पड़ा। लगभग दो-ढाई दशकों तक वह ऐसा ही पड़ा रहा। उसके कागज भी गलने लगे और उसकी स्याही भी फीकी पड़ने लगी। अतः मन बड़ा व्यथित हो गया।

अपनी दिल्ली-यात्रा में मैंने एक दिन अवसर पाकर परमपूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज से उक्त विषयक अपनी व्यथा-कथा सुनाई और जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि प्रस्तुत ग्रन्थ की प्रशस्ति में 12वीं सदी की दिल्ली का आँखों देखा वर्णन है तथा उसके कवि ने समकालीन दिल्ली का सुन्दर चित्रण किया है, जिससे मध्यकालीन कुछ ऐतिहासिक तथ्यों का उद्घाटन सम्भव है, तब इससे प्रमुदित होकर उन्होंने मुझे तत्काल ही प्रेस-कॉपी तैयार करने का आदेश दिया और यह उनके मंगल-आशीर्वाद का ही सुफल है कि इस ऐतिहासिक ग्रन्थ के प्रकाशन की व्यवस्था भारतीय ज्ञानपीठ जैसी विख्यात प्रकाशन-संस्था से हो सकी।

मेरी यह हार्दिक इच्छा थी कि यह ग्रन्थ मैं आचार्यश्री विद्यानन्द जी को ही समर्पित करूँ। उसकी तैयारी भी कर ली थी, किन्तु उन्होंने इसका पुरजोर विरोध किया और मुझे जो कहा, वह उन्हीं के शब्दों में मैं अपने साहित्य-रसिक पाठकों को बतला देना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। उन्होंने कहा– "डॉ. हीरालाल जी एवं डॉ. ए.एन. उपाध्ये जी, इस सदी के ऐसे सरस्वती पुत्र हैं, जिन्होंने प्राच्य भारतीय विद्या, विशेषतया प्राकृत एवं जैन-विद्या के प्रचार-प्रसार, तथा दुर्लभ पाण्डुलिपियों के सम्पादन एवं प्रकाशन के लिए निष्काम-भावना से अपना समस्त जीवन समर्पित कर दिया। हमारा दुर्भाग्य यही रहा कि उनके जीवनकाल में हम उनके शाश्वत-कोटि के शोध सम्पादनादि कार्यों के श्रम का मूल्यांकन नहीं कर पाये और उन्हें पुरस्कृत सम्मानित न करा सके। इसकी कसक निरन्तर बनी रहेगी।. ... उनके शोध-कार्य तो इतने अभूतपूर्व एवं अद्भुत हैं कि उन महापुरुषों की स्वर्ण-मूर्त्तियाँ भी बनवाकर नई पीढ़ी को प्रेरित करने हेतु यदि शिक्षण-संस्थानों में स्थापित कराई जावें तो भी उनके ऋण से उऋण नहीं हो सकते।"

आचार्यश्री का उक्त कथन यथार्थ है। बीसवीं सदी में प्राकृत एवं जैन-विद्या के क्षेत्र में जो भी क्रान्ति आई तथा सर्वत्र जो प्रचार-प्रसार हुआ, उसमें उक्त दोनों सरस्वती-पुत्रों के निस्वार्थ त्याग एवं कठोर-साधना ही प्रमुख कारण है। अतः यह ग्रन्थ उन्हीं की पुण्य-स्मृति में समर्पित कर मेरा हृदय भी आज अत्यन्त प्रमुदित है।

अपभ्रंश अकादमी जयपुर के निदेशक प्रो. (डॉ.) कमलचन्द जी सोगानी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने प्राक्कथन लिखकर प्रस्तुत ग्रन्थ का मूल्यांकन किया।

इस ग्रन्थ के शीघ्र प्रकाशन के लिए भारतीय ज्ञानपीठ के प्रबन्ध न्यासी श्रीमान् साहू अखिलेश जैन एवं निदेशक डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय के प्रति सदैव आभारी रहूँगा। इस ग्रन्थ को नयनाभिराम बनाने में आदरणीय डॉ. गुलाबचन्द्र जी ने जो परिश्रम किया, उसके लिए मैं उनका भी सदा ऋणी रहूँगा।

प्रस्तावना के लेखन-कार्य में मैंने जिन-जिन सन्दर्भ-ग्रन्थों एवं पत्र-पत्रिकाओं से सहायता ली है, उनके लेखकों एवं सम्पादकों के प्रति भी मैं सादर आभार व्यक्त करता हूँ।

प्रस्तुत ग्रन्थ की नई प्रेस-कॉपी तैयार करने में श्री सुरेश राजपूत ने कठिन परिश्रम किया है तथा उसकी शब्दानुक्रमणी तैयार करने में प्रो. डॉ. (श्रीमती) विद्यावती जैन ने पूर्ण सहायता की है, अतः उनके प्रति अपना स्नेहादर व्यक्त करता हूँ। परमपूज्य आचार्यश्री का तो अथ से इति तक मंगल-आशीर्वाद ही मिलता रहा, जिस कारण श्रान्त होने का अनुभव ही न हो सका। इसके लिये उन्हें मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ।

ग्रन्थ के सम्पादन-कार्य में मैंने यद्यपि पूर्ण निष्ठा तथा सावधानीपूर्वक कार्य किया है, फिर भी, उसमें अनेक त्रुटियों का रह जाना सम्भव है। अतः उनके लिए मैं अपने कृपालु पाठकों से क्षमा-याचना करता हुआ एक अनुभवी लेखक Don Carlos की निम्न पंक्तियों का सादर स्मरण करता हुआ विराम लेता हूँ–

> Nothing would ever be written if a man waited till he could write it
> so well that no reviewer could find fault with it.

महावीर जयन्ती
11 अप्रैल 2006

विनयावनत
राजाराम जैन

बी-5/40सी, सैक्टर-34, धवलगिरि
नोयडा-201307 उ.प्र.

विषयानुक्रम

सन्धि एवं कडवक–क्रमानुसार

प्रथम सन्धि (पृष्ठ 1-25)

सन्धि	क्र.		पृ.सं.
1/1	(1)	पार्श्व की मंगल-स्तुति	1
1/2	(2)	कवि बुध श्रीधर यमुना नदी पारकर ढिल्ली (वर्तमान दिल्ली) पट्टन में पहुँचता है–	2
1/3	(3)	ढिल्ली (वर्तमान दिल्ली) पट्टन की समृद्धि का वर्णन तथा वहाँ के राजा त्रिभुवनपति (तोमर) की प्रशंसा–	4
1/4	(4)	राजा अनंगपाल तोमर का मन्त्री अल्हण साहु, कवि श्रीधरकृत चन्द्रप्रभचरित-काव्य सुनकर कवि से प्रभावित हो जाता है–	6
1/5	(5)	अल्हण साहू कवि के लिए नट्टल साहू का पारिवारिक-परिचय देता है–	7
1/6	(6)	अल्हण साहू द्वारा नट्टल साहू के दान और गुणों की प्रशंसा–	8
1/7	(7)	दुर्जनों की निन्दाकर स्वामिमानी कवि बुध श्रीधर जब नट्टल साहू के पास जाना अस्वीकार करता है, तब अल्हण साहू, नट्टल साहू के उदार-चरित की पुनः प्रशंसा करता है–	9
1/8	(8)	अल्हण साहू के अनुरोध से कवि बुध श्रीधर का नट्टल साहू से मिलन–	10
1/9	(9)	साहू नट्टल दिल्ली के आदिनाथ-मन्दिर-निर्माणादि सत्कार्यों का स्मरण दिलाकर कवि श्रीधर से पार्श्वचरित के प्रणयन का अनुरोध करता है–	11
1/10	(10)	बुध श्रीधर द्वारा ग्रन्थ-प्रणयन की प्रतिज्ञा–	12
1/11	(11)	पार्श्वचरित-काव्य-लेखन प्रारम्भः काशी-देश वर्णन	13
1/12	(12)	काशी-देश की राजधानी वाणारसी के सम्राट हयसेन का परिचय–	14
1/13	(13)	पट्टरानी वामादेवी का नख-शिख वर्णन–	15
1/14	(14)	इन्द्र के आदेशानुसार यक्ष ने वाणारसी नगरी को इन्द्रपुरी के समान सुन्दर बना दिया–	16
1/15	(15)	वाणारसी नगरी के सौन्दर्य एवं समृद्धि का वर्णन–	17
1/16	(16)	स्वर्ग लोक की देवियों के सौन्दर्य और उनकी कला के प्रति अभिरुचि का रोचक वर्णन तथा उनके द्वारा वामादेवी की स्तुति–	18
1/17	(17)	देवियों द्वारा वामा-माता की स्तुति–	19
1/18	(18)	देवियों द्वारा माता-वामा की विभिन्न सेवाएँ–	20
1/19	(19)	रात्रि के अन्तिम प्रहर में माता-वामा द्वारा स्वप्न-दर्शन–	21

1/20	(20)	सम्राट् हयसेन (अश्वसेन) द्वारा स्वप्न-फल-कथन–	23
1/21	(21)	पार्श्व प्रभु का गर्भ में आगमन और जन्म-कल्याणक-	24

दूसरी सन्धि (पृष्ठ 26-46)

2/1	(22)	शिशु की अपूर्वता का वर्णन–	26
2/2	(23)	इन्द्र के लिये पार्श्व के जन्म-कल्याणक की सूचना–	27
2/3	(24)	इन्द्र का देवों के परिवार के साथ वाणारसी की ओर प्रस्थान–	28
2/4	(25)	इन्द्र का देवों तथा देवियों के साथ वाणारसी में आगमन–	29
2/5	(26)	इन्द्राणी ने शिशु-जिनेन्द्र को इन्द्र के लिये सौंप दिया–	30
2/6	(27)	वह देवेन्द्र जिनेन्द्र-शिशु को सुमेरु पर्वत पर ले जाता है–	31
2/7	(28)	शिशु-जिनेन्द्र का जन्माभिषेक-उत्सव–	32
2/8	(29)	इन्द्र ने जिनेन्द्र को बहुमूल्य विविध आभूषणों से विभूषित किया–	33
2/9	(30)	देवों द्वारा उत्सव का आयोजन तथा शिशु जिनेन्द्र का नामकरण–	34
2/10	(31)	देवों द्वारा स्तवन–	35
2/11	(32)	सुमेरु-पर्वत से वापिस लौटकर इन्द्र ने जिनेन्द्र-शिशु को उसकी माता को सौंपा–	36
2/12	(33)	शिशु-जिनेन्द्र के प्रति उसकी जननी की भावभरित कल्पनाएँ–	37
2/13	(34)	देवों एवं मनुष्यों ने हयसेन के राजभवन में जाकर जन्मोत्सव मनाया–	39
2/14	(35)	प्रभु पार्श्व की बाल-लीलाएँ–	40
2/15	(36)	पार्श्व के बाल्यकाल का वर्णन–	41
2/16	(37)	बालक पार्श्व के शरीर की शोभा का वर्णन–	42
2/17	(38)	बालक पार्श्व की विविध कलाओं के ज्ञान-विज्ञान के प्रशिक्षण की सूची–	43
2/18	(39)	कर्नाटक, हरयाणा आदि 25 देशों के पराक्रमी नरेश सम्राट् हयसेन के दर्शनार्थ तथा उन्हें बधाई देने हेतु उनकी राज्यसभा में आते हैं–	44

तीसरी सन्धि (पृष्ठ 47-67)

3/1	(40)	अन्य किसी एक दिन राजा हयसेन की राज्यसभा में एक सन्देशवाहक (राजदूत) आता है :– राजदूत के लक्षणों का रोचक वर्णन–	47
3/2	(41)	कुशस्थल के राजा शक्रवर्मा को वैराग्य तथा राजा रविकीर्ति का राज्याभिषेक : वह रविकीर्ति राजा हयसेन के यहाँ एक सन्देश भेजता है–	48
3/3	(42)	राजा रविकीर्ति द्वारा प्रेषित राजा शक्रवर्मा के वैराग्य सम्बन्धी सन्देश को पाकर राजा हयसेन शोकसागर में डूब जाता है–	49
3/4	(43)	विवेकशील विद्वानों तथा सभासदों द्वारा राजा हयसेन को शोक त्याग करने का उपदेश। शोकाकुल रहने से हानियाँ–	50
3/5	(44)	सन्देश-वाहक के अनुसार कालिन्दी-नदी के तटवर्त्ती जनपद का स्वामी— यवनराजा रविकीर्ति से उसकी पुत्री का हाथ माँगता है और न देने पर उसे युद्ध की धमकी देता है। इस पर–	51

3/6	(45)	राजा रविकीर्ति का आक्रोश। वह यवनराज से पराजित होने पर अग्निप्रवेश की प्रतिज्ञा कर लेता है–	52
3/7	(46)	दूत का कथन सुनकर हयसेन आगबबूला हो जाते हैं–	53
3/8	(47)	राजा हयसेन यवनराज के प्रस्ताव की तीव्र भर्त्सना कर रण-प्रयाण की तैयारी करते हैं–	54
3/9	(48)	राजा हयसेन के युद्ध-प्रयाण के आदेश एवं रणभेरी की गर्जना–	55
3/10	(49)	रण-प्रस्थान के लिए व्याकुल योद्धाओं से उनकी पत्नियों की अभिलाषाएँ	55
3/11	(50)	रण-प्रयाण के लिए व्याकुल सुभट-पतियों के लिए उनकी पत्नियों के मर्म-भेदी प्रतिबोधन	56
3/12	(51)	राजा हयसेन की वाणारसी से रणभूमि की ओर प्रयाण की तैयारी	57
3/13	(52)	राजकुमार पार्श्व का यवनराज के साथ युद्ध करने का अपने पिता से प्रस्ताव	58
3/14	(53)	यवनराज के साथ युद्ध में भिड़ने सम्बन्धी पिता-पुत्र के उत्तर-प्रत्युत्तर	59
3/15	(54)	राजकुमार पार्श्व ने अपने पिता हयसेन को अपनी चमत्कारी शक्ति का परिचय दिया	60
3/16	(55)	राजा हयसेन पार्श्व को यवनराज से युद्ध करने की स्वीकृति प्रदान कर देते हैं। पार्श्व का चतुरंगिणी-सेना के साथ शुभ-शकुनों के मध्य रण-प्रयाण	61
3/17	(56)	रण-प्रयाण के समय पार्श्व के मार्ग में अनेक शुभ–शकुन। एक सरोवर के किनारे उनका ससैन्य विश्रामः मनोहारी सन्ध्या-वर्णन	62
3/18	(57)	सन्ध्या-वर्णन	63
3/19	(58)	कृष्ण रात्रि का आलंकारिक वर्णन	64
3/20	(59)	सुप्रभात – सूर्योदय का मनोहारी वर्णन	65

चौथी सन्धि (पृष्ठ 68-93)

4/1	(60)	पार्श्वकुमार का शत्रुओं को दहला देने वाला रण-प्रयाण (जारी) :	68
4/2	(61)	पार्श्व का रण-प्रयाण सुनकर यवनराज भी युद्ध-भूमि के लिये प्रस्थान करता है। पार्श्व की रविकीर्ति से भेंट	69
4/3	(62)	पार्श्व के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित कर राजा रविकीर्ति की सैन्य-तैयारी	70
4/4	(63)	रणबाँकुरे महाभटों की दर्पोक्तियाँ	71
4/5	(64)	यवनराज के साथ युद्ध में कुमार पार्श्व का साथ देने के लिये दूर-दूर से अनेक राजागण ससैन्य पधारे। पार्श्व द्वारा उनका सम्मान	73
4/6	(65)	दोनों शत्रु-सेनाओं में तुमुल-युद्ध प्रारम्भ	74
4/7	(66)	प्रचण्ड युद्ध-जनित धूलि ने पृथिवी को अंधकाराच्छन्न कर दिया	75
4/8	(67)	दोनों शत्रु-सेनाओं में तुमुल-युद्ध	76
4/9	(68)	तुमुल-युद्ध वर्णन	77
4/10	(69)	युद्ध की तीव्रता का वर्णन	78
4/11	(70)	रण-प्रचण्ड राजा रविकीर्ति यवनराज की समस्त रण-साधन-सामग्री नष्ट कर देता है और उसे रणभूमि से खदेड़ देता है–	79

4/12	(71)	यवनराज की पराक्रम-शक्ति	80
4/13	(72)	राजा रविकीर्ति का शौर्य-वीर्य-पराक्रम	81
4/14	(73)	राजा रविकीर्ति का शौर्य-वीर्य-पराक्रम वर्णन	82
4/15	(74)	राजा रविकीर्ति की यवनराज के पाँच दुर्दान्त योद्धाओं से भिड़न्त	83
4/16	(75)	दुर्धर पाँच यवन-भटों के पतन के बाद यवनराज के दुर्दान्त 9 पुत्र युद्ध में उतरते हैं। रविकीर्ति अकेले ही उनके सिरों को विखण्डित कर डालता है	85
4/17	(76)	शत्रु-राजा का प्रधान सैन्याधिकारी श्रीनिवास, राजा रविकीर्ति को अपने बाण-समूह से घेर लेता है	86
4/18	(77)	शत्रु-राजा का प्रधान सैन्याधिकारी श्रीनिवास, रविकीर्ति को बुरी तरह घायल कर देता है	87
4/19	(78)	राजा रविकीर्ति श्रीनिवास का वध कर डालता है	88
4/20	(79)	पद्मनाथ एवं रविकीर्ति का तुमुल-युद्ध	90
4/21	(80)	राजा रविकीर्ति द्वारा पद्मनाथ एवं उसके यवन-सुभटों का विनाश	91

पाँचवीं सन्धि (पृष्ठ 94-112)

5/1	(81)	क्रोधावेश में आकर यवनराज, राजा रविकीर्ति को अपने गज-व्यूह से घेर लेता है	94
5/2	(82)	रौद्र रूप धारण कर राजा रविकीर्ति, यवनराज के अनेक मदोन्मत्त हाथियों तथा उसके सुभटों को मार डालता है।	95
5/3	(83)	यवनराज ने मुँह की खाकर भी रविकीर्ति को गज-समूह से पुनः घिरवा लिया	96
5/4	(84)	महामन्त्रियों का निवेदन सुनकर राजकुमार पार्श्व अक्षोहिणी-सेना के साथ रण-प्रयाण करते हैं	98
5/5	(85)	कुमार-पार्श्व का रक्त-रंजित-समर-भूमि में प्रवेश	99
5/6	(86)	कुमार पार्श्व अपने रण-कौशल से यवनराज के करीन्द्रों के छक्के छुड़ा देता है	100
5/7	(87)	यवनराज अपने महागजों की संहार-लीला से अत्यन्त क्रोधित हो उठता है	101
5/8	(88)	यवनराज अपने गज-समूह के संहार पर चिन्तित होकर अपने महाशत्रु पार्श्व की शक्ति पर विचार करता है	103
5/9	(89)	यवनराज एवं कुमार पार्श्व का समर-भूमि में भर्त्सनापूर्ण वार्तालाप	104
5/10	(90)	विविध प्रहरणास्त्रों द्वारा दोनों में तुमुल-युद्ध	105
5/11	(91)	कुमार पार्श्व ने युद्ध में यवनराज के छक्के छुड़ा दिये	106
5/12	(92)	अपनी पराजय होती देखकर क्रुद्ध यवनराज, कुमार पार्श्व पर अमोघ-शक्ति-प्रक्षेपास्त्र छोड़ता है	107
5/13	(93)	यवनराज की असाधारण शक्ति का वर्णन	108
5/14	(94)	कुमार पार्श्व के विषैले बाण से घायल वह यवनराज मूर्च्छित हो जाता है	110
5/15	(95)	दुर्धर यवनराज की पराजय	111

छठी सन्धि (पृष्ठ 113-133)

6/1	(96)	कुमार पार्श्व ने सभी शत्रु-भटों को क्षमादान प्रदान किया	113
6/2	(97)	विजेता के रूप में कुमार पार्श्व रविकीर्ति के साथ कुशस्थल नगर में प्रवेश करते हैं : नगर-सजावट का वर्णन	114
6/3	(98)	शत्रु-मन्त्रियों द्वारा प्रार्थना किए जाने पर रविकीर्ति यवनराज को भी बन्धन-मुक्त कर देता है	115
6/4	(99)	वसन्त-मास का आगमन : वसन्त-सौन्दर्य-वर्णन : राजा रविकीर्ति अपने विश्वस्त मन्त्रियों के साथ मन्त्रणा-गृह में आता है	116
6/5	(100)	राजा रविकीर्ति अपनी पुत्री प्रभावती का विवाह कुमार पार्श्व के साथ करने का निश्चय करता है। मुहूर्त-शोधन के लिये वह ज्योतिषी को बुलवाता है	117
6/6	(101)	राजा रविकीर्ति पार्श्व के सम्मुख अपनी पुत्री प्रभावती के साथ विवाह का प्रस्ताव रखता है	118
6/7	(102)	कुमार पार्श्व रविकीर्ति के साथ नगर में उस स्थल पर पहुँचते हैं, जहाँ अग्नि-तापस कठिन तपस्या कर रहे थे	119
6/8	(103)	कुमार पार्श्व जब तापसों की वृत्ति एवं प्रवृत्ति देख रहे थे, तभी कमठ नामका एक अशुभंकर तापस वहाँ आया	120
6/9	(104)	पार्श्व के कथन से रुष्ट होकर तथा उन्हें शाप देने का विचार करता हुआ क्रोधित कमठ लक्कड पर तीक्ष्ण कुठार चलाता है	121
6/10	(105)	खून से लथपथ भुजंग को देखकर पार्श्व को वैराग्य हो जाता है। णमोकार-मन्त्र के प्रभाव से वह भुजंग मरकर धरणेन्द्र देव का जन्म प्राप्त करता है और इधर क्रोधित कमठ मरकर मेघमाली नामक असुरेन्द्र देव होता है	122
6/11	(106)	पार्श्व को वैराग्य। इन्द्र ने क्षीरसागर के पवित्र जल से उनका अभिषेक किया	123
6/12	(107)	समग्र वस्त्राभूषणादि का त्याग कर पार्श्व ने दीक्षा धारण कर ली	124
6/13	(108)	गजपुर नगर में पार्श्व के आहार के समय पंचाश्चर्य प्रकट हुए	125
6/14	(109)	कुमार पार्श्व के दीक्षित हो जाने के कारण शोकाकुल रविकीर्ति को अकेले ही कुशस्थल लौटना पड़ता है	127
6/15	(110)	प्रिय-विरह में राजकुमारी प्रभावती का करुण-क्रन्दन	128
6/16	(111)	पुत्र-वियोग में राजा हयसेन शोकाकुल हो जाते हैं	129
6/17	(112)	राजा हयसेन को शोकाकुल देखकर उनका मन्त्री उनको समझाता है	130
6/18	(113)	प्रिय पुत्र-वियोग में माता वामादेवी का करुण-क्रन्दन	131
6/19	(114)	महामति बुधजनों ने शोकाकुल माता वामादेवी को सम्बोधित किया। रविकीर्ति वाणारसी से अकेला ही वापिस कुशस्थल लौट आता है	132

सातवीं सन्धि (पृष्ठ 134-158)

7/1	(115)	पार्श्व मुनि की साधना का वर्णन, वे विहार करते हुए भीमावटी-वन में पहुँचते हैं	134

7/2	(116)	विविध जंगली जानवरों से युक्त तथा विभिन्न वृक्षावलियों से सुशोभित भीमावटी-वन की एक खुरदरी शिला पर पार्श्व-मुनि कायोत्सर्ग-मुद्रा में ध्यानस्थ हो गये	135
7/3	(117)	असुराधिपति मेघमाली (–कमठ) क्रीड़ा-विहार करता हुआ उस भीमाटवी-वन में आया	136
7/4	(118)	पार्श्व मुनीन्द्र की असाधारण तपश्चर्या के प्रभाव से असुराधिपति मेघमाली (कमठ) का विमान बीच में ही अवरुद्ध हो जाता है	137
7/5	(119)	सौमनस नामक यक्ष ध्यानस्थ पार्श्व पर उपसर्ग न करने के लिये असुराधिपति मेघमाली को समझाता है	139
7/6	(120)	सौमनस-यक्ष असुराधिपति को पार्श्व मुनीन्द्र पर उपसर्ग न करने की पुनः सलाह देता है	140
7/7	(121)	असुराधिपति मेघमाली द्वारा अनिच्छित सलाह के लिये सौमनस-यक्ष की भर्त्सना	142
7/8	(122)	बज्र-प्रहरण असफल होने पर वह असुराधिपति मेघमाली पार्श्व-मुनीन्द्र पर असाधारण मेघवर्षा कर उपसर्ग करता है	143
7/9	(123)	असुराधिपति मेघमाली द्वारा पार्श्व-मुनीन्द्र पर किये गये दुर्धर मेघोपसर्ग के असफल हो जाने पर प्रचण्ड वायु द्वारा पुनः उपसर्ग–	144
7/10	(124)	असुराधिपति प्रहरणास्त्रों से जब पार्श्व को तपस्या से न डिगा सका, तब वह रूपस्विनी अप्सराएँ भेजकर उन पर पुनः उपसर्ग करता है	145
7/11	(125)	ध्यानस्थ पार्श्व-मुनीन्द्र पर उन रूपस्विनी अप्सराओं के भाव-विभ्रमों का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा	147
7/12	(126)	जब रूपस्विनी अप्सराएँ भी पार्श्व को ध्यान से विचलित न कर सकीं, तब वह दुष्ट कमठासुर अग्निदेव के द्वारा उपसर्ग करने का असफल प्रयत्न करता है	148
7/13	(127)	असुराधिपति द्वारा प्रेषित अग्निदेव-कृत उपसर्ग के निष्प्रभावी हो जाने के बाद पुनः उपसर्ग हेतु भेजा गया रौद्र-समुद्र पार्श्व के तपस्तेज से प्रभावित होकर उनके चरणों का सेवक बन जाता है	149
7/14	(128)	विकराल श्वापद-गण भी पार्श्व प्रभु को उनकी तपस्या से विचलित न कर सके	151
7/15	(129)	वैतालों द्वारा उपसर्ग कराये जाने पर भी जब असुराधिपति वह कमठ पूर्णतया असफल हो गया, तब क्रोधारक्त होकर वह अपना अधरोष्ठ चबाने लगा	152
7/16	(130)	निराश एवं उदास वह कमठासुर घने मेघों को आमन्त्रित कर उनके माध्यम से पार्श्व पर उपसर्ग करता है	154
7/17	(131)	सघन-मेघों का आलंकारिक वर्णन	155
7/18	(132)	सजल-मेघ का महाउपसर्ग	156

आठवीं सन्धि (पृष्ठ 159-174)

8/1	(133)	स्वर्ग में धरणेन्द्र का सिंहासन कम्पित हो उठता है	159
8/2	(134)	धरणेन्द्र शीघ्र ही उपसर्ग-स्थल पर पहुँचता है	160

8/3	(135)	धरणेन्द्र ने पार्श्वप्रभु के ऊपर अपने सात फणों का मण्डप तान दिया	161
8/4	(136)	कमठासुर द्वारा धरणेन्द्र पर बज्र-प्रहार कर दिया गया	163
8/5	(137)	क्रोधावेश में वह कमठ धरणेन्द्र पर भी अधिकाधिक उपसर्ग करने लगता है	164
8/6	(138)	विभिन्न उपसर्गों के मध्य भी पार्श्व को केवलज्ञान उत्पन्न हो जाता है	165
8/7	(139)	सुरेन्द्र पार्श्व प्रभु के समीप आता है तथा क्रोधित होकर वह कमठ पर बज्रदण्ड से प्रहार करता है	167
8/8	(140)	समवशरण की रचना : आलंकारिक वर्णन	168
8/9	(141)	द्वादश प्रकोष्ठों वाले समवशरण की रचना	169
8/10	(142)	सुरेन्द्र द्वारा पार्श्व की स्तुति	171
8/11	(143)	हस्तिनागपुर-नरेश स्वयम्भू-राजा को वैराग्य उत्पन्न हो जाता है	172
8/12	(144)	राजा स्वयम्भू स्वयं ही पार्श्व से दीक्षा ग्रहण कर लेता है	173

नौवीं सन्धि (पृष्ठ 175-196)

9/1	(145)	लोकाकाश-वर्णन	175
9/2	(146)	नरक-वर्णन	176
9/3	(147)	नरक-वर्णन (जारी)	177
9/4	(148)	नारकियों की आयु का वर्णन	178
9/5	(149)	नारकियों का बहुआयामी रोचक वर्णन	179
9/6	(150)	भवनवासी एवं व्यन्तरदेवों के नाम तथा उनके निवास-स्थल	180
9/7	(151)	ज्योतिषी देवों के निवास-स्थलों की पारस्परिक दूरी	181
9/8	(152)	स्वर्ग-कल्पों की संरचना	182
9/9	(153)	विविध स्वर्गों के देव-विमानों की संख्या	183
9/10	(154)	देवों एवं ग्रह-नक्षत्रों का आयु-प्रमाण	184
9/11	(155)	वैमानिक देवों की आयु एवं ऊँचाई का प्रमाण	185
9/12	(156)	विविध प्रकार के देवों की दृष्टि का प्रसार कहाँ-कहाँ तक? तथा अन्य वर्णन	186
9/13	(157)	मध्यलोक वर्णन : द्वीप, पर्वत एवं क्षेत्र आदि एवं अन्य भौगोलिक इकाइयों का वर्णन	187
9/14	(158)	निषध आदि पर्वतों एवं भरत आदि क्षेत्रों का वर्णन	188
9/15	(159)	पूर्व-विदेह क्षेत्र का वर्णन	189
9/16	(160)	छह कुलाचलों पर स्थित छह महाह्रदों का वर्णन	190
9/17	(161)	धातकी खण्ड द्वीप एवं कालोदधि समुद्र आदि का वर्णन	191
9/18	(162)	अढाई द्वीप तथा पर्वतों, नदियों, क्षेत्रों एवं समुद्रों का वर्णन	192
9/19	(163)	मनुष्यों की गमन-सीमा आदि का वर्णन तथा विभिन्न द्वीपों एवं समुद्रों में सूर्यों एवं चन्द्रमाओं की संख्या एवं उनकी गति	193
9/20	(164)	अकृत्रिम जिन-मन्दिरों की संख्या एवं उनका रोचक वर्णन	194
9/21	(165)	कमठासुर अपने पापों का प्रायश्चित करता है और जिन-दीक्षा ले लेता है	195

दसमी सन्धि (पृष्ठ 197-216)

10/1	(166)	भक्तजनों द्वारा पार्श्व की स्तुति एवं पार्श्व-विहार : वे कुशस्थल-नगर के नन्दन-वन में पहुँचते हैं	197
10/2	(167)	वनपाल द्वारा राजा रविकीर्ति के लिए नन्दन-वन में पार्श्व के समवशरण के आगमन की सूचना	198
10/3	(168)	पार्श्व प्रभु का श्रावक-धर्म पर प्रवचन	199
10/4	(169)	श्रावक धर्म पर प्रवचन (जारी)	200
10/5	(170)	अहिंसा ही परम-धर्म है	201
10/6	(171)	पाँच अणुव्रतों एवं तीन गुणव्रतों का वर्णन। श्रावक-धर्म प्रवचन (जारी)	202
10/7	(172)	चार शिक्षाव्रत। श्रावक-धर्म प्रवचन (जारी)	203
10/8	(173)	पार्श्व प्रभु शौरीपुर-नगर में प्रवेश करते हैं	204
10/9	(174)	शौरीपुर के राजा प्रभंजन का धर्म-श्रवण हेतु समशरण में प्रवेश	205
10/10	(175)	राजा प्रभंजन जीवादि-तत्त्वों की जानकारी हेतु पार्श्व से प्रश्न पूछता है	206
10/11	(176)	पार्श्व प्रभु द्वारा 84 लाख योनियों का वर्णन	207
10/12	(177)	धर्म-पालन के फल	208
10/13	(178)	वैराग्य का उपदेश	209
10/14	(179)	मनुष्य-जन्म की दुर्लभता	210
10/15	(180)	मिथ्यात्व की तीव्रता	211
10/16	(181)	संयम-धर्म के ग्रहण करने का उपदेश	212
10/17	(182)	श्रामण्य-धर्म	213
10/18	(183)	दुर्लभ मनुष्य-जन्म में श्रद्धान् करना आवश्यक	214
10/19	(184)	प्रभंजन राजा का दीक्षा लेना	215

ग्यारहवीं सन्धि (पृष्ठ 217-242)

11/1	(185)	पार्श्व प्रभु विहार करते-करते वाणारसी पहुँचते हैं	217
11/2	(186)	राजा हयसेन द्वारा पार्श्वप्रभु से जिज्ञासा भरे प्रश्न	218
11/3	(187)	जम्बूद्वीप एवं भरत-क्षेत्र तथा सुरम्य-देश की समृद्धि का मनोहारी वर्णन	219
11/4	(188)	पोदनपुरी-नगरी की समृद्धि का वर्णन	220
11/5	(189)	पोदनपुरी के राजा अरविन्द का वर्णन	221
11/6	(190)	राजा अरविन्द की पट्टरानी प्रभावती का वर्णन	222
11/7	(191)	राजपुरोहित विश्वभूति एवं उसके परिवार का वर्णन	223
11/8	(192)	गुणज्ञ मरुभूति राजपुरोहित का पद प्राप्त करता है	224
11/9	(193)	अनुजवधु-वसुन्धरी के साथ कमठ का प्रेम-व्यापार	225
11/10	(194)	रणविजेता मरुभूति घर लौट आता है, और अपनी भाभी से अपनी पत्नी वसुन्धरी के काले कारनामे सुनकर दुखी हो जाता है	226
11/11	(195)	दुष्चरित्र कमठ को राजा अरविन्द निर्वासित कर देता है	227
11/12	(196)	भ्रातृ-स्नेह का आदर्श उदाहरण	228

11/13	(197)	सिन्धु नदी के तट पर मरुभूति की कमठ से अचानक ही भेंट	229
11/14	(198)	कमठ मरकर विषैले कुक्कुट-सर्प की योनि प्राप्त करता है	230
11/15	(199)	राजा अरविन्द के पूर्वभव : चतुर्गति दुख-वर्णन	231
11/16	(200)	राजा अरविन्द मुनि-दीक्षा लेकर सल्लकीवन में कठोर तपस्या करने लगता है	232
11/17	(201)	महासार्थवाह समुद्रदत्त सदल-बल अरविन्द मुनीन्द्र से धर्म-प्रवचन सुनता है	233
11/18	(202)	दातार के सात गुण	234
11/19	(203)	दातारों के लक्षण	235
11/20	(204)	अधमदान एवं उत्तम दान की विशेषताएँ	236
11/21	(205)	अभयदान, आहारदान एवं औषधिदान का महत्त्व	237
11/22	(206)	शास्त्रदान का महत्त्व एवं उत्तम पात्रादि भेद-वर्णन	238
11/23	(207)	ग्यारह प्रतिमाएँ एवं मध्यम तथा जघन्य पात्रों के लक्षण	239
11/24	(208)	पात्र-भेद-जघन्य पात्र, कुपात्र एवं अपात्र	240
11/25	(209)	उत्तम पात्र, मुनिराज के लिये आहारदान देने की विधि एवं उसका तथा अन्य दानों के फल	241

बारहवीं सन्धि (पृष्ठ 243-261)

12/1	(210)	गजराज-अशनिघोष, मुनीन्द्र अरविन्द से एकाग्रभावपूर्वक अपना पूर्वभव सुनता है	243
12/2	(211)	अरविन्द मुनीन्द्र के उपदेश से प्रभावित होकर वह गजराज-अशनिघोष व्रत ग्रहण कर लेता है	244
12/3	(212)	गजराज अशनिघोष लगातार चार वर्षों तक कठोर व्रताचरण करता रहता है	245
12/4	(213)	पूर्वजन्म का शत्रु-कुक्कुट-सर्प उस गजराज को डँस लेता है	246
12/5	(214)	गजराज ने संन्यास धारण कर शुभ ध्यान पूर्वक देहत्याग किया और सहस्रार-स्वर्ग में देवेन्द्र हुआ।	247
12/6	(215)	राजा विद्युद्वेग, समुद्रसागर-मुनि से प्रव्रज्या ग्रहण करता है	248
12/7	(216)	संसार की नश्वरता जानकर राजा किरणवेग भी दीक्षा ले लेता है	249
12/8	(217)	दीर्घकाय अजगर, मुनिराज को निगल जाता है। अजगर भी दावाग्नि में जलकर भस्म हो जाता है	250
12/9	(218)	राजा बज्रवीर अपने पुत्र चक्रायुध को राज्य-भार सौंपकर दीक्षा ले लेता है	251
12/10	(219)	राजा चक्रायुध भी अपने पुत्र बज्रायुध को राज्य-पाट सौंपकर दीक्षित हो जाता है	252
12/11	(220)	पूर्वजन्म का जीव-चक्रायुध-सुरेश, देव-योनि से चयकर रानी प्रभंकरी के गर्भ में आता है	253
12/12	(221)	एक दिन चक्रवर्ती-सम्राट् कनकप्रभ सुमधुर आकाशवाणी सुनता है	254
12/13	(222)	चक्रवर्ती-चक्रायुध घोर-तपस्या कर तीर्थंकर-गोत्र का बन्ध करता है	255
12/14	(223)	भिल्लाधिपति कुरंग के जन्म-जन्मान्तरों का वर्णन	256
12/15	(224)	राजपुरोहित विश्वभूति एवं उसके पुत्रों के जन्म-जन्मान्तरों का वर्णन	257
12/16	(225)	जन्म-जन्मान्तरों के दुख सुनकर राजा हयसेन एवं वामादेवी को वैराग्य हो जाता है और वे दीक्षा ले लेते हैं	258

12/17	(226)	पार्श्व प्रभु के चतुर्विध-संघ की गणना एवं सम्मेदाचल (वर्तमान झारखण्ड-प्रान्त में स्थित) पर उनका मोक्ष-गमन	259
12/18	(227)	आश्रयदाता के प्रति कवि की कल्याण-कामना, रचना-स्थल एवं रचना-काल की सूचना एवं बुधजनों तथा लेखक-कवियों से उसकी विनम्र प्रार्थना	260
		पुष्पिका	261
		नट्टल-प्रशस्ति एवं प्रतिलिपिकार प्रशस्ति	262
		आवश्यक टिप्पणियाँ	267
		शब्दानुक्रमणिका	279
		सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची	319

कइवर बुह सिरिहर गुंफिय
पासणाहचरिउ

पढमा संधी

1/1

Victory to Lord Pārśwa, the Hero of the Epic.

घत्ता— पूरिय भुअणासहो पाव-पणासहो णिरुवम गुणमणिगण भरिउ।
तोडिय भवपासहो पणविवि पासहो पुणु पयडमि तासु जि चरिउ।। छ।।

जय रिसह परीसह-सहणसील
जय अजिय परज्जिय पर दुसील।।
जय संभव भव-भंजण समत्थ
जय संवर-णिव-णंदण समत्थ।।
5 जय सुमइ समज्जिय सुमइ-पोम
जय पउमप्पह पह-पहय-पोम।।
जय-जय सुपासु वसु पास णास
जय चंदप्पह-पहणिय स-णास।।
जय सुविहि-सुविहि-पयडण-पवीण
जय सीयल पर-मय सप्प-वीण।।
जय सेय-सेय लच्छी-णिवास
जय वासुपुज्ज परिहरिय-वास।।
जय विमल-विमल-केवलपयास
जय-जय अणंत पूरिय-पयास।।

1/1

पार्श्व की मंगल-स्तुति—

घत्ता— भुवन (तीन लोकों के जीवों) की आशा (अभिलाषा) को पूर्ण करनेवाले, पापों के प्रणाशक, भव की पाश (मोह) को तोड़ने वाले श्री पार्श्वप्रभु को प्रणाम कर मैं (बुध श्रीधर) उनके अनुपम गुण रूपी मणिगण (रत्नसमूह) से भरे हुए चरित्र को प्रकट करता हूँ।। छ।।

परीषहों को सहन करने के स्वभाव वाले ऋषभदेव की जय हो। दुष्ट स्वभाव वाले तथा (संसार की चतुर्गतियों में भ्रमण कराने वाले) पर-(कर्मों) को जीतने वाले अजितनाथ की जय हो। भव (पंचपरावर्त्तन के कारणभूत मोह, राग-द्वेष) के चूर्ण करने में समर्थ सम्भवनाथ की जय हो। संवर राजा के समर्थ पुत्र अभिनन्दननाथ की जय हो।

सुमति (केवलज्ञान) रूपी पद्मा (लक्ष्मी) को अर्जित करनेवाले सुमतिनाथ की जय हो। (अपनी–) प्रभा से पद्मों (रक्ताभ-कमलों) को प्रहत करने वाले (नीचा दिखाने वाले) पद्मप्रभ की जय हो। अपनी मृत्यु पर विजय प्राप्त करने वाले अथवा ज्ञानियों की आशा-पाश का हनन (नष्ट पूर्ण) करने वाले चन्द्रप्रभ की जय हो। सुविधि (–मोक्षमार्ग की पद्धति) को प्रकट करने में प्रवीण सुविधिनाथ (पुष्पदन्त) की जय हो। परमत रूपी सर्पों को नष्ट करने के लिए गरुड-वीण के समान, शीतलनाथ की जय हो। श्रेय (पंचकल्याणक रूपी)–लक्ष्मी के निवासस्थान श्रेयांसनाथ की जय हो। वास (परमत रूपी दुर्गन्ध अथवा संसार के निवास) का परिहार (दूर) करनेवाले वासुपूज्य की जय हो।

विमल (द्रव्य-कर्म रूपी मल रहित) केवलज्ञान का प्रकाश करने वाले विमलनाथ की जय हो। अनन्त (लोक-

10 जय धम्म-धम्म-मग्गाणुवट्टि जय संति पाव-महि मइय वट्टि।।
जय कुंथु परिक्खिय कुंथु-सत्त जय अर अरिहंत-महंत सत्त।।
जय मल्लि-मल्लि पुज्जिय-पहाण जय मुणिसुव्वय सुव्वय-णिहाण।।
जय णमि णमियामर-खयरविंद जय णेमि णयण णिहयारविंद।।
जय पास जसाहय हीर-हास जय जयहि वीर परिहरिय-हास।।

15 घत्ता— इय णाण-दिवायर गुणरयणायर वित्थरंतु महु मइ-पवर।
जिणकव्वु कुणंतहो दुरिउ-हणंतहो सुर-कुरंग-मारण-सवर।। 1।।

1/2

Poet BUDHA ṢRIDHARA, the author of this Epic introduces himself and after composing his Epic named after CANDAPPAHA-CARIU reaches ḌHILLI-(Delhi) PAṬṬAṆA.

विरएवि चंदप्पहचरिउ चारु चिर चरिय-कम्म-दुक्खावहारु।।
विहरंतें कोऊहल-वसेण परिहच्छिय वाएसरि-रसेण।।
सिरि अयरवालकुल-संभवेण जणणी वील्हा-गब्भुब्भवेण।।
अणवरय विणय-पणयारुहेण कइणा बुह गोल्हु तणूरुहेण।।

अलोक) को प्रकाश (ज्ञान) से पूर्ण करने वाले अथवा प्रजाजनों की आशा को पूर्ण करने वाले एवं अपने चरणों से समस्त दिशाओं की आशा को पूर्ण करने वाले अनन्तनाथ की जय हो। धर्म-मार्ग की अनुवृत्ति करने वाले (अर्थात् धर्म-मार्गप्रवर्त्तक) धर्मनाथ की जय हो। पापों की भूमि की वाट को मथने वाले (मर्दन करने वाले) शान्तिनाथ की जय हो।

कुन्थु आदि जीवों की रक्षा करने वाले (अथवा कुन्थु आदि भी द्वीन्द्रिय जीव हैं, ऐसी परीक्षा करने वाले) कुन्थुनाथ की जय हो। अरि (मोहनीय कर्म) का नाश करने वाले महान् सत्व (बल) वाले अरहनाथ भगवान् की जय हो। मल्लिका (बेला-चमेली) पुष्पों से पूजित प्रधान (श्री) मल्लिनाथ की जय हो। उत्तम व्रतों के निधान (खजाने) स्वरूप मुनिसुव्रत नाथ की जय हो। अमर (देव) और खचर (विद्याधर) वृन्द (समूह) से नमस्कृत नमिनाथ की जय हो। अपने नेत्रों से अरविंद (कमल) की शोभा को भी जीत लेने वाले नेमिनाथ की जय हो। अपने (प्रशस्त) यश के द्वारा हीरा के हास्य (कान्ति) को आहत (नीचा) करने वाले पार्श्वनाथ की जय हो। हास्य (परनिंदा) को छोड़ने वाले वीरनाथ की जय हो, जय हो।

घत्ता— ऐसे ज्ञान-दिवाकर (सूर्य), गुण रूपी रत्नों के आकर (भंडार), स्मर (कामदेव) रूपी मृगों को मारने के लिए शबर (भिल्ल) के समान तथा पापों को हरने वाले वे जिनेन्द्र-गण प्रस्तुत जिनेन्द्र-काव्य (पासणाहचरिउ) के प्रणयन-हेतु मेरी बुद्धि में प्रवर विस्तार करें। (1)

1/2

कवि बुध श्रीधर यमुना नदी पारकर ढिल्ली (वर्तमान दिल्ली) पट्टन में पहुँचता है—

चिरकाल से आचरित (संचित) कर्मों के दुःखों का अपहरण करने वाले सुन्दर **चन्द्रप्रभ चरित** की रचना कर कौतूहलवश विहार (देशाटन) करते हुए, वागेश्वरी (सरस्वती) के प्रसाद-रस से सभी रसिक जनों के मन को जीत लेने वाले श्री **अग्रवाल** कुलोत्पन्न **"बील्हा"** नाम की माता के गर्भ से जन्म लेने वाले, अनवरत (निरन्तर) विनय एवं

पयडिय तिहुवणवइ-गुणभरेण मण्णिय सुहि-सुअणे सिरिहरेण।।
जउणासरि सुर-णर-हियय-हार णं वार-विलासिणि-पँउरहार।।
डिंडीर-पिंड-उप्परिय णिल्ल कीलिर-रहंग-थोव्वउ थणिल्ल।।
सेवाल-जाल-रोमावलिल्ल बुहयण-मण-परिरंजण-छइल्ल।।
भमरावलि-वेणी-वलय-लच्छि पफुल्ल-पोमदल-दीहरच्छि।।
पवणाहय-सलिलावत्त-णाहि विणिहय जणवय तणु-ताव-वाहि।।
वण मयगल-मयजल-घुसिणलित्त दरफुडिय सिप्पिउड-दसण-दित्त।।
वियसंत-सरोरुह-पवर-वत्त रयणायर-पवर पियाणुरत्त।।
विउलामल-पुलिण-णियंव जाम उत्तिण्णी णयणहि दिट्ठु ताम।।
हरियाणए देसे असंख गाम गामियिण जणिय अँणवरय काम।।

घत्ता— परचक्क-विहट्टणु सिरि संघट्टणु जो सुरवइणा परिगणिउ।
रिउ-रुहिरावट्टणु पविउलु पट्टणु ढिल्ली णामेण जि भणिउ।। 2।।

प्रणाम के योग्य बुध (ज्ञानी, विद्वान्) **"गोल्हु"** नामक पिता के पुत्र, प्रकट रूप में **त्रिभुवनपति** के गुणों से भरे हुए, सुखी स्वजनों द्वारा सम्मानित कवि **बुध श्रीधर** ने सुर-नर के हृदय को हरने वाली **यमुना नदी** को देखा, जो ऐसी प्रतीत हो रही थी, मानों वार-विलासिनियों के हृदय का श्रेष्ठ हार ही हो।

उस यमुना के ऊपर नील वर्ण (नभ की प्रतिच्छाया के कारण) वाला फेन-पुंज (उठ रहा) था, उस पर क्रीड़ा करते हुए चक्रवाक-पक्षी ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानों वे उस नदी रूपी नायिका के विकट स्तन ही हों। शैवाल-जाल (समूह) ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों वह उसकी रोमावलि हो। वह बुधजनों के मन का मनोरंजन करने के लिए छैला के समान लग रही थी।

(कमलपुष्पों पर मंडराने वाली) भ्रमरावली ऐसी प्रतीत हो रही थी, मानों वह उसके वेणी-वलय की शोभा ही हो। उसमें प्रफुल्लित पद्मदल ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानों वह उसकी नाभि ही हो।

जो (नदी) जनपद (नागरिकों) के शारीरिक ताप को नष्ट करती है, जो (नदी) वनगज के मदजल रूपी चन्दन से लिप्त है, जो (नदी) सीप के कुछ खुले हुए मुख के दाँतों की कान्ति से दीप्त है, जो विकसित कमलों के प्रवर मुख वाली है और प्रवर पति रत्नाकर (समुद्र) से अनुरक्त है, और विपुल निर्मल पुलिन (रेतीले मैदान) ही मानों जिसके नितम्ब हैं। इस प्रकार की नदी को जब कवि बुध श्रीधर ने उत्तीर्ण (पार) किया, तब उसने एक नगर को (अपने) नेत्रों द्वारा स्वयं देखा। वह ग्रामीणों द्वारा निरन्तर किये जाने वाले कार्यों में व्यस्त असंख्यात ग्रामों से युक्त **हरियाणा** देश में स्थित है।

घत्ता— वह **(ढिल्ली)** परचक्र (शत्रु सेना) को विघटित करने वाली (अर्थात् जहाँ शत्रुजनों का प्रवेश नहीं है) तथा श्री (लक्ष्मी) का संघटन करने वाली (अर्थात् प्रतिदिन जहाँ अच्छा व्यापार होता है), जिसको सुरपति (इन्द्र) ने भी महान् माना है। वह रिपु के रुधिर का आवर्तन करने वाली है, जो प्रकृष्ट कोटि का पट्टन है (अर्थात् नदी किनारे बसी हुई है)। ऐसी वह महानगरी **ढिल्ली** (वर्तमान दिल्ली) के नाम से प्रसिद्ध है। (2)

1/3

Describing the all round prosperity of Dhilli-Pattan-the author praises TRIBHUVANAPATI-TOMARA, the ruler of Ḍhilli-Paṭṭaṇa.

जहिँ गयणमंडलालग्गु सालु रण-मंडव-परिमंडिउ विसालु।।
गोउर-सिरिकलसाहय-पयंगु जलपूरिय-परिहालिंगियंगु।।
जहिँ जणमण णयणाणंदिराइँ मणियरगण-मंडिय मंदिराइँ।।
जहिँ चउदिसु सोहहिँ घणवणाइँ णायर-णर-खयर-सुहावणाइँ।।
5 जहिँ समय-करडि घडघड हणंति पडिसद्दें दिसि-विदिसिवि फुंडति।।

जहिँ पवण-गमण धाविर तुरंग णं वारिरासि-भंगुर-तरंग।।
पविउलु अणंगसरु जहिँ विहाइ रयणायरु सइँ अवयरिउ णाइँ।।
जहिँ तिय-पय-णेउर-रउ सुणेवि हरिसें सिहि णच्चइ तणु धुणेवि।।
जहिँ मणहरु रेहइ हट्ट-मग्गु णीसेसवत्थु संचिय समग्गु।।
10 कातंत इव पंजी-समिद्धु णवकामिणि जोव्वणमिव सणिद्धु।।

1/3

ढिल्ली (वर्तमान दिल्ली)-पट्टन की समृद्धि का वर्णन तथा वहाँ के राजा त्रिभुवनपति (तोमर) की प्रशंसा—

जिस **ढिल्ली-पट्टन** में गगन-मण्डल से लगा हुआ (आकाश-मण्डल को स्पर्श करने वाला) साल (कोट) है, जो विशाल अरण्य-मण्डप (वृक्षों के घटाघोप) से परिमण्डित (विराजित) है, जिस के (उन्नत) गोपुरों के श्री (शोभा)-युक्त कलश पतंग (सूर्य) को रोकते हैं, जो जल से परिपूर्ण परिखा (खाई) से आलिंगित शरीर वाली है (अर्थात् जो चारों ओर खाई से घिरी हुई है), जहाँ उत्तम मणिगणों (रत्न समूहों) से मण्डित विशाल भवन हैं, जो नेत्रों को आनन्द देने वाले हैं, जहाँ नागरिकों और खेचरों को सुहावने लगने वाले सघन उपवन चारों दिशाओं में सुशोभित हैं, जहाँ मदोन्मत्त करटि-घटा (गजसमूह) अथवा समयसूचक घण्टा या नगाड़ा निरन्तर घड़हड़ाते (गर्जना किया करते) रहते हैं और अपनी प्रतिध्वनि से दिशाओं-विदिशाओं को भी भरते रहते हैं।

जहाँ पवन के समान वेग गति से दौड़ने वाले तुरंग (घोड़े-सुशोभित) हैं, मानों वे समुद्र की चपल तरंगें ही हों, जहाँ **अनंग** नाम का विशाल सरोवर सुशोभित है, जो ऐसा प्रतीत होता है, मानों स्वयं रत्नाकर (समुद्र) ही अवतरित हुआ हो, जहाँ नारियों के पदों के नूपुरों के शब्दों को सुनकर (तथा उन शब्दों को मेघध्वनि समझकर), उनसे हर्षित होकर मयूरगण अपना शरीर धुनते हुए नाचने लगते हैं, जहाँ मनोहर हाट का (बाजार का) मार्ग सुशोभित है, जहाँ के बाजारों में सभी प्रकार की वस्तुओं का पूर्ण संचय रहता है।

जिस प्रकार **कातन्त्र-व्याकरण** अपनी **पंजिका (टीका)** से समृद्ध है, उसी प्रकार वह ढिल्ली भी पदमार्गों से

सुर-रमणियणुव वरणेत्तवंतु पेक्खणयरमिव वहु-वेसवंतु।।
वायरणुव साहिय वरसुवण्णु णाडय-पेक्खण पिव सपुण्णु।।
चक्कवइ वरपूअप्फलिल्लु संचुण्णु णाइँ सद्दं सणिल्लु।।
दप्पुब्भड-भड-तोणुव कणिल्लु सविणय-सीसुव बहु-गोरसिल्लु।।
15 पारावारु व वित्थरिय संखु तिहुअणवइ-गुण-णियरुव असंखु

घत्ता— णयणमिव स-तारउ सरु व स-हारउ पउरमाणु कामिणियणुव्व।
संगरु व स-णायउ णहु वस रायउ णिहय कंसु णारायणुव्व।। 3।।

समृद्ध है। जिसप्रकार नवीन तरुणी वधु का यौवन स्निग्ध होता है, उसी प्रकार वह **ढिल्ली** नगरी भी बड़ी स्निग्ध मनोहर थी। जहाँ की युवतियाँ श्रेष्ठ रेशमी वस्त्र धारण करती हैं, वे ऐसी प्रतीत होती हैं, मानों सुररमणियाँ (देवी) ही हों अथवा प्रेक्षागृह की बहुवेशधारिणी नायिकाएँ ही हों।

जिस प्रकार व्याकरण उत्तम-उत्तम वर्णों को साधती हैं (सिद्ध करती है), उसी प्रकार वह ढिल्ली भी अच्छे क्षत्रियादि वर्णों को साधती है। जिस प्रकार नाटक-प्रेक्षणगृह चतुर अभिनेताओं एवं प्रेक्षकों से युक्त होते हैं, उसी प्रकार वह **ढिल्ली** भी प्रज्ञों (पंडितों) सहित थी। चक्रपति (चक्रवर्त्ती) जिस प्रकार उत्तम पूजाफल सहित होता है, इसी प्रकार वह ढिल्ली भी उत्तम पूग (सुपारी) फल (आदि के वन-उपवन) से युक्त थी। अर्थात् जिस प्रकार उत्तम चूर्ण (अथवा चुन्नी) दर्शनीय होता है, उसीप्रकार वह ढिल्ली भी उत्तम दर्शनीय थी।

दर्प से उद्भट भटों की तूणीर जिस प्रकार वाणों से पूर्ण होती है, उसी प्रकार वह ढिल्ली भी धन-धान्य से परिपूर्ण थी। विनय शील शिष्य जिस प्रकार वाणी के रस से पूर्ण होता है, वैसे ही वह ढिल्ली भी प्रचुर गोरस (दूध) से परिपूर्ण थी। जिस प्रकार समुद्र विस्तृत शंख वाला होता है, उसी प्रकार वह **ढिल्ली** भी विस्तृत (जनों की) संख्या वाली थी, जिस प्रकार त्रिभुवन पति भगवान् के असंख्य गुणगण होते हैं, वैसे ही वह ढिल्ली भी असंख्यात गुणसमूह वाले राजा **त्रिभुवनपति (तोमर)** से युक्त थी।

घत्ता— जो राजा त्रिभुवनपति प्रजाजनों के नेत्रों के लिए तारे के समान, कामदेव के समान सुन्दर, सभा-कार्यों में (निरनतर) संलग्न एवं कामिनीजनों के लिए प्रवर मान का कारण है, जो संग्राम का सेनानायक हैं, तथा जो किसी भी शत्रुराज्य के वश में न होने वाला और जो कंसवध करने वाले नारायण के समान (अतुल बलशाली) है। (3)

1/4

Alhaṇa Sāhu, a Minister of king ANAṄGAPĀLA-TOMARA of Ḍhilli is very much impressed with the the poet after listening his Candappaha-Cariu, the first Epic composed by him at Harayaṇā.

जहिँ असिवर तोडिय रिउ कवालु णरणाहु पसिद्धु अणंगवालु।।
णिरुदल वट्टिय हम्मीर-वीरु वंदियणविंद पविइण्णचीरु।।
दुज्जण-हिययावणि-दलण-सीरु दुण्णय-णीरय-णिरसण-समीरु।।
बलभर कंपाविय णायराउ माणिणियण-मण-संजणिय राउ।।
5 तहिँ कुलगयणंगणे सिय-पयंगु समत्त-विहूसणभूसियंगु।।
गुरुभत्ति-णविय तेल्लोक्कणाहु दिट्ठउ अल्हणु णामेणु साहु।।
तेण विणिज्जिय चंदप्पहासु णिसुणेवि चरिउ-चंदप्पहासु।।
जंपिउ सिरिहरु ते धण्णवंत कुल-बुद्धि-विहव-माणं-सिरिवंत।।
अणवरउ भमइ जगे जाहँ कित्ति धवलंती गिरि-सायर धरित्ति।।
10 सा पुणु हवेइ सुकइत्तणेण चाएण सुएण सुकित्तणेण।।

घत्ता— जा अविरल धारहिँ जणमण हारहिँ दिज्जइ धणु वंदीयणहँ।
ता जीव णिरंतरे भुअणब्भंतरे भमइ कित्ति सुंदरजणहँ।। 4।।

1/4

राजा अनंगपाल तोमर का मन्त्री अल्हण साहू कवि श्रीधर कृत चन्द्रप्रभचरित काव्य सुनकर कवि से प्रभावित हो जाता है—

जहाँ (अर्थात् जिस ढिल्ली-पट्टन के) सुप्रसिद्ध **नरनाथ अनंगपाल** ने अपने श्रेष्ठ असिवर से शत्रुजनों के कपाल तोड़ डाले, जिसने **हम्मीर-वीर** के (समस्त) सैन्य-समूह को बुरी तरह रौंद डाला और बन्दीजनों में चीर-वस्त्र का वितरण किया, जो (अनंगपाल) दुर्जनों की हृदयरूपी पृथिवी के लिए सीरु-हल के फाल के समान तथा जो दुर्नय रूपी मेघों को दूर करने (अथवा दुर्नय करने वाले राजाओं का निरसन करने) के लिए समीर-वायु के समान है, जिसने अपनी प्रचण्ड-सेना से (अथवा उसके भार से) नागर वंशी, अथवा नागवंशी राजा को भी कम्पित कर दिया था और जो मानिनियों के मन में राग उत्पन्न कर देने वाला है।

उसी (राजा अनंगपाल) के यहाँ (अर्थात् उसके दुर्ग या राज्य-सभा में) अपने कुलरूपी गगनांगन के लिए तेजस्वी सूर्य के समान, सम्यक्त्व रूपी अलंकार से विभूषित अंगों वाले तथा त्रैलोक्यनाथ के लिए अत्यन्त भक्तिपूर्वक नमस्कार करने वाले **अल्हण** नाम के एक साहू ने उस कवि (श्रीधर) को (मार्ग में भटकते हुए) देखा। (अल्हण) साहू ने चन्द्रमा के हास्य को भी जीत लेने वाले (उस कवि श्रीधरकृत) **चन्द्रप्रभचरित** को सुनकर उस (श्रीधर) से कहा— "वे ही धन्य हैं, वे ही कुल, बुद्धि, वैभव एवं सम्मान वाले हैं, तथा वे ही श्रीमन्त हैं, जिनकी (शुभ्र) कीर्ति अनवरत रूप से जग में घूमती रहती है और गिरि, सागर एवं पृथिवी-मण्डल को धवलित करती रहती है, वह शुभ्रकीर्ति भी सुकवित्व, त्याग, शास्त्र-श्रवण एवं सत्कीर्तन से ही परिपूर्णता को प्राप्त होती है।"

घत्ता— जन-जन को आकर्षित करने वाला धन, जिस (उदार हृदय दानी व्यक्ति) के द्वारा याचकजनों के लिए अविरल-गति से दान में दिया जाता है, उसी सुन्दर दानी व्यक्ति की सत्कीर्ति जीव-लोक में निरन्तर भ्रमण करती रहती है। (4)

1/5

Alhaṇa Sāhu introduces, to the poet, the name and fame of Naṭṭala Sāhu and his family.

पुण्णेण वि लच्छि-समिद्धएण णय-विणय-सुसील-सिणिद्धएण।।
कित्तणु विहाइ धरणियलि य जाम सिसिरयर सरिसु जसु ठाइ ताम।।
सुकइत्तेँ पुणु जा सलिल-रासि ससि-सूरु-मेरु णक्खत्तरासि।।
सुकइत्तु वि पसरइ भवियणाहँ संसग्गेँ रंजिय जणमणाहँ।।
5 इह जेजा णामेँ साहु आसि अइ णिम्मलयर गुणरयणरासि।।
सिरिअयरवाल-कुल-कमल-मित्तु सुहधम्म-कम्म पविइण्ण वित्तु।।
मेमडिय णाम तहो जाय भज्ज सीलाहरणालंकिय सलज्ज।।
बंधव-जण-मण-संजणिय सोक्ख हंसीव उहय सुविसुद्ध-पक्ख।।
तहो पढम पुत्तु जणणयणरामु हुउ आरक्खिय-तस-जीव गामु
10 कामिणि-माणस-विद्दवण कामु राहउ सव्वत्थ पसिद्ध णामु।।
पुणु वीयउ विवुहाणंद-हेउ गुरुभत्तिए संथुअ अरुह देउ।।
विणयाहरणालंकिय-सरीरु सोढलु णामेण सुबुद्धि-धीरु।।

घत्ता— पुणु तिज्जउ णंदणु णयणाणंदउ जगे णट्टलु णामेँ भणिउ।
जिणमइ णीसंकिउ पुण्णालंकिउ जसु बुहेहिँ गुण-गणु-गणिउ।। 5।।

1/5

अल्हण साहू कवि के लिये नट्टल साहू का पारिवारिक-परिचय देता है—

लक्ष्मी से समृद्ध, नय-नीति में कुशल, विनयवान्, सुशील एवं स्नेहशील पुण्यात्मा होने के कारण पृथिवी-मण्डल पर दानी व्यक्ति की सत्कीर्ति ही सुशोभित नहीं होती, अपितु (शुभ्र-शीतल) चन्द्र-किरणों के सदृश उसका यश भी स्थिर हो जाता है। पुनः सुकवित्व से प्राप्त शुभ्रकीर्ति भी तब तक स्थिर बनी रहती है, जब तक कि सृष्टि में समुद्र, चन्द्र, सूर्य, मेरु एवं नक्षत्रराशि है। किन्तु भव्यजनों के संसर्ग से ही उस सुकवित्व का प्रसार हो सकता है (अन्यथा नहीं)।"

(अल्हण साहू पुनः आगे कहता है)– "इसी **ढिल्ली-पट्टन** में अत्यन्त निर्मलतर गुणरूपी रत्नों की राशि-स्वरूप, **अग्रवाल कुल** रूपी कमलों के लिए सूर्य के समान, तथा शुभ धार्मिक कार्यों में धन-सम्पत्ति का दान करने वाले, **जेजा** नाम के एक साहू निवास करते है। उनकी **मेमडिय** नाम की पत्नी है, जो शील रूपी आभरण से अलंकृत, लज्जाशील, बान्धव जनों के मन में सुखानुभव उत्पन्न करनेवाली तथा हंसिनी के समान विशुद्ध पक्ष वाली है, अर्थात् जिस प्रकार हंसिनी के दोनों पंख निर्मल होते हैं, उसी प्रकार उस भार्या के भी दोनों पक्ष (मातृपक्ष एवं पितृपक्ष) निर्दोष-निर्मल थे।

उन दोनों के कामदेव के समान सुन्दर **राघव** नाम से सर्वत्र प्रसिद्ध प्रथम पुत्र हुआ जो समस्त त्रसादि जीवों का संरक्षक तथा कामिनियों के नेत्रों तथा हृदय को पिघलाने वाला है। दूसरे पुत्र का नाम **सोढल** है, जो विबुध जनों के लिए आनन्द का कारण है तथा जो अत्यन्त भक्तिपूर्वक अरिहन्तदेव की स्तुति करने वाला है और विनय गुण से अलंकृत शरीरवाला तथा जो विवेकशील एवं धीर-वीर है।

घत्ता— पुनः (उस जेजा साहु का) संसार में **नट्टल** नाम से प्रसिद्ध तीसरा पुत्र उत्पन्न हुआ, जो सभी के नेत्रों को आनन्द दायक है तथा जो जिनमत में निःशंक और पुण्य से अलंकृत है और जिसके गुण-समूह बुधजनों द्वारा सम्मानित हैं।" (5)

1/6

Praise of generous public charities and donations and other virtues of Naṭṭala Sāhu, the Sārthavāha or internationally known big trader. Alhaṇa advises the poet to meet him.

जो सुंदरु वीया-इंदु जेम जणवल्लहु दुल्लहु लोएँ तेम।।
जो कुल-कमलायरु रायहंसु विहुणिय-चिर विरइय-पाव-पंसु।।
तित्थयरु पइट्ठावियउ जेण पढमउ को भणियइँ सरिसु तेण।।
जो देइ दाणु वंदीयणाहँ विरएवि माणु सहरिस मणाहँ।।
5 परदोस-पयासण-विहि-विउत्तु जो तिरयण-रयणाहरण-जुत्तु।।
जो दिंतु चउव्विहु दाणु भाइँ अहिणउ बंधु अवयरिउ णाइँ।।
जसु तणिय कित्ति गय दस-दिसासु जो दिंतु ण जाणइ सउ-सहासु।।
जसु गुण-कित्तणु कइयण कुणंति अणवरउ वंदियण णिरु थुणंति।।
जो गुण-दोसहँ जाणइ वियारु जो परणारी-रइ-णिव्वियारु।।
10 जो रूव-विणिज्जिय मारवीरु पडिवण्ण-वयण धुरधरणधीरु।।

घत्ता— सो महु उवरोहे ँणिहयविरोहे ँणट्टल साहु गुणोहणिहि।
दीसइ जाएप्पिणु पणउ करेप्पिणु उप्पाइय भव्वयणदिहि।। 6।।

1/6

अल्हण साहू द्वारा नट्टल साहू के दान और गुणों की प्रशंसा—

"जो (नट्टल साहू देखने में) ऐसा प्रतीत होता है, मानों दूसरा चन्द्रमा ही हो। संसार में उससे अधिक लोकप्रिय व्यक्ति दुर्लभ है। जो (नट्टल) अपने कुल रूपी कमलाकर (सरोवर) के लिए राजहंस के समान है, जो चिरसंचित पाप-धूलि को नष्ट करने वाला है, जिसने प्रथम तीर्थंकर को **दिल्ली** में प्रतिष्ठापित किया है, (अर्थात् पंचकल्याणक प्रतिष्ठा कराकर मंदिर में विराजमान कराया है), उसके समान किसे कहा जाय? (अर्थात् किससे उसकी उपमा दी जाय?) जो हर्षित मन से बन्दीजनों को सम्मानित कर दान देता है, जो दूसरों के दोषों के प्रकाशन रूप विधि से वियुक्त (रहित) है, जो रत्नत्रय रूप रत्नों के आभरण से युक्त हैं, जो चार प्रकार का दान देता हुआ सुशोभित रहकर ऐसा प्रतीत होता है, मानों आकाश से कोई अभिनव-बन्धु ही अवतरित हुआ हो।

जिसकी कीर्ति दसों दिशाओं की ओर भाग गई है, जो दान देते समय न सौ जानता है और न हजार। जिसके गुणों का कीर्तन कविजन भी किया करते हैं और बन्दीजन भी जिसकी स्तुति अनवरत रूप से किया करते हैं, जो गुण और दोषों का विचार जानता है, जो परनारी की रति में निर्विकार है, जिसने अपने रूप-सौन्दर्य से कामदेव रूपी वीर को भी जीत लिया है और जो प्रतिपन्न (स्वीकार किये हुए) वचनों की धुरा को (भार को) धारण करने में धीर-वीर हैं।

घत्ता— इसलिए हे कविवर— "मेरे अनुरोध से (सभी प्रकार के–) विरोधभाव को छोड़कर तथा स्नेह पूर्वक जाकर *भव्यजनों के हृदय में धैर्य उत्पन्न करनेवाले उस गुणनिधि **नट्टल साहू** को दर्शन अवश्य दीजिये।" (6)*

1/7

Budha-Sridhara, a self respecting poet denounces the wicked people and refuges to go to Naṭṭala Shāu, but Alhaṇa Sāhu again and again eulogiges the Philanthropic nature and other progressive and constructive contributions including his generosity and says–

तं सुणिवि पयंपिउ सिरिहरेण जिण-कव्व-करण विहियायरेण।।
सच्चउ जं जंपिउ पुरउ मज्झु पइँ सब्भावेँ बुह मइ असज्झु।।
पर संति एत्थु विबुहहँ विवक्ख बहु-कवड-कूड पोसिय-सवक्ख।।
अमरिस-घरणीधर-सिर-विलग्ग णर-सरूव तिक्ख-मुह कण्ण-लग्ग।।
असहिय-पर-णर-गुण-गरुअ-रिद्धि दुव्वयण-हणिय पर-कज्ज-सिद्धि।।
कय-णासा-मोडण मत्थरिल्ल भू-भिउडि-भंगि णिंदिय गुणिल्ल।।
को सक्कइ रंजण ताहँ चित्तु सज्जण पयडिय-सुअणत्त-रित्तु।।
तहिँ लइ महु किं गमणेण भव्व भव्वयण-बंधु परिहरिय-गव्व।।
तं सुणिवि भणइ गुण-रयण-धामु अल्हण णामेण मणोहिरामु।।
वउ भणिउ काइँ पइँ अरुह-भत्तु किं मुणहि ण णट्टलु भूरिसत्तु।।

घत्ता— जो धम्म-धुरंधरु उण्णय-कंधरु सुहण-सहावालंकरिउ !
अणुदिणु णिच्चल-मणु जसु वंधवयणु करइ वयणु णेहावरिउ।। 7।।

1/7

दुर्जनों की निन्दाकर स्वाभिमानी कवि श्रीधर जब नट्टल साहू के पास जाना अस्वीकार करता है, तब अल्हण साहू नट्टल साहू के उदार चरित की पुनः प्रशंसा करते हुए कहता है—

उस साहू अल्हण का कथन सुनकर जिन-काव्य के प्रणयन में आदर-भाव रखने वाले श्रीधर कवि ने कहा— "आपने सद्भाव पूर्वक मेरे सम्मुख जो कुछ कहा है, वह सत्य है। किन्तु हे बुध, वह (कार्य) मेरे लिये असाध्य है क्योंकि यहाँ विबुधों के विपक्षी (विरोधी) बहुत हैं, जो कि नाना प्रकार के कूट-कपट से अपने मत का पोषण करने वाले हैं। वे (विपक्षी) क्रोध रूपी पर्वत-शिखर पर चढ़े रहते हैं। वे मनुष्य-स्वरूपी (अवश्य) हैं, किन्तु भुजंग के समान तीक्ष्णभाव वाले हैं और मुँह तथा कानों के लगे हुए हैं (अर्थात् कपटी एवं चुगलखोर हैं)।

वे (विपक्षी) दूसरे मनुष्यों की गुण-गरिमा एवं ऋद्धि को सहन नहीं कर पाते और अपने दुर्वचनों से दूसरों की कार्य-सिद्धि को नष्ट करते रहते हैं। वे (कभी तो सरल स्वभावी) बुधजनों की नाक मरोड़ देते हैं और (कभी) माथा (गर्दन) मरोड़ डालते हैं। जो (विपक्षी) अपनी भयानक भृकुटि तानकर गुणीजनों की निन्दा करने वाले हैं, सज्जनों द्वारा प्रकटित सौजन्य-गुण से शून्य उन (दुर्जनों) के चित्त का मनोरंजन कौन कर सकता है? अतः हे भद्र, हे भव्यजन-बन्धु, हे निरहंकारी (सज्जन), उन **नट्टल साहू** के पास भी मेरे जाने से क्या लाभ?

कवि **श्रीधर** का उत्तर सुनकर गुणरूपी रत्नों का धाम, मन का उदार एवं सुन्दर **अल्हण** नाम का वह साहू पुनः बोला— "तुमने यह क्या कहा? क्या तुम अरिहन्त-भक्त, महान् सत्वशाली उस नट्टल साहू को नहीं जानते?"–

घत्ता— "जो (नट्टल) धर्म-धुरा को धारण करने वाला है, ऊँचे कन्धौर वाला है, जो सुजनों के स्वभाव से अलंकृत है और जो (चतुर्विध दान देने में) प्रतिदिन निश्चल मन वाला है, जिसके वचनों का स्नेह से भरे हुए बान्धवजन निरन्तर पालन किया करते हैं।" (7)

1/8

On several requests Poet Sridhara meets Sāhu Naṭṭala.

जो भव्व-भाव पयडण-समत्थु ण कयावि जासु भासिउ णिरत्थु।।
णायण्णइँ वयणइँ दुज्जणाहँ सम्माणु करइ पर-सज्जणाहँ।।
संसग्गु समीहइ उत्तमाहँ जिणधम्म-विहाणेँ णित्तमाहँ।।
णिरु करइ गोट्ठि सहुँ बुहयणेहिँ सत्थत्थ-वियारण हियमणेहि।।
5 किं बहुणा तुज्झु समासिएण अप्पउ अप्पेण पसंसिएण।।
महु वयणु ण चालइ सो कयावि जं भणमि करइ लहु तं सयावि।।
तं णिसुणिवि सिरिहरु चलिउ तेत्थु उवविट्ठउ णट्टलु ठाइ जेत्थु।।
तेण वि तहँ आयहो विहिउ माणु सपणय तंबोलासण समाणु।।
जं पुव्व-जम्मि पविरइउ किंपि इह विहिवसेण परिणवइ तंपि।।
10 खणु एक्कु सिणेहेँ गलिउ जाम अल्हण णामेण पउत्तु ताम।।

घत्ता— भो णट्टल णिरुवम धरिय कुलक्कम भणमि किंपि पइँ परम सुहि।
परसमय परम्मुह अगणिय दुम्मह परियाणिह जिणसमय विहि।। 8।।

1/8

अल्हण साहू के अनुरोध से कवि श्रीधर का नट्टल साहू से मिलन—

"जो (नट्टल साहू) भव्य-(पवित्र) भाव प्रकट करने में समर्थ हैं, जिसका कथन कभी भी निरर्थक नहीं जाता, जो दुर्जनों के वचनों को (चुगलखोरी की बातों को) कभी भी नहीं सुनता, परन्तु जो सज्जनों का (सदा) सम्मान करता है, जो (सदैव) उत्तमजनों के संसर्ग (समागम) की इच्छा करता रहता है, जो नित्य ही जिन-धर्म-विधान में लगा रहता है, जो नित्य ही शास्त्रों के अर्थ के विचार करने के लिए हितैषी-मन वाले बुधजनों के साथ संगोष्ठी किया करता है। तुम्हारे सम्मुख उसकी अधिक प्रशंसा क्या करुँ? जो अपने कार्यों से अपने आप ही प्रशंसित है, उसकी अधिक प्रशंसा तुम्हारे सम्मुख करने से क्या लाभ? वह कभी भी मेरे वचन नहीं टालता, जो मैं कहता हूँ वह उसे सदा ही शीघ्रता पूर्वक पूरा करता है।"

साहू **अल्हण** का कथन सुनकर कवि **बुध श्रीधर** चलकर वहाँ पहुँचा, जहाँ **साहू नट्टल** अपने भवन के प्रधान कक्ष में विराजमान थे। नट्टल ने अपने यहाँ आये हुए कवि को सम्मानित किया और स्नेहादर पूर्वक आसन पर बैठाकर ताम्बूल प्रदान किया। (–उस कक्ष में एक-दूसरे के सम्मुख एक क्षण तक चुपचाप बैठे हुए वे दोनों ही अपने-अपने मन में यह विचार करते रहे कि–) "हमने पूर्वजन्म में जो कुछ भी शुभ-कर्म किया था, संयोग से उसी का सुफल इस क्षण (इस रूप में) हमें यहाँ प्राप्त हो रहा है (कि हमें किसी एक सुयोग्य व्यक्ति से मिलकर परस्पर में बातें करने का सुयोग मिला)।" (हार्दिक–) स्नेह के उस दिव्य वातावरण में जब कुछ क्षण बीत गये, तब कवि श्रीधर ने अल्हण साहू का नाम लेकर नट्टल साहू से कहा—

घत्ता— हे नट्टल साहू, तुम निरुपम हो (अर्थात् तुम्हारे समान यशस्वी कोई नहीं है), तुम कुलक्रम (कुल-परम्परा) के धारक हो। तुम पर-समय (मिथ्या मत) से परांगमुख हो, दुर्मथ (पापों) से दूर हो तथा जिन-समय के विविध अर्थों को जानने वाले हो। अतः तुम्हारे लिए परम सुख की प्राप्ति के कुछ साधन बतलाता हूँ। (8)

1/9

After manyfold heartening dialogues, Budha Sridhara was told by Naṭṭala regarding his noble deeds like construction of huge, sky scraping, beautyfull, artistically designed temple complex of Lord Adinatha, the first Tirthankara, at Ḍhilli-Paṭṭaṇa. Naṭṭala, very humbly requests the poet to compose, for his sake, the life account of Pāsaṇāha.

कारावि‍वि णाहेयहो णिकेउ पविइण्णु पंचवण्णं सुकेउ।।
पइँ पुणु पइट्ठ पविरइय जेम पासहो चरित्तु जइ पुणुवि तेम।।
विरयावहि ता संभवइ सोक्खु कालंतरेण पुणु कम्म-मोक्खु।।
सिसिरयर-बिंब णिय जणण-णामु पइँ होइ चडाविउ चंद धामु।।
5 तुज्झुवि पसरइ जय जसु रसंतु दस-दिसहि सयल असहणह संतु।।
तं णिसुणिवि णट्टलु भणइ साहु सइवाली-पिययम तणउँ णाहु।।
भणु खंड-रसायणु सुह-पयासु रुच्चइ ण कासु-हय-तणु-पयासु।।
एत्थंतरि सिरिहरु वुत्तु तेण णट्टलु णामेण मणोहरेण।।
भो तुहु महु पयडिय णेह-भाउ तुहुँ परमहु परियाणिय सहाउ।।
10 तुहुँ महु जस-सरसीरुह-सुभाणु तुहुँ महु भावहि णं गुणणिहाणु।।
पइँ होंतएण पासहो चरित्तु आयण्णमि पयडहि पाव-रित्तु।।
तं णिसुणिवि पिसुणिउ कविवरेण अणवरउ लद्ध सरसइ-वरेण।।

घत्ता— विरयमि गयगावेँ पविमल भावेँ तुहवयणे पाँसहो चरिउ।।
परदुज्जय-णियरहिँ हयगुणपयरहिँ घरु-पुरु णयरायरु भरिउ।। 9।।

1/9

साहू नट्टल दिल्ली के आदिनाथ-मन्दिर-निर्माणादि के सत्कार्यों का स्मरण दिलाकर कवि श्रीधर से पार्श्वचरित के प्रणयन का अनुरोध करता है—

"हे नट्टल,आपने **आदिनाथ-निकेत (मन्दिर)** का निर्माण कराकर तथा उस पर **पंचवर्ण वाली सुन्दर सुकेतु** (ध्वजा) फहराकर, उसकी प्रतिष्ठा कराई है। अब यदि **पार्श्व के चरित** की भी रचना करावें, तो उससे आपको आत्मसुख (सन्तोष) तो होगा ही, इस सत्कार्य से कालान्तर में कर्म-मोक्ष भी प्राप्त होगा। और भी, कि, आपने अपने पिताजी के नाम से चन्द्रमा के धाम के समान **चन्द्रप्रभ** स्वामी की मूर्ति की भी स्थापना कराई है। इस कारण आपका यश जय-जयकार करता हुआ दसों दिशाओं में विस्तृत हो गया है, जो कि आपके सभी दुर्जनों के लिए असहनीय हो रहा है।"

कवि का कथन सुनकर **शेफाली** (सइवाली) के प्रियतम नाथ साहू नट्टल बोले— "(हे सज्जनोत्तम, आप ही) कहिये कि सुख का प्रकाशक रसायन-खण्ड किसे रुचिकर नहीं लगता और कामदेव को नष्ट करने वाले पार्श्व का काव्य किसे रुचिकर नहीं होगा? पुनः मनोहर नामवाले उस **नट्टल** ने कवि **श्रीधर** से कहा—"हे कविवर, आपने मेरे ऊपर बड़ा स्नेहभाव प्रकट किया है, और अब मेरे स्वभाव को भी भलीभाँति जान लिया है। आप मेरे यश रूपी कमल के लिए उत्तम भानु हो, आप तो मुझे ऐसे प्रतीत हो रहे हैं, मानों गुणों का निधान ही मूर्तरूप होकर मेरे सम्मुख उपस्थित हो गया है। आपके होते हुए मैं **पार्श्व** के निर्दोष-चरित को सुनना चाहता हूँ। आप उसे अवश्य ही प्रकट करें (प्रकाशित करें)।"

नट्टल साहू का कथन सुनकर सरस्वती के वरदान को अनवरत रूप से उपलब्ध करने वाले कविवर **श्रीधर** ने कहा—

घत्ता— "आपके कथन से मैं पवित्र-भाव-पूर्वक गर्वरहित होकर **पार्श्व-चरित** की रचना करता हूँ। किन्तु गुण-समूह से शून्य भयानक दुर्जनों से घर, पुर, नगर, और देश भरा पड़ा है।" (9)

1/10

Budha-Sridhara acceds to the request to compose Pāsaṇāha-cariu.

तेण जि ण पयट्टइ कव्व-सत्ति
जं जोडमि तं तुट्टइ टसत्ति।।
पुणु-पुणु वि भणिउ सो तेण वप्प
घरि-घरि ण होंति जइ खल सदप्प।।
ता लइवि दोस णिम्मलमणाहँ
को वित्थरंतु जसु सज्जणाहँ।।
जइ होंतु ण तमु महि मलिणवंतु
ता किं सहंतु ससि उग्गमंतु।।
5 जइ होंति ण दह संपत्त खोह
ता किं लहंति मयरहर ससोह।।
तं सुणिवि हणिवि दुज्जण-पहुत्तु
मण्णिवि णट्टल भासिउ बहुत्तु।।
पुणु स-मणि वियप्पिवि सद्दधामु
सच्छंदु वि सालंकारु णामु।।
णउ मुणमि किंपि कह करमि कव्वु
पडिहासइ महु संसउ जि सव्वु।।
लइ किं अणेण महु चिंतणेण
अहणिसु संताविय णियमणेण।।
10 जइ वाएसरि-पय पंकयाहँ
महु अत्थि भत्ति णिप्पंकयाहँ।।
तो देउ,देवि महु दिव्व-वाणि
सद्दत्थ-जुत्त-पय-रयण-खाणि।।
तो पत्त सरासइ-वरु-भणेइ
को पासचरित्तहो गुणु गणेइ।।

घत्ता— णियतमु णिण्णासमि तहवि पयासमि जह जाणिउ गुण सेणियहो।
भासिउ जिणवीरहो जिय सरवीरहो गोतम गणिणा सेणियहो।। 10।।

1/10

बुध श्रीधर द्वारा ग्रन्थ-प्रणयन की प्रतिज्ञा—

—"उन दुर्जनों के भय से मेरी काव्य-शक्ति प्रवर्तित नहीं हो पाती क्योंकि मैं जब उसे जोड़ता हूँ, तब वह (शक्ति) टस-टसाकर शीघ्र ही टूट जाती है।" कवि की यह विवशता सुनकर नट्टल साहू ने उसे बार-बार (समझाते हुए) कहा— "हे बप्प, यदि अहंकारी खल (दुर्जन) घर-घर में न होते, तब निर्मल मन वाले सज्जनों के दोषों का अपहरण कर उनके यश का विस्तार कौन करता? यदि पृथिवी को मलिन करने वाला अन्धकार न होता, तो क्या उगता हुआ शशि-चन्द्र सुशोभित हो पाता? यदि सरोवर क्षुद्रता को प्राप्त न होता तो क्या मकरगृह-समुद्र शोभा को प्राप्त हो पाता?"

साहू नट्टल ने (जब पुनः) अनेक प्रकार से समझाया तब कवि ने उसे सुनकर तथा (उनका कथन) मानकर दुर्जनों के प्रभुत्व सम्बन्धी भय को मन से निकाल दिया तथा वह अपने मन में विकल्प करने लगा कि—'मैंने' **शब्द-धाम** (व्याकरण) का अध्ययन तो किया ही नहीं, छन्द एवं अलंकार का भी मनन नहीं किया। अतः मैं काव्य-रचना कैसे करूँ? मेरे कथन (मेरी काव्य-रचना) पर यद्यपि सभी लोग संशय करेंगे और विशेष रूप से दुर्जन-जन हँसेंगे, तो भी, जब मैंने (काव्य-प्रणयन सम्बन्धी–) उस कार्य को स्वीकार कर ही लिया है, तब अपने मन को अहर्निश सन्तापित करनेवाले इस मेरे चिन्तन से क्या लाभ? यदि वागेश्वरी-सरस्वती के निर्दोष पाद-पद्मों के प्रति मेरी भक्ति है, तब हे देवि, शब्दार्थ से युक्त पद रूपी रत्नों की खानि-स्वरूप दिव्यवाणि मुझे प्रदान करो। यद्यपि उस पार्श्व के चरित के गुणों की गणना कोई नहीं कर सकता फिर भी, मैं देवि-सरस्वती का वरदान प्राप्तकर उसका कथन करता हूँ।"

घत्ता— "कामदेव को जीतने वाले तथा गुणों की (अखण्ड–) श्रेणी वाले वीर-जिन ने पार्श्वचरित को जिस प्रकार **गौतम गणधर** को बतलाया, तथा गौतम गणधर ने भी जिस प्रकार (मगध सम्राट–) **श्रेणिक** को बतलाया, उसीके अनुसार उसे प्रकाशित कर अपने अज्ञानान्धकार को नष्ट करता हूँ।" (10)

1/11

Writing of Pāsaṇāha's story begins. Description of Kāsī-Dèsa (Country).

आयण्णहो णिरु थिरु मणु धरेवि जण-कय-कोलाहलु परिहरेवि।।
इह जंबूदीवए सुहणिवासि सुरसेलहो दाहिणि भरहवासि।।
णिवसइ कासी णामेण देसु सक्कइ ण जासु गुण-गणण सेसु।।
जहिँ धवलंगउ गाविउ चरंति मिल्लिवि णव-तण धण्णइँ चरंति।।
5 पेक्खिवि सुरसत्थु सरइँ विसाल खीरंभोणिहि कल्लोल माल।।
जहिँ सहइ पक्क-गंधड्ढ-सालि साहार पवर-मंजरि विसालि।।
जहिँ पीडिज्जहिँ पुंडेच्छु-दंड भुअबल-वलवंडइँ करेवि खंड।।
तरुणियणाहर इव रस-कएण विरइय थिरलोयण जणवएण।।
जहिँ सरि णलिणी-दलि हंसु भाइ णीलमणि-पंति ठिउ संख णाइ।।
10 कुट्टणिव सहहिँ जहिँ सरि बहुत्त कुडिलगइ सरस-रयणणिहि-रत्त।।
उत्तुंग-सिहर जहिँ जिणहराइँ णावइ धर-णारिहि थणहराइँ।।
दाणोल्लियकर वणकरि व जेत्थु णायर-णर किं वण्णियइँ तेत्थु।।

घत्ता— तहिँ तिहुअण सारी जणहु पियारी णयरी वाणारसि वसइ।
बुहयणहिं पसंसिय परहिँ अफंसिय जणमणहारिणि णाइँ सइ।। 11।।

1/11

पार्श्वचरित-काव्य-लेखन प्रारम्भ : काशी देश-वर्णन—

(कवि कहता है—) "हे साहू **नट्टल**, अब अपने मन को सर्वथा स्थिर करके तथा लोगों के कोलाहल से दूर रहकर प्रस्तुत काव्य को सुनो।

इसी जम्बूद्वीप में **सुमेरु-पर्वत** की दक्षिण-दिशा में सुखों के निवास-स्थल — भारतवर्ष में काशी नामका एक देश है, जिसके गुणों की गणना शेषनाग भी नहीं कर सकता। जिस **काशी-देश** में विचरण करती हुई धवलवर्ण वाली गायें ऐसी प्रतीत होती थीं, मानों नव तरुणियाँ ही मिलकर विचरण कर रही हों। जहाँ की विशाल गंगानदी के जल की मधुरता को देखकर तरंग-मालाओं वाला समुद्र भी (ईर्ष्या के कारण) खारा हो गया, जहाँ पके हुए सुगन्धि। युक्त शालि'-धान्य सुशोभित थे, जहाँ शालि-मंजरी के समान ही प्रचुर मंजरी वाले सहकार-वृक्ष (चतुर्दिक्) शोभायमान थे, जहाँ सशक्त भुजाओं वाले बली-पुरुषों द्वारा खण्ड-खण्ड किये जाकर रस निकालने हेतु पौंडा-इक्षुदण्ड इस प्रकार पेले जाते थे, जिस प्रकार स्थिर लोचन वाले रसिक युवाप्रेमी रसपान के लिए तरुणीजनों के अधरों को पेलित किया करते थे। जहाँ सरोवरों में कमलिनी-पत्रों पर हंस इस प्रकार सुशोभित थे, मानों नीलमणियों की पंक्ति पर शंख ही स्थित हों, जहाँ कुट्टनी के समान कुटिल गति वाली अनेक नदियाँ सुशोभित थीं, और जो सरस रत्नाकर (पक्ष में समृद्धजनों) की ओर अनुरक्त (प्रवाहित) थीं (अर्थात् जिस प्रकार कुट्टिनी नारी कुटिल-गति-आचरण वाली होती है और सरस धनवानों की ओर अनुरक्त-आकर्षित रहती है, इसी प्रकार काशी की नदियाँ भी कुटिल-गति के कारण घुमावदार थीं और समुद्र की ओर अनुरक्त-प्रवाहित रहती थीं)।

जहाँ जिनालय उत्तुंग-शिखर वाले थे, वे ऐसे प्रतीत होते थे, मानों धरती रूपी नारी के स्तन ही हों। जहाँ के नागर-जन दान देने के लिए उसी प्रकार अपने हाथ ऊपर किये रहते थे, जिस प्रकार कि वन्यगज मदजल छोड़ने के लिए अपना कर-शुण्डादण्ड (सूँड) ऊपर उठाए रहते हैं। उस काशी देश एवं वहाँ के नागरिकों का और अधिक वर्णन क्या किया जाय?

घत्ता— उस **काशी** देश में त्रिभुवन में सारभूत लोगों के लिए प्रिय लगने वाली **वाणारसी नामकी** नगरी थी, जो बुधजनों द्वारा प्रशंसित, शत्रुजनों द्वारा अस्पृष्ट तथा लोगों के हृदय को आकर्षित करने के लिये इन्द्राणी के समान सुन्दर थी। (11)

1/12

Introduction of Emperor Hayasena of Vāṇārasī, the main capital of Kāśī-country.

हयसेणु वसइ तहिँ णरवरिंदु णिद्दारिय दुण्णय-गय-हरिंदु।।
जो जाणिय सयल कला-कलाउ विरयाविय वइरीयण-पलाउ।।
जलभरिय बहुल वारिहर-राउ मुह-परिमल-हय-पयरुह-पराउ।।
जं णिएवि मयणसर-सलिलयाउ सुरसीमंतिणिउ णवल्लियाउ।।
णियमणि चिंतहिँ किं जोव्वणेण अम्हहँ कुल-णह-ससिणा अणेण।।
जं णउ माणिज्जइ सुंदरेण कररुह-मुह-बिवरिय कंदरेण।।
जेणासि-घाय तासिय करिंद चरणारविंदि णाविय णरिंद।।
दासीव करेवि माणिय चलच्छि चउविह-विसाल-भूवाल-लच्छि।।
धण-धार-धरिय वंदियण विंद हरिसिय विरिंचि-पसुवइ-उविंद।।
जसु भमइ कित्ति धवलंति लोउ बंधव णियंति ण कयावि सोउ।।
गुणगण गणंति गुणियण गरिट्ठ णीसेस सत्थ-विवरण-वरिट्ठ।।
दूरोसरंति सहसत्ति पाव बहु जंपण-जण संविहिय गाव।।

घत्ता— तहो अत्थि सुमणहर उण्णय-थणहर वम्मएवि णामेण पिया।।
जा सुहय-सुलोयण सुह-संजोयण रइसुहेण अणवरिउ पिया।। 12।।

1/12

काशी देश की राजधानी वाणारसी के सम्राट हयसेन का परिचय—

उस **वाणारसी**-नगरी में **हयसेन** (–अश्वसेन) नामका एक राजा निवास करता था, जो दुर्नय रूपी गज के विदारण के लिए हरीन्द्र के समान था। जो समस्त कला-कलापों का जानकार था, जो बैरीजनों को पलायन करा देने वाला था, जो बहुल जल से भरे हुए मेघ के समान गर्जन करने वाला, मुख की परिमल से कमल-पराग को जीतने वाला, जिसको देखकर नई-नवेली सुरवधुएँ भी मदन-वाणों से विद्ध हो जाती थीं और अपने मन में विचारने लगती थीं कि हमारे इस (छलछलाते–) यौवन से क्या लाभ? यदि कामदेव के समान सुन्दर एवं अपने कुल रूपी आकाश के लिए चन्द्रमा के समान उस (हयसेन) के हाथों के नखों से क्षत-विक्षत-कपोल होकर हम लोग उसके द्वारा न मनाई जायें।

जिसने असि-घातों से शत्रुओं के करीन्द्रों को त्रस्त कर शत्रु-नरेन्द्रों को अपने चरणारविन्द में झुका लिया था, जिस प्रकार चपल-नेत्रों एवं मानिनी युवती (रसिक युवक के) वश में हो जाती है, उसी प्रकार उस राजा हयसेन ने राजाओं की विशाल चतुर्विध चपल-लक्ष्मी को भी अपनी दासी बना लिया था।

जिसने धन की धारा से वन्दीजनों को तृप्त कर दिया था तथा जिसने विरंचि (ब्रह्मा), पशुपति (शिव) और उपेन्द्र (विष्णु) को भी हर्षित कर लिया था (अर्थात् उस राजा हयसेन पर सभी देवता-गण प्रसन्न थे)।

जिसकी कीर्ति तीनों लोकों को धवलित करती हुई घूमती रहती थी, जिसके बन्धु-बान्धव कभी भी शोकाकुल नहीं होते थे। समस्त शास्त्र-विवरण में वरिष्ठ एवं गरिष्ठ उस राजा हयसेन के गुण-समूह को गुणीजन भी गिनने का प्रयत्न करते थे। पापीजन, बहुजल्पी एवं अहंकारी-जन जिससे सहसा ही दूर भाग खड़े होते थे।

घत्ता— उसकी अत्यन्त सुन्दर, उन्नत स्तनों वाली **वामादेवी** नामकी प्रिया थी, जो सुभगा एवं सुलोचना थी और रतिसुख से अपने प्रियतम के लिये अनवरत सुख का संयोजन करने वाली थी। (12)

1/13

The top to toe (Nakha-Shikha) description of Vāmādevī the supreme queen (Paṭṭarāni) of the country.

अइरूउ जाह वण्णइ ण कोवि णिय मइ-विलासु दर कहमि तो वि।।
रत्ततणु दरिसिउ कमयलेहिँ इयरह कह सरु मारइ सरेहिँ।।
गुप्फहिँ विप्फारिउ गूढ भाउ इयरह कह सुरहँ वि चल-सहाउ।।
वट्टुल वि रोमंसि-रहिय जंघ इयरह कह मणझेंदुअ अलंघ।।
5 जाणुअ संदरिसिय णिबिडबंध इयरह कह णिवडहिँजण मयंध।।
सुललिय पवरोरु रइ-सुसार इयरह कह कयलीयल असार।।
कडियल-पिहुलत्तणु अइ अउव्वु इयरह कह जणुमेल्लइ सगव्वु।।
णव-णाइणि तणु सम रोमराइ इयरह कह मुज्झइ विबुह जाइ।।
णाही गंभीरत्तणु मणोज्जु इयरह कह जण मणि जणइ चोज्जु।
10 पत्तलु वि पोट्टु पयडिय गुणोहु इयरह कह सुर-णर-फणि-मुणोहु
विमण-बलहरु तिवलि-भंगु इयरह कह अइवग्गइ-अणंगु।।
तुंगत्तु होउ थोरत्थणाहँ इयरह कह सिर चालणु जणाहँ।।
भुव-जुउ मण्णमि पंच-सर-फासु इयरह कह बद्धउ जण सहासु।।

1/13

पट्टरानी वामादेवी का नख-शिख वर्णन—

वह **वामादेवी** इतनी रूपवती थी कि उसका यद्यपि कोई भी वर्णन नहीं कर सकता था, तो भी मैं अपनी (तुच्छ) बुद्धि के बिलास से अपने काव्य में उसका कुछ वर्णन करता हूँ।

उस वामादेवी के चरण-तल में लालपना दिखाई देता था, यदि ऐसा न होता तो कामदेव अपने वाणों से (दर्शकों को) कैसे बेधता? गुल्फों ने अपना गूढभाग विस्तारित किया था, यदि ऐसा न होता, तो देवों का स्वभाव चंचल कैसे होता? उसकी जंघाएँ वर्त्तुलाकार (गोल) निर्लोम (–स्निग्ध) थीं, यदि ऐसा न होता तो कामदेव के लिए भी वे अलंघ्य कैसे होती?

जानुओं (घुटनों) ने सघन-बन्ध दर्शाया था, यदि ऐसा न होता तो (उन्हें देखकर) लोग मदान्ध होकर कैसे टूट पड़ते? रति के लिए सारभूत विशाल उरु भाग अत्यन्त सुन्दर था, यदि ऐसा न होता, तो कदली-लता असार कैसे कहला पाती? उसके कटितल की पृथुलता अत्यन्त अपूर्व थी यदि ऐसा न होता तो रसिकजन अपना गर्व कैसे छोड़ते?

उसकी रोमराजि नवीन नागिनी (बाल-नागिनी) के शरीर के समान थी, यदि ऐसा न होता, तो विबुध (देव) जन भी उस पर मोहित कैसे होते? उसकी नाभि की गम्भीरता मनोज्ञ थी, यदि ऐसा न होता तो लोगों के मन में आश्चर्य कैसे (उत्पन्न) होता? उसका पेट पतला होने पर भी गुण-समूह — त्रिवलियों को प्रकट करने वाला था, यदि ऐसा न होता तो वह देवों, मनुष्यों एवं नागकुमारों के मन को कैसे मोहित करता? उसकी त्रिवलियों की भंगिमा विशेष मन वालों (–मुनियों) के बल को भी हरने वाली थी, यदि ऐसा न होता तो उन्हें देखकर लोगों का सिर चंचल कैसे होता?

उसकी दोनों भुजाओं को मैं कामदेव का पाश मानता हूँ, अन्यथा लोग उनमें बँधकर हर्ष का अनुभव कैसे करते? उत्तम रेखाओं से उसका प्रवर कन्धर (ग्रीवा) सुशोभित था, यदि ऐसा न होता तो शंख रोता हुआ क्यों स्थित रहता?

रेहाहि पवरु कंधरु विहाइ इयरह कह कंबु रसंतु ठाइ।।
मुहकमलु पदरिसिय रायरंगु इयरह कह छण ससहर-सवंगु।।
बिंबासरिसाहरु हरिय चक्खु इयरह कह मोहिउ दहसयक्खु।।
दिय-सोह धरंति सुदित्तियाइँ इयरह पियाइ कह मोत्तियाइँ।।
मयरद्धय-धणु भू-बिब्भमिल्ल इयरह कह रइ समर-वरसिल्ल।।

घत्ता— जुत्तउ ललियंगिहि णिरु णिव्वंगिहि अह दीहत्तणु लोयणहँ।
इयरह कह दारहिँ जण मणु मारहि कामिय मयणुक्कोवणहँ।। 13।।

1/14

On the directions of INDRA, the supreme head of the Heaven, YAKSHA (an orderly of Indra) makes in no time the capital town of Vāṇārasī as beautiful as Heaven.

सिहि-कलाव-संकास केसिया रइव्वेण णं भल्लि पेसिया।।
जासु कंत कंताणुरत्तिया वसइ गेहि सिसिरयर-दित्तिया।।
पेक्खिऊण णयणहिँ मयासणं कंपमाणयं तम-विणासणं।।
ता सुराहिवइणा वियाणियं अवहिणाण-णयणेण जाणियं।।
सद्दिऊण जक्खं पयंपियं सुर-णरिंद-खयराण जंपियं।।

मुख-कमल अपने रागरंग को प्रदर्शित करने वाला था, यदि ऐसा न होता तो सर्वांग चन्द्रमा रागरंग वाला (अर्थात् कलापूर्ण) कैसे बनता?

उसके अधर बिम्बाफल के सदृश थे, जो नेत्रों को आकर्षित करनेवाले थे, यदि ऐसा न होता तो दस सहस्र-नेत्र (–इन्द्र) उस पर कैसे मोहित होता? उसकी दन्तावली दीप्ति की शोभा को धारण करने वाली थी, यदि ऐसा न होता तो वे मोती के लिए प्रिय क्यों होते? उसके भू-विभ्रम का विलास तो मानों मकरध्वज का धनुष ही था, यदि ऐसा न होता तो कामदेव रति की वर्षा कैसे करता?

घत्ता— सर्वथा निर्दोष ललितांगों से युक्त उसके लोचनों की दीर्घता उचित ही थी, अन्यथा, कामीजनों के काम की उत्कण्ठा को बढ़ाकर तथा आकर्षित कर मन को विदीर्ण कौन करता? (13)

1/14

इन्द्र के आदेशानुसार यक्ष ने वाणारसी नगरी को इन्द्रपुरी के समान सुन्दर बना दिया—

उस **वामादेवी** का केश-कलाप मयूर-पिच्छ के समान था। वह ऐसी प्रतीत होती थी, मानों कामदेव ने (उस प्रकार का केश-कलाप धारण किए हुए अपनी) एक भली सखी ही भेज दी हो। जिसका प्रियतम अपनी प्रियतमा वामारानी में अनुरक्त था और चन्द्रमा के समान दीप्त कान्ति वाली वह (वामादेवी) जब अपने भवन में निवास कर रही थी, तभी एक दिन अन्धकार का नाश करने वाले मृगासन (सिंहासन) को अपने नेत्रों से काँपता हुआ देखकर सुराधिपति (–इन्द्र) ने अपने अवधि ज्ञान रूपी नेत्र से जान लिया (–कि वामादेवी के गर्भ में कोई तीर्थंकर-पुत्र आने वाला है), अतः उसने यक्ष और सुरों, नरेन्द्रों एवं खेचरों को बुलाकर कहा—

भरहवासि वाणारसी पुरे णिय विहय-मोहिय सुरासुरे।।
धरणिणाह हयसेण मंदिरे मत्ततुंग गज्जंत चंदिरे।।
वम्मदेवि गब्भि जिणेसरो होहिही जयं भोयणेसरो।।
इय मुणेवि बहु पुर पहंतरा पंचवण्ण रयणहिँ णिरंतरा।।
10 लहु करेहि णयरी सुसोहणा सयदलत्थि-लच्छी विमोहणा।।
तं सुणेवि तेणाविसंकिया जा जणेहि सुरपुरि व संकिया।।

घत्ता— वाणारसि णयरी रंजिय खयरी पेढि विलासिणी व सहइ।
णाणाविह लोयहो भुंजिय भोयहो सइँ लीलइँ रइभरु सहइ।। 14।।

1/15

Description of the beauty and affluence of Vāṇārasī.

सुविसाल-साल कंचुअ समाण बहुविह भुवंग भणिज्जमाण।।
उल्लालिवि धयमाला-करग्गु उच्चाएवि सुरहर थणहरग्गु।।
गोउर-मुहेण संजणेवि रंगु दरिसइ जलपरिहा तिवलि-भंगु।।
ण समिच्छइ णिद्धण-जणहँ संगु णीरस-णराहँ रक्खइ वरंगु।।

"भारतवर्ष में सुरों एवं असुरों को अपने वैभव से मोहित कर लेने वाली **वाणारसी** नामकी नगरी है, जहाँ पृथिवीपति **हयसेन** के मदोन्मत्त एवं उत्तुंग शुभ्रवर्ण वाले हाथियों की गर्जना से युक्त राजभवन में रानी **वामादेवी** के गर्भ में तीनों लोकों को जीतने वाले जिनेश्वर पधारेंगे। अतः तुम लोग जाकर अनेक नगर एवं मार्गों से युक्त उस वाणारसी नगरी को शीघ्र ही सुशोभित कर दो पंच वर्ण वाले रत्नों की निरन्तर वर्षा करते रहो तथा उसे सहस्रदल कमलासनी लक्ष्मी को भी मोह लेने वाली बना दो।"

इन्द्र का कथन सुनकर यक्ष ने भी उसे इस प्रकार सुशोभित कर दिया कि उस नगरी को देखकर लोगों के मन में इन्द्रपुरी होने की शंका होने लगी।

घत्ता— खचरों को रंजित करने वाली वह वाणारसी नगरी उस प्रौढ़ विलासिनी-नायिका के समान सुन्दर दिखाई देने लगी, जो भोग भोगने वाले नाना प्रकार के रसिक जनों के लिए अपनी लीलापूर्वक रतिभार को वहन करती हुई सुशोभित होती है। (14)

1/15

वाणारसी नगरी के सौन्दर्य एवं समृद्धि का वर्णन—

(यक्ष द्वारा निर्मित–) उस **वाणारसी** नगरी का एक विशाल कोट था, जो विविध प्रकार के भुजंगों (सर्पों) द्वारा सेवित केंचुल के समान था अथवा वह कोट केंचुल के वर्ण का था, और ऐसा प्रतीत होता था, मानों वह (कोट) उस नगरी रूपी नायिका की चोली हो, उससे युक्त वह (नगरी) भुजंगों अर्थात् भोगियों द्वारा सेवित थी।

जो नगरी ध्वजारूपी कराग्रों को ऊँचे उठाए हुए थी, देवालय रूपी स्तनाग्रों को उन्नत किए हुई थी, जो गोपुर रूपी मुख से रंग (आनन्द) उत्पन्न करने वाली थी, जो जल से भरी हुई परिखा के बहाने मानों अपनी त्रिवली की भंगिमा ही दिखा रही हो, जो निर्धनजनों का समागम नहीं चाहती थी, वरांग को बचाए रखती थी, (अर्थात् जहाँ

विरयइ रवि-ससि-लोयण-विलासु फंसण ण देइ दुज्जण-खलासु।।
ण गणइ तुरंग-खुर-णहर-घाउ पयडइ गय-घड-मल्हण-सहाउ।।
विरयइ रइ णिहिल णरोत्तमाहँ महियलि पयडिय जस-विक्कमांह।।
मोत्तियसुदाम दसणहिँ हसंति करफंसवसेण समुल्लसंति।।
णाणा-वण-भूसण सिरि धरंति रमणीय-पएसहिँ मणुहरंति।।
णेहीर छडय सम लहणु लिंति वियसिय-पसूण-संदोह दिंति।।

घत्ता— इत्थंतरि इंदहो णविय जिणंदहो आएसिं पवर अच्छरउ।
पत्तउ सियसेविहे वम्मादेविहे मणहर-हर रइ को अच्छरउ।। 15।।

1/16

Figurative description of the beauty of Goddesses of Heaven and their interest shown by way of theirs various arts and crafts, music, melodious songs and eulogies presented before the mother-queen – Vāmā devī.

दिहि-कंति-सुबुद्धि-सुकित्ति-सिरी जणलोयण-हारिणि चारु हिरी।।
सुपसिद्धउ एयउ सुंदरउ कमणेउर-राचिय कंदरउ।।

केवल उत्तमजनों का ही निवास था)। वह नगरी सूर्य एवं चन्द्ररूपी नेत्रों का विलास करती थी (अर्थात् वहाँ कभी भी दुर्दिन नहीं होता था) जो कभी भी दुर्जनों को स्पर्श नहीं देती थी (अर्थात् वहाँ दुर्जनों की पहुँच नहीं थी)। जो नगरी तुरंगों के खुरों के नख के आघातों को नहीं गिनती थी (अर्थात् उस नगरी में उत्तम जाति के घोड़े निरन्तर दौड़ते रहते थे) और जो नगरी गजों की घटा के मर्दन-स्वभाव को प्रकट करती थी।

जो नगरी, पृथिवी तल पर अपने यश एवं पराक्रम को प्रकट करने वाले समस्त उत्तम (वीर) जनों से प्रेम करती थी, जो नगरी सुन्दर मोतियों की माला रूपी दन्तावली से हँसती रहती थी जो कर-स्पर्श अर्थात् सूर्य-चन्द्र की किरणों के स्पर्श से निरन्तर समुल्लसित (विकसित) रहती थी।

जो नगरी नाना प्रकार के वस्त्राभूषणों को सिर पर धारण करती थी (अर्थात् जहाँ के नर-नारियाँ विविध प्रकार के वस्त्राभूषण धारण कर नगरी के रूप को चित्र-विचित्र बनाते रहते थे), जो नगरी अपने रमणीक प्रदेशों से सभी के मन को हरती थी, जहाँ पर कुंकुम-राग के छिड़काव से युक्त विकसित प्रसून-पुंज सुकोमल-शैया के समान लगता था।

घत्ता— उसी नगरी में जिनेन्द्र को नमस्कार करने वाले इन्द्र के आदेश से श्रेष्ठ अप्सराएँ यदि कल्याणी **वामादेवी** के मनोहर भवन में पहुँची और प्रसन्न हुई तो इसमें आश्चर्य ही क्या? (15)

1/16

स्वर्ग लोक की देवियों के सौन्दर्य और उनकी कला के प्रति अभिरुचि का रोचक वर्णन तथा उनके द्वारा वामादेवी की स्तुति—

लोगों के नेत्रों को आकर्षित करने वाली धृति, कान्ति, सुबुद्धि, सुकीर्ति, श्री एवं ह्री नामकी (इन्द्र द्वारा सम्मानित) सुन्दर देवियाँ अपने चरणों के नूपुरों की ध्वनि से यद्यपि जगत को भर देने वाली थीं, फिर भी वे किसी के द्वारा

अवराउ ण केणवि जाणियउ अमयासण-सामिउ-माणियउ।।
मुह-इंदु-पहाहय चंदयरा णयणेहिँ परज्जिय मारसरा।।
पय-पोम-पसाहिय-वोमयला तणु-तेय-विहूसिय-भूमियला।।
चलहार-लता-परमट्ठ-थणा णियरूव-विमोहिय-लोयगणा।।
सुरसामिय-पत्त-सयंवरया विविहंबर कब्बुरियंवरया।।
करपल्लव-णिज्जिय पिंडिदला परियाणिय-णिम्मल लोयकला।।

घत्ता— आयहिँ सुरणारिहिँ जण-मण-मारिहि हयसेणहो पेक्खिणि रमणि।
संथुअ सुहकारिणि कलिमल-हारिणि सिहिणंतरि चल-हारमणि।। 16।।

1/17

Melodious prayers were presented by the Goddesses before the mother-queen Vāmā devi.

जय-जय परमेसरि लोयमाए जहि तुहु ता किं किज्जइ रमाए।।
तुहु तिमिर-हणणि दिणमणि-विहेव कुलहर भासणि दीवय-सिहेव।।
तुहु पर परहुअ वरमहुरवाणि णिहिलामल-गुण-रयणोह-खाणि।।
तुहु सयल जीव रक्खण पवीण तुहु विवरम्मुह जायंति दीण।।

पहिचानी नहीं जाती थीं, (अर्थात् वे देवियाँ इतनी अदृश्य एवं उनके नूपुरों की ध्वनि इतनी प्रच्छन्न थी कि कोई भी बाहिरी व्यक्ति उन्हें देख-सुन नहीं सकता था)।

उन देवियों की मुखरूपी चन्द्रप्रभा से चन्द्र-किरणें भी आहत रहती थीं, कामबाण भी उनके नेत्रों से पराजित रहते थे। वे अपने चरण-कमलों से आकाशतल को प्रसाधित कर देने वाली थीं, और अपने तेज (कान्ति) से भूमितल को विभूषित करने वाली थीं। उनके स्तन चंचल हार लता से परिमर्दित रहते थे, अपने सौन्दर्य से वे लोगों को विमोहित करने वाली थीं।

वे देवियाँ देवेन्द्र द्वारा स्वयंवर को प्राप्त थीं और विविध-वस्त्रों से आकाश को चित्रित करने में समर्थ थीं। अपने कर रूपी पल्लवों से अशोक वृक्ष के पत्तों को भी निर्जित कर देने वाली वे देवियाँ निर्दोष लोक-कला की ज्ञाता थीं।

घत्ता— लोगों के मन का हरण करने वाली वे देवियाँ वहाँ (राजभवन में) आई और **हयसेन** की रमणी **वामादेवी** की, जो कि स्तन-युगल पर मणि जटित हार धारण किये हुए थीं, उस (वामादेवी) की कलिकाल के दोष को हरने वाली सुखकारी स्तुति (इसप्रकार) की— (16)

1/17

देवियों द्वारा वामा-माता की स्तुति—

"हे परमेश्वरी, हे लोकमाता, आपकी जय हो — जय हो। जहाँ आप हैं, वहाँ लक्ष्मी से क्या प्रयोजन? आप तिमिर को नष्ट करने के लिए दिनमणि-सूर्य के समान हो, कुल-गृह को प्रकाशित करने के लिए आप दीप-शिखा के समान हो, कोकिल की मधुर-वाणी बोलने वाली हो। हे माता, आप समस्त निर्मल गुण रूपी रत्नों के समूह की खानि हो। आप सकल जीवों की रक्षा में प्रवीण (कुशल) हो, जो विरोधीजन हैं, वे भी आपके सम्मुख दीन हो जाते

तुहु पाय-पउम सेविय ण जेहिँ अप्पउ विमइहिँ वंचियउ तेहिँ।।
तुहुँ तणउ सहलु पर णारि-जम्मु परिहरियामरिस-कसाय छम्मु।।
तुहु दंसणि दूरोसरहिँ पाव सहसत्ति होंति विमलयर-भाव।।
तुहुँ सुह-महिरुहु संजणण-छोणि णीसेस कला-विण्णाण-जोणि।।
तुहुँ पर तिहुअण णारियण-रयण पइँ परमुहेण जिउ लच्छि सयण
तुह गब्भवासि तित्थयरु देउ वित्थरिय सयल भुवणयल-भेउ
णिम्मल-ति-णाणी अमलिय-मरट्ठ मिच्छत्त-चणय-चूरण-घरट्ठ।।
खयरामर-णर-धरणिंद-सामि होसइ परमेसरु मोक्खगामि।।

घत्ता— इय थोत्तु कुणंतउ हरिसु जणंतउ जंपंतउ सेवावयणु।
अंजलि जोडंतउ पयहिँ पडंतउ णच्चंतउ सुरणारियणु।। 17।।

1/18

Various humble services were served to the mother-queen by the Goddesses.

समप्पइ कावि दुरेह-रवाल सुअंध पसूण विणिम्मिय माल।।
विलेवणु लेविणु कावि करेण पुरस्सर थक्कइ भत्ति-भरेण।।
पलोट्टइ कावि विमुक्क-कसाय सरोरुह-सण्णिह णिम्मल-पाय।।
कवोलयले कावि चित्तु लिहेइ कहाणउ-सुंदरु कावि कहेइ।।
समारइ कावि सिरे अलयालि करेइ वरतिलय कावि भालि।।

हैं। जिन्होंने आपके चरण-कमलों की सेवा नहीं की, उन विगत-मतियों ने (केवल) अपने को (ही) ठगा है, केवल आपका ही नारी जन्म श्रेष्ठ एवं सफल है क्योंकि आपने क्रोध-कषाय एवं छल को त्याग दिया है।

हे माता, आपके दर्शन से पाप दूर भाग जाते हैं और भावनाएँ सहसा ही विमलतर हो जाती हैं। आप सुखरूपी वृक्षों के उत्पन्न करने की भूमि के समान तथा समस्त कला-विज्ञान की योनि (माता) हो। आप त्रिभुवन की नारियों में श्रेष्ठ नारी-रत्न हैं। आपने अपने उत्तम सुख से लक्ष्मी शयन-विष्णु को भी जीत लिया है। आपके गर्भ में उन तीर्थंकर देव का वास है, जिन्होंने सकल भुवनतल के भेद का विस्तार किया है तथा जो निर्मल हैं, तीन ज्ञानधारी हैं और जिनका उत्कर्ष निर्दोष है, जो मिथ्यात्व रूपी चनों के चूरने (बनाने) के लिए चक्की के समान हैं और जो खचर, अमर, नर एवं धरणेन्द्र के स्वामी हैं, उन्ही मोक्षगामी परमेश्वर तीर्थंकर का (आपकी कोख से) जन्म होगा।"

घत्ता— इस प्रकार वे (छहों) देवियाँ माता को हर्षित करती हुई, सेवा-वचन बोलती हुईं, अंजलि जोड़ती हुई उसके चरणों में गिरती हुई तथा उसके सम्मुख नाचती हुई उसकी स्तुति करने लगीं। (17)

1/18

देवियों द्वारा माता-वामा की विभिन्न सेवाएँ—

कोई देवी तो वामादेवी के लिये सुगन्धित पुष्पों द्वारा विनिर्मित भ्रमरों से गुंजायमान माला समर्पित करती थी और कोई देवी हाथ से विलेपन (चंदन आदि) का लेप करती थी। कोई देवी भक्तिभाव से सामने बैठती थी, तो कोई देवी कषाय-भाव को छोड़कर उस माता के कमलों के समान निर्मल चरणों को पलोटती (दबाती या पगचंपी) करती थी। कोई देवी कपोल-तल में चित्र लिखती थी, तो कोई देवी सुन्दर कथानक कहती थी।

कोई देवी उसके माथे की अलकालि (केशपाश) को सँवारती थी तो कोई देवी भाल में (ललाट में) उत्तम तिलक

पदंसइ दप्पणु कावि पहिट्ठ रसड्ढु पणच्चइ कावि महट्ठ।।
मणोज्जउ गायइ गीउ-रसालु सुहासि वरंगणु कावि सतालु।।
करग्गे णिवेसिवि कावि करालु णिरंतरु णिब्भरु रक्खइ वालु।।
पढावइ कावि संपजरु कीरु विइण्णउ कावि सुसंचइ चीरु।।
महोदय-मंदिर-दारु सरेवि परिट्ठिय कावि सुदंडु धरेवि।।
महाजल-वाहिणि सत्थजलेण सुही कावि ण्हावइ घित्थ मलेण।।
पयंपइ कावि महाविणएण विराइय विग्गह लच्छि णएण।।
कुवेरु मणीहिँ पबुट्ठउ ताम छमास णरिंदहो पंगणि जाम।।

घत्ता— सुहसेज्ज परिट्ठिय अइ उक्कंठिय णयण सोह णिज्जिय णलिण।
सोवंति सुरहँ पिय हयसेणहो पिय सुइणइँ पिच्छ गलिय मलिण।। 18।।

1/19

Charming dreams were seen by the mother-queen Vāmā devī in the last leg of night.

णिम्मीलिअच्छि-उड णिय-णाह णेहेण सुत्ती सुरामा हयाणंग-दाहेण।।
रयणीविरामे मयच्छीए मायंगु दिट्ठो गरिट्ठो तुसारद्दि सेयंगु।।
दाणंबु-धारा-पवाहेण वरिसंतु जलभरिय जलहरुव गज्जिएवरु वरिसंतु।।

लगाती थी। कोई देवी हर्षित होकर दर्पण दिखाती थी और कोई देवी बड़े-बड़े रसपूर्ण नृत्य करती थी। कोई देवी सुन्दर मनोज्ञ रसाल गीतों को गाती थी, तो कोई सुधाशी (अमृतभोजीदेव की) वरांगना देवी अपना ताल बजाती थी, कोई देवी कराग्र में कराल खड्ग लेकर निरन्तर गर्भस्थ बालक की रक्षा करती थी तो कोई देवी पिंजड़े के तोते को पढ़ाती थी। कोई देवी बिखरे हुए वस्त्र को सुसंचित (तह करना) करती थी।

कोई देवी **वामा** के विशाल एवं उत्तम भवन के दरवाजे पर चुपचाप जाकर पहरेदारी के लिये सुन्दर दण्ड धारण कर स्थित थी। कोई बुद्धिमती देवी महाजल-वाहिनी तथा मल को दूर करने वाले गंगादि नदियों के स्वच्छ जल से स्नान कराती थी और कोई देवी आभूषणों से अलंकृत शरीरवाली उस वामा माता से अत्यन्त विनयपूर्वक वार्तालाप करती थी। कुबेर ने भी राजा **हयसेन** के प्रांगण में छः मास तक मणियों की वर्षा की।

घत्ता— अत्यन्त उत्कण्ठित, अपने नयनों की शोभा से नलिनी को भी जीत लेने वाली, देवों को भी प्रिय लगने वाली सम्राट हयसेन की प्रियतमा उस **वामादेवी** ने सुख-शैया पर स्थित होकर सोते समय रात्रि के अन्तिम पहर में पाप-मल को गला देने वाले स्वप्न देखे। (18)

1/19

रात्रि के अन्तिम प्रहर में माता वामा देवी द्वारा स्वप्न-दर्शन—

अनंगदाह को दूर करने वाले प्रियतम के स्नेह के साथ मृगनयनी वह सुरामा — **वामादेवी**, जब अपने दोनों नेत्रों को बन्द किए हुए सो रही थी, तभी उसने रात्रि के अन्तिम प्रहर में निम्न प्रकार के स्वप्न देखे—

1. हिमालय के समान महान् एवं श्वेतांग-मातंग देखा, जो जल से भरे हुए मेघ के समान गर्जना करता हुआ मदजल की धाराप्रवाह वर्षा कर रहा था।

सविसाण जुअलेण महिवीढु दारंतु धोरेउ चवलुद्धु पुच्छेण सोहंतु।।
हरिणारि विक्कमेण विंभविय देविंदु दिढ-दाढ णिद्दारियाणेय करिविंदु।।
णव-णलिणि-विमलयर-दल-पिहुल-चवलच्छि मंजीर-झंकार सुमणोहरा लच्छि।।
चवलालि-लालिय सुसेलिंधमालाण दंदं महामोय-जुत्तं समालाण।।
तिमिरारि-णिरसंतु संपुण्णु सियभाणु भुअणयलु भासंतु दिप्पंतु खरभाणु।।
अण्णोणु णीरंति कीलंतु झस-जुम्मु पल्लवहिँ पच्छइउ पयभरिउ घडिव जुम्मु।।
णलिणायरं णलिण पत्तेहिँ संछण्णु रयणायरो फुरिय रयणहि-असावण्णु।।
पंचाणणु छूढु पीढं पहावंतु तुंगु पुरंदर विमाणं रमावंतु।।
णायालयं भासुरं रयणसंदोहु धूमुज्झियं जायवेयं महावोहु।।

घत्ता— इय जं जह दिट्ठउ तं तह सिट्ठउ अहिमयरुग्गमि देविए।
रइ-सुहकत्तारहो णियभत्तारहो सुरसीमंतिणि सेवियए।। 19।।

---

2. अपने दोनों सींगों से पृथिवी को विदीर्ण करते हुए चपल एवं पूँछ को उन्नत किए हुए सुन्दर धौरेय (वृषभ) को देखा।
3. अपने पराक्रम से देवेन्द्र को भी विभ्रम में डाल देने वाला, तथा अपनी दृढ़ दाढ़ से अनेक गजवृन्दों को विदीर्ण कर देने वाला सिंह देखा।
4. विमलतर दलों वाली पृथुल नव-नलिनी के समान चपल नेत्रवाली तथा नूपुरों की झंकार से युक्त सुमनोहरा लक्ष्मी को देखा।
5. चपल भ्रमरों से सुशोभित सुन्दर पुष्पों की अत्यन्त सुगन्धित माला-युगल को देखा।
6. अन्धकार जैसे महान् शत्रु को नष्ट करने वाला सम्पूर्ण चन्द्रमा देखा।
7. भुवनतल को भासित करने वाले तेजोदीप्त सूर्य को देखा।
8. परस्पर में प्रेरित करने वाले तथा क्रीड़ा करने वाले मीन-युग को देखा।
9. पत्राच्छादित जल से भरे कलश-युगल को देखा।
10. कमल पत्रों से ढँके हुए सरोवर को देखा।
11. स्फुरायमान रत्नों से युक्त अद्भुत विशिष्ट समुद्र को देखा।
12. सिंह द्वारा धारण किया हुआ प्रभावाला आसन (अर्थात् सिंहासन) देखा।
13. शोभा-सम्पन्न उन्नत इन्द्र-विमान देखा।
14. नागकुमार-भवन देखा।
15. देदीप्यमान रत्न-समूह देखा। एवं, अन्त में–
16. प्रज्वलित निर्धूम अग्नि को देखा।

घत्ता— सूर्य के उदित होने पर देवांगनाओं द्वारा सेवित उस रानी वामादेवी ने रात्रि में जिस क्रम में स्वप्न देखे थे, वे सभी उसने उसी क्रम से रति-सुख को देने वाले अपने प्रियतम के लिए कह सुनाए। (19)

1/20

Emperor Hayasena interprets and declares the result of the dreams.

तेण वि सुइणावलिहिँ सुहासिउ गयमलु फलु पिययमहिँ सुहासिउ।।
करिणा कीलेसइँ सुहसारो सहु देवेहिँ सुरासुरसारो।।
वसहेण भासेसइ धम्मं पंचसरहो चूरेसइ धम्मं।।
हरिणा हरिविट्ठरि णिवसेसइ सिरिए सरूवें सरु वि विसेसइ।।
5 मालजुएण जगुत्तमो होसइ ससिणा सच्चउ वयणु भणेसइ।।
रविणा पावंधयारु हरेसइ जायय जुअलें हरिसु करेसइ।।
णव-घड-जुवलेण सुरहिँ ण्हावेव्वउ णलिणायरेण णरहिँ भावेव्वउ।।
जलणिहिणा गुणरयण धरेसइ सिंहासणिण सुहाइ भरेसइ।।
अमरविमाणि सिवउरि राणउ होसइ जणवय कय पवराणउ।।
10 अहिभवणें भवियणहिँ णवेव्वउ णव णाइणियहि हियए थवेव्वउ।।
मणि-संदोहें मोक्खु लहेसइ सिहिणा कम्मिंधणं डहेसइ।।

घत्ता— जगधरण-धुरंधरु उण्णय कंधरु सिसु कुरंग सण्णिह णयणि।
मुहपय-हय सररुहु णिरुवमु तणुरुहु तुह होसइ ससिसम वयणि।। 20।।

1/20

सम्राट् हयसेन (अश्वसेन) द्वारा स्वप्न-फल कथन—

उस राजा **हयसेन** ने भी रानी द्वारा सुखदायक स्वप्नावलि सुनकर उसका निर्दोष फल अपनी प्रियतमा को (इस प्रकार) बतलाया :—

1. हाथी के देखने का फल यह है कि तुम्हारी कोख से उत्पन्न होने वाला सुखसार पुत्र, सुरों-असुरों में प्रधान देवों के साथ क्रीड़ाएँ करेगा। 2. वृषभ के देखने से वह पुत्र धर्म का कथन करेगा और कामदेव के धर्म (धनुष) को नष्ट करेगा। 3. सिंह के देखने से वह पुत्र सिंहासन पर बैठेगा। 4. श्री के देखने से वह अपने स्वरूप से कामदेव को भी अपमानित करेगा। 5. माला-युगल के देखने से वह जग में सर्वोत्तम होगा। 6. चन्द्र के देखने से वह सत्य वचन बोलेगा। 7. सूर्य के देखने से वह पाप रूपी अन्धकार को हरेगा। 8. मीन-युगल को देखने से वह सभी को हर्षित करेगा। 9. नव-घट-युगल के देखने से देवों द्वारा उसे स्नान (अभिषेक) कराया जायेगा। 10. नलिनाकर (सरोवर) देखने से मनुष्यों द्वारा भाया (चिन्तन किया) जायगा। 11. जलनिधि (समुद्र) देखने से वह गुण-रत्नों का धारक होगा। 12. सिंहासन देखने से वह सभी प्रकार के सुख भोगेगा। 13. अमर-विमान देखने से वह शिवपुर का राजा होगा और जनपदों में प्रवर आज्ञा करने वाला होगा, (अर्थात् सभी जन उसकी आज्ञा मानेंगे)। 14. अहि-भवन देखने से वह पुत्र भव्यजनों द्वारा नमस्कृत होगा और नव-नवांगिनियों (एवं नागकुमारों) द्वारा अपने हृदयों में स्थापित किया जायगा। 15. मणि-समूह देखने से वह मोक्ष प्राप्त करेगा, एवं 16. अग्नि को देखने से वह कर्मरूपी ईंधन को जलायेगा।

घत्ता— हे चन्द्रमुखि, आपके लिये जगत् की धर्म-धुरा को धारण करने वाला, उन्नत कान्धौर वाला, कुरंग के समान नेत्रवाला, अपने मुख की प्रभा से कमल को जीतने वाला, निरुपम एवं कामदेव के समान सुन्दर पुत्र प्राप्त होगा। (20)

1/21

Mother queen Vāmā devi becomes pregnant and gives birth to the infant (Hero of this Epic).

जा वसइ समंदिरि वम्मदेवि हयसेण पियहो सुइणइँ कहेवि।।
ता भव-परिभवण णिवारणाइँ आराहेवि सोलहकारणाइँ।।
अज्जिवि तित्थयरहो गोत्तु णामु तणु-मण-वयणहि णिद्दलिवि कामु।।
सम मणेण णिहालिवि जीवगामु तवतेएँ णिज्जिवि तवण-धामु।।
परिउज्झेवि चउविह-कसाय विणिवारिवि विसयासा-विसाय।।
णिक्खुत्तिवि पुव्वज्जिय दुहाइँ भुंजिवि दु-तीस-सायर सुहाइँ।।
मेल्लिवि विमाणु लहु वइजयंतु हरि-हास-काससिय कुसुमयंतु।।
कणयप्पहु णिज्जिय मयरकेउ धोरेय धवल रूवेण देउ।।
वइसाह बहुल बीया दिणम्मि अवयरिउ परमजिणु तक्खणम्मि।।
संचरइ गब्भे सरयब्भे जेम सिसिरयरु स मायहे तणए तेम।।
सुर सग्गहो एविणु गब्भवासु णिवदेवी पणवेवि गय सवासु।।
तं दिवसु धरेवि णवमास जाम कय रयणविट्ठि जक्खेण ताम।।
पवराणए पुणु वि पुरंदरासु जिण ण्हवण वारिधुअ मंदरासु।।
उयरत्थहो रुइ णीसरइ केम घणपिहिय बाल दिणयरहो जेम।।
एत्थंतरि पूसहो कसणवक्खे एयारसि दिणि वियलिय विवक्खे।।

1/21

पार्श्व प्रभु का गर्भ में आगमन और जन्म कल्याणक—

अपने प्रियतम राजा **हयसेन** के लिये अपने स्वप्न कहकर (तथा उनका सुखद फल सुनकर) **वामादेवी** जब अपने भवन में रह रही थी, तभी भव-परिभ्रमण का निवारण करने वाली सोलहकारण-भावनाओं की आराधना कर, तीर्थंकर-गोत्र का अर्जन कर, काय, मन एवं वचन से काम-वासना का निर्दलन कर, समता रूप मन से जीव मात्र को देखकर अपने तप-तेज से सूर्य के तेज को जीतकर, चतुर्विध कषाय को दूर से ही छोड़कर, विषयों सम्बन्धी आशा एवं विषाद का विनिवारण कर, पूर्वार्जित दुःखों को काटकर, बत्तीस सागर तक सुखादि को भोगकर शिव के हास्य और कांस्य के समान श्वेत पुष्पों वाले वैजयन्त-स्वर्ग के विमान को शीघ्र ही छोड़कर (सौन्दर्य में–) कामदेव को निर्जित कर देने वाला तथा धवल वृषभ के समान धवल रूप वाला **कनकप्रभ** नामका देव वैशाख बहुल कृष्ण द्वितीया के दिन तत्काल ही परम जिन के रूप में (वामादेवी की कोख में) गर्भस्थ हुआ।

वह (देव का) जीव वामारानी के गर्भ में इस प्रकार संचरण करने लगा, जिस प्रकार शरदकालीन मेघों के भीतर सूर्य।

देवगण स्वर्ग से गर्भगृह तक आये और राजा हयसेन एवं रानी वामादेवी को प्रणाम कर अपने-अपने स्थान पर चले गये। जिनेन्द्र के अभिषेक-जल से मन्दिर को पवित्र कर देने वाले पुरन्दर की आज्ञा से गर्भावतरण के दिन से लेकर 9 माह तक यक्ष-कुबेर ने (वाणारसी में) लगातार रत्नवृष्टि की। उस उदरस्थ भगवान् की कान्ति इस प्रकार निकल रही थी, जैसे मेघ से आच्छादित बाल-सूर्य की प्रभा ही हो। इसी बीच (समय के पूर्ण होते ही) पौषमास के कृष्णपक्ष के विपक्ष के विगलित होने पर एकादशी के दिन–

घत्ता— हयसेणहो कंतए ससियरकंतए सयलसुरासुर सिर रयणु।
जिणु जणिउ थणंधउ तिहुअण बंधउ णट्टल थुउ सिरिहर वयणु।। 21।।

Colophon

इयसिरिपासचरित्तं रइयं बुहसिरिहरेण गुणभरियं।
अणुमण्णियं मणोज्जं णट्टल णामेण भव्वेण।। छ।।
विजयंत विमाणाओ वम्मादेवीइ णंदणो जाओ।
कणयप्पहु चविऊणं पढमो संधी परिसमत्तो।। छ।। संधि।।

Blessings to Sāhu Naṭṭala, the inspirer.

यस्य भान्ति शशांक सन्निभ लसत्कीर्त्तिर्धरित्री तले,
यस्माद्वादिजनो बभूव सकलः कल्याण तुल्यार्थिना।
येनावाचि वचः प्रपञ्च रचना हीनां जनानां प्रियम्,
सश्रीमान् जयतात् सुधीरनुपमः श्रीनट्टलः सर्वदः।।

घत्ता— चन्द्रमा के समान कान्तिवाली राजा **हयसेन** की उस कान्ता **(वामारानी)** ने समस्त सुरासुरों के शिरोमणि, तीनों लोकों के बन्धु-स्वरूप जिनेन्द्र-शिशु को जन्म दिया। कवि **श्रीधर** के अनुरोध से (साहू–) **नट्टल** ने उन (जिनेन्द्र-शिशु) की (भक्ति भरित भाव से) स्तुति की। (21)

पुष्पिका

इस प्रकार बुध **श्रीधर** ने भव्य **नट्टल साहू** के अनुमोदन से गुणभरित एवं मनोज्ञ (इस) पार्श्वचरित की रचना की है। उसमें वैजयन्त-विमान से **कनकप्रभ** नाम के देव ने चयकर **वामादेवी** की कोख से एक नन्दन के रूप में जन्म लिया। (इस विषय सम्बन्धी) यह प्रथम सन्धि समाप्त (हुई)। ।। छ।। सन्धि-1

आश्रयदाता नट्टल साहू के लिये आशीर्वाद

पृथिवी-मण्डल पर जिसकी धवल कीर्त्ति पूर्णमासी के चन्द्र की तरह सुशोभित है, जिसकी उदारता के कारण समस्त वादिजन जिसके कल्याणों की चाहना करने वाले बन गये तथा जिसने कवियों एवं लेखकों से अनुरोध कर-करके मन्द-बुद्धिजनों के लिये प्रिय-रचनाओं का प्रणयन करवाया, सुधियों में अनुपम तथा श्री एवं समृद्धि युक्त वह **नट्टल (साहू)** सर्वदा जयवन्त रहे।

बीया संधी

2/1

Description of uncommon wonders happened at the time of the new born baby- (The Hero of this Epic)

घत्ता— सो तिहुअण सामि सिवउरगामि सुहिणा केरिसु दिट्ठु।
णं जस-तरुकंदु उइयउचंदु हय जण-ताव णिट्ठु।। छ।।

णं जसु जणियउ णयवित्तियाइँ णं णवमुत्ताहलु सुत्तियाइँ।।
णं भोयलाहु सुहसंपयाइँ णं पुण्णपुंजु णिम्मल दयाइँ।।
णं बालदिवायरु सुरदिसाए णं धणणिहि-कलसुल्लउ रसाए।।
णं जगगुरुत्तु केवल-सिरीए णं सील सउच्चत्तणु-हिरीए।।
णं कामएउ पच्चक्खु जाउ णं सिसुमिसेण सुरवइ जि आउ।।
णं सुम्मइ जो जगि धम्मणामु सो एहु अवयरिउ दिण्णकामु।।
णं णिएवि लोउ अमणोरमेण खज्जंतउ पावभुअंगमेण।।
करुणइँ धरेवि विहि बालदेहु रक्खण-णिमित्त अवयरिउ एहु।।
णं जसु जग मंडवि अंबरेण आवेसइ एत्थ सयंवरेण।।
सिव-सिद्धि-विलासिणि सहरसेण परमेसर-जिण रइ-रस-वसेण।।
घण-कढिण-थोर-थण कय करग्ग विरहारि विहिय परिहवेण भग्ग।।

2/1

शिशु की अपूर्वता का वर्णन—

त्रिभुवन के स्वामी, शिवपुरगामी, उस जिन-शिशु को सज्जनों ने किस प्रकार देखा? निश्चय ही उन्होंने उसे इस प्रकार देखा जैसे मानों वह यश रूपी वृक्ष का कन्द-मूल ही हो, अथवा अनिष्टकारी जन-सन्ताप को नष्ट करने वाले चन्द्रमा का ही उदय हो। (छ)

वह जिन-शिशु ऐसा प्रतीत होता था-मानों नय (न्याय-मार्ग) वृत्ति से उत्पन्न यश ही हो। अथवा, मानों सीपी से उत्पन्न नवजात मोती ही हो। मानों सुख की संपदा से भोगों का लाभ ही जन्मा हो। या, मानों, निर्मल दया-भाव से पुण्य का पुंज ही जन्मा हो। या, मानों, पूर्व-दिशा से सभी को उल्लसित करने वाला बाल-सूर्य ही जन्मा हो। या, मानों, पृथिवी से निकले हुए धन का वह निधान-कलश ही हो। या, मानों, केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी से जगत् के गुरु का ही जन्म हुआ हो। या, मानों, ही (लज्जा) से शील-शौच रूपी धर्म का ही जन्म हुआ हो।

वह शिशु ऐसा प्रतीत होता था, मानों प्रत्यक्ष रूप में कामदेव ही उत्पन्न हुआ हो। अथवा, मानों इस बालक के छल से इन्द्र ही वहाँ आया हो। अथवा, मानों, जगत् में सभी मनोरथों को प्रदान करने वाले जिस धर्म का नाम सुना जाता है, वही इस शिशु के रूप में उत्पन्न हुआ हो। अथवा, मानों, अमनोरम पाप-रूपी सर्पों से डँसे जाते हुए लोक को दुःखी देखकर ब्रह्मा ने करुणा-भाव धारण कर उसकी रक्षा के लिए ही यह बाल रूप धारण किया हो।

अत्यन्त सघन, कठिन एवं विशाल स्तनों पर कराग्र रखने वाले कामदेव द्वारा किये गये पराभव से भग्न शिव-सिद्धि रूपी विलासिनी के साथ हर्षित मन से रति-रस के वशीभूत होकर वह परमेश्वर-जिन-शिशु मानों स्वयंवर के

किहिं कहिं भणंति महु तणउ कंतु तणु-ताव-हरणु सिसिरयर कंतु।।
15 सो एहु मण्णमि णित्तुलउ णण्णु णयणारविंद परिणिहिय कण्णु।।

घत्ता— जय-जय जिणणाहँ णाणसणाहँ खयरामर णरणाहँ ।
गुणमणि सरिणाहँ हयरइणाहँ भुअण कमल दिणणाहँ ।। 22।।

2/2

Indra (the supreme Head of the Heaven) gets information himself by his self-knowledge (Awadhi Jñāna) regarding the auspicious birth of the baby (-Hero).

कंपिय सिंहासण सुरवराहँ जिण जम्मुच्छवि थुअ जिणवराहँ।।
टणटणिय घंट कप्पामराहँ उत्तसिय सीह जोइस सुराहँ।।
पडुपडह पवज्जिय विंतराहँ अइरसिय संख भावण सुराहँ।।
तेलोक्कुवि परिसंखुहिउ जाम सुरवइणा णाणें मुणिउ ताम।।
5 महियलि उप्पण्णउ अरुहणाहु करुणा वर-वल्लरि वारिबाहु।।
मेल्लिवि सिंहासणु भत्तियाए पाविय जिणगुण संपत्तियाए।।
जिणदिस-सम्मुहुँ होइवि दवट्टि मिच्छत्त छेत्त महमइयवट्टि।।
गंतूण सत्त चरणइं रएण पणविउ सुरिंदु सिवसुह कएण।

रूप में यश रूपी जगत के मण्डप में आकाश-मार्ग से आया हो। (और अधिक–) क्या कहें? मेरे सुन्दर पुत्र के लिए लोग कहते हैं कि वह शरीर रूपी ताप के हरण करने के लिए चन्द्रमा रूपी पति है। अतः मैं ऐसा मानता हूँ कि वह अनुपम है, उसके समान अन्य कोई नहीं है तथा वह नयन रूपी कमल पर कर्ण को रखे हुए हैं (अर्थात् नेत्र की लम्बाई कानों तक है)।

घत्ता— हे जिननाथ, ज्ञान के धनी, खेचर, अमर एवं नरों के नाथ, गुणरूपी रत्नों के सागर, कामदेव के नाशक एवं भुवन रूपी कमल के लिए हे दिवसनाथ (सूर्य), आपकी जय हो, जय हो। (22)

2/2

इन्द्र को पार्श्व के जन्म-कल्याणक की सूचना—

पार्श्व-जिनेन्द्र के जन्मोत्सव के समय जिनवरों की स्तुति करने वाले देवेन्द्रों के सिंहासन कम्पायमान हो उठे। कल्पवासी देवों के यहाँ भी घण्टे टनटनाने (ध्वनि करने) लगे अर्थात् अपने आप घण्टानाद होने लगा। ज्योतिषी देवों के यहाँ भी सिंह-गर्जना होने लगी। व्यन्तर देवों के यहाँ पटु-पटह (बड़े-बड़े नगाड़े) बजने लगे अर्थात् स्वयमेव पटहनाद होने लगा। भवनवासी देवों के यहाँ शंख अत्यधिक शब्द करने लगे (स्वयं शंखनाद होने लगा)।

इस प्रकार जब समस्त त्रिलोक क्षोभ को प्राप्त हो गया, तब इन्द्र को अपने ज्ञान के द्वारा ज्ञात हुआ कि महीतल में करुणा रूपी बड़ी लता के लिए मेघसमान अर्हन्नाथ उत्पन्न हुए हैं। उसने भक्ति पूर्वक अपना आसन छोड़ कर जिनेन्द्र गुणों की सम्पत्ति (जन्म से हर्ष) प्राप्तकर, जिनेन्द्र की दिशा (वाणारसी) की ओर मुख करके दूर से ही मिथ्यात्व रूपी क्षेत्र में महान् वाट (राह) बना कर उस वाट में वेग पूर्वक सात चरण (पैंड) चलकर शिव-सुख के कर्त्ता जिनेन्द्र को प्रणाम किया।

तत्पश्चात् उस सुरपति ने सिंहासन पर बैठकर भव्यजनों के मन को इष्ट लगने वाले वचन इस प्रकार कहे–

पुणरवि सुरवइ विट्ठरे णिविट्ठु जंपंतु वयणु भवियण मणिट्ठु।।
10 जो भवसमुद्द-तारण-समत्थु अरुणंभोरुहदल विमल हत्थु।।
सिद्धत्थ सरिसु गुणपत्तभूउ वाणारसि हयसेणहो तणूउ।।
तहो तह जह कुहरहो जलहरेण अहिसेउ करेव्वउ मइभरेण।।

घत्ता— तं सुणिवि सुराहँ ललिय कराहँ हरिसु ण मायउ चित्ति।
चल्लिय सविमाण अप्परिमाण णहयले रवियर दित्ति।। 23।।

2/3

Indra with the families of Gods moves towards Vāṇārasī, the birth-place of the baby (Hero).

ता अवसरि जा सक्कंदणेण अइरावउ करि सुमिरिउ मणेण।।
ता पत्तु मत्तु मंदर पमाणु खयकाल सलिलहर गज्जमाणु।।
अविरलु मुअंतु दस दिसिहिँदाणु कलरव गेंज्जावलि सोहमाणु।।
वर कच्छरिच्छमाला समाणु कण्णाणिल हय चमराहिमाणु।।
5 पडिकूल पिसुण णासण कियंतु बहुदंतकंति भूसिय दियंतु।।
दिए-दिए सरु सरे-सरे पोम पत्त तहिं पत्ते-पत्ते णवणलिणणेत्त।।
णच्चंति थंति थोरत्थणीउ णिव्वाणराय सीमंतिणीउ।।
णं णिएवि णाउ णिम्मल सहाउ चडियउ दवत्ति सोहम्मराउ।।

"जो जिनेन्द्र भव-समुद्र के तारण में समर्थ हैं, लाल कमल पत्र के समान निर्मल हस्त वाले हैं, जो सिद्धार्थ (सरसों) के समान समस्त अर्थों को सिद्ध करने वाले तथा सिद्धार्थ के समान गुणों के पात्र हैं, वाणारसी में राजा हयसेन के यहाँ ऐसे ही पुत्ररत्न उत्पन्न हुए हैं। जिस प्रकार मेघ वृक्षों को स्नान कराते हैं, उसी प्रकार हे बुद्धिमान् देवगण, तुम भी वहाँ जाकर उस शिशु का अभिषेक करो।"

घत्ता— इन्द्र के इस प्रकार वचन सुनकर सुन्दर हाथ वाले उन देवगणों का हर्ष चित्त में न समाया। सूर्य-किरण की दीप्ति के समान वे अपरिमित आकाश मार्ग से अपने-अपने विमानों में चढ़कर (वाणारसी नगरी की ओर) चल पड़े। (23)

2/3

इन्द्र का देवों के परिवार के साथ वाणारसी की ओर प्रस्थान—

उस अवसर पर शक्र (इन्द्र) ने अपने मन में ऐरावत हाथी का जब स्मरण किया तभी वह मन्दर प्रमाण (अर्थात् सुमेरु पर्वत के बराबर एक लक्ष योजन का), क्षयकालीन मेघ-गर्जना करने वाला (जैसे क्षय-प्रलयकाल में मेघ गर्जते हैं), दशों दिशाओं में मद-जल की वर्षा करते हुए ध्वनि करने के कारण ग्रीवा की आभूषण-पंक्ति से शोभायमान, उत्तम नक्षत्रों की माला के समान गलमाला को धारण किये हुये, कर्णों की वायु से चामरों की वायु के अभिमान को नष्ट करने वाला, शत्रुरूप पिशुन-दुष्टों को नाश करने के लिए कृतांत (यमराज) के समान तथा दन्तों की असीम कान्ति से दिगन्त को सुशोभित करने वाला, वह मत्त ऐरावत गज वहाँ पहुँच गया।

उसके दन्त, दन्त पर सरोवर, सरोवर-सरोवर पर कमल पत्र और पत्र-पत्र पर नवीन कमल के समान नेत्रों वाली, स्थूलस्तनवाली, गीर्वाणराय (देवराज) की सीमन्तिनियाँ (देवियाँ) नाचती हैं, ठहरती हैं।

जिणण्हवणारंभणिमित्तु जाम चल्लिय सुरसप्परिवार ताम।।
किवि कीर मोर मयरोहरेहिँ किवि मेस-महिस वायस विसेहिँ।।
किवि करह कुरंग तुरंगमेहिँ किवि रिच्छ-तरच्छु मयंगमेहिँ।।
सिहि जम णेरिय मयरहरणाह मारुव कुबेर पसुवइ सणाह।।

घत्ता— जिणपयइँ सरंतु गयणि सरंतु सयल सुरासुरविंदु।
दस दिसि पसरंतु तिमिरु हरंतु अइ सोहइ सरिदिंदु।। 24।।

2/4

Arrival of Indra with Gods (Suras) and Goddesses (Devangnas) at Vāṇārasī.

कत्थइँ मरुहय धयवइ चलंति कत्थइँ ससि-रवि-मणि पज्जलंति।।
कत्थइँ रसणा किंकिणि रसंति कत्थइँ तिक्खणखुरहर तसंति।।
कत्थइँ करिवरु पज्झरइ दाणु कत्थइँ थिउ ण चलइ सुर-विमाणु।।
कत्थइँ घण थोरत्थण भरेण सोहइ सुरणारीयणु भरेण।।
णवियउ णावइ जिणभत्तियाए कय फणि णर-सुर संपत्तियाए।।
कत्थइँ गायइँ सुरसुंदरीउ मणहारिगीउ खामोयरीउ।।
कत्थइँ कुणंति बाहू रविल्लु अवरोप्परु सुरसइ रण-रसिल्लु।।

इस प्रकार उस हाथी को देखकर निर्मल स्वभाववाला सौधर्मराज झट से उस पर चढ़ गया। जिनेन्द्र के अभिषेक के आरम्भ के निमित्त से जब वह इन्द्र चला, तभी आगत वह देव-परिवार भी चल पड़ा। कोई देव तोता, मोर, मगर, मच्छ पर चढ़े, कोई मेष, महिष, वायस (काक), हंस पर चढ़े, कोई ऊँट, मृग, घोड़ा पर चढ़े ओर कोई रीछ, भालू, व्याघ्र, हाथी पर चढ़ कर चले। साथ ही **अग्निनाथ** (आग्नेय दिशा के स्वामी) **यमनाथ** (दक्षिण दिशा के स्वामी), **नैऋत्यनाथ** (नैऋत्यदिशा का स्वामी) तथा **मकराकरनाथ** (समुद्र का स्वामी—वरुण), **मारुत** (वायव्य- दिशा का स्वामी), **कुबेर** (उत्तरदिशा का स्वामी), **पशुपतिनाथ** (ईशान दिशा का स्वामी) और **इन्द्र** (पूर्व दिशा का स्वामी) उनके साथ-साथ चले।

घत्ता— जिन चरणों का स्मरण करते हुए आकाश में सभी सुर एवं असुर-समूह दशों-दिशाओं में फैल कर ठीक उसी प्रकार चलने लगे, जिस प्रकार शरद ऋतु का चन्द्रमा दशों दिशाओं में फैलकर अन्धकार का हरण करता हुआ चलता है। (24)

2/4

इन्द्र का देवों तथा देवियों के साथ वाणारसी में आगमन—

कहीं वायु द्वारा आहत ध्वजा वाले (देव) चल रहे थे, तो कहीं प्रज्वलित चन्द्रकान्त एवं सूर्यकान्तमणि की आभा वाले देवगण चल रहे थे। कहीं रसना (कटिसूत्रों) की किंकिणी (क्षुद्रघंटिका) शब्द कर रही थी, तो कहीं तीक्ष्ण खुर वाले घोड़े दौड़ रहे थे। कहीं हाथियों का मद झर रहा था, तो कहीं देव-विमान स्थिर (खड़े) थे। वे चल नहीं रहे थे। कहीं घन-स्थूल स्तनभार से देव-नारियाँ सुशोभित हो रही थीं और जिनभक्तिपूर्वक नमस्कार कर-करा रही थीं। फणि (धरणेन्द्र) नर और सुर वहाँ पहुँचकर शिशु जिनेन्द्र को नमस्कार कर रहे थे। कहीं तो सुर-सुन्दरियाँ गीत गा

कत्थइँ सदप्प मल्लइ भिडंति कत्थइँ खुज्जय णियरइँ णडंति।।
कत्थइँ गहीर तूरइँ रसंति णं सहरस दिस णारिउ हसंति।।
कत्थइँ मरालु अइधवलदेहु धावंतु सहइ णं सरयमेहु।।
कत्थइँ हरिणाहि भएण भग्गु ससहरकुरंगु उम्मग्गु लग्गु।।
कत्थइँ विहाइ अलि रुणरुणंति णं अरुहणाह गुण-गण गणंति।।

घत्ता— इय सोहए देव मण्णियसेव मुह-पह हय सयवत्त।
भूसणयर दित्त हरिसिय चित्त वाणारसि पुर पत्त।। 25।।

2/5

Indrāṇī (Wife of the Lord Indra) takes away the infant baby and hands him over to Lord Indra.

मोत्तियदामालंकिय दुआर भत्तिए परियंचिवि तिण्णिवार।।
चूलाकलसाहय सरयमेहु पइसिवि हयसेणणरिंद गेहु।।
मायामउ सिसु जिण जणणियाहे देविणु दुद्दम-तम-हणणियाहे।।
इंदाणिए लइयउ बालु जाम णियणयणहिं हरिणा दिट्ठु ताम।।
णं भवजलणिहि-तारण तरंडु णं णिहिलामल-गुण-मणि-करंडु।।

रही थीं और कहीं-कहीं कृशोदरी देवियाँ मनोहारी (सोहर–) गीत गा रही थीं। कहीं सरस्वती के रणन (गीत, नृत्य, संगीत) में रसिक, परस्पर में रमणीय बाहुओं को उठा रहे (ऊँचा करते) थे और कहीं मल्ल दर्पपूर्वक परस्पर में भिड़ रहे थे।

कहीं कुब्जक-समूह नृत्य कर रहे थे, तो कहीं गम्भीर वाद्य शब्द कर रहे थे। कहीं-कहीं गम्भीर तूरवादन हो रहा था, मानों दिग्नारियाँ ही हर्षोन्मत्त होकर विहँस रही हों। कहीं-कहीं धवलदेह धारी हंसपंक्ति दौड़ रही थी, वह ऐसी सुशोभित हो रही थी मानों शरदकालीन मेघ ही सुशोभित हो रहे हों। कहीं-कहीं सिंह से भयभीत होकर मृग उन्मार्गगामी हो गया था, मानों चन्द्रमा में ही जाकर वह छिप गया हो। कहीं भौंरे रुणझुण शब्द करते हुए सुशोभित हो रहे थे। ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों वे अरिहन्त-जिनेन्द्र के गुणगणों की गणना ही कर रहे हों।

घत्ता— इस प्रकार की शोभा सहित वे सभी देवगण सेवा को महान् मानते हुए, अपनी मुख-प्रभा से कमलों को भी नीचा (हेय) दिखाते हुए, वस्त्राभूषण से दीप्त होकर, चित्त में हर्षित होते हुए वाणारसी पुरी जा पहुँचे। (25)

2/5

इन्द्राणी ने शिशु-जिनेन्द्र को इन्द्र के लिये सौंप दिया—

वाणारसी में मोतियों की माला से अलंकृत द्वार की भक्ति-पूर्वक तीन बार प्रदक्षिणा देकर इन्द्राणी ने शरदकालीन मेघों को रोकने में समर्थ तथा मंगल-कलश युक्त उच्च शिखरों वाले राजा हयसेन के राजभवन में प्रवेश किया। एक मायामयी शिशु माता को देकर इन्द्राणी दुर्दम अंधकार का हरण करने वाले बाल-प्रभु (पार्श्व) को जब ले आई, तब इन्द्र ने उसे अपने नेत्रों से स्वयं देखा। उसके मन में उसी समय ऐसी कल्पना उत्पन्न हुई कि मानों यह बालक भवजल से तारने के लिए जहाज के समान ही उत्पन्न हुआ है, अथवा मानों निर्मल गुणमणि रूप सम्पूर्ण

णं णरयकूव झंपण पिहाणु णं णाण-किरण-भूसियउ भाणु।।
णं अंकुरु घम्मु महीरुहासु णं किरण-णिहाउ सुहारुहासु।।
णं पुरिसायारें पुण्णं पुंजु णं तिलउ तिविह जयसिरिहिं मंजु।।
इंदाणिए दिज्जंतउ रएण इंदेण पडिच्छिउ णिम्मएण।।
ईसाण-सग्ग-तियसाहिवेण उद्धरिउ घम्मवारणु जवेणु।।
साणक्कुमार माहिंद्रणाह विरयहिं चंचलयर चमरराह।।

घत्ता— पुणु-पुणु वि सुरेसु णिरुवम वेसु जिणमुह-कमलु णियंतु।।
चिंतइ णिय-चित्ते पुण्ण-पवित्ते दंसण अमिउ पियंतु।। 26।।

2/6

Indra brings out and takes away the celebrated infant to the mount SUMERU.

सकियत्थु जम्मु महु अज्जु जाउ जं सप्परिवारउ एत्थु आउ।।
जिणजम्मुच्छव विरयण-णिमित्तु इय जंपिवि रयणाहरणदित्तु।।
अइरावउ संचोइउ पएण णाणामरगण जय-जय रवेण।।
परमेट्ठि ठवेप्पिणु पुरउवोमे छण ससिहर किरण कलाव सोमे।।
सुरवइणा सच्छरसामरेण गच्छंतें सपरियरामरेण।।

रत्नों का वह पिटारा ही हो, मानों, वह नरक-कूप को ढाँकने के लिये ढक्कन ही हो, मानों, ज्ञान-रूपी किरणों से भूषित वह सूर्य ही हो, मानों, धर्मरूपी पृथ्वी के वृक्षों का अंकुर ही हो। मानों, देवों के हार की किरण ही हो, अथवा मानों, वह बालक पुरुष के आकार में एक पुण्यपुंज ही हो, अथवा मानों, तीन प्रकार की जयश्री से किया हुआ वह सुन्दर तिलक ही हो।

ऐसे बालक को इन्द्राणी ने वेग पूर्वक इन्द्र को दे दिया। इन्द्र ने भी मदरहित होकर उसे स्वीकार किया। ईशान-स्वर्ग के इन्द्र ने उस पर जल्दी से धूप से रक्षा करने के लिये छत्र उठाकर लगाया, सानत्कुमार एवं और माहेन्द्रनाथ (बालक पार्श्व पर) चंचलतर चमर ढोरने लगे।

घत्ता— उस अनुपम वेश वाले सुरेश (इन्द्र) ने जिनमुख को देखते हुए, पुण्य से पवित्र दर्शन रूपी अमृत को पीते हुए, अपने चित्त में इस प्रकार विचार किया— (26)

2/6

वह देवेन्द्र जिनेन्द्र-शिशु को सुमेरु-पर्वत पर ले जाता है—

रत्नाभरणों से दीप्त इन्द्र ने कहा कि—"आज मैं सपरिवार यहाँ जिनेन्द्र के जन्मोत्सव के आयोजन के निमित्त आया हूँ। इस कारण मेरा जन्म कृतार्थ हो गया है।" तत्पश्चात् उसने अपने पदों से ऐरावत हाथी को चलने की प्रेरणा की। उस समय नाना देवगण जय-जय शब्द कर रहे थे। इन्द्र ने पूर्णचन्द्र की किरण-समूह से सौम्य आकाश की पूर्व-दिशा के सम्मुख परमेष्ठी का स्थापन किया।

वह सुरपति, अप्सरा और अन्य देवों तथा अन्य परिकर-देवों सहित **सुमेरु-पर्वत** की ओर चला जा रहा था।

मेल्लंतें तारामंडलाइँ दिट्ठइँ रविचंदइ चंचलाइँ।।
पुणु दिट्ठ फुरंती रिक्खपंति णहरमणि कंठ-कंठिव सहंति।।
पुणु बुहु पुणु सुक्कु सुतेय वंति पुणु मंगलु पुणु सणि उग्गमंतु।।
इय उवरि-ऊवरि पेक्खंतएण बहुविहविणोय दरिसंतएण।।
10 सुद्धउ णहयलु लंघंतएण गुरुव्रिणएँ जिणु हरिसंतएण।।

घत्ता— दीसइ पंडुसिल ससि-सरिस किल मह जोयण पण्णास।।
दीहत्तणु जाहे अट्ठ जि ताहे पिंडु तिमिर णिण्णास।। 27।।

2/7

Celebration of birth-bath-festivity (Janmābhiṣeka).

तहिँ उवरि हरिणारिविट्ठरि पमोत्तूण जिणणाहु गंभीर तूराइँ हंतूण।।
इंदेण अहिसेउ पारद्धओ जाम आ मेरु मयरहरु धरि पंति कय ताम।।
देवेहिँ करकमल परिकलिय कलसेहिँ विलसंतदेहेहिँ परिहरिय अलसेहि ँ।।
वायंति पाडहिय गिव्वाण वज्जाइँ गायंति गीयाइँ किण्णर मणोज्जाइँ।।
5 णाणाविहा खुज्जयादेव णच्चंति खिब्भिसइँ बावणइँ करयलइँ कुचंति।।
मंगलइँ सुरराय सुंदरिउ सइँ देंति खेयरहँ रमिणिउ चामरइँ लहु लेंति।।
मोत्तियमओ मंडओ विहिउ णाएहि ँ अहिणव महामेह संकास काएहि ँ।।

तारा-मंडल को पीछे छोड़ते हुए उसने, रवि-चन्दों की चंचलता देखी। पुनः उसने चमकती हुई नक्षत्र-पंक्ति को देखा, जो मानों आकाश रूपी पत्नी के कण्ठ के कण्ठहार के समान शोभा को प्राप्त हो रही थी। पुनः उसने तेजवन्त बुध तथा शुक्र को पार किया, तत्पश्चात् उसने तेजवन्त मंगल को पार किया और उद्गम (उदय) होते हुए शनि को देखा। ऐसा ऊपर-ऊपर देखते हुए अनेक प्रकार के विनोदों से दर्शन करते हुए, पुनः शुद्ध आकाश को लाँघते हुए, बड़ी ही विनय के साथ जिनेन्द्र को हर्षित करता हुआ वह इन्द्र सुमेरु पर्वत पर जा पहुँचा।

घत्ता— वहाँ उसने उस **पाण्डुक-शिला** को देखा, जो अर्ध चन्द्र के समान कला वाली एवं पचास महायोजन विस्तार वाली थी। उसकी दीर्घता (लम्बाई) आठ योजन की थी और वह तिमिर-पिण्ड का नाश करने वाली थी। (27)

2/7

शिशु-जिनेन्द्र का जन्माभिषेक-उत्सव—

इन्द्र ने जिनेन्द्र को उस पाण्डुक-शिला के सिंहासन पर बैठाया। तत्पश्चात् उनके सामने गम्भीर बाजे बजाए। इन्द्र ने अभिषेक प्रारम्भ करने से पूर्व सुमेरु पर्वत से लेकर क्षीर-सागर तक देवों की एक लम्बी पंक्ति बनाई। चमकती हुई देह के धारी और आलस्य के त्यागी उन देवों के कर-कमलों द्वारा (क्षीरसागर से) कलश लाये गये। देवों द्वारा *बजाये जाने वाले दिव्य-वाद्य बजने लगे। किन्नर मनोज्ञ गीत गाने लगे। कुब्जक देव नाना प्रकार के नृत्य करने* लगे। किल्विष देव एवं वामन-देव करतल बजाने लगे। इन्द्र की सुन्दर अप्सराएँ मंगल-गीत गाने लगीं। खेचर रमणीक चमर ढुराने लगे।

नवीन सघन-मेघों के समान देह वाले नागदेवों ने अपने संपूर्ण क्रूर-कर्मों को छोड़कर जिननाथ से धर्म की

कूराइँ कम्माइँ वज्जिवि असेसाइँ बुज्झेवि जिणणाह धम्महो विसेसाइँ।।
कण्णट्टिया-दुव्व मंगलइँ घेत्तूण विवरीय संजाय भावाइँ छेत्तूण।।
आबाहिऊणं दिसा-बाल सव्वाइँ जिणभणिय मंतेहिँ परगलिय गव्व।।
'लेहु-लेहु' जंपंति कलसइँ समप्पंति धावंति पावंति ण मणावि कंपंति।।
सोहम्मु-ईसाण-गिव्वाण-राएहिँ जिणदेहु सिंचियउ णय वीयराएहि ँ।।

घत्ता— णाणा सुमणेहिँ सालिगणेहिँ पुज्जिउ इंदसएण।
जिणवरकमकमलु हयभवियमलु अविचल सुक्खकएण।। 28।।

2/8

Lord Indra decorates the infant (Hero) with various precious ornaments.

जइविहु तणु-तेएँ विमलु देहु णिम्मल ति-णाण-माणिक्क गेहु।।
तो वि हरिणा खीरंबुहि जलेण भत्तिए ण्हाविउ अइ णिम्मलेण।।
णिव्वसणहो वसणु ण सहइ केम दिण्णउ जलपडलु व रविहे जेम।।
जगभूसणे भूसणु भारु णाइँ किं कँवल मंडणु णेत्ते भाइँ।।
एउ जाणंतेण वि सयमहेण तणु जुइ उज्जोइय-मरुवहेण।।
सुइजुअलु जिणहो पविसूइयाएँ विद्धउ जगु णं रइ-दूइयाएँ।।

विशेषताएँ पूछीं। सभी देवगण कण (धान्य), मिट्टी, सरसों, दूर्वा आदि मंगल द्रव्यों को लेकर विपरीत गामी अशुभ भावों को छोडकर, समस्त दिशाओं के दिग्पालों का आवाहन कर के जिनभणित मन्त्रों से "जल्दी लो" "जल्दी पकड़ों", कहकर, गर्वरहित होकर उन कलशों को समर्पित करने लगे और दौड़ने लगे, लेने लगे, आदि प्रक्रियाओं में वे अल्पमात्रा में भी काँपे नहीं। इस प्रकार सौधर्म, ईशान के देवराजों ने वीतराग जिनेन्द्र की नवीन देह को सींचा (अभिषेक किया)।

घत्ता— अविचल सुख के अभिलाषी शत-इन्द्रों ने भव-मल (रागद्वेष मोह) रहित होकर जिनवर के चरणकमलों को नाना (विविध) पुष्पों एवं शालि-(तण्डुल) समूहों के द्वारा पूजा। (28)

2/8

इन्द्र ने जिनेन्द्र को बहुमूल्य विविध आभूषणों से विभूषित किया—

यद्यपि शिशु जिनेन्द्र अपने शरीर के तेज के कारण निर्मल कान्ति युक्त थे, तथा निर्मल तीन ज्ञान रूपी माणिक्य के गृह-स्वरूप (सुशोभित) थे, तो भी इन्द्र ने उन्हें क्षीर-समुद्र के अतिनिर्मल जल से भक्ति पूर्वक स्नान कराया। निवर्सन (वस्त्र-रहित) को वस्त्र उसी प्रकार सुशोभित नहीं कर सकते, जिस प्रकार कि जल-पटल (मेघ-समूह) रवि को सुशोभित नहीं कर सकते। *जगत् के भूषण (जिनेन्द्र) के लिये आभूषण भार स्वरूप थे। क्या नेत्र में कमल* सुशोभित हो सकता है? ऐसा जानते हुए भी शतमख (इन्द्र) ने मरुत्पथ (आकाश) को अपनी तनु द्युति से उद्योतित करने वाले जिनेन्द्र के कर्ण-युगल को वज्र की सूची से वेध दिया। ऐसा प्रतीत होता था, मानों रति रूपी दूती द्वारा जगत् को ही वेध दिया गया हो।

कुंडलइँ वित्थूढइँ मणिगणेहिँ दिप्पंतइँ दिट्ठइँ सुरयणेहिँ।।
जो जगसेहरो तहो सेहरेण किं उत्तमंग पविहिय भरेण।।
छणससिमंडल दल सरिस भालि जगतिलयहो तिलओ विहिउ विसालि।।
10 जइविहु जडभवमोत्तियहँ हारु णिट्ठुरु वि पविद्धुवि विहिय भारु।।
तो वि गुणसंगेँ परमेसरासु कीलइ वच्छत्थले हय सरासु।।
मणिमयकंकण खणखण रवेण वज्जरइँ णाइँ अम्हइँ जवेण।।
मेल्लेवइ सयमह-सामिएण जंतहिँ दिवसहिँ सिवगामिएण।।
तुह (मुह) कमलइँ पिक्खिवि खणेण रुणझुण झंकारंतिय रणेण।।
15 के देव ण कलहंसइ मुअंति कलरव कलहंसइँ णं लवंति।।

घत्ता— कडियल कडिसुत्तु चवइव जुत्तु किंकिणि रवेण मणोज्जु।।
जइ एहु णियंबु सीह सिलिंबु ता ण सहइ कय वोज्जु।। 29।।

2/9

The name of the infant was pronounced as PĀSA [-Pārśwa] by the Gods (Suras) in a well disciplined gathering.

जेण वारिणा जिणिंदु ण्हविउ णायामरिंदु।।
तं तुरं करे करेवि वंदिऊण के धरेवि।।

(फिर उसने) मणिगणों से दीप्त कुण्डल पहिनाए, जिन की आभा को सुरगणों ने स्वयं देखा। जगत् के शेखर रूप जिनेन्द्र को ऐसे शेखर (मुकुट) से क्या, जो कि उत्तमांग (शिर) को बोझिल बनाते हों। (फिर भी, इन्द्र ने उन्हें मुकुट पहिनाया)। पुनः पूर्णमण्डल के अर्ध सदृश तथा विशाल जगत् के तिलक स्वरूप उन जिनेन्द्र के भाल पर (उसने) तिलक लगाया। यद्यपि निष्ठुर, बेधा हुआ, भार को करने वाला, मोतियों का हार जड़ था, तो भी गुण (दया आदि तथा सूत्र) के संसर्ग से, काम के नाशक जिनेन्द्र के वक्षस्थल पर वह (हार) क्रीड़ाएँ कर रहा था। मणिमय कंकण खण-खण शब्दों से ध्वनि कर रहे थे, ऐसा प्रतीत होता था मानों वे (कंकण) कह रहे हों कि हे इन्द्र, हमें इस शिवगामी स्वामी से छुटकारा दिला दो। तुम्हारे मुख कमल को देखकर क्षणभर में शब्द ही मानों वहाँ आकर रुण-झुण-झंकार करने लगे थे। कई देव ऐसे थे, जो कलहंसों (पाद-कटकों) को नहीं छोड़ते थे। ऐसा प्रतीत होता था मानों कलहंस ही वहाँ आकर मधुर-ध्वनि कर रहे हों।

घत्ता— उस (इन्द्र) ने किंकिणी (घुंघरु) के शब्दों से मनोज्ञ कटिसूत्र को कटितल में पहिनाया, जो कि बहुत ही सुन्दर लग रहा था। वह ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों कह रहा हो कि यदि उस (बालक) की कमर सिंह के समान कृश होती, तब वह उस कटिसूत्र के वजन को कैसे सह पाता? (29)

2/9

देवों द्वारा उत्सव का आयोजन तथा शिशु-जिनेन्द्र का नामकरण कर उसका नाम पार्श्व घोषित किया गया—

जिस जल से नागादि अमरेन्द्रों ने जिनेन्द्र को स्नान कराया था, उस जल (गन्धोदक) को तुरन्त ही सभी ने अपने हाथों में लेकर मस्तक पर रखकर उसकी वन्दना की। खेचर-समूह, उरग एवं अमर-समूह, चामर-समूह को ढुराने

खेयरोरगामरोहु चालिऊण चामरोहु।।
कोवि कुंकुमेण पाय लिंपए सरोय-राय।।
कोवि थोत्तु उच्चरेइ कोवि माणसे सरेइ।।
कोवि वायए सुवज्जु कोवि गायए मणोज्जु।।
कोवि दंडपाणि जाउ कोवि आलवेइ राउ।।
कोवि फुल्लु दामु देइ सत्ति पुण्णु पुंजु लेइ।।
णच्चए रसालु कोवि सुस्सरं पढेवि कोवि।।
कोवि देइ (तो) रणाइँ देव चित्त-चोरणाइँ।।
जं जं पमाणु देव-देव कोवि दंसए सुसेव।।
कोवि हत्थ जोडिऊण मोह भाउ तोडिऊण।।
मत्थयं सुणाविऊण भासए सुभाविऊण।।
फेडिऊण सग्ग-सोक्खु देव-देव देहि मोक्खु।।

घत्ता— इच्छिय सिवसिवासु णाण णिवासु परिपासिय भव पासु।
इय मुणिवि मणेण सइरमणेण णामु धरेउ पासु।। 30।।

2/10

Hymns to the Jina (-Pārśwa) by the Gods (Suras).

पुणु थुणिउ परमप्परु पवर पुरिसु कय सयल भुअणयल मणुअ हरिसु।।
जय सरय सिसिरयर सरिस चरण जय फणि-सुर-णर-खयर थुय चरण।।

लगे। कोई देव जिनेन्द्र के रक्त वर्ण वाले कमल के समान रक्ताभ चरणों में कुंकुम से लेप करने लगे। कोई-कोई तो स्तुति का उच्चारण कर रहे थे और कोई-कोई अपने मन में ही उनका स्मरण कर रहे थे। कोई-कोई अच्छे-अच्छे बाजे बजाने लगे। कोई मनोज्ञ गीत गाने लगे। कोई-कोई अपने हाथों में दण्ड धारण करने लगे। कोई-कोई राग आलापने लगे। कोई-कोई फूलमाल चढ़ाने लगे और अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार पुण्य कमाने लगे। कोई-कोई रस पूर्ण नृत्य करने लगे, तो कोई-कोई सस्वर मन्त्र-पाठ पढ़ने लगे। कोई ऐसे-ऐसे रस पूर्ण नृत्य करने लगे, तो कोई-कोई सस्वर मन्त्र-पाठ पढ़ने लगे। कोई ऐसे-ऐसे तोरण रचाने लगे, जो देवों के चित्त को चुराने वाले थे। जिस देव के लिये जो प्रमाण (योग्य) था, वही अपनी-अपनी सुन्दर सेवा कर दिखाते थे। कोई हाथ जोड़कर, मोहभाव को तोड़कर, मस्तक को अच्छी तरह नवाकर सुन्दर-भाषा में भावना कर रहे थे कि हे देव, स्वर्ग के सुखों से हटा कर हमें मोक्ष-सुख प्रदान करो।

घत्ता— शची-रमण (इन्द्र) ने अपने मन में विचार किया कि ये जिनेन्द्र, शिव-सुख को चाहने वाले, ज्ञान के निवास वाले और भव-पाश (मोह) को शीघ्र ही तोड़ने वाले हैं, अतः उसने उस बालक का नाम पार्श्व रखा। (30)

2/10

देवों द्वारा स्तवन—

पुनः (उस इन्द्र ने) परमात्मरूप उत्तम पुरुष, सकलभुवन के मनुष्यों को हर्षित करने वाले प्रभु बाल-जिनेन्द्र की इस प्रकार स्तुति की–

शरद्कालीन चन्द्र के समान अति निर्मल चारित्र वाले हे देव, आपकी जय हो। नाग, सुर, नर, खेचरों द्वारा पूजित

जय विक्खयरय धरणिरुह जलण जय विसरिस मय मयरहर महण।।
जय णरय-तिरिय-सुरभुवण कहण जय णिरुवम मह गुण-रयण सरण।।
जय विणय पणय भविय जण सरण जय जय रस धवलिय भुअण भवण।।
जय सुहियण मुह णलिणवण तवण .....।।
जय सयणु पवरकर पयरभरह जय णिहिय समय परसमय सरह।।
जय अमरिस महिहर दलण कुलिस जय समिय सयल कलिलमल कलुस।।

घत्ता— इय थुइ विरएवि सारकुल एवि णट्टारंभु करेवि।।
पुणु-पुणु पणवेवि विणउ चवेवि सिरि-सिहरकर धरेवि।। 31।।

2/11

After the bathing and naming ceremonies the Lord Indra returns back with the infant from the mount Sumeru and hand over the same to his mother.

तिपयाहिण देविणु लइवि देउ परिपुण्णु करिवि पवराहिसेउ।।
रयणमयदंड (च) लचामरेहिँ उच्छलंत विविहामरेहिँ।।
कीलंतय कुज्जय-वामणेहिँ पच्चंतहिँ पवरच्छरगणेहिँ।।
वज्जंतेहिँ झल्लरि मद्दलेहिँ किण्णर-तिय गाइय मंगलेहिँ।।
मणिमयवंसग्गणि बद्धएहिँ पवणाहय चलिरमहद्धएहिँ

चरणवाले हे देव, आपकी जय हो। चिरकाल के बंधे कर्मरजरूपी वृक्षों के लिये अग्नि समान हे देव, आपकी जय हो। विसदृश (तीव्र), मद (मिथ्यात्व) रूपी समुद्र का मन्थन करने वाले हे देव, आपकी जय हो। नरक, तिर्यंच, स्वर्ग एवं भुवन का कथन करने वाले हे देव, आपकी जय हो। निरुपम महागुण (सम्यक्त्व)-रत्न की शरण बताने वाले हे देव, आपकी जय हो। विनयपूर्वक प्रणाम करते हुए भव्यजनों के लिये शरण रूप (रक्षक) हे देव, आपकी जय हो। अपने यशरूप रस (चूना) के द्वारा भुवनलोक को धवलित करने वाले हे देव, आपकी जय हो। सुखी जनों के मुखरूप कमलवनों के लिये सूर्य के समान हे देव, आपकी जय हो। .....स्व-समय (मत) से पर-समयों (मिथ्यामतों) को निहत (नष्ट) करने वाले तथा शरभ (अष्टापद सिंह) के समान हे देव, आपकी जय हो। स्वजनों के प्रवर कर-समूहों के लिये भरत के समान हे देव, आपकी जय हो। क्रोधरूप पर्वत को दलने के लिये वज्र-समान हे देव, आपकी जय हो। सम्पूर्ण पाप-समूह की मल-कलुषता को नष्ट करने वाले हे देव, आपकी जय हो।

घत्ता— इस प्रकार स्तुति करके इन्द्र ने सुखपूर्वक नृत्य आरम्भ किया। उसने (जिनेन्द्र को) पुनः पुनः प्रणाम कर, विनय से स्तुति कर, अपने शिर रूपी पर्वत शिखर पर हाथ रखे। (31)

2/11

सुमेरु-पर्वत से वापिस लौटकर इन्द्र ने जिनेन्द्र-शिशु को उसकी माता को सौंपा—

उस इन्द्र ने तीन प्रदक्षिणाएँ देकर अभिषेक को परिपूर्ण किया और देवों को लेकर चला। मार्ग में विविध देवों द्वारा रत्नमय दण्ड तथा चंचल चमर उछाले-ढुराये जा रहे थे। मार्ग में कुब्जक एवं वामन देव क्रीड़ाएँ कर रहे थे। प्रवर अप्सरागण नाच रहीं थी। झालर, मंजीरा आदि वाद्य बज रहे थे। किन्नर-देवियाँ मंगल गीत गा रही थीं। मणिमय वंश (बाँस) के अग्र में पवन से आहत चंचल महाध्वजाएँ फहरा रहीं थीं। पटुतर पाठकजन उच्च स्वर से

पडुयर पढंत पाढय जणेहिँ जिणचरणाराहण कय मणेहिँ।।
आवंते सुरवइणा णहेण दिट्ठउ तारायणु महमहेण।।
अह परिवडियउ अविणय वसेण णं तिहुवण णाहहो सरहसेण।।
णं तासु जि जस धरणीरुहासु कुसुम पइरु रुइरु सरोरुहासु।।
10 णं णह हरिसंसुअजल कणोहु जिणसंग समुग्गउ भूरि सोहु।।
णं दिसणारिए सइँ अग्घवत्तु। उच्चलिउ दरिसिवि रवि-चंदवत्तु।।
णह णील विणिम्मिउ मोत्तिएहिँ पूरिवि जिणवरहो सुदित्तिएहिँ।।

घत्ता— मेरुहि आविवि महि पाविवि वाणारसि पइसेवि।
जिण जणणिहिँ हत्थे दाणसमत्थे अप्पेवि जिणु विहसेवि।। 32।।

2/12

Manyfold immotional imaginations occurs in the mind of queen-mother towards her infant. (Jinendra Pārśwa).

तत्थवि विरएवि उच्छउ पसत्थु गउ सवइ सग्गु ससुहासि सत्थु।।
हरिसिवि जिण-जणणी-जणणु जाम मायए पेक्खिवि चिंतियउ ताम।।
सुकुसुमु किं णव सुरतरु वरिट्ठु णं ण एइंदिउ कट्ठ कट्ठु।।

स्तुति-पाठ कर रहे थे। जिनचरणों की आराधना में मन लगाने वाले देवों के साथ आकाश मार्ग से सुरपति आ रहा था। उसने उस महोत्सव से आते समय मार्ग में तारा-समूह देखा। वे (तारे–) ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानों वे मनोहर पुष्प-समूह ही हों अथवा मानों स्वयं आकाश ने आनन्दित होकर अपने हर्षाश्रु रूपी जल-कण ही प्रवाहित किये हों।

शिशु-जिनेन्द्र के संग के कारण उस आकाश की शोभा भी बढ़ गई थी। ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों दिशा रूपी नारी ने स्वयं ही (द्वितीया के–) चन्द्र समान वृत्त अर्घ्य-पात्र उठाकर दिखलाया हो। सूर्य एवं चन्द्र के समान मुख वाले शिशु-जिनेन्द्र के मुख का दर्शन करता हुआ जब इन्द्र नीचे आया, तब जिनवर की दीप्त आभा-प्रपूरित-नभ ऐसा लग रहा था, मानों मोतियों ने उसे (नभ को) नीलाभ कर दिया हो।

घत्ता— सुमेरु पर्वत से आकर, पृथिवी तल पर उतरकर, उस (इन्द्र) ने **वाणारसी नगरी** में प्रवेश किया और दान देने में समर्थ उस शिशु-जिनेन्द्र को विहँसते हुए जिनेन्द्र-माता के हाथों में सौंप दिया। (32)

2/12

शिशु — जिनेन्द्र (पार्श्व) के प्रति उसकी जननी की भावभरित कल्पनाएँ—

वहाँ (वाणारसी में) में प्रशस्त उत्सव करके वह शक्र सुधाशी (अमृत-भोजी देवों) के साथ स्वर्ग को चला गया। उस जिनेन्द्र को देखकर माता-पिता भी हर्षित हुए। माता ने (पुत्र को) देखकर चिंतवन किया कि (यह बालक) क्या पुष्प सहित उत्तम कोटि का बाल-कल्पवृक्ष है? किन्तु नहीं-नहीं, वह कल्पवृक्ष तो एकेन्द्रिय एवं कठोर काष्ठ मात्र ही होता है (जब कि यह बालक तो पंचेन्द्रिय है, अतः वह कल्पवृक्ष नहीं हो सकता)। (तब फिर–) क्या यह (बालक) कला-कलाप वाला पूर्णचन्द्र ही है? किन्तु, नहीं-नहीं, वह बालक तो पूर्ण चन्द्र भी

सकला कलाउ किं छण ससंकु णं ण सकलंकु ससंकु वंकु।।
अइरु अवंतु किं कामएउ णं ण पसुवइणा णिहय तेउ।।
दूसह पयाउ किं भुवण भाणु णं जलहर संछण्ण भाणु।।
गुणरयण णिउत्तउ किं समुद्दु णं ण वडवासिहिणा रउद्दु।।
जणमणहरु किं सोहग्ग-पुंजु णं ण णारीयणु चित्त मंजु।।
सिरिवंतउ किं कोमल मुणालु णं ण खरयहरु कंटय-करालु।।
अइ थिरु किं सुरगिरि गरुअकाउ णं ण णिच्चलु णिट्ठुर सहाउ।।
वालु वि अवाल लीला गइल्लु सुरसुंदरि मणरंजण छइल्लु।।
आलेंगिवि चुंबिवि विउल-भालि छुडु सण्णिहियउ अंकए विसालि।।

घत्ता— एत्थंतरि लोउ वियलिउ सोउ जिण जम्मुच्छव कालि।
मंदिरे संपत्तु वियसिय वत्तु णाणा तूर रवालि।। 33।।

नहीं हो सकता (क्योंकि वह चन्द्र तो कलंक सहित तथा वक्र है)। यह बालक अत्यन्त रूपवान् है, अतः क्या यह साक्षात् कामदेव ही है? नहीं-नहीं, वह तो पशुपति (शंकर) नाथ द्वारा (पहिले ही) नष्ट कर दिया गया है (अतः यह कामदेव भी नहीं हो सकता)। यह बालक दुःसह प्रतापवाला है, अतः क्या यह संसार के लिये नव-सूर्य के रूप में ही अवतरित हुआ है, किन्तु नहीं-नहीं, वह भुवन-सूर्य तो जलधर-मेघों द्वारा प्रच्छन्न कर दिया जाता है।

यह शिशु-जिनेन्द्र गुण रूपी रत्नों से परिपूर्ण है, तो क्या वह समुद्र है? किन्तु नहीं-नहीं, यह बालक तो समुद्र हो ही नहीं सकता, क्योंकि वह (समुद्र) तो वडवानल के कारण रौद्र रूपधारी होता है। यह बालक लोगों के मनों का हरण करने वाला है, तो क्या वह सौभाग्य-पुंज-समूह ही है? नहीं-नहीं वह पुंज तो केवल नारीगणों के चित्त को ही मोहित कर सकता है, सभी के लिये नहीं। यह बालक शोभायुक्त श्रीमन्त है। तो क्या वह कोमल मृणाल (कमलनाल) है? नहीं नहीं, क्योंकि वह (कमल-नाल) तो खुरखुरा तथा तीक्ष्ण काँटे वाला है। वह बालक अत्यन्त स्थिर-स्वभाव वाला है। तो क्या वह गुरु काय वाला सुमेरु-पर्वत ही है? नहीं-नहीं, वह पर्वत तो निश्चल एवं निष्ठुर (कर्कश) स्वभाव वाला है।

वह बालक होते हुए भी बालक जैसा नहीं है क्योंकि वह तो बड़ों-बड़ों के समान लीला पूर्वक गतिवाला है, सुर-सुन्दरी के मन का रंजन करने वाला है और षट्पद (भ्रमर) के समान है। माता ने उसका आलिंगन कर उसके विशाल भाल का चुम्बन करके उसे शीघ्र ही अपनी गोद में छिपा लिया।

घत्ता— इसी बीच नाना प्रकार के मधुर तूर आदि वाद्यों के संगीत के मध्य विगत शोक होकर (जनपद का–) जन-समूह जिनेन्द्र के जन्मोत्सव-काल में राजमहल में आया। (33)

2/13

The Gods (Suras) with the ocean of human beings celebrate the birth-festivities in the palace of Hayasen.

जय जय भणंतु सेवा कुणंतु।।
महि सिरु ठवंतु विणयं णवंतु।।
पहे पडिखलंतु महिदर मलंतु।।
हरिसे हसंतु पविहिय वसंतु।।
गायण रवे हिँ तरु पल्लवेहिँ।।
कय तोरणेहिँ मणचोरणेहिँ।।
पयडिय गुणाहँ वंदीयणाहँ।।
विंदइं धणेण सरहस मणेण।।
पूरंतु दिसंतु सुआ णत्तु लिंतु।।
जिणु मणि भरंतु जसु वित्थरंतु।।
भव दुह-धुणंतु .....।।
णच्चंति कावि गायंति कावि।।
पउरवर णारि जण दिण्ण मारि।।
जणमण हरेण घणथण हरेण।।
पेल्लइ जणोहु ण गणइ विरोहु।।
कावि फुल्लमाल महुअर वमाल।।
अल्लवइ बाल कासु वि रसाल।।
कामिणि कडक्ख विक्खेव लक्ख।।

2/13

देवों एवं मनुष्यों ने हयसेन के राजभवन में जाकर जन्मोत्सव मनाया—

सभी लोग जय-जयकार कर रहे थे। (जिनेन्द्र की) सेवा करते हुए और पृथिवी पर अपना सिर टेकते हुए, वे सभी विनय पूर्वक माता को नमस्कार कर रहे थे। कोई-कोई पथ में स्खलित हो रहे थे, मही को रौंद रहे थे और हर्ष पूर्वक हँस रहे थे मानों वसंत-ऋतु के आनंद को ही प्रगट कर रहे हों।

कहीं-कहीं संगीत के शब्दों द्वारा और कहीं-कहीं तरु के पल्लवों से मन को चुराने वाले तोरण बनाये जा रहे थे तो कहीं-कहीं गुणों को प्रकट करने वाले बन्दी-जनों को हर्षित मन से धन का दान देकर उनकी आशाओं को तृप्त किया जा रहा था। नारियाँ विनम्रभाव से शिशु-जिनेन्द्र की बलैयाँ लेती हुई, उसका मन में स्मरण करती हुई, उसके यश का विस्तार करती हुई तथा कोई-कोई पौरांगनाएँ सभी के दुखों के नष्ट होने की भावना करती हुई और कहीं-कहीं लोगों में काम-विकार उत्पन्न करने में सक्षम सुन्दर नारियाँ नृत्य करती हुई मंगल-गीत गा रही थीं।

जन-मन का हरण करने वाली कोई-कोई घनस्तनी भीड़ की परवाह किये बिना ही निर्विरोध घुसी जा रही थी, तो कोई नारी भ्रमरों से युक्त पुष्पमाल लिये हुए जा रही थी, तो कोई-कोई रसयुक्त मधुर वाणी से बालक को दुलरा रही थी।

कामिनियों के कटाक्ष-विक्षेपों से लक्षित होकर कोई-कोई पुरुष पर्वत के समान स्थिर होने पर भी शीघ्र ही

लक्खियउ कोवि महिहर थिरो वि।।
मुच्छेवि झडत्ति णिवडिउ धरित्ति।।
कोवि कोमलेण कुंकुम जलेण।।
मणिमउ समग्गु सिंचइ घरग्गु।।
कवि कुसुम पयरु परिभमिय भमरु।।
विरयइ मणोज्जु जण जणिय चोज्जु।।

घत्ता— इय उच्छव तेत्थु विरएवि जेत्थु णिवसइ जिणु गुणगेहु।
गउ जणवउ जाम वड्ढइ ताम सिसुण सुअणहँ णेहु।। 34।।

2/14

Various amusing funs and sports of the little baby (Pārśwa).

अमियमउत्थणु जणणिहे पिबंतु अंगुट्ठउ वयणंतरि घिवंतु।।
मणि जिगि-जिगंतु गेंडुउ छिवंतु करसररुहेण थणयलु घिवंतु।।
खलियक्खर वयणिहिँ वज्जरंतु रंगंतु बंधुयण मणु हरंतु।।
परिवारंगुलि-लग्गउ सरंतु तणु कंति पसर जलणिहि तरंतु।।
विंभउ जणंतु उद्दीहवंतु जहि रुच्चइ तहि णिच्चु जि रवंतु।।
बहु जंप णयण-मणु विद्दवंतु कयरवेरि-बेरि सिरि पउ ठवंतु।।
आणंदु जणण-जणणिहु करंतु जं पेक्खइ तं करयलु धरंतु।।

मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर-पड़ रहा था, तो कोई-कोई दर्शनोत्सुक सुकोमल कुंकुम के जल से समग्र मणिमय ध
ाराग्र का सिंचन कर रहा था, तो कोई-कोई भ्रमरयुक्त सुगन्धित फूलों की माला रचकर मनोज्ञ जनों को आश्चर्यचकित कर रहे थे।

घत्ता— इस प्रकार गुणों के निवास-स्थल वे जिनेन्द्र-शिशु जहाँ विराजमान थे, वहाँ पर पूरा जन-समूह जा पहुँचा और उत्सव किया। वह बालक पार्श्व भी उसी प्रकार बढ़ने लगा, जिस प्रकार कि सज्जनों का स्नेह। (34)

2/14

प्रभु पार्श्व की बाल-लीलाएँ—

बाल्यावस्था में प्रभु **पार्श्व** माता के अमृत मय स्तनों का पान करते हुए, अथवा मुख में अमृतमय अंगुष्ठ को पीते हुए, अथवा एक हाथ से मणियों से जगमगाती गेंद को छूते हुए, तथा दूसरे हस्तकमल से स्तनतल (चूचुक) को पकड़ते हुए, स्खलित अक्षरों से वचन बोलते हुए तथा भूमि पर रेंगते हुए वे शिशु-पार्श्व बंधुजनों के मन का हरण करते रहते थे। परिवार जनों की अंगुलि पकड़कर वे लड़खड़ाते हुए चलते थे। उनके शरीर की कान्ति का विस्तार इस प्रकार बढ़ रहा था मानों वे समुद्र को ही तैर रहे हों। प्रभु बालक खड़े होकर सभी के मन में विस्मय उत्पन्न कर देते थे। उन्हें जो-जो रुचिकर लगता, नित्य वही-वही बोलते रहते थे।

अधिक तुतले-बोल बोलकर जनों के नेत्र एवं मन को विद्रिवित करते रहते थे। बार-बार सिर पर पैर रखकर माता-पिता को आनन्दित करते रहते और जिसको भी देखते थे, उसीका हाथ पकड़ लेते थे। वे उत्तम समचतुरस्र-

वर समचउरससंठाणवंतु सहभव अइसय दह लच्छिवंतु।।
छणरयणीयर दंसणे हसंतु परियण बोल्लाविउ उल्लसंतु।।
णिम्मल-सल्लक्खण लक्खियंगु तणु-तेय परज्जिय णव-पियंगु।।

घत्ता— बुल्लावइ कोवि मल्हइ कोवि कोवि समप्पइ कीरु।
साहामउ कोवि पड्डलु कोवि कोवि रवण्णउ मोरु।। 35।।

2/15

Peculiar amusing funs and sports of the little baby (Pārśwa).

सक्काणए पेरिउ देउ कोवि णायर-णर मणहरु पीलु होवि।।
चवलंगु तुरंगमु तंवचूलु सेरिहु सुमेसु विसु साणुकूलु।।
कीलइ सहुँ हयसेणहो सुएण जयलच्छी परिलंछिय भुएण।।
सह जायकेस-जड-जूडवंतु कडि-रसणा किंकिणि सद्दवंतु।।
अविरल धूली धूसरिय देहु सिसु कीलामल सिरि रमण गेहु।।
णिव-णारिहिँ लिज्जइ झत्ति केम तिहुयण जण मोहणु रयणु जेम।।
जो तं णिएइ वियसंत वयणु वणियायणु बुहयणु अहव सयणु।।
सो अमरु व अणिमिस णयणु ठाइ णव कमल लीणु भमरु व विहाइ।।

संस्थान युक्त थे, जन्म से साथ में उत्पन्न हुए दश अतिशय रूपी लक्ष्मी से युक्त थे। कभी-कभी वे पूर्ण चन्द्रमा को देखकर हँसते थे, तो कभी-कभी परिवार-जनों के बुलाने पर उल्लसित होते थे, वे निर्मल उत्तम चिन्हों (1008 लक्षणों) से लक्षित शरीर वाले थे, और अपने शरीर के तेज से नवीन सूर्य को भी पराजित करते थे।

घत्ता— उन्हें कोई बुलाता था, तो कोई बैठाता था और कोई-कोई उन्हें कीर (शुक) देता था। कोई-कोई बंदर लाता था, तो कोई-कोई पक्षी लाता था और कोई-कोई उन्हें सुन्दर मोर देता था। (35)

2/15

पार्श्व के बाल्यकाल का वर्णन—

शक्र (इन्द्र) की आज्ञा से प्रेरित किया गया कोई देव (अपनी विक्रिया-ऋद्धि से) नागरिक जनों के मन को हरने वाला हाथी (पीलु) बनकर, कोई देव चंचल-शरीर वाला घोड़ा बनकर, कोई देव ताम्रचूड (मुर्गा) बनकर, कोई देव उत्तम सेही तथा भैंसे का रूप बनाकर अथवा पुष्पवाण या कमलनाल बनकर, कोई देव सानुकूल (मन इच्छित) रूप धारण कर, विजयलक्ष्मी से परिलांछित भुजावाले राजा **हयसेन** के पुत्र बालक पार्श्व के साथ क्रीड़ा करते रहते थे।

वे (जिनेन्द्र) जन्म से ही उत्पन्न हुए केशों की जटाजूट वाले थे। उनकी कटि में रसना (कटिसूत्र-करधनी) की किंकिणी (घुंघरु) रुणझुण-रुणझुण करती रहती थी। उनकी देह निरन्तर धूलि-धूसरित रहती थी। वे बाल-प्रभु शिशु-क्रीड़ा रूप निर्मल लक्ष्मी के रमने के लिए गृहस्वरूप थे। राज-रानियाँ झट से उन्हें गोदी में ठीक उसी प्रकार ले लेतीं थीं, जिस प्रकार कि त्रिभुवन के जनों के मन को मोहने वाले रत्न को उठ लिया जाता है। चाहे बनिताजन हो या बुध जन अथवा स्वजन और चाहे जो भी हो, प्रभु के विकसित प्रफुल्लित वदन को जो भी देखता था, वही उन पर मोहित हो जाता था और (उन्हें देखकर) वह देवों की तरह ही पलक रहित स्थिर नेत्रवाला हो जाता था।

जिस प्रकार नवीन कमलों में लीन भ्रमर सुशोभित होता है, ठीक वैसे ही पार्श्व के नेत्रों को देखकर लोग मोहित हो

जं किं पि धरइ लीलए करेण तं णेव हरिज्जइ पविहरेण।।
10 हो-हल्लरु जो जोयइ भणेवि परियं दिज्जइ सामिउं गणेवि।।
चलहार रमणि रमणीय णेहिँ लीला संचालिय लोयणेहिँ।।
तुह सेवए लब्भइ सोक्खरासि तुट्टइ दवट्टि संसार-पासि।।

घत्ता— कीलंतहो तासु णिहयसरासु च्छुडु परिगलिउ सिसुत्तु।
इय लीलए जाम दिट्ठउ ताम हयसेणे णिय पुत्तु।। 36।।

2/16

The figurative description of the handsomeness of the body of the child-Pārśwa.

गिरि-सरि-कुलिसंकुस कमल-पाणि झस कलस-विसालंकिउ ति-णाणि।।
वइरियण विबंघण काल पासि वरतिय मोहण सोहग्गरासि।।
सरसइ मंडिय वयणारणालु जयलच्छि पयासिह वाहु डालु।।
वच्छयलु सिरीए तिलएण भालु भूसियउ अद्धचंदुव विसालु।।
5 णिहिलावणि णिवसइ जासु वाले णिद्दारिय वइरिययण कवाले।।
जसु कित्तिए धवलिउ सयलु लोउ मणचिंतिउ जसु संपडइ भोउ।।
पवणाहय कयलीदंडु जेम जसु जम भएण थरहरइ तेम।।
जसु रूउ णिएविणु मारवीरु लज्जइ णउ दावइ णिय सरीरु।।

जाते थे। जिस किसी भी वस्तु को वह बालक-पार्श्व लीलापूर्वक अपने हाथ से पकड़ लेता था, उसे पविधर (इन्द्र) भी नहीं छुड़ा पाता था। वह बालक जिसे भी देखकर हो-हो बोलता था, उसको देख-सुनकर (सभी लोग) 'स्वामी है', ऐसा मानकर उसे स्वीकार करते थे। चंचलहार से भूषित तथा चपला (बिजली) के समान चंचल नेत्रवाली रमणी (नारी)- जन भी उनकी सेवा से ऐसी सुखराशि प्राप्त करती थी, मानों उनका भव-पाश त्वरित गति से टूटने वाला ही हो।

घत्ता— काम के नाशक प्रभु पार्श्व का इस प्रकार क्रीड़ा करते-करते जब शिशुत्वकाल समाप्त हो गया, तब राजा हयसेन ने अपने पुत्र की ओर (ध्यान पूर्वक) देखा। (36)

2/16

बालक पार्श्व के शरीर की शोभा का वर्णन—

वे बालक-**पार्श्व** पर्वत, नदी, कुलिश (वज्र) अंकुश तथा कमल से चिन्हित हस्तवाले, झष (मीन), कलश, विस (कमलनाल) से अलंकृत तथा मति, श्रुति, अवधि रूप तीन ज्ञानों के धारी थे। वे बैरी-जन को बाँधने के लिये कालपाश थे। उत्तम स्त्रियों को मोहित करने के लिये सौभाग्य-राशि (पुण्यराशि कामदेव) के समान थे, सरस्वती से मण्डित मुखकमल वाले थे, विजय लक्ष्मी से प्रसाधित भुजा (शाखा) वाले थे, उनका वक्षस्थल श्रीवत्स से सुशोभित था, तिलक से भूषित उनका अर्धचंद्र के समान विशाल भाल (मस्तिष्क) था, बैरीजनों के कपालों को विदीर्ण करने में सक्षम जिन-पार्श्व के आसपास समस्त पृथिवी का निवास था। जिनकी कीर्त्ति से समस्त लोक धवलित था तथा जिन्हें मनचिन्तित भोग सहज प्राप्त थे।

जिस प्रकार कदलीदण्ड पवन के बेग से फरफराता रहता है, ठीक उसी प्रकार उनके भय से यमराज भी निरन्तर काँपता रहता था, जिनके रूप को देखकर कामवीर लज्जित हो उठता था, इसीलिये वह अपना शरीर किसी को

जसु बलु बुज्झिवि परसणु पलाइ तणु कंति पलोइवि ससि विलाइ।।
जसु पयभर चप्पिउ णायराउ पावइ ण णिद्द सुहु धुणइ काउ।।
जसु रूअ-रयणु जोयंतएण भत्तीए तित्ती अलहंतएण।।
हरिणा विरइउ लोयण सहासु जायउ सच्छरु सपरियणु सुदासु।।

घत्ता— सो सुरवरणाहु करिकरवाहु किं ण वियाणइ वप्प?
कर मउलिवि बेरि विरइय खेरि जसु णवंति हय-दप्प।। 37।।

2/17

Child Pārśwa is taught various arts, sciences, philosophies and religions. War-tactices, and economic problems including social manners, customs and ceremonies etc.etc.

दुवइ— कालक्खरइँ गणिय-गंधव्वइँ वीणा-वेणु सुंदरो।
विविहइँ सरस सव्व वर कव्वइँ परिमोहिय पुरंदरो।। छ।।

गय-सिक्खा अस सिक्ख जोइस-सुअवेय-पुराण वेत्तिया।।
णाणाकरणभंग लिवि-लिहणइँ रस पउत्तिया।।
अंजण-लेवणाइँ सरसत्थइँ णर-णारी-पसाहणं।
तल्लक्खणइँ अंगपरिमद्दणु रणमुहे वइरि-रोहणं।।
सुरभवणाइँ लेवपरियम्मइँ असिवर णाय-बंधयं।

भी नहीं दिखाता था (अर्थात् वह अनंग हो गया था), जिनके बल को देखकर (समझकर) परसन (वायु) भी इधर-उधर भागती-फिरती थी, जिनके शरीर की प्रभावक-कान्ति को देखकर ही मानों चन्द्रमा अपनी कान्ति को समेट कर विलीन हो जाता था, जिनके पद-भार से दवा हुआ नागराज भी निद्रा का सुख प्राप्त नहीं कर पाता था और अपने शरीर को धुनता रहता था, जिनके रूप के सौन्दर्य को देखकर जब पूर्ण तृप्ति नहीं मिली तब इन्द्र ने उसे देखने के लिये अपने सहस्र-नेत्र बना लिये और वह इन्द्र अपनी अप्सराओं तथा परिजनों सहित उनका सदा-सदा के लिये भक्त-दास बन गया।

घत्ता— क्या वह सुरवरनाथ (इन्द्र) ऐरावत हाथी के शुण्डादण्ड के समान बाहुओं वाले उन पार्श्व (के बल-वीर्य-पराक्रम) को नहीं जान पाया था, जो कि बाप रे बाप, उनसे विरोध रखने वाले खार खाए शत्रुजनों के द्वारा भी नमस्कृत रहते थे। (37)

2/17

बालक पार्श्व की विविध कलाओं तथा ज्ञान-विज्ञान के प्रशिक्षण की सूची—

बालक — **पार्श्व** निम्नलिखित कलाओं में पारंगत थे — कालाक्षर, गणित, गन्धर्व-विद्या को भी मोहितकर देने वाली सरस बीणा (-वादन) एवं वेणु (बांसुरी)-वादन तथा नव रस युक्त विविध उच्चकोटि की काव्य-रचना तथा गज-शिक्षा, अश्व-शिक्षा, ज्योतिष एवं श्रुत (वेद), पुराण तथा वृत्तियों के वे ज्ञाता थे।

नाना चेष्टाएँ तथा भंगिमाएँ करना, लिपि-लेखन, रस-प्रवृत्ति, अंजन-लेपन, काम-शास्त्र कला, नर-नारी का प्रसाधन (सजावट), नर-नारी के लक्षणों का (सामुद्रिक) ज्ञान, अंग-परिमर्दन ज्ञान, रण-मुख में बैरी को रोकना, सुर-विमान, भवनादि का लेप (चित्र)-कर्म, असिवर (खड्ग)-चालन, नागपाश-बन्धन, अग्नि-स्तम्भन, जल-स्तम्भन, मुद्रा-स्तम्भन,

हुववह-वारिमुद्द-परिथंभइ दूसह वूह-जुद्धयं।।
णारी-पुरिस कढिण-सिलवेहणु कोमल-कव्व सिद्धिया।
घंटा पंचवण्ण परिभवणइँ सउणइँ सेल्ल सुद्धिया।।
असि-कुंतासि धेणु गय-चक्क्इ वर सूली णिबंधयं।
चित्तोवल-सुवण्ण तरु सुत्तहँ कम्महँ मल्लजुद्धयं।।
चिंता-मुट्ठि लूअ ठियभोयणु णवरस जुत्तु पेक्खणं।
किसि-वाणिज्जु काल-परिवंचणु विसहरमंतलक्खणं।।
मंदल-टिविल-ताल-कंसालय-भंभा-भेरि-झल्लरी।।
काहल-करड-कंबु-वर डमरु डवक्क हुडुक्क-टट्टरी।।
बहुविहु इंदयालु दलछेयणु देसिय-भास जंपणं।
कलहँ सुआरकम्मु जणरंजणु परसत्थावहारणं।।

घत्ता— छंदालंकारु-सद्दवियारु-णिग्घंटोसहिसारु।
पर पुरसंचारु रइवित्थारु सयललोयवावारु।। 38।।

2/18

Almost all the powerful kings of the country like Karnataka, Harayana, Magadh, Anga. Champa etc. came at the court of Emperor Hayasena to pay respect and congratulate him on the festive occasion.

आवज्जिवि सिरितित्थयरणामु भव्वयणविंद पविइण्ण कामु।।
अणुहुत्त तीस वच्छर सुहोहु णियपुण्णपयडि णिहणिय दुहोहु।।

दुःसह-रण-व्यूह-संरचना, युद्धकला, नाड़ी-परीक्षा, कठिन शिलाओं का वेधन, कोमल काव्य की सिद्धि करना, घण्टा-ज्ञान, पंचवर्ण-भवनों का ज्ञान, स्वप्नफल ज्ञान, हीरा-माणिक्य आदि बहुमूल्य शैलशुद्धि का परिज्ञान, असि (कटार) कुंत, असि-धेनु (धनुष वाण) गदा, चक्र, उत्तम सूली-निबंधन, चित्रकर्म, उपल (पत्थर)-कर्म, सुवर्ण-कर्म, तरु (काष्ठ)-कर्म, सूत्रकर्म, मल्लयुद्ध (इन सब कर्मों का ज्ञान) तथा चिंता, मुष्टि, लूता (मकड़ी) कर्म, नवरसयुक्त स्थिति-भोजन, प्रेक्षण (नाटक-दर्शन) कृषिज्ञान, वाणिज्यज्ञान, काल-परिवंचन (परिवर्तन)-ज्ञान, विषधरों के मंत्र-लक्षण का ज्ञान, वाद्यों का ज्ञान जैसे मंदल, टिविल, (तबला), ताल, कंसाल, (डफ़) भंभा, भेरी, झल्लरी, काहला, करड, कंबु (शंख), वरड (डमरु), डक्क, हुडुक्क, टट्टरी आदि वाद्यों का ज्ञान, अनेक प्रकार का इंद्रजाल-ज्ञान, दल छेदन-ज्ञान, देशी-भाषा के बोलने का ज्ञान, कलह-कर्म, सूत्रधार (सुतार) कर्म, जनरंजन-कर्म, परशस्त्रापहरण आदि सभी कर्मों का उन्हें ज्ञान था। तथा—

घत्ता— छंद, अलंकार, शब्द-विचार, निघंटु, औषधि-सारज्ञान (वनस्पति-विज्ञान) परपुर-संचार ज्ञान, रति-विस्तार एंव सकल-लोकों के व्यवहार, व्यापार-प्रवृत्ति का उन्हें पूर्ण ज्ञान था। (38)

2/18

कर्नाटक, हरियाणा, मगध, अंग-चम्पा आदि 25 देशों के पराक्रमी नरेश सम्राट हयसेन के दर्शनार्थ तथा उन्हें बधाई देने हेतु उनकी राज्यसभा में आते हैं—

भव्यजनों के लिये मनोवांछित सुख प्रदान करने वाले, तीर्थंकर-नामकर्म के बन्धकार 30 वर्षों तक विविध सुखानुभव कर अपनी पुण्य-प्रकृति द्वारा दुःख-समूह को नष्ट करने वाले वे **पार्श्व**-प्रभु जब-जब देवों के साथ क्रीड़ाएँ

अमयासणेहिँ सहुँ रमइ जाम जिणु जणिय राउ हयसेणु ताम।।
अत्थाणंतरे संठिउ णरेहिँ मणिमय-कंकण-मंडिय-करेहिँ।।
5 सेहर-मणियर-दीविय-दिसेहिँ णिरसिय रिउ-गव्व महा-विसेहिँ।।
आयहिँ णिल्लग्गहँ कारणेहिँ णिज्जिय अणेय महारणेहिँ।।
पहु पय दंसण उक्कंठिएहिँ णिय-णिय पवरासण संठिएहिँ।।
विदलिय पस्माण महीहरेहिँ मउलिय कर विविह महीहरेहिँ।।
कण्णाड-लाड-खस-गुज्जरेहिँ मालव-मरहट्ठय-वज्जरेहिँ।।
10 बंगंग-कलिंग-सुमागहेहिँ पावइय-टक्क-कच्छावहेहिँ।।
चंदिल्ल-चोड-चउहाणएहिँ सेंधव-जालंधर-हूणएहिँ।।
रट्ठउड-गउड-भायाणएहिँ कलचुरिय-हाण-हरियाणएहिँ।।
एयहि णाणाविह णरवरेहिँ करवाल-लया-भूसिय-करेहिँ।।

घत्ता— सिरिहर वयणेहिँ वरणयणेहिँ सोहइ महिवइ केम।
णट्टल सरिसेहिँ कयहरिसेहिँ अमरहिँ सयमहु जेम।। 39।।

करते थे, तब-तब राजा हयसेन अनुराग से भर उठते थे।

अन्य किसी एक दिन मणि-मण्डित-कंकणों से सुशोभित हाथों वाले, मणि-जटित मुकुटों की किरणों से दिशाओं-विदिशाओं को दीप्त करने वाले तथा रिपुओं के गर्व रूपी महाविष को दूर करने वाले राजा हयसेन जब अपने सभासदों के साथ राज्य सभा में विराजमान थे, तभी शत्रुओं के अहंकार रूपी पर्वत को चूर-चूर कर देने वाले, तथा अनेक महारणों के विजेता-कर्नाटक, लाट, खस, गुर्जर, मालव, महाराष्ट्र, बज्जर, (बजीरिस्तान) अंग, बंग, कलिंग, मगध, पार्वतिक (हिमालय की तराई वाले) टक्क, कच्छ (कछवाहे), चंदिल्ल (चेदि या चन्देरी), चोल, चौहान, सैंधव, जालन्धर, हूण, राठौड (राष्ट्रकूट) गउड, भादानक, कलचुरि, हाण, हरियाणा (आदि) के खड्ग-लता से विभूषित हाथों वाले विनम्र मस्तक तथा करबद्ध होकर नरेश-गण उन (राजा हयसेन) के दर्शनों के लिए उत्सुक होकर तथा अपनी घनिष्ठता व्यक्त करने हेतु उनकी राज्य-सभा में पधारे और अपने-अपने योग्य आसनों पर बैठे।

घत्ता— कवि श्रीधर के कथनानुसार उत्तम नेत्र वाले राजा हयसेन आगत नरेशों के मध्य किस प्रकार सुशोभित हो रहे थे? ठीक उसी प्रकार, जिस-प्रकार कि हर्षित मन वाले देवों से घिरा हुआ शतमख (इन्द्र) एवं सज्जनोत्तम पुरुषों से घिरा हुआ साहू नट्टल सुशोभित होता है। (39)

Colophon

इय सिरि पासचरित्तं रइयं बुह सिरिहरेण गुण भरियं।
अणुमण्णियं मणोज्जं णट्टल णामेण भव्वेण।। छ।।

Blessings to Sāhu Naṭṭala, the inspirer

फणि-णर-सुर-खयराणं पहुणो हयसेण वंस दिणमणणो।
सिसु कीलण वण्णणए वीओ संधि परिसमत्तो।। छ।। ।। संधि 2।। छ।।

पुष्पिका

इस प्रकार बुध श्रीधर ने गुणों से भरपूर ऐसे पार्श्वचरित की रचना की, जिसकी मनोज्ञ अनुमोदना साहू **नट्टल** ने की है। उसमें नाग, मनुष्य, देव, एवं खेचरों (विद्याधरों) के अधिपति राजा **हयसेन** के वंश के लिये दिनमणि (सूर्य) के समान बालक-**पार्श्व** की बाल-लीलाओं का वर्णन करने वाली दूसरी सन्धि समाप्त हुई।

आश्रयदाता के लिये कवि का आशीर्वाद

जिसके सुन्दर एंव सुस्निग्ध घुंघराले केश लहराते रहते हैं और जिसने समस्त निर्दोष कलाओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया है, जिसने अपने समस्त शत्रुजनों के मान का मर्दन कर पृथिवीतल पर अपनी सत्कीर्त्ति का विस्तार किया है, जिसने अपने कुल की प्राप्तियों एवं उपलब्धियों के सुफलों को प्रकाशित कर उनके गौरव के कारण अपने वक्षस्थल को तान रखा है, ऐसे श्रीमन्त तथा निरन्तर ही पाप-कार्यों की अवहेलना करने में सफल श्रीमान् **नट्टल** साहू चिरकाल तक जीवित रहें।

तीया संधी

3/1

Once upon a time a messanger of a King comes to the court of King Hayasena. An interesting description of traits (characteristics) of a King's messanger (Embassador).

घता— एत्थंतरि पत्तउ दूउ तहिँ जहिँ हयसेणु णराहिवइ।
सामंत-मंतिगण-परियरिउ रिउकुरंगहरिणाहिवइ।। छ।।

जो छणससि व समग्ग कलालउ विउस-चित्त चोरणु कुसुमालउ।।
सुरवइगुरु व महामइवंतउ सोमु सुदंसणु णयसिरिवंतउ।।
महकइविरइय कव्व-रसिल्लउ सुंदरु सयल-देसभासिल्लउ।।
दप्पुब्भड पडिभटदलवट्टणु संघडियारिसमूह-विहट्टणु।।
जाइवंतु कुललच्छि समिद्धउ मुणिय परंतरंगु पसिद्धउ।।
कंतिवंतु पहु-कज्ज-कयायरु सयलामल-गुणमणि-रयणायरु।।
सपरकज्जपवियार-वियक्खणु जणमणहरु महुरगिरु सलक्खणु।।
गलियालसु पत्थाव-पयंपिरु पहुपसाय-भूसियउ अकंपिरु।।
विविहंबरपाहुड मंडिय करु बंभवलाहिहाणु कुलसंकरु।।
दियवरु णिव हयसेणाएसिउ दंडपाणि पडिहारेँ पेसिउ।।
णिव भू-भंग-भणिय विट्ठरि ठिउ सवइ-वयण-जंपण-उक्कंठिउ।।

घत्ता— सो पुच्छिउ राएँ वज्जरइ कुसलु देव सयलहँ जणहँ।
अणवरउ तुज्झु गयमल-चलण-कमलोवासण-कय मणहँ।। 40।।

3/1

अन्य किसी एक दिन राजा हयसेन की राज्यसभा में एक सन्देशवाहक (राजदूत) आता है : राजदूत के लक्षणों का रोचक वर्णन—

इसके अनन्तर मृग रूपी शत्रु के लिए सिंह के समान राजा **हयसेन** जब सामन्त एवं मन्त्रिगण सहित राज-दरबार में (सभा-मण्डप में) बैठे थे, तभी वहाँ एक **दूत** आ पहुँचा। वह दूत पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान समग्र कलाओं का घर था। विद्वानों के चित्त को चुराने के लिये वसन्त-ऋतु के समान, सुरपति-गुरु (बृहस्पति) के समान महामति युक्त, सोम (चन्द्र) के समान सुदर्शन तथा नय रूपी श्री से युक्त था। वह दूत महाकवियों द्वारा प्रणीत काव्यों का रसिक एवं रूप-सौन्दर्य से युक्त था।

वह समस्त देश्य-भाषाओं का बोलने वाला था तथा दर्प से उद्भट प्रतिभटदलों को ललकार कर पीछे लौटने के लिये बाध्य कर देने वाला, सुसंघटित अरिसमूह का विघातक, उत्तम जातिवाला, कुल-लक्ष्मी से समृद्ध, पर के अंतरंग (मन) की बात को समझने वाला, सुप्रसिद्ध, उत्तम कांति युक्त, प्रभु (स्वामी) के कार्य के प्रति आदर भाव रखने वाला, रत्नाकर के रत्न-समूह के समान ही वह (दूत) अपरिमित निर्दोष गुणों का आकर (खान), स्व-पर के कार्य के विचार में विचक्षण, जन-मन को हरनेवाला, मधुरवाणी बोलने वाला, उत्तम लक्षणों से युक्त, आलस्य रहित और प्रस्ताव (प्रकरण की बात) को सार्थक रूप में प्रस्तुत करने वाला, प्रभु-प्रसाद से भूषित, अकम्प (निर्भय), एवं विविध (बहुमूल्य) वस्त्रों की प्राभृत (भेंट) से विभूषित कर वाले, कुलिस (बज्रदण्ड) से युक्त हस्तवाले, तथा अपने कुल को सुखी बनाने वाले उस दूत का नाम ब्रह्मबल था। राजा हयसेन के आदेश से वह द्विजवर (ब्राह्मण)–दूत, दंडहस्त वाले द्वारपाल के द्वारा राज्य-सभा में भेजा दिया गया और राजा के भ्रूभंग के इशारे से आसन पर बैठ गया तथा अपने स्वामी-राजा के वचन-सन्देश को सुनाने हेतु राजा हयसेन के आदेश की प्रतीक्षा करने लगा।

घत्ता— राजा हयसेन द्वारा पूछे जाने पर वह दूत बोला कि हे देव, आपके निर्मल चरण-कमलों की अनवरत उपासना में दत्तचित्त, वहाँ के निवासियों की सभी प्रकार से कुशलता है। (40)

3/2

King Ravikīrti of Kuśasthala sends a message to King Hayasena.

अवरु समासमि तुज्झु णरेसर सउल-विउल-गयणयल-दिणेसर।।
णिवसइ पट्टणु एत्थु कुसत्थलु उल्लूरिय वइरिय वंसत्थलु।।
अण्णु ण दीसइ जासु सरिच्छउ तासु पयंपइ को गुणु णिच्छउ।।
तहिँ णिवसइ जीमूय-महासरु सक्कवम्मु णामेण महीसरु।।
5 रज्जु करंतहो तहो महिणाहहो माणिणि-मण-मारण-रइणाहहो।।
पेक्खंतहो णक्खत्तु ल्हसंतउ संजायउ वइराउ महंतउ।।
वइराइल्लिें रज्जु मुएप्पिणु रविकित्तिहि णियपुत्तहो देप्पिणु।।
संजायउ णिग्गंथ दियंबरु पंचमहव्वय-भार-धुरंधरु।।
जाम ताम तहो सुअ-आएसें कंपाविय णिक्कंप णरेसें।।
10 हउँ आयउ तुहुँ चलण णवंतउ करजुअलउ भालयलि ठवंतउ।।
णयरायर पट्टणइं मुअंतउ सपरियणहो तुह गुणइँ लवंतउ।।
सो जंपइ परमेसर अम्हहँ अण्ण ण गइ मिल्लेविणु तुम्हहँ।।

घत्ता— आएसु पडिच्छमि णियसिरेण जं तुहु देहि णराहिवइ।
मा भंति करेज्ज सुवयण-पह-परिणिज्जिय ताराहिवइ।। 41।।

3/2

कुशस्थल के राजा शक्रवर्मा को वैराग्य तथा राजकुमार रविकीर्ति का राज्याभिषेक : वह रविकीर्ति हयसेन के यहाँ एक सन्देश भेजता है—

(दूत ने पुनः कहा–) सकल विपुल गगन-तल के लिये सूर्य के समान हे राजन्, अब मैं आगे की बात आपसे कहना चाहता हूँ, (उसे भी सुनिये–) इसी भारत-भूमि पर अरिजनों को वंशस्थलों को उजाड़ देने वाला **कुशस्थल नाम** का एक पट्टन है, जिसके सदृश अन्य कोई पट्टन दिखाई नहीं देता। उस कुशत्थल-पट्टन के वास्तविक गुणों का वर्णन कौन कर सकता है? वहाँ जीमूत (मेघ) के समान महास्वर वाला **शक्रवर्मा** नाम का राजा राज्य करता है।

मानिनी-नारियों के मन को मारने वाले कामदेव के समान उस राजा ने राज्य करते हुए किसी एक दिन आकाश में काँपता हुआ सुन्दर नक्षत्र देखा। उसे देखकर उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया। वैराग्य के कारण राज्य को छोड़कर एवं **रविकीर्ति** नाम के अपने पुत्र को राज्य देकर, जब वह पंचमहाव्रतभार का धारक धुरन्धर, निर्ग्रन्थ दिगम्बर हो गया, तब समस्त शत्रु-नरेशों को कंपा देने वाले उस शक्रवर्मा के पुत्र रविकीर्ति के आदेश से ही मैं आपके चरणों को नमन करता हुआ, भाल-तल पर कर-युगल को रखता हुआ, अनेक नगर एवं पट्टन-समूहों को पीछे छोड़ता हुआ तथा सपरिजन आपके सद्गुणों का सर्वत्र बखान करता हुआ, यहाँ आपकी सेवा में आया हूँ। हमारे परमेश्वर राजा रविकीर्ति ने आपके लिये मेरे द्वारा कहलवाया है कि—"हे राजन्, आपको छोड़कर मेरी अन्य कोई गति नहीं।"

घत्ता— "अपनी मुख-कान्ति से चन्द्र-मण्डल को भी जीत लेने वाले हे नराधिपति, मैं आपके समस्त आदेशों को शिरोधार्य करता हूँ। आप मुझे आदेश दीजिये तथा मेरे कथन में किसी भी प्रकार की भ्रान्ति मत कीजिये।" (41)

3/3

King Hayasen plunges into deep grief after getting the message sent by King Ravikīrti regarding the renunciation of his father, King Sakravarman.

तं णिसुणेवि वओहर-जंपिउ सयलु सरीरु महीसहो कंपिउ।।
विहुणिवि ससिरु णिमीलवि णयणइँ महियलि घुलियउ बंधिवि रयणइँ।।
पुणु वि समुट्ठिउ मउलिय-लोयणु णिय दुह-परियण-मुह-संकोयणु।।
पावेविणु तणु-सम णिट्ठवणइँ हरियंदणु चल-चामर-पवणइँ।।
णियमणि णिब्भरु सोउ करंतउ रुअइ सपरियणु ससुहि सकंतउ।।
हा-हा सक्कवम्म महि-सामिय मय-मंथर सिंधुरगइ-गामिय।।
दूसह-समर-सहास धुरंधर दारिय करि कंठीरव कंधर।।
हा-हा विरइय सुहियण-वच्छल णायणिहेलण दूरुज्झियच्छल।।
हा-हा हयरिउ माण-परिग्गह सीलाहरण-विहूसिय-विग्गह।।
हा-हा पुरिस-रयण पालिय-पय णिहिल णरिंद-विंद सेविय पय।।
पइँ विणु कह हयवउ साहारमि दुक्ख-महाणइ-णाहहो तारमि।।
इय जा विरयइ सोउ णरेसरु ता जंपइ बुहु कोवि मईसरु।।

घत्ता— भो-भो धरणीसर समरधुर-धरणीधर सररुह-सुमुहु।।
णिसुणिज्जउ देव पसाउ करि भणमि किं पि हउँ पुरउ तुहु।। 42।।

3/3

राजा रविकीर्ति द्वारा प्रेषित राजा शक्रवर्मा के वैराग्य सम्बन्धी सन्देश को पाकर राजा हयसेन शोक सागर में डूब जाता है—

उस **वचोहर** (सन्देशवाहक) का कथन सुनकर महीश (राजा) **हयसेन** का सम्पूर्ण शरीर काँप उठा। वह अपना शिर धुनने लगा, उसने नेत्रों को निमीलित कर लिया। रदन (दाँत) बाँधकर वह भूमि पर लौटने लगा। फिर नेत्र बन्द किये हुए ही उठा और अपने दुःख से उसने अपने परिजनों के मुख को संकुचित (रुआँसा) कर दिया। पुनः शरीर की थकावट को शान्त करने वाले हरे चन्दन तथा हिलते हुए चामरों की पवन से कुछ स्वस्थ होकर वह उठ बैठा और अपने मन में भरपूर शोक करता हुआ, अपने परिजनों, मित्रों एवं रानियों सहित हाय-हाय कर रुदन करने लगा और बोलने लगा कि हे शक्रवर्मा, मही के हे स्वामिन्, मद से मंथर गज के समान गति वाले, दुस्सह-युद्ध के भार को सहर्ष धारण करने वाले, शत्रुरूपी हाथी को विदीर्ण करने के लिये पराक्रमी सिंह के समान ग्रीवा वाले, मित्रजनों के प्रति वात्सल्य गुण वाले, सभी के प्रति न्याय-नीति रखने वाले, छल-कपट को दूर से ही छोड़ने वाले, मान-परिग्रह रूपी शत्रु के त्यागी, शीलाभरण से विभूषित विग्रह वाले, हे प्रतिज्ञा पालक, हे पुरुषरत्न, समस्त नरेन्द्र-वृन्दों से सेवित हे राजन्, हतवय (वृद्धावस्था) में आपके बिना मैं अपने को कैसे संभालूँगा। दुखरूपी महानदीनाथ (समुद्र) को कैसे पार करूँगा? इस प्रकार राजा हयसेन जब शोक कर रहे थे तभी कोई विवेकशील सभासद्-विद्वान् बोला—

घत्ता— हे-हे समरधुर-धरणीश्वर, हे कमल पुष्प के समान मुखवाले धरणीधर, हे देव, कृपा कर सुनिए। मैं आपके सामने कुछ कहना चाहता हूँ। (42)

3/4

The learned and rational courtiers console Hayasen through various preachings explaining the evils of remaining in deep grief and sorrowful condition.

सोउ जणहँ संताउ पयासइ सोउ सरीरहो कंति विणासइ।।
सोएँ भव-मयरहरे पडिज्जइ सोएँ सुइ-मइ-धीरिम खिज्जइ।।
सोएँ सपरंतरु ण मुणिज्जइ सोएँ सीलहो पाणिउँ दिज्जइ।।
सोहाऊरिउ को ण पणट्ठउ एरिसु सोउ वियाणिवि दुट्ठउ।।
5 को विरयइ णरणाह सयाणउँ एक्कु मुएविणु बालु अयाणउँ।।
जइ भंगुरु संसारु वियप्पेवि णियपुत्तहो णियलच्छि समप्पेवि।।
मयरद्धय-माणुण्णइ भंजेवि दुद्धरु मोह-महाभडु गंजेवि।।
सिद्धिविलासिणि रइ उक्कंठिउ बारह-विह मुणि-तवसिरि संठिउ।।
ता किं तुह सो सोय ण जुत्तउ जो ण मोह विसहर विस भुत्तउ।।
10 पच्चेलिउ एरिसु बोल्लिज्जइ सो धण्णउ जेँ वउ पालिज्जइ।।
दिव देव तुह ससुरसरिच्छउ अण्णु ण दीसइ महियले णिच्छउ।।
सो सोइज्जइ जो दुहे मज्जइ गमणागमणु करंतउ खिज्जइ।।

घत्ता— पुणु एहु परमेसरु परममुणि गुण-मणि-णिहि करणाह सुणु।
छिंदेवि चउगइ संसारतरु पावेसइ णिव्वाण पुणु।। 43।।

3/4

विवेकशील विद्वानों तथा सभासदों द्वारा राजा हयसेन को शोक त्याग करने का उपदेश। शोकाकुल रहने से हानियाँ—

(हे राजन्) शोक मनुष्यों के लिए संताप उत्पन्न करता है। शोक शरीर की कान्ति का विनाश करता है। शोक करने से यह जीव संसार-समुद्र में जा पड़ता है। शोक से श्रुति, मति एवं धैर्य नष्ट हो जाता है। शोक से स्व-पर का भेद नहीं जाना जा सकता। शोक से शील को पानी दिया जाता है (अर्थात् शोक से शील नष्ट हो जाता है)। (संसार में) ऐसा कौन है, जो शोक से पूरी तरह नष्ट नहीं हो गया? शोक की ऐसी दुष्टता जानकर हे नरनाथ, एक अजान बालक को छोड़ कर, ऐसा कौन सयाना (चतुर) है, जो शोक करेगा।

यदि वह राजा **शक्रवर्मा** संसार को क्षणभंगुर जानकर (विचार कर-विकल्प कर) अपने पुत्र को अपनी राज्य-लक्ष्मी समर्पित कर, मान से गर्वोन्नत मकरध्वज को नष्ट कर, दुर्धर्ष मोह-महाभट को गाँजकर (मरोड़ कर), सिद्धि-वधू के साथ रति के लिये उत्कण्ठित होकर वह मुनियों के बारह प्रकार के तप में संस्थित हो गया है और जिसे विषधर के विष के समान भोगों से मोह नहीं रहा, तो उसके लिये शोक करना क्या आपके लिये उपयुक्त है? प्रत्युत, इसके बदले मैं आपको तो यह कहना चाहिए कि वह धन्य है, जो व्रतों को पालता है। हे देवों के देव, आपके श्वसुर (राजा **शक्रवर्मा**) के समान तपस्वी निश्चय से मुझे तो इस पृथ्वीतल में अन्य कोई भी दिखाई नहीं देता। शोक तो केवल उसी के लिये किया जाना चाहिए, जो संसार के दुःखों में डूबा रहता है और जन्म-मरण के कारणों में ही अपने को खपाता रहा है।

घत्ता— और हे नरनाथ, मेरी बात सुनिये, गुणरूपी मणियों के निधि परममुनि वे परमेश्वर (राजा शक्रवर्मा) चतुर्गति रूपी संसार-वृक्ष का छेदन कर (शीघ्र ही) मोक्ष प्राप्त करेंगे। (43)

3/5

Further, the messanger informs King Hayasena – "Yavanrāja, the powerful ruler of a Janapada situated on the banks of river Kālindi, asks King Ravikīrti for the hands of his daughter or otherwise threatens for a battle on disagreeing." At this—

तं णिसुणेविणु सोयविवज्जिउ णिय जाणेवि विणएणावज्जिउ।।
तहिँ अवसरे दूएण णवेप्पिणु सिरि-सिहरोवरि पाणि ठवेप्पिणु।।
संलत्तउ सुणु सिंधुरगइ-गामिय सावहाणु होएविणु सामिय।।
कालिंदी-तीरिणि-तडि णिवसइ णयरु एक्कु जो जणवउ हरिसइ।।
5 जउणुराउ तओ सामिउ वुच्चइ जो णयमग्गु सबंधुहु सुच्चइ।।
दप्पुब्भड भूभंग-विहीसणु हरिणारिव रिउ हरिण-विणासणु।।
तेण सयर-वयणह जाणेविणु सक्कवम्मु ठिउ दिक्ख लएविणु।।
स वओहर वयणहिँ गुणजुत्तउ धरणीसरु रविकित्ती उत्तउ।।
देहि सदुहिय म कज्ज विणासहि करमउलेविणु विणउ पयासहि।।
10 केव महारी लेविणु णिवसहि विप्फुरंत णियलच्छि म णिरसहि।।
अहवा भुअवल वाए वग्गहि मइँ सहुँ दूसह रण महि लग्गहि।।
कुमइ विभाविउ अविणउ दरिसहि घणु जह तह सर-घोरणि वरिसहि।।

घत्ता— ता णयर-कुसत्थलवइ णिसुणि ससुइ सबंधउ लहु मरहि।
विरसंतउ तुहु णित्तुलउ तम मुहु कुहरंतरि पइसरहि।। 44।।

3/5

सन्देशवाहक के अनुसार कालिन्दी नदी के तटवर्त्ती जनपद का स्वामी यवनराजा रविकीर्ति से उसकी पुत्री का हाथ माँगता है और न देने पर वह उसे युद्ध की धमकी देता है। इस पर—

उस विवेकशील सभासद का कथन सुनकर वह राजा **हयसेन** शोक को छोड़कर एवं (अपने कर्त्तव्य-कार्य को जानकर राजा शक्रवर्मा के प्रति) विनयशील हो उठा। वचोहर-दूत ने उसी अवसर पर नमस्कार कर, शिर के ऊपर हाथों को रखकर कहा— "गज के समान गमन करने वाले हे स्वामिन्, सावधान होकर सुनिए—

कालिंदी (यमुना) नदी के तट पर एक ऐसा नगर बसा है, जो लोगों को हर्षित करता रहता है। उस नगर के स्वामी का नाम **जउन (यवन)** राजा है, जो अपने बन्धुओं को नय-मार्ग सूचित करता रहता है। वह दर्पोद्भट है तथा अपनी भयंकर भ्रूभंग से विभीषण है। सिंह के समान वह शत्रुरूपी हरिणों का नाश करने वाला है।

उसने अपने गुप्तचरों से यह जान लिया है कि राजा शक्रवर्मा दीक्षा लेकर (वन में) स्थित है। उस यवनराज ने अपने वचोहर (दूत) के द्वारा उस गुणज्ञ धरणीश्वर-**रविकीर्ति** को सन्देश भिजवाया है।" कि— मुझे अपनी पुत्री दे दे (ब्याह दे)। इस कार्य को बिगाड़ मत (और हमारे सामने), हाथ जोड़कर अपनी विनय प्रगट कर तथा हमारी कृपापूर्वक ही निवास कर। स्फुरायमान अपनी लक्ष्मी को नष्ट मत कर अथवा भुजबल रूपी वायु से उछलना हो, तो मेरे साथ दुःसह रण की भूमि में आकर लग (युद्ध कर), कुमति से प्रभावित होकर यदि अविनय दिखाता है, तो जैसे मेघ बरसता है, उसी प्रकार (तेरे ऊपर हमारे) वाणों का समूह-बरसेगा।"

घत्ता— "हे नगर-कुशस्थलपति, और सुन, तू अपने पुत्र, बन्धु-बान्धवों के साथ शीघ्र ही मरेगा अथवा तू रोता-सिसकता हुआ निस्तुल-निष्प्रभ होकर और अपना मुँह काला कर किसी पर्वत-गुफा में जा छिपेगा।" (44)

3/6

King Ravikīrti becomes furious. He himself vows to self-immolation by entering into the burning fire if defeated by Yavanrāja.

खरं भासियं तं समायण्णिऊणं णियत्थाण मज्झे मणे धारिऊणं।।
तओ सोवि रुट्ठो गुणोहो णहुत्तो महासुद्धधी सक्कवम्मस्स पुत्तो।।
पयंपेइ रोसारुणच्छी करालो धुणंतो स सीसं सभूभंगमालो।।
अरे रे दुरायार मोहंध धिट्ठा धरावालणायावहीणा णिकिट्ठा।।
5 जई जोइ जो महुज्ज-मत्तो णिरासा पयंपेइ भो णेरिसीसो विभासा।।
तुमं किं महीलच्छि वाएण मग्गे कयाणेय दुक्खोह वा भूउ लग्गे।।
ण याणासि जेणावणीणाह-मग्गं महामंति बुद्धीहिँ दिट्ठं समग्गं।।
पए जंपियं जं पुरो मे असुद्धं सयाचारचूडामणीणं विरुद्धं।।
ण मे जुज्जए बोल्लिउं तं खलाणं पुरं मण्णणिज्जं मणे णिप्फलाणं।।
10 फुरंतासिणा संगरं पाविऊणं तईय सिरं णेब्भरं छेइऊणं।।
रसंतोरुचक्का-रहा दारिऊणं भडा-उब्भडा-लंपडा मारिऊणं।।
तुरंगाण थट्टाइँ लोट्टालिऊणं महाहत्थि कुंभत्थलं कीलिऊणं।।

घत्ता— जइ परए ण मारिवि सयलु बलु करमि तित्ति रक्खस्स कुलहो।।
तुह तणउं सेव विसमि फुडउ तां जलणहो जालाउलहो।। 45।।

3/6

राजा रविकीर्ति का आक्रोश। वह यवनराज से पराजित होने पर अग्निप्रवेश की प्रतिज्ञा कर लेता है—

अपनी ही राज्यसभा में यवनराज के वचोहर-दूत के मुख से कर्कश भाषा वाले कटु सन्देश को सुनकर तथा उसे अपने मन में धारण कर क्रोध से लाल-विकराल नेत्र किये हुए उस गुण-समुद्र, विशुद्ध मतिवाले शक्रवर्मा के पुत्र राजा **रविकीर्ति** ने भृकुटियों को फैलाकर अपना माथा धुनते हुए उसे ललकार कर कहा— अरे-अरे रे, दुराचारी, मोहान्ध, धृष्ट, टुकड़खोर, न्यायनीति-राजनीति विहीन, निकृष्ट, यदि महत्वाकांक्षाओं के कारण मदोन्मत्त हो गया हो, तो तुझे मुझसे निराशा ही हाथ लगेगी। रे म्लेच्छ, कोई पागल भी तुझ जैसी नीच भाषा नहीं बोल सकता। क्या तू पृथिवी-लक्ष्मी के वात से उन्मत्त हो गया है, अथवा क्या तुझे यमराज के द्वारा प्रदत्त घोर दुखों का भूत-पिशाच लग गया है?

इसी कारण विवेकशील महामन्त्रियों द्वारा दिखाये गये अवनिपतियों के प्रशस्त-मार्ग तू नहीं जानता। (उससे तू भटक गया है) और इसीलिये सदाचार के चूडामणि के रूप में प्रसिद्ध मुझ जैसे राजा के सम्मुख ऐसे अशुद्ध-अपशब्दों का तू प्रयोग कर रहा है?

तुझ जैसे नीच खलजनों के सम्मुख मेरा कुछ भी बोलना निष्फल ही होगा। वह मेरे लिये उपयुक्त नहीं (फिर भी), मैं ऐसा योग्य समझता हूँ कि उसे समर भूमि में पाकर स्फुरायमान खड्ग से उसके सिर का पूर्णतया छेदन कर, दौड़ते हुए उसके रथों के चक्कों को चूर-चूर कर, उद्भट, किन्तु लम्पट-भटों को मारकर, तुरंग-समूहों को धूलिसात् कर महान् हाथियों के कुम्भस्थलों को कीलित कर—

घत्ता— तथा शत्रु को मारकर यदि उसकी समस्त सेना से राक्षस-कुल को तृप्त न कर दूँ तो हे मेरे शत्रु के सेवक (वचोहर), तेरे सम्मुख मैं साक्षात् ही प्रचण्ड-अग्नि में प्रवेश कर अपने को भस्म कर डालूँगा। (45)

3/7

King Hayasen lost his temperament after listening to the messanger.

तारिसु वयणु सुणेविणु दूअहो संगर-सहिउ गलिय तणुरूअहो।।
घयसित्तउ जलणु व पज्जलियउ जउणु णराहिउ रणमहे चलियउ।।
सहरिस करि सपरियणु समायउ णं पच्चक्खु कयंतुद्धायउ।।
वारिहरु व रविकित्ति साहणु उत्थरियउ वट्टइ सुपसाहणु।।
5 तं आयण्णिवि वड्ढिय मच्छरु दूसहु णं खयकाल सणिच्छरु।।
वाणारसि पुरि णाहु विरुद्धउ जयसिरि रामालिंगण-लुद्धउ।।
जंपइ गग्गर-गिरु फुरियाहरु पर णर वर महिमा महिमाहरु।।
को सो जउण णराहिउ वुच्चइ जसु रविकित्तिहि रज्जु ण रुच्चइ।।
महु पिययम-भायरहँ समाणउ जो विरयइ संगामु समाणउ।।
10 सो वियलिय मइ मूढ अयाणउ णिच्छउ जमउरि देइ पयाणउ।।
किं सो ण वियाणइ सपरंतरु जें विरहइ संगामु णिरंतरु।।
किं सो मारिउ मरइ ण संगरे जें जुज्जइ पडिभड संगरे।।

घत्ता— तओ मग्गंतहो रविकित्ति-सुअ णयणोहामिय बालमय।
वज्जाणल-हय गिरिकडिणि जह कह ण जीह सय खंडु गय।। 46।।

3/7

दूत का कथन सुनकर हयसेन आगबबूला हो जाते हैं—

युद्ध क्षेत्र में युद्ध करते-करते अपने शरीर को गला देने वाले वचोहर-दूत द्वारा रविकीर्ति के जले-कटे वचन सुनकर **यवनराज** घृत-सिक्त अग्नि के समान तीव्र क्रोधानल में जलने लगा और उस (यवनराज) की सेना ने तत्काल ही युद्ध-भूमि की ओर कूच कर दिया।

वह जउनराजा स्वयं भी हर्ष पूर्वक अपने परिजनों सहित हाथी पर सवार होकर युद्ध भूमि में इस प्रकार आ गया, मानों प्रत्यक्ष रूप में कृतान्त (यम राज) ही दौड़ कर आ गया हो।

और इधर, मेघ के समान रविकीर्ति भी विस्तृत प्रसाधनों से युक्त होकर युद्धभूमि में आ डटा।

राजा **रविकीर्ति** के वचोहर-दूत के द्वारा दुष्ट यवनराज का समस्त वृतान्त सुनकर **वाणारसी** नगरी के राजा **हयसेन** भी जयश्री के समालिंगन के लोभ के कारण क्षयकाल के लिये शनिश्चर के समान बिगड़ कर उसके विरुद्ध हो गये। और फड़कते अधरवाले, पराक्रमी शत्रु-राजाओं की महिमा को हरने वाले, उन्होंने ललकारते हुए कहा— कौन है वह यवनराज, जिसे रविकीर्ति का राज्य नहीं रुच रहा है और जो मेरी प्रिया के भाई (साले) के साथ अहंकार से भरकर संग्राम करने चला है। वह जउनराजा मतिभृष्ट, मूढ एवं अज्ञानी है और निश्चय ही वह यमपुरी की ओर प्रयाण करने जा रहा है। क्या यह स्व-पर के अंतर को नहीं जानता? जो निरन्तर ही संग्राम करता रहता है। क्या वह युद्ध में मारे जाने पर भी मरेगा नहीं? जो प्रतिपक्षी सुभटों के द्वारा प्रतिज्ञा किये युद्ध में जूझने जा रहा है।

घत्ता— अपने नयनामृत से बालमृग के नेत्रों को भी परास्त कर देने वाली रविकीर्ति की पुत्री को माँगते समय उस यवनराज की जिह्वा बज्राग्नि से नष्ट-भ्रष्ट पर्वत की कटिनी की भाँति शत-खण्डों में विदीर्ण क्यों न हो गई? (46)

3/8

King Hayasen rebukes like anything the foolish proposal made by Yavanrāja. He challenges him in thundering voice and orders to his Military Generals to make necessary war-preparations.

किं बहुएण पयंपिय वयणेँ बारबार परिपीडियवयणेँ।।
जइ समरंगणि णिय सामंतहिँ परए ण जाएवि सहु सामंतहिँ।।
महधयवडु वोमयले लुलावेवि पवर तुरंगम वग्ग चलावेवि।।
मत्तमयंगमघड पेल्लावेवि अमरिस वस पर-णर बोल्लावेवि।।
खय-दिणयर कर भासुरु खंडउ कट्टेविणु अरियण सिर खंडउ।।
जउण-णराहिव माणु मलेप्पिणु अरि-भय-गल-घड समुहु वलेप्पिणु।।
कुइय कियंतु व आगउ संघारमि ताणिच्छउ णियणामु जि हारमि।।
जा हयसेणु पइज्जारूढउ णीसेसावणि मंडले रूढउ।।
णव-पाउस जीमूय-महासणु लहु मुअंतु उट्ठिउ सिंहासणु।।
ता उट्ठिउ समूहु मंडलियहँ एक्कमेक्क मिलियहँ मंडलियहँ।।

घत्ता— णवकुसुम पयरु पयरुहहिँ दरमलंतु अमरिसभरिउ।
तुट्टंत हार कंकण मउडु णिव अत्थाणहो णीसरिउ।। 47।।

3/8

राजा हयसेन यवनराज के प्रस्ताव की तीव्र भर्त्सना कर रण-प्रयाण की तैयारी करते हैं—

(दूत के वचनों को सुनकर राजा **हयसेन** ने भर्त्सना करते हुए पुनः कहा–) मुख को पीड़ा देने वाले वचनों के बार-बार बोलने से क्या लाभ? यदि समरांगण में हमारे प्रिय सामन्तों के द्वारा वह यवनराज अपने सामन्तों के साथ प्रलय (मरण) को प्राप्त न हो जाये, उसके महाध्वजपट को यदि मैं व्योमतल में ही लुंजपुंज न कर डालूँ, उसके प्रवरकोटि के घोड़ों को पीछे की ओर न चला डालूँ, मत्त-मातंगों के समूह को यदि न पेल डालूँ, क्रोधावेश में आकर यदि शत्रु समूह का हाँका न करा डालूँ, क्षयकालीन सूर्य-किरणों के समान भास्वर रंग वाली शत्रुओं की खड्गों को तथा अरिजनों के सिरों को खण्ड-खण्ड न कर डालूँ, यवन-नराधिप के मान का मर्दन न कर डालूँ, शत्रुओं के मदोन्मत हाथियों को मुँह के बल चक्कर न कटवा दूँ और युद्धक्षेत्र में यदि मैं उसके लिये कुपित कृतान्त के समान युद्धभूमि में आये हुए शत्रुबल का संहार न कर डालूँ तो निश्चय ही मैं अपना (हयसेन यह) नाम हार जाऊँगा।

समस्त पृथिवी-मण्डल में विख्यात राजा हयसेन जब इस प्रकार की प्रतिज्ञा करके सन्नद्ध हुए और नवीन प्रावृष (वर्षाकाल) की मेघ घटा के समान महागर्जना करते हुए झटके के साथ सिंहासन छोड़कर उठे तभी परस्पर में एक-दूसरे से मिलते हुए तथा एक दूसरे से धक्का-मुक्की करते हुए माण्डलिकों का समूह भी उठ खड़ा हुआ।

घत्ता— नव पुष्प-समूह के समान अपने चरण-कमलों से धरती को रौंदते हुए, तीव्र क्रोध से भरे हुए, वेग पूर्वक चलने के कारण टूटते हुए हार, कंकण, मुकुट आदि वाले वे राजा हयसेन अपने आस्थान-मण्डप से बाहर निकले। (47)

3/9

Hayasena passes orders to his C-in-C. to beat the cattle drums and to be ready to march at once against the Yavanrāja.

दूअवयणु परिवड्ढिय मच्छरु समरंगणे तोसिय पवरच्छरु।।
पयभर कंपाविय महिमंडलु णिय भुअबल विंभाविय आहंडलु।।
असिधेणुअहे पसारिय करयलु अरुण-णयण-सिरि-रंजिय-णहयलु।।
हणु-हणु-हणु भणंतु कय कलयलु णव णेहीरविलेविय कमयलु।।
5 भूरि-समर-विण्णासिय भुअबलु मुट्ठिघाय-लोट्टालिय मयगलु।।
सुइ-कुंडल-मंडिय-गंडत्थलु पुर-कवाड सण्णिह वच्छत्थलु।।
विविहाउह-पहार-परिहयवरु दिढयर-पाणि-णिवीडिय-असिवरु।।
णिय-णिम्मलयर-वंस-विहूसणु अगणिय-वियलिय-मणिमय-भूसणु।।

घत्ता— इय खुहियउ तह परियणु सयलु हयसेणहो धरणीसरहो।
10 छण चंदुग्गमे मयरहरु जह सुर-गहीर भेरी-सरहो।। 48।।

3/10

Aspirations of the wives of warriors, eager to march in front-row to the battle-field.

कणयाहरण विहूसिय गत्तहँ पहरणकंति-रहिय-णक्खत्तहँ।।
कायराण भावाइँ चयंतहँ सुभडयणहँ सण्णाहु लयंतहँ।।

3/9

राजा हयसेन के युद्ध-प्रयाण के आदेश एवं रणभेरी की गर्जना—

दूत के उक्त वचनों को सुनकर राजा **हयसेन** का मन क्रोध से भर उठा और इस प्रकार पूर्व समरांगणों में श्रेष्ठ विजय प्राप्त करने के कारण अप्सराओं को भी संतुष्ट करने वाले, अपने चरणों के भार से महीमंडल को कंपाने वाले, अपनी भुजा के बल से इन्द्र को भी आश्चर्यचकित कर देने वाले, असिधेनु पर निरन्तर हाथ को फैलाये रखने वाले, अपने रक्तवर्ण के नेत्रों से आकाश को रंजित करने वाले, मारो, मारो, मारो के कोलाहल को करने वाले, नवीन नीहार-रज से विलेपित चरण-तल वाले, अनेक युद्धों में शत्रु के भुजबलों को तोड़ने वाले, मुक्कों की मार से मदमत्त गजों को भूमि पर लोटाने वाले, कर्णकुण्डलों से मण्डित गण्डस्थल वाले, नगरद्वार के कपाट तुल्य विस्तृत वक्षस्थल वाले, विविध आयुधों के प्रहार से शत्रुजनों के हाथों को परिहत (नष्ट) करने वाले, दृढ़तर हाथों से निपीड़ित असिवर वाले, अपने निर्मलतर वंश के भूषण, अगणित टूटे मणिमय भूषणवाले, उन—

घत्ता— धरणीधर हयसेन के क्षुब्ध होने पर तथा सुरभेरी के समान गम्भीर रणभेरी सुनकर समस्त परिजन उसी प्रकार क्षुब्ध हो उठे, जिस प्रकार कि पूर्णचन्द्र के निकलते ही सारा समुद्र क्षुब्ध हो उठता है। (48)

3/10

रण-प्रस्थान के लिये व्याकुल योद्धाओं से उनकी पत्नियों की अभिलाषाएँ

स्वर्णाभरणों से विभूषित गात्रवाले, प्रहरणों (शस्त्रों) की कान्ति से नक्षत्रों को भी शोभाविहीन कर देने वाले, कायरता के भावों को त्याग देने वाले तथा कवच में आवेष्टित और रण-प्रयाण की आज्ञा पाने के लिये व्याकुल किसी

कवि णारि जंपइ जणमणहरु अत्थिहारु महु मंडिय थणहरु।।
तुज्झु पसाएँ परजइ सुंदरु कसण सिणिड्ढ सुकोमल कंदरु।।
अरि-करि-कुंभत्थले पउ देप्पिणु दसण-मुसल उप्पाडेवि लेप्पिणु।।
तासु करावहि महु बलउल्लउ एक्क वि सयलाहरणह भल्लउ।।
ता पइँ पिययम भल्लउ मण्णमि पणि घिवंतु णयणे अवगण्णमि।।
कवि णारि वज्जरइ हियत्तेँ पइँ समरंगणि णाह पयत्तेँ।।
भीम भडेहिँ समाणु भिडंत्तेँ अहिमाणोरु गिरिंद चंडंतेँ।।
गयणंगणि सुरयणु हरिसंतेँ वीर-वित्ति सव्वहँ दरिसंतेँ।।
सिंगारु वि तहि पिय पयडेव्वउ बार-बार विहडेवि घडेव्वउ।।
कर-ताडण दंतच्छय गहणहिँ केसायट्टण उब्भडवयणहिँ।।
परिरंभहिँ खर-णहर-णिवायहिँ बहुविह करण सद्द-संघायहिँ।।

घत्ता— कवि भणइ णारि भो-भो सुहय जइ महु सुरय समिच्छसि।
ता पर गय घड णारिहिँ तणउँ पाणि म कंत पडिच्छिहसि।। 49।।

3/11

Heart-hitting immotional feelings and tearfull words with choked throat by the wives to the soldier-husbands eagerly marching towards the battle-field.

कवि णारि जंपइ सहु णाहेँ ललियक्खरहिँ ललिय-मयणाहेँ।।

सुभट से उसकी सुन्दरी, कृश, स्निग्ध एवं सुकोमल देहवाली नारी ने कहा— मेरे स्तन-भार को सुशोभित करने वाला यह हार (मंगल सूत्र) आपके प्रसाद से ही मिला है, परन्तु हे पतिदेव, यदि शत्रु के गज के कुम्भस्थल पर पदाघात कर मुसल समान गज दन्तों को उखाड़ कर (तोड़ कर) उसी गजदंत से मेरे लिये बलय (कडे) बनवा देंगे, तो एकमात्र होते हुये भी वह मेरे लिये सकल आभरणों से अधिक श्रेष्ठ होगा और तभी मैं आपको अपना भला प्रियतम मानूंगी। अन्यथा, मेरी दृष्टि में आप घृणित तथा अनादर के पात्र होंगे।

कोई नारी प्रेम-पूर्वक अपने हृदयेश से बोली— हे नाथ, आप युद्धांगण में प्रयत्न पूर्वक (सावधानीपूर्वक) दर्पोद्भट शत्रुरूपी पर्वत पर चढ़ते हुए तथा उसी के समान भीमकाय वाले भटों से भिड़ते हुए, नभांगण में सुरगणों को हर्षाते हुए, अपनी वीरवृत्ति (क्षत्रिय-रीति-युद्ध में पीठ न दिखाना) सबको दिखाते हुए, जब आप वापिस लौटेंगे तब हे प्रियतम, मैं (आपके समक्ष) अपने समस्त शृंगार करूँगी तथा बार-बार उनका विघटन कर पुनः पुनः घड़ाऊँगी। करताडण, दंतच्छद, ग्रहण, आलिंगन, खर (तीक्ष्ण)- नखाघात, निपात, शैया-शयन केशाकर्षण, उद्भटवचन और भी अनेक प्रकार के करण आदि के साथ मिलूँगी।

घत्ता— कोई नारी बोली– भो-भो सुभग ! यदि आप मेरी सुखद सुरति चाहते हैं, तब हे कान्त, शत्रु की गज-घटा के (गण्डस्थलों के समान–) समान घनस्तनी नारियों के साथ पाणिग्रहण की प्रतीक्षा-कामना मत करना। (49)

3/11

रण-प्रयाण के लिये व्याकुल सुभट-पतियों के लिये उनकी पत्नियों के मर्मभेदी प्रतिबोधन—

कोई नारी ललित कामदेव के समान सुन्दर अपने नाथ से ललित अक्षरों में कहने लगी कि— आपका वक्षःस्थल

तुहु वच्छत्थलु सेविउ लच्छिए भुव-जुउ परिभुत्तउ जयलच्छिए।।
परिभमंति पुण्णालि व महियले थत्ति ण बंधइ कित्ति व णहयले।।
कसु ण कंठु फंसिउ असि-लट्ठिए पर-णरवर वच्छत्थलु मुट्ठिए।।
मइं पुणु माणिउ सव्वंगेण जि बार-बार पिय जंपमि तेण जि।।
जइ मण्णहि महु रइ-गुणु सामिय समरंगणि पवरच्छर-कामिय।।
ता णहयले संठिय सुरपतिहु एक्कमेक्क वर वीरवरतिहु।।
मा-मा मण्णेज्जसु भासइ कावि णारि णियहियउ पयासइ।।
कंत-कंत कायरइँ मुएविणु वाणासणे वाणावलि देविणु।।
हरिणारिव ओरालि करेविणु दूसासणु वसुभिउडि धरेविणु।।
राहु व रूसेज्जहि रविचंदहँ गुणगरुअहँ जसवल्लरि कंदहँ।।
इयरह णिम्मल-कित्ति ण लब्भइ जाबहु जंपण माणु णिसुंभइ।।

घत्ता— ता रायहो वयणें किंकरहिँ रणतूराइँ समाहयइँ।
बहिरंत तिविह भुवणोवरइँ पडिरडियइँ आसागयइँ।। 50।।

3/12

King Hayasen makes up his mind to command and start with his four types trained and experienced army towards the challenging battle-field.

तहिँ अवसरि सेण्णइँ संचलियइँ णं जम-काल-कियंतहँ मिलियइँ।।

लक्ष्मी द्वारा सेवित है और भुजा-युगल जयलक्ष्मी द्वारा परिभुक्त। आपकी कीर्ति पुंश्चली के समान महीतल में घूमती रहती है और वह नभस्तल में भी अपनी स्थिति को नहीं बाँधती। आपकी असि-यष्टि ने किस-किस के कण्ठ का स्पर्श नहीं किया है? किस-किस वीर शत्रु के वक्षस्थल का आपके मुक्के ने स्पर्श नहीं किया है?

मैंने तो आपको अपने सर्वांगों से आदर दिया है, इसीलिये मैं आपसे बार-बार प्रार्थना कर रही हूँ कि वे स्वामिन्, यदि आप मेरे रति-गुण को सम्मान देते हैं, तो समरांगण में श्रेष्ठ अप्सराओं के कामीजनों (शत्रुओं) को नभस्तल में ही संस्थित कर देना, जिससे कि सुरपति की देवांगनाएँ एक-एक कर उन वर-वीरों का वरण कर सकें अन्यथा, मैं कह रही हूँ कि मैं आपके यश को मान्यता नहीं दे सकूँगी।

कोई-कोई नारी अपना हृदय खोलकर अपने मनोभावों का प्रकाशन करती हुई कह रही थी कि हे कान्त, हे कान्त, कायरता छोड़कर वाणासन (धनुष) पर वाणावलि चढ़ाकर जिस प्रकार सिंह मृग-पंक्ति को नष्ट करता है, उसी प्रकार तुम भी शत्रु-पंक्ति को निशाना बनाकर दुःशासन के समान तीक्ष्ण भृकुटि तान देना और जिस प्रकार राहु क्रोधित होकर सूर्य एवं चन्द्र को ग्रसित कर लेता है, उसी प्रकार तुम भी गुणों के महान् तथा यश रूपी लता-वल्लरी के कन्द समान उन चन्द्रवंशी एवं सूर्यवंशी शत्रुओं पर क्रोधित होकर टूट पड़ना। आप जब तक जल्पवादी-वकवादी इन सुभटों का मान-मर्दन नहीं कर डालेंगे, तब तक आपको निर्मल कीर्ति प्राप्त नहीं हो सकेगी।

घत्ता— तभी, राजा **हयसेन** के आदेश से आज्ञाकारी सेवकों ने तीनों लोकों के बाह्य तथा आभ्यन्तर को भर देने वाले रण-प्रयाण के सूचक तूरादि बाद्य बजा दिये, जिससे सभी दिशाएँ-विदिशाएँ प्रतिध्वनित हो उठीं। (50)

3/12

राजा हयसेन की वाणारसी से चुनौती भरी रणभूमि की ओर प्रयाण की तैयारी—

उसी समय सेना ने इस प्रकार प्रयाण किया, मानों वह यमकाल (मरण काल) में कृतान्त से ही मिलने जा रही

मत्त-गइंदारूढ सुजोहइँ कणय-विणिम्मिय कवय-सुसोहइँ।।
हरि-खर-सुरक्खय समर-धरग्गइँ विप्फुरंत आयड्ढिय खग्गइँ।।
चिक्किरंत चक्कइँ रहणियरइँ मुक्क हक्क पाइक्कहँ पयरइँ।।
5 रोसारुण णयणइँ धारंतइँ करयल कय कुंतइं दारंतइँ।।
जयसिरि रामालिंगण रत्तइँ असरिस पोरिस मंडिय गत्तइँ।।
हल्लाविय सरि-सायर-सलिलइँ उप्पाइय बइरीयण कलिलइँ।।
मुहु-मुहु परिफंसिय थइ वइरियणहँ दरिसिय जमपंथइ।।
भूरि भार भेसिय धरणिंदइँ छत्त-छाय परिपिहिय दिणिंदइँ।।
10 खयसमयाहि विलास-विरामइँ संपाडिय वंदीयण कामइँ।।
परिपालिय णरवर-णय-सीमइँ जक्ख-रक्खयर वसुहाहिव भीमइँ।।
कविल धूलि धूसरिय सरीरइँ मेरु महीहरु कंदर धीरइँ।।

घत्ता— इय सेण्णें जा हयसेणु पहु परियरियउ णिग्गउ पुरहो।
मणि-कणय-विणिम्मिय रहे चडेवि स भियंणारि-पयणेउरहो।। 51।।

3/13

At the same time Prince Pārshwa puts up a proposal before his father to allow him to fight with the arrogant enemy — Yavanrāj.

ता कासुवि वयणहो णिसुणेविणु समर-जत्त णियचित्ते मुणेविणु।।

हो। स्वर्ण-खचित कवचों से सुशोभित वह सैन्य-समुदाय मत्त गजों पर आरूढ था। घोड़ों के तीक्ष्ण खुरों से समर-धरा क्षत-विक्षत हो रही थी। खींची हुई तलवारें स्फुरायमान हो रही थीं। रथसमूह के चक्र चीत्कार कर रहे थे। पैदल-सेना हाँक दे रही थी और रोष के कारण लाल-लाल नेत्र धारण किये हुए हाथ में लिये हुए कुन्तलों को तोड़ते हुए वे दौड़े चले जा रहे थे।

कोई-कोई भालाओं को उछालते हुए दौड़ रहे थे। मानों वे असदृश पौरुष से मंडित सुगात्र वाले जयश्री (लक्ष्मी) के साथ आलिंगन में रत थे। उन्होंने नदियों एवं सागरों के जल को मथ डाला था और बैरी जनों के हृदयों में उथल-पुथल मचा डाली थी, वे बार-बार सैन्य-स्थिति का अवलोकन कर अपने बैरी-समूह को यम-पन्थ दिखाने का उद्घोष कर रहे थे। वह सैन्य-समुदाय अपने अत्यधिक भार से धरणेन्द्रों को भी कंपा देने वाला था, और छत्र-छाया से दिनेन्द्र को भी ढँक देने वाला था।

जिस प्रकार क्षयकाल में शेषनाग की चेष्टाओं को विराम मिलता है, उसी प्रकार विलास के विराम वाली, वह पदाति-सेना थी, जो बन्दीजनों की मनोकामना को पूर्ण करने वाली थी, जो नरवरों की नय-सीमा का परिपालन करने वाली थी, किन्तु जो यक्षाधिप, राक्षसाधिप, विद्याधरों एवं वसुधाधिपतियों के लिये भयंकर थी तथा जो कपिल वर्ण की मटमैली धूलि से धूसरित शरीरवाली और जो सुमेरु पर्वत की कन्दरा के समान धीर-वीर थी।

घत्ता— इस प्रकार के सैन्य-समुदाय से वेष्टित राजा हयसेन मणियों एवं स्वर्ण विनिर्मित रथ पर चढ़कर नगर के उस मार्ग से चला, जहाँ नारी जनों के नुपुर रुणझुण-रुणझुण कर रहे थे। (51)

3/13

राजकुमार पार्श्व का यवनराज के साथ युद्ध करने के लिये अपने पिता से प्रस्ताव—

तब किसी के द्वारा अपने पिता के युद्ध-प्रयाण का कथन सुनकर, अपने मन में उसे समझकर वाणारसी के राजा

वाणारसिपुरि णाहहो पुत्तेँ सुरसीमंतिणि रंजण-धुत्तेँ।।
अमरकुमारहिँ सहुँ सिरि-जुत्तउ स जणणु पास-जिणिंदेँ वुत्तउ।।
ताय-ताय किं कोवि णिरंतरे अलसि-कुसुम मसि-सम तिमिरंतरे।।
पोणे पसारइ गुणमणि सायरु होंतएण दीवेण जसायरु।।
किं मंथरगइ मेल्लिवि सिंधरु कच्छरिच्छ-माला सिरि बंधुरु।।
अप्पउ कोवि समेण विहट्टइ बुद्धि-समद्धिउ पयहिँ पयट्टइ।।
किं घरित्थिए भोयणे अमिओवमि कोवि भिक्ख-परिभमइ मणोरमि।।
किं अच्छंतिएण सुह सलिलेँ कोवि पियइ कद्दमु हय कलिलेँ।।
किं खयरामरणयणाणंदणु फल सिलिंध समिद्धउ णंदणु।।
मेल्लिवियाणल-जालहिँ पीयलु सेवइ कोवि मसाण महीयलु।।
किं कोमले णिम्मले थिणिवसणे परिहइ कोवि सुथूल सुहि जणे।।

घत्ता— किं मइ सुएण अच्छंतएण तुह जुत्तउ संगरु हवइ।
तं सुणिवि पासणाहहो वयणु वम्मुदेवि-पिययमु चवइ।। 52।।

3/14

Replies and Counter replies between King-father and his dear son (Prince Pārśwa) over the matter of challenging fight with the arrogant enemy — Yavanrāja.

सच्चउ वयणु पुत्त पइँ वुत्तउ जं तं मण्णमि हउँमि णिरुत्तउ।।

हयसेन का सुरदेवियों के रंजन में कुशल, श्रीसमृद्ध जिनेन्द्र **पार्श्व** ने अमरकुमारों के साथ अपने पिता के पास जाकर कहा—

हे तात, हे तात, ऐसा कौन यशस्वी एवं गुणरूपी मणियों का सागर होगा, जो दीपक के होते हुए भी सघन अलसी के कृष्ण-पुष्प अथवा स्याही के समान कृष्ण वर्ण वाले अन्धकार के मध्य अपने पैर पसारेगा? नक्षत्र-माला की श्रीशोभा के समान सुन्दर एवं मन्थर गति वाले गजों के होते हुए भी क्या कोई बुद्धि-सम्पन्न व्यक्ति उन पर आरूढ़ होकर अपने श्रम (थकावट) को न बचावे और केवल पद-यात्रा ही करता रहे? अपनी गृहिणी के द्वारा अमृतोपम (मनोरम) भोजन को छोड़कर भिक्षावृत्ति के लिये कौन भ्रमण करेगा? निर्मल शुद्ध जल के होते हुए क्या कोई कीचड़ से सना हुआ पानी पियेगा? विद्याधर, देवगण आदि के नेत्रों के लिये आनन्ददायक फल-फूलों से समृद्ध नन्दनवन को छोड़कर क्या कोई अग्नि की ज्वाला से पीतवर्ण वाली श्मशानभूमि का सेवन करेगा? सुकोमल, निर्मल एवं महीन स्त्री-वस्त्रों के होते हुए भी ऐसा कौन बुद्धिमान होगा जो स्थूल (मोटे) वस्त्र पहिनेगा?

घत्ता— मुझ जैसे पुत्र के होने पर भी क्या आपका युद्ध में जाना युक्तियुक्त है? पार्श्वनाथ के इन वचनों को सुनकर वामादेवी के पति राजा-**हयसेन** बोले– (52)

3/14

यवनराज के साथ युद्ध में भिड़ने सम्बन्धी पिता-पुत्र के उत्तर-प्रत्युत्तर—

(राजा हयसेन ने कहा—) हे पुत्र, तुमने जो कुछ कहा है, वह सत्य है, मैं उसे बिल्कुल उचित मानता हूँ। परन्तु

पर अज्जवि तुहु वट्टहि बालउ सिरिस-कुसुम-संचय-सोमालउ।।
तणुरुह दुक्करु होइ रणंगणु रिउ-वाणावलि पिहिय णहंगणु।।
अच्छउ ता रणु दूरि जगुत्तम णाणकिरण विणिवारिय जण तम।।
5 संगरु णामु जि होइ भयंकरु तुरय-दुरय-रह-सुहड खयंकरु।।
ठाहि एउ जाणेसहि णियघरि कीलंतउ कुमरहि सहुँ मणुहरि।।
तं आयण्णिवि पासु पयंपइ दरु विहसेवि मणावि ण कंपइ।।
जो बालोवि बप्प पंचाणणु णह चुअ मोत्तिय मंडिय-काणणु।।
लीलएँ मत्त गइंदहँ दारइ सो कुरंकुवणियरु ण मारइ।।
10 जो वइसाणर कणु वि गिरिंदइँ अवलेवें ण दहइ तरुविंदइँ।।
जर तिण संचउ तासु दहंतहो किं जायइ समु तेय महंतहो।।
जा आसीविस हरइ वियारिवि मरुवहे गच्छइ चंचुइ धारिवि।।
सिसुव विहंगमु कवणु गहणु तहो इयर भुयंगम माणु मलंतहो।।
जो चउरंगु वि बलु संघारइ तासु हणंतहो रिउ को वारइ।।

15 घत्ता— जइ देहि वप्प तुहुँ महु वयणु बंधवयण मण-सुह-जणण।
ता पेक्खंतहँ तिहुअण जणहँ कोऊहलु विरयमि जणण।। 53।।

3/15

Prince Pārśwa explains and clarifies to his father his immence Vigour.

णहयलु तलि करेमि महि उप्परि वाउं वि बंधमि जाइ ण चप्परि।।

तुम अभी बालक हो। शिरीष-पुष्प के संचय के समान सौम्य वदन हो। हे पुत्र, रणांगण-बड़ा दुष्कर होता है। वहाँ का नभांगण रिपु की वाणावलि से ही ढँका रहता है। अतः अपनी ज्ञान-किरण के द्वारा जगत् के तम को दूर करने वाले हे जगदुत्तम, तुम अभी रण से दूर ही रहो तो अच्छा है। संगर (युद्ध) का नाम ही भयंकर है क्योंकि वह (युद्धस्थल) घोड़े, हाथी, रथ तथा सुभटों का क्षय करने वाला है। ऐसा जानकर अपने घर में मनोहर कुमारों के साथ क्रीड़ा करते हुए रहो, यही उत्तम है।

पिता जी का कथन सुनकर पार्श्व ने मुस्कुराते हुए और बिना किसी घबराहट के कहा- हे वप्प! सिंह यदि बाल भी होता है, तो भी वह अपने नखों से (बड़े-बड़े गजों के मस्तक से) गिराये हुए मोतियों से कानन को मण्डित कर देता है। जो सिंह-शाबक लीला-लीला में ही मत्त गजेन्द्रों को विदार डालता है, क्या वह मृगों और गीदड़ों को नहीं मार सकता? वैश्वानर (अग्नि) का एक कण भी क्या पहाड़ों को अपनी लपेट में लेकर उसके तरुवृन्दों को दग्ध नहीं कर देता? जीर्ण तृण-समूह को भस्म करते हुए उस अग्निकण की क्या बड़े तेज के साथ समानता नहीं होती? जब गरुड़-पक्षी अपने शैशवकाल में ही भयानक सर्प का अपहरण कर उसे चोंच में दबाकर आकाश मार्ग में उड़ जाता है और उसे विदीर्ण कर डालता है, तब क्या वह अन्य भुजंगमों का मान-मर्दन नही कर सकता? जो चतुरंग-सेना का नाश कर सकता है, उसे अन्य शत्रुओं के मारने से कौन रोक सकता है?

घत्ता— हे बप्प, यदि आप बान्धव-जनों के मन को सुख देने वाले हैं, तो आप मुझे युद्ध में जाने देने का वचन दीजिए और तब हे जनक, आप देखिए कि त्रिभुवनजनों के लिए मैं किस प्रकार का कौतुहल उत्पन्न करता हूँ। (53)

3/15

राजकुमार पार्श्व ने अपने पिता हयसेन को अपनी चमत्कारी प्रचण्ड शक्ति का परिचय दिया—

(पिता हयसेन का उपदेश सुनकर बालक पार्श्व ने उत्तर में कहा— पिताजी, मुझमें इतनी शक्ति है कि यदि

पाय-पहारेँ गिरि-संचालमि णीरहि णीरु णिहिलु पच्चालमि।।
इंदहो इंदधणुह उच्छालमि फणिरायहो सिरि-सेहरु टालमि।।
कालहो कालत्तणु दरिसावमि धणवइ धण-धारा वरिसावमि।।
अग्गिकुमारहो तेउ णिवारमि वारुण-सुरु वरिसंतउ धारमि।।
तेलोक्कु वि लीलएँ उच्चायमि करयल-जुअलें रवि-ससिच्छायमि।।
ताराणियरइँ गयणहो पाडमि कूरग्गह मंडलु णिद्धाडमि।।
णहयर-रायहो गमणु णिरुंभमि दिक्करिहि कुंभत्थलु णिसुंभमि।।
णीसेसु वि णहयलु आसंघमि जायरूव धरणीहरु लंघमि।।
विज्जाहर पयपूरु वहावमि सूलालंकियकरु संतावमि।।
मयणहो माण मडप्फरु भंजमि भूअ-पिसाअ-सहासइँ गंजमि।।
देक्खहि मुज्झ परक्कमु बालहो उअरोहेण समुण्णय भालहो।।

घत्ता— तं सुणेवि वयणु पासहो तणउँ हयसेणेण समुल्लविउ।
हउँ मुणमि देव तुहुँ बाहुबलु पर मइँ णेहेँ पल्लविउ।। 54।।

3/16

At last, King Hayasen gives his concent to prince Pārśwa to go to fight carefully with the cruel Yavanrāja. He marches towards the battle-field with all the four types of trained army (Chaturaṅgiṇi Senā) with favourable prophetic signs.

जइ अच्छहि ण णिवारिउ सुंदर जस-सलिलेण भरिय गिरिकंदर।।

मैं चाहूँ तो) नभस्तल को नीचे कर दूँ और महीतल को ऊपर। वायु को ऐसा बाँध दूँ कि एक डग भी आगे न बढ़ सके। अपने पाद-प्रहार से गिरि को भी संचालित कर दूँ और समुद्र के समस्त जल को उलीच डालूँ। इन्द्र के इन्द्रधनुष को भी तोड़ डालूँ। फणिराज के सिर से उसका शेखर तोड़ दूँ। काल (मृत्यु) को भी कालपना दिखा दूँ। कुबेर के यहाँ भी धनवर्षा कर दूँ। अग्निकुमार की तेजस्विता को समाप्त कर दूँ। बरसते हुए वरुणदेव को पकड़ लूँ। लीला-लीला में ही तीनों लोकों को ऊँचा उठा लूँ। अपनी हथेलियों से सूर्य-चन्द्र को ढँक दूँ। समस्त तारा-समूह को गगन तल से पटक दूँ, क्रूर ग्रह-मण्डल को अपने स्थान से निकाल फेंकूँ। गरुड़राज (पवनराज) का गमन रोक दूँ। दिग्गजों के गण्डस्थलों को तोड़-फोड़ डालूँ, सम्पूर्ण आकाश को संकुचित कर दूँ। जातरूप (सुमेरु) पर्वत को भी लाँघ जाऊँ। विद्याधरों को (क्षीरसागर के) जल-प्रवाह में बहा दूँ और त्रिशूलधारी को अभिशाप दे दूँ, कामदेव के अभिमान को चूर-चूर कर दूँ, सहस्रों भूत-पिशाचों को मटियामेट कर दूँ। हे पिताजी, उन्नत भाल वाले मुझ बालक का भी (युद्ध में जाने की आज्ञा देकर) कुछ पराक्रम तो देख लीजिए-

घत्ता— बाल-पार्श्व का कथन सुनकर राजा **हयसेन** ने कहा— हे देव, मैं तुम्हारे बाहुबल को जानता हूँ किन्तु मैंने तो स्नेहवश ही तुम्हें ऐसा कहा है (अर्थात्, युद्ध में जाने से रोका है)। (54)

3/16

राजा हयसेन पार्श्व को यवनराज से युद्ध करने की स्वीकृति प्रदान कर देते हैं। पार्श्व का चतुरंगिणी-सेना के साथ शुभ-शकुनों के मध्य रण-प्रयाण—

(बालक पार्श्व का उत्साह भरा कथन सुनकर राजा हयसेन ने कहा)— अपने यश रूपी जल से गिरि-कन्दराओं

ता बंधेविणु जउणु णराहिउ जो केणवि रिउणा ण विराहिउ।।
रविकित्तिहिँ पय-पुरउ ठवेज्जहिँ अवियलु वि रविहिँ रज्जु देज्जहिँ।।
एम भणेप्पिणु जा हयसेणँ णिय णिम्मलकुल-वासर सेणँ।।
5 पविसज्जिउ तेवीसमु जिणवरु चरणंभोरुह णाविय सुरवरु।।
ता णिग्गउ तित्थयरु तुरंतउ घण-धारहिँ वंदियणु भरंतउ।।
पविराइउ तिसयावणि-णाहहिँ रूव-परज्जिय मणरुह राहहिँ।।
एक्कवीस सहसहिँ मायंगहिँ तेत्तिएहिँ रहवरहिँ अहंगहिँ।।
चउसट्ठिहिँ सहसेहिँ तुरंगहिँ बेलक्खहिँ सुहडहिँ पोढंगहिँ।।
10 इय चउविह साहण संजुत्तहो गच्छंतहो हयसेणहो पुत्तहो।।
देवघोसे रहवरे आरूढउ सयलामल सिरि तिलयहो रूढउ।।
गंभीरारव तूर णिणद्दँ विहिय तिविह भुवणयल विमद्दँ।।

घत्ता— वामंगए वाएं वि खरु रडइ भणइ व कुसल जिणेसरहो।
तत्थवि सिव-सिव कारणि लवइ पासणाह परमेसरहो।। 55।।

3/17

Auspicious signs appeared again and again in the way. In the evening he takes rest with his army near a pond. The charming description of the evening.

खीर-महीरुहि वायसु वासइ णावइ पासहो खेमु पयासइ।।

को भी भर देने वाले हे सुन्दर बालक, यदि तूँ रोके जाने पर भी रुकने को तैयार नहीं, तो (ऐसा कर कि) जो **यवनराज** अभी तक किसी भी शत्रु द्वारा विराधित (विजित) नहीं हुआ है, उसे बाँधकर राजा रविकीर्ति के पैरों में डाल दे और **रविकीर्ति** के राज्य को अचल बनाकर उसे सौंप दे। यह कहकर अपने निर्मल कुल के लिये सूर्य के समान राजा **हयसेन** ने देवों द्वारा नमस्कृत-चरण वाले तेवीसवें जिनवर पार्श्व को विदा दे दी।

बन्दीजनों के लिये प्रचुर धन-दान से सन्तुष्ट करते हुए देवों के नाथ पार्श्व-जिन तत्काल ही (**वाणारसी**-नगरी से) युद्ध हेतु निकलने की तैयारी करने लगे। अपने सौन्दर्य से कामदेव को भी पराजित कर देने वाले 300 राजाओं से सुशोभित, 21000 मातंग, उतने ही अभंग-रथ-समूह, 64000 तुरंग और 200000 प्रौढ़ अंगवाले सुभट उनके साथ तैयार हुए। इस प्रकार चतुर्विध साधनों (चतुरंगिणी-सेना) के साथ राजा हयसेन का वह (पराक्रमी) पुत्र रण-प्रयाण के लिये स्वयं भी सजने लगा। सभी के साथ उसका निर्मल तिलक किया गया और वह देवघोष नामक रथ पर आरुढ़ हुआ। उसी समय तीनों लोकों में उथल-पुथल मचा देने वाले तूर का गम्भीर निनाद हो उठा।

घत्ता— तभी वाम पार्श्व में गधा ऐसे रेंकने लगा, मानों वह पार्श्व जिनेन्द्र के विजय के साथ सकुशल लौट आने की सूचना ही दे रहा हो और वहीं (बाईं ओर) पार्श्व परमेश्वर के लिये शिवा (शृगाली) भी शिव-शिव बोलने लगी। (55)

3/17

रण-प्रयाण के समय पार्श्व के मार्ग में अनेक शुभ-शकुन। एक सरोवर के किनारे उनका ससैन्य विश्रामः मनोहारी सन्ध्या-वर्णन—

श्रीपार्श्व के रण-प्रयाण के समय ही क्षीर-वृक्ष पर बैठा हुआ कौवा ऐसे बोल रहा था, मानों वह उनकी कुशल-क्षेम ही प्रकाशित कर रहा हो। मत्तगजों के गण्डस्थलों से मदजल इतना प्रवाहित हो रहा था कि जिसने समस्त

करि करडयलहिँ मयजलु मेल्लिउ हेलए णिहिलु धरायलु रेल्लिउ।।
कासुवि भीम महाभट गत्तेँ हरिसु पदरिसिउ जयसिरिरत्तेँ।।
इय अवरेहिँ सउणहिँ सोहंतउ हरि-खुर-खय-रेणुहिँ रोहंतउ।।
5 दस-दिसि-सीमंतिणी मुह-पंकउ जाम जाइ जिणवरु णीसंकउ।।
जलवारण विणिवारिय रविकरु सयरोहामिय करि दीहर यरु।।
छुडु आवासिउ सरवर-तीरए उच्छलंत वित्थलसण्णीरए।।
हरि-णरवर-रह-संजुत्तउ सामंतहिँ वरमंतिहिँ वुत्तउ।।
ताम दिवायरु गउ अत्थवणहँ अहरिसु संजायउ कमलवणहँ।।
10 अह जायए बंधवहो विओयए कासु हरिसु संभवइ तिलोयए।।
छुडु अत्थवणहो दिणयरु ढुक्कउ बालहु णियकिरणेहिँ विमुक्कउ।।
आवय-कालए कोवि सहिज्जउ कम्मु मुएवि ण होइ दुइज्जउ।।

घत्ता— अत्थइरि-सिहरि वि रत्तु पवट्टलु तम-विलउ।
संझए अवरदिसि वयंसियहो णं सिंदूरे कउ तिलउ।। 56।।

3/18
The charming description of the evening (continues)

पहर-विहुर-परिपीडिय-विग्गहु दूरज्झिय-खर-किरण-परिग्गहु।।
वुड्ढउ रवि अवरण्णव-णीरए णं वण धोवणत्थु गंभीरए।।

धरातल को लीला ही लीला में रेल (तरकर) डाला था। जयश्री में अनुरक्त किसी भीम (पराक्रमी) महाभट ने भी अपनी शारीरिक प्रक्रिया से शुभ-सूचक हर्ष का प्रदर्शन किया।

इसीप्रकार अन्य अनेक शुभ-शकुनों से सुहाते (सुशोभित) पार्श्व तीव्रगामी तुरंगों के खुरों से उठी हुई धूलि से लिप्त दसों-दिशाओं की प्रतीक्षा रत सीमन्तनियों के मुख-कमलों के बीच से होकर निःशंक भाव से जा रहे थे। छत्र द्वारा रवि-किरणों का निवारण करने वाले तथा अपनी लम्बी भुजाओं से हाथियों के सुदीर्घ शुण्डादण्डों को रोकते हुए हाथियों, घोड़ों एवं रथी-सामन्तों एवं मन्त्रियों के कहने से, उछलती हुई तरंगों से व्याप्त विस्तृत जल वाले एक सरोवर के तीर पर जिस समय अपना पड़ाव डाला, उस समय सूर्य के अस्ताचल की ओर गमन करने से कमल-वन सन्तप्त हो रहा था (अर्थात् कमल-मुख बन्द हो रहे थे)। ठीक ही कहा गया है कि जब बन्धु-बान्धवों का वियोग होता है, तब तीनों लोकों में किसको हर्ष हो सकता है? शीघ्र ही दिनकर अस्ताचल पर पहुँच गया और अपनी किरणों से विमुक्त हो गया। ठीक ही कहा गया है कि आपत्तिकाल में अपना कर्म छोड़कर अन्य दूसरा कोई भी सहायक नहीं हो सकता।

घत्ता— अस्ताचल के शिखर पर लाली फैल गई और उसी समय तम विलीन हो गया। ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों पश्चिम दिशा रूपी सखी के शिखर रूपी भाल पर सन्ध्या ने रक्ताभ-तिलक ही कर दिया हो। (56)

3/18
सन्ध्या-वर्णन (जारी)—

प्रहार और वियोग से परिपीडित शरीर वाला तथा तीक्ष्ण-किरणों के परिग्रह (समूह) को दूर से ही छोड़ देने वाला सूर्य पश्चिम-समुद्र में जाकर डूबने लगा। ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों वह उस गंभीर-समुद्र में अपने व्रण (घाव) धोने के लिये ही उसमें उतर रहा हो।

च्छुडुणावागय संझ-विलासिणि अरुणत्तण गुण-घुसिण-विलासिणी।।
रंजिवि घर-पुरवर-णयरायर तरु-गिरि-दरि-सरि-सर-रयणायर।।
पवरावण-वण-सुरहर-पव्वय तक्खणे विक्किरियहे वे सवगय।।
एत्थंतरि ढुक्कउ तिमिरुक्करु अमुणिय-गइ णं महमइ-तक्करु।।
दिवसु वि गउ तवणेण समाणउँ णं तमरक्खस भएण पलाणउँ।।
रवि विरहँ णलिणउँ कुमिलाणउँ धम्माहम्म-वियारु-विलाणउँ।।
णहयर णिय णीडंतरे संठिय वायसारि णिग्गय उक्कंठिय।।
वेसहिँ गामीयण परिवंचिय चाड चरड चोरइँ रोमंचिय।।
वत्थ-पयत्थ-विहूसण संचिय हरिसिय मणि पुण्णालि पणच्चिय।।
चक्कवाय-पिय-विरहँ पीडिय भूअ-पिसाचय-णिसायर-कीडिय।।

घत्ता— एत्थंतरे आवेवि कसण-तण णिसि णिसियरि णिसियरहिँ पिय।
णक्खत्त-दंत-पंतिहि-पयड भुअणभवणे णिस्संक ठिय ।। 57।।

3/19
The figurative description of the black night.

जलंतोरु दीवालि लीला भरंती दिणाराइणामं रुसा संहरंती।।

शीघ्र ही सन्ध्याकाल आ गया, ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों अरुणाभगुण वाली चन्दन (अलक्तक-आलता) लगाये हुए कोई रूपाजीवा-विलासिनी ही घरों, पुरों, श्रेष्ठ-नगरों और आकरों तथा तरु, गिरि-कन्दराओं, नदियों सरोवरों एवं सागरों को रिझाने के लिये नाव पर चढ़कर वहाँ आ पहुँची हो। उसी समय वहाँ श्रेष्ठ भवनवासी और व्यन्तर देव-देवियाँ विक्रिया-ऋद्धि द्वारा स्वर्ग से आ पहुँचे और (कर्त्तव्य कार्य करके) तत्क्षण वापिस लौट गये।

इसी बीच गहन अन्धकार आ ढुका। उसके आने की आहट भी किसी को न मिली। ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों कोई चतुर बुद्धिवाला चोर ही चुपके से आ घुसा हो। सूर्य के साथ-साथ दिन भी भाग गया, मानों अन्धकाररूपी राक्षस के भय से ही वह पलायन कर गया हो। सूर्य-विरह के कारण नलिन-पुष्प भी कुम्हलाने लगे हैं और धर्म-अधर्म का विचार भी विलीन होने लगा है। नभचर (पक्षीगण) अपने-अपने नीड़ों में घुस गये हैं किन्तु उल्लूगण (वायसारि) उत्कण्ठित होकर बाहर निकल पड़े हैं। ग्राम्यजन वेश्याओं द्वारा ठगे जाने लगे हैं। चाड (कपटी), चरड (लुटेरे) एवं चोर रोमांचित (प्रफुल्लित) होने लगे हैं। वस्त्राभूषणादि तथा प्रसाधनादि पदार्थों से सुसज्जित होकर पुंश्चलियाँ तथा व्यभिचारिणियाँ हर्षित मन होकर नाचने लगी हैं। चक्रवाक-पक्षी प्रिया के विरह से पीड़ित होने लगे हैं और भूत-पिशाचादि निशाचर क्रीड़ाएँ करने लगे हैं।

घत्ता— इसी बीच, कृष्ण वर्णवाला घोरान्धकार रूपी राक्षस, जो कि राक्षसिनियों एवं निशाचरों (चोरों) के लिये अत्यन्त प्रिय था, अपने नक्षत्र रूपी दन्त-पंक्तियों के रूप में प्रकट हुआ, जो भुवन एवं भवन में बिना किसी शंका के ही स्थिर हो गया। (57)

3/19
कृष्ण-रात्रि का आलंकारिक वर्णन—

जलती हुई बड़ी दीप-पंक्ति की लीला के भार से वह रात्रि, दिन के नाम को अत्यन्त रोषपूर्वक मिटाती हुई,

सकामाबलाणं मणं तोसयंती सुसंकेय-ठाणाइँ संभूसयंती।।
पुरे कंदरे मंदरे संचरंती जणाणं पहे दिट्ठिचारं हरंती।।
सुसेलिंधगंधुक्क-रेणुल्लसंती असेसावणी वत्थु सत्थं गसंती।।
5 गए संगणाणं महंती हवंती महारंध-मग्गे स पाया ठवंती।।
सुसद्देहि पारावयाणं रणंती सकंतीए गोरीस कंठं जिणंती।।
उम्मत्त कोढुल्ल कीलाणुरत्ती गया जाम जामेक्क अंधार रत्ती।।
तओ उग्गओ चंदु चंदाहवत्ता पकीलंति कंता सकंताणुरत्ता।।
णिएऊण वोमोयरे चंदकंती हरंती समं कामुआणं सरंती।।
10 हुओ अंतरिक्खे तमो पोमिणीणं ण सोमो वि सोमो हुओ पोमिणीणं।।
जाए जासु जो चित्त मज्झे णिसण्णो सहिज्जो सुहाणं परं तासु णण्णो।।
समग्गं जयं झत्ति जोण्हा-जलेणं तमोहाबहंखालियं णिम्मलेणं।।

घत्ता— इय चंद-किरण-भासिय-रयणि गलिय जाम पच्चूस हुउ।
ता माणिय माणिणि वर तणुहिँ तंबचूल-रउ जणहिँ सुउ।। 58।।

3/20

The charming description of the early morning and sunrise.

एत्थंतरि उग्गमउ दिवायरु णासंतउ तमु पूर-चकायरु।।

कामिनी-अबलाओं के मन को संतुष्ट करती हुई तथा सुसंकेतित स्थलों को भूषित करती हुई, पुर (भवन), कंदरा (गुफा), एवं मंदर (भवन) में संचार करती हुई, मार्ग पर मनुष्यों की दृष्टि-संचार का हरण करती हुई, पुष्पों में स्निग्ध-गंध के प्रसार को उल्लसित करती हुई, अशेष-भूमि के वस्तु-समूह को ग्रसित करती हुई, जिनके प्रियतम परदेश गये हुए हैं, उनकी पत्नियों के लिये दीर्घकालीन होती हुई, महारन्ध्र वाले मार्गों में अपने पैर जमाती हुई, कबूतरों के उत्तम शब्दों के माध्यम से वार्त्तालाप करती हुई, अपनी कान्ति से गौरीश (महादेव) के कण्ठ की कान्ति को जीतती हुई, उन्मत्त कोढी (उल्लू)-गणों को क्रीड़ा में अनुरक्त करती हुई, उस रात्रि का जब एक प्रहर बीत गया, तब चन्द्र का उदय हुआ।

चन्द्रतुल्यमुख वाली कान्ताएँ अपने-अपने कान्तों में अनुरक्त होकर क्रीड़ाएँ करने लगीं। आकाश के मध्य चन्द्र-कान्ति को देखकर कामुकों के श्रम को दूर करती हुई, तथा उनका सुखद स्मरण करती हुई कान्ताएँ सन्तुष्ट होने लगी। अन्तरिक्ष में तम पद्मिनी (कमलिनियों) का हो गया। किन्तु चन्द्रमा के सोम (सौम्य) होने पर भी वह पद्मिनी नारियों के लिये सोम-सन्तोष कारक सिद्ध न हो सका। जगत् में जिसके चित्त में जो बैठा था, वही उसके सुखों का साथी एवं सहनेवाला था, अन्य कोई नहीं। चन्द्रमा ने अपनी चाँदनी रूपी निर्मल जल से समस्त जगत के विस्तृत गाढान्धकार को प्रक्षालित कर दिया।

घत्ता- इस प्रकार चन्द्र-किरणों से भासित वह रजनी गल (अस्त) गई और जब प्रत्यूष (सुप्रभात)-काल आ गया तभी मानिनियों द्वारा सन्तुष्ट किये गये उत्तम युवा शरीरवाले जनों ने ताम्रचूड (मुर्गे) की बाँग को सुना। (58)।

3/20

सुप्रभात-सूर्योदय का मनोहारी वर्णन—

इसी बीच अपनी ज्योति से गाढान्धकार को नष्ट करने वाले, हिमकर (चन्द्रमा) और तारा-समूह की रुचि को

हिमयर तारारुइ विहुणंतउ णिसि णिसियरि चरियइँ णिहणंतउ।।
विहडिय चक्कउलइँ मेलंतउ णहयले सेज्जायले लोलंतउ।।
सुरदिसि-कामिणि मुहु मंडंतउ कामिय माणुण्णइँ खंडंतउ।।
कुमुअवणहो संकोउ करंतउ णियकर-णियरहिँ भुअणु भरंतउ।।
दीवावलि पंडुर विरयंतउ अइरत्तत्तणु तणुहिँ चयंतउ।।
तिव्व-पयाव रमालिंगंतउ तम-परिहविय णलिणि मग्गंतउ।।
सुत्त सउणिउल कुरुकुरुलावंतउ कम्मंतरे कम्मयर-ठवंतउ।।
जोत्तिय तुंग-तुरय-रहि जंतउ जगभवणहो दीउव छज्जंतउ।।
पेम्म मिलिय मिहुणइँ तासंतउँ होम-दाण-कम्मइँ भासंतउ।।
सयल पयत्थइँ संदरिसंतउ फुरिय किरणमालए विलसंतउ।।
घूएयर खयरवयरइँ हरिसंतउ णिसियर संचरणाइँ णिरसंतउ।।

घत्ता— कामंतउ पच्छिमदिसि तरुणि सोसंतउ सरिसरणयइँ।
वोहंतु सकिरणहिँ णट्टलु व सयण सिरिहरायर सयइँ।। 59।।

विधुनित करने वाले, रात्रि में निशाचरों (चोरों एवं राक्षसों) की क्रियाओं का अवरोध करने वाले, विघटित (वियोगी) चकवा-चकवी का सम्मिलन कराने वाले, नभस्तल रूपी शैयातल में क्रीड़ाएँ करते हुए, पूर्व-दिशा रूपी कामिनी के मुख को मण्डित करते हुए, कामीजनों की मानोन्नति को खण्डित करते हुए, कुमुद-वनों को संकुचित करते हुए, अपनी किरण-समूह से भुवन को भरते हुए, दीप-मालिकाओं को निष्प्रभ करते हुए, अपने तनु-मण्डल से अतिशय लालिमा को बिखेरते हुए, अपने तीव्र प्रताप से लक्ष्मी का आलिंगन करते हुए, अन्धकार से पराभूत नलिनी (कमलिनी) की खोज करते हुए, सोते हुए पक्षियों से कुर-कुर का रव (मधुर-शब्द) कराते हुए, कर्मकरों को अपने-अपने कर्त्तव्य-कार्यों में व्यस्त होने की प्रेरणा देते हुए, जोते हुए उन्नत घोड़ों वाले रथ पर चलते हुए, जग रूपी भवन को अपनी प्रकाश-ज्योति से प्रकाशित करते हुए, प्रेम से मिले हुए प्रेमी-प्रेमिकाओं के युगल को डाँटते हुए, (अर्थात् सुप्रभात हो जाने की सूचना देते हुए) होम-दान-कर्मादि करने की प्रेरणा देते हुए, समस्त पदार्थों को स्पष्ट दिखलाते हुए, अपनी स्फुरायमान किरणमालाओं से विलसित होते हुए, उल्लुओं (घुयए) के शत्रु-पक्षियों को हर्षित करते हुए और निशाचरों के संचरण का निरसन करते हुए—

घत्ता— पश्चिम दिशा रूपी तरुणी की कामनाओं का अन्त करते हुए, नदियों एवं सरोवरों के जल का शोषण करते हुए और अपनी किरणों के द्वारा सपरिजन **साहू नट्टल** तथा **श्रीधर कवि** को प्रबोधित करते हुए सूर्य का पूर्व-दिशा में उदय हुआ। (59)

Colophon

इयसिरि पास चरित्तं रइयं बुह सिरिहरेण गुण भरियं।
अणुमण्णियं मणोज्जं णट्टलणामेण भव्वेण।। छ।।

सुरसरि तीरे आवासियस्स विहियपवर विजयस्स
जामिणि गुण वण्णणए तइओ संघी परिसमत्तो।। छ।। संधि 3।।

पुष्पिका

इस प्रकार बुध **श्रीधर** द्वारा गुणों से भरपूर इस पार्श्वचरित का प्रणयन किया गया, जिसका भव्य **साहू नट्टल** ने अनुमोदन किया।

इस प्रकार गंगा नदी के तीर पर पड़ाव डालने, प्रवर-विजय की कामना करने तथा रात्रि-गुण-वर्णन करने वाली तीसरी सन्धि समाप्त हुई।

चउत्थी संधी

4/1

Thundering march of Prince Pārśwa towards the challenging battle-field.

घता— संजायए दिणयरकरपसरे दिण्णु पयाणउ पासकुमारें।।
रूसेविणु जउणणिवहो उवरि णियलावण्ण-विणिज्जियमारें।। छ।।

दुबइ— वलिय अणेय सुहडसय करिवर-कर-संफुसिय णहयला।
सारहिँ सज्जिरह चक्कचय हरिवरखुरहिँ खणंति महियला।। छ।।

इय चवेवि चारु चंदाहवत्तु कणय-मय-दंड सेयायवत्तु।।
णीयउ गंगातीरिणिहे तीरि मयरोहरहारहिँ णिहयणीरि।।
तहिँ तहो पासहो मणिमयविचित्तु देवहिँ णिवासु विरइउ विचित्तु।।
संपाडिय णिवसण-भूसणाइँ भायण-भोयण-सयणासणाइँ।।
मज्जण-धूअणइँ-विलेवणाइँ मण-चिंतिय सयलइँ पावणाइँ।।
मयगल गुलुगुल-गासइँ गसंति हय लोण-दाण दंसणे तसंति।।
रइ करहिँ करहँ तरुपल्लेवसु दासेरु जंति इंधण तणेसु।।
पडमय मंडवे णरवर सुअंति कुहिणीहिँ समुब्भउ समु मुअंति।
रहवर मणि-किरणहिँ जिगिजिगंति हुअवह चुल्लीमुहे धगधगंति।।

4/1

पार्श्वकुमार का शत्रुओं को दहला देने वाला रण-प्रयाण (जारी)—

घत्ता— जब सूर्य-किरणों का प्रसार हो गया, तब अपने लावण्य से कामदेव को भी जीत लेने वाले **पार्श्वकुमार ने यवनराज** पर क्रुद्ध होकर उसके साथ युद्ध करने के लिये (जय घोष करते हुए) पुनः प्रयाण किया और अपनी सेना को आदेश देते हुए कहा—

द्विपदी—सैकड़ों सुभटों से घिरे हुए तथा अपनी उत्तुंग सूँडों से आकाश को भी घिस डालने वाले श्रेष्ठ गजों से सुसज्जित सारभूत रथों के चक्रों तथा उत्तम कोटि के घोड़ों के खुरों द्वारा महीतल को खोद (रौंद) डालो।

यह कहते हुए रम्य चन्द्र तुल्य मुख वाले, स्वर्ण दण्ड एवं श्वेत आतपत्र धारण किये हुए उन पार्श्वकुमार को मकरों और ग्रहों से टकराए जाने के कारण अवरुद्ध नीर वाली गंगा नदी के तीर पर ले जाया गया।

वहाँ (गंगातीर) पर देवों द्वारा कुमार पार्श्व के लिये एक मणिमय चित्र-विचित्र आवास (Guest House) का निर्माण कर दिया गया, जिसमें वस्त्र, आभूषण, भाजन (सोने-चाँदी के बर्तन) भोजन, शयनासन, मज्जनगृह (Bathroom), धूपन, विलेपन तथा मन में चिन्तित पवित्र समस्त प्रकार के भोगोपभोगों की सामग्रियाँ सम्पादित कर दी गई।

वहाँ हाथी तो गुलगुलों (गुड़ के बने हुए पकोड़े) के ग्रास (कौर पर कौर) खाये जा रहे थे किन्तु घोड़े नमक-दान के समय उसे देखते हुए भड़क रहे थे। ऊँट तरु-पल्लवों से रति कर रहे थे और खच्चरों (दासेरु) को ईंधन तथा घास लाने के लिये ले जाया जा रहा था।

पटों से निर्मित मण्डपों में श्रेष्ठ सुभट सो रहे थे और मार्गजनित अपने श्रम (थकावट) को दूर कर रहे थे। रथवर मणि-किरणों से जगमगा रहे थे और चूल्हों के मुख में अग्नि धगधगा रही थी। झटके से खूँटा तोड़कर वृषभ (बैल)

तड्डंत वसह लीलइँ भमंति सेवय ससामि चरणे णवंति।।
15 कामणिहि केवि गीयइँ सुणंति कुसुमेसु सिलीमुह रुणझुणंति।।
इंडरियहँ गंधइँ उच्छलंति कंदुव-घरु जाणेवि जण वलंति।।

घत्ता— आवासिउ णिव हयसेणु सुउ णिय-चरमुह-वयणहो जाणेविणु।
जउणु वि णिय परियण परियरिउ णियडु समायउ महि लंघेविणु।। 60।।

4/2

After sensing the heavy movement of Prince Pārśwa of Vāṇārasī towards the battle-field, the Yavanrāja also prepares to move and confront his powerful enemy (Pārśwa). Pārśwa meets Ravikīrtī.

दुवइ— एत्थंतरि जिणिंद पासेण पयाण भेरी समाहया।
आयण्णेवि मुएवि मउ वइरिहुँ कडु रडि णिग्गया गया।। छ।।

गच्छंतें णिवहिँ सेविज्जमाणु खयारामरेहिँ पेक्खिज्जमाणु।।
दाहिण-समीर-पेरिज्जमाणु परिचलिर चमर सिरि-सोहमाणु।।
5 सतणुद्धूलिय कप्पूर रेणु वंदियणहँ णियरहिँ थुव्व माणु।।
पेक्खंतउ सरि-सर-गोहणाइँ णंदणवणाइँ मणमोहणाइँ।।

लीलाएँ (मटरगस्ती) करते हुए इधर-उधर घूम रहे थे, तो सेवकगण अपने-अपने स्वामियों के चरणों में नमस्कार कर रहे थे। कोई-कोई कामिनियाँ लोकगीत गा रहीं थी, भ्रमर-समूह पुष्पों पर रुणझुण-रुणझुण का गुंजार कर रहे थे।

किसी दिशा से इंदरसों (अथवा जलेबियों) की ताजी ताजी गन्ध उछल-कूद कर रही थी, अतः लोग हलवाई का घर मानकर उधर की ओर दौड़े जा रहे थे।

घत्ता— "हयसेन के सुपुत्र पार्श्व ने (गंगा तीर पर) पड़ाव डाला है" ऐसा अपने गुप्तचर के मुख से वृत्तान्त सुनकर और पूर्ण जानकारी लेकर वह यवनराज भी अपने सुभटों परिजनों से युक्त होकर धरती को लांघता हुआ रणभूमि के समीप आ गया। (60)

4/2

पार्श्व का रण-प्रयाण सुनकर यवनराज भी युद्ध-भूमि के लिये प्रस्थान करता है। पार्श्व की रविकीर्ति से भेंट—

द्विपदी— तत्पश्चात् जिनेन्द्र पार्श्व ने प्रयाण-भेरी बजवा दी, जिसे सुनकर बैरी यवनराज के चिंघाड़ते हुए तथा मदजल की वर्षा करते हुए हाथियों सहित उसका कटक रण-हेतु निकल पड़ा।

साथ में चलते हुए राजाओं द्वारा सेवित, खेचरों तथा अमरों द्वारा दर्शित, मलयानिल द्वारा प्रेरित, मस्तक पर ढुराये गये चामरों की शोभा से शोभित, अपने शरीर से कर्पूर के समान सुगन्धित धूलिरज को उड़ाते हुए, बन्दीजनों द्वारा स्तुत, सरोवरों एवं नदियों के किनारे (चरते हुए स्वस्थ–) गोधन को देखते हुए, मनमोहक नन्दनवन, समस्त ग्राम-ग्रामान्तरों तथा धान्यकणों से पूरित विस्तृत खेतों को लाँघते हुए पार्श्वकुमार वहाँ पहुँचे, जहाँ राजा रविकीर्ति निवास कर रहे थे (डेरा डाले हुए थे)।

लंघंतु सयल गामंतराइँ कण पूरिय छेत्तणिरंतराइँ।।
णिवसइ रविकित्ति णरिंदु जेत्थु संपत्तउ पासकुमारु तेत्थु।।
आवंतहु तेण वि पासणाहु आयण्णेवि करि-कर-दीह-बाहु।।
अहिमुहु जाएवि संभासिऊण थुइ विरएवि पुणु वि णमंसिऊण।।
आलिंगेवि वुत्तउ भाइणेज्जु तिजगुत्तमु तिहुअण जण-मणोज्जु।।
तुहुँ जासु तणूरुहु देव-देव विरयावि विसहर खयर सेव।।
सो पर पुहविहिँ सकयत्थु धण्णु णियचित्त-मणोरह जुत्तु णण्णु।।
जं दिट्ठउ तुह पयजुअलु सामि मइँ णियदिट्ठिए कुंभीसगामि।।

घत्ता— तेण जि अहमवि सुहसय भरिउ जायउ वइरीयणहँ अभेज्जउ।
अहवा ण किंपि अच्चरिउ एउ सइँ आयउ जिणु जासु सहेज्जउ।। 61।।

4/3

Showering gratitudes upon Pārśwa to help him at the time of grievious misery, King Ravikīrti also orders his ever-conquering army to be ready.

दुवइ— तुहुँ महु मण विसालकमलामल रय रइरस दुरेहओ।
इयरहँ कह समाउ मणचिंतिउ पयडिय पवर णेहओ।। छ।।

मयमत्त मयंगयमद झरंत कण्णारि णिउंचिय चिक्करंत।।
पक्खरिय तुरंगमु हिलिहिलंत खरखुरहि खमायलु दरमलंत।।

रविकीर्ति ने भी हाथी की सूँड़ के समान दीर्घ बाहुओं वाले अपने भांजे पार्श्वनाथ को आया हुआ सुनकर, उनके सम्मुख जाकर उन्हें नमस्कार कर, स्तुति की और उनका आलिंगन कर त्रिजगदोत्तम तथा त्रिभुवन के लिये मनोज्ञ उन (पार्श्व) से वार्त्तालाप किया तथा कहा— नागों एवं विद्याधरों द्वारा सेवित हे देवाधिदेव, आपको जिसने जन्म दिया है, वे माता-पिता, यह पृथिवी एवं नगर कृतार्थ हैं, धन्य हैं। वे ही अपने चित्त के मनोरथों से परिपूर्ण हैं, अन्य नहीं। हे स्वामिन्, हे गजगामिन्, मैंने अपने नेत्रों से आपके चरण-युगल के स्वयं दर्शन किये हैं, अतः मैं भी धन्य हो गया हूँ

घत्ता— आपके दर्शनों से मैं सैकड़ों सुखों से भर गया हूँ तथा बैरीजनों से भी अभेद्य हो गया हूँ। अथवा जिसकी सहायता के लिये स्वयं जिनदेव ही पधारे हों, यदि वह बैरीजनों से अभेद्य हो जाय, तो इसमें आश्चर्य ही क्या? (61)

4/3

पार्श्व के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित कर राजा रविकीर्ति की सैन्य - तैयारी—

द्विपदी—(राजा रविकीर्ति ने कहा— हे पार्श्व) — आप मेरे मन रूपी विशाल कमल की निर्मल रज (पराग) के रति-रस में लुब्ध भ्रमर के समान हो, मेरे मन के द्वारा चिन्तित हो, अन्यथा, मेरे प्रति अपना परम स्नेह प्रकट करने के लिये आप (स्वयं ही) यहाँ क्यों आते?

राजा रविकीर्ति की सेना का वर्णन—

कानों को सिकोड़ कर चिंघाड़ते हुए मदोन्मत्त मतंगज मदजल को प्रवाहित कर रहे थे, अपने तीक्ष्ण खुरों से

धारिय णाणाविह पहरणाइँ वइरियणविंददप्प-हरणाइँ।।
मणि णिम्मिय दिढ-पग्गहाइँ णिय किरण पसर रवियर रहाइँ।।
आयड्ढियाइँ कंठीरवे हिँ दिढदाढहिँ मणमारुअजवेहिँ।।
विप्फारिय बहुविह पुंडरीय णं णरसरे फुल्लिय पुंडरीय।।
उद्धरिय धयावलि फरहरंति सइरिणि व सहइ णहे संचरंति।।
चालिय चामर णारीयणेण अणवरउ सुरय-विणिहियमणेण।।
मरु-मरु भणंतु णीसंक थक्क पक्कल पाइक्क मुअंति हक्क।।
णर-कर-कोणाहिय समरतूर गंभीर राव भुवणंतपूर।।

घत्ता— जिणचलण कमलजुउ संभरेवि केणवि कवड सदेहि णिवेसिउ।
रोमंच जणणु मण-पडिखलणु पिययम-कर-फंसणु परिसेविउ।। 62।।

4/4
Proudy utterances of the great warriors.

दुवइ— कासुवि रणरसेण तणु रेहइ रोमंचहिँ विराइओ।
णं मणहर वसंत वणलच्छिए वउलु महीउदाविओ।। छ।।

सण्णाहु ण गेण्हइ कोवि वीरु मणि मुणिवि भारु केवलउ धीरु।।
गेण्हंतु कोवि सो इय महंतु णं अप्पउ पियदिट्ठिहे रहंतु।।

पृथिवीतल को रौंद डालने वाले कलधौत तुरंगम हिनहिना रहे थे, बैरीजनों के दर्प का हरण करने वाले विविध प्रहरणों (शस्त्रास्त्रों) से लदे हुए और मणिनिर्मित सुदृढ़ प्रग्रहों (पगहों-रस्सियों) द्वारा कसे हुए सुसज्जित रथ अपनी किरणों के प्रसार से सूर्य-रथ के समान प्रतीत हो रहे थे, जो कि सुदृढ़ दाढ़ों वाले मन और पवन की गति से चलने वाले कण्ठीरवों (सिहों) के द्वारा खींचे जाते थे, देदीप्यमान विविध प्रकार के पुण्डरीक (चीते) ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानों मानव रूपी सरोवर में पुण्डरीक (कमल-पुष्प) ही खिल उठे हों। आकाश-मार्ग में फहराती हुई उत्तुंग ध्वजावलियाँ ऐसी सुशोभित हो रही थीं, मानों स्वैरिणी मदोन्मत्त नारियाँ ही हों, अनवरत सुरत में मन रखने वाली नारीजनों के द्वारा चमर ढुराये जा रहे थे और आये हुए निर्भीक, निशंक एवं दृढ़ पैदल वीर युवक मारो-मारो की हाँक लगा रहे थे, मनुष्यों के हाथों के कोण से समर-तूर-वाद्य बजाये जा रहे थे, जो अपने गम्भीर-घोष से लोकान्त को पूर रहे थे।

घत्ता— जिनेन्द्र के दोनों चरण-कमलों का स्मरण कर किसी-किसी ने अपनी देह में रोमांच के जनक, मन को प्रति-स्खलित करने वाले, प्रियतमा के कर-स्पर्श के समान प्रतीत होने वाले कवच को धारण किया। (62)

4/4
रणबाँकुरे महाभटों की दर्पोक्तियाँ—

द्विपदी—किसी वीर का शरीर रोमांच से विराजित तथा रण के रस से सुशोभित हो रहा था। वह ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों मनोहर वसन्त-ऋतु की वन-लक्ष्मी ने वकुल-वृक्ष ही उत्पन्न कर दिया हो।

कोई-कोई वीर कवच को धारण नहीं कर रहा था क्योंकि वह धीर-वीर अपने मन में उसको केवल भाररूप ही मान रहा था। कोई सुभट उस महा-कवच को धारण करता हुआ ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों उसने अपनी

भडु कोवि भणइ कायर महंति सण्णाहु ण सुहड समुव्वंहति।।
भडु कोवि भणइ बंधमि ण फुल्ल जा चंडि ण खंडमि वइरिमल्ल।।
भडु कोवि भणइ किं धणु-सरेहिँ अच्छंतिहिँ दीहरयर करेहिँ।।
भडु कोवि भणइ जस हियए पासु णिवसइँ सण्णाहेँ काइ तासु।।
भडु कोवि भणइ महु तणउ जाणि भणु कंति म विहलु पसारि पाणि।।
भडु कोवि भणइ चुंबणु ण देमि पिययमे जयसिरि जा ण लेमि।।
भडु कोवि भणइ णह-णिहसणेण किं महु मणु-हिउ जयसिरि रसेण।।
भडु कोवि भणइ रिउ हउ ण जाम णालिंगणु पिययमे देमि ताम।।
भडु कोवि भणइ कुलहर-पईवु उड्डाइवि वइरीयणहँ जीवु।।
णिद्दंदु रज्जु सामिउ ण देमि जाव ण कंति तंबोलु लेमि।।
भडु कोवि भणइ वियलिय कवाल णच्चावमि जा रिउ मुंडमाल।।
तुंगिम जिय करि-कुंभत्थलाइँ ण कलमि ता थोर थणत्थलाइँ।।

घत्ता— भडु कोवि भणइ पिययमे णिसुणु एव्वहिँ जाणंतो वि ण मुज्झमि।
किं बहुए सिरकमलेण पर पहु-पसाय दाणहो रिणु सुज्झमि।। 63।।

प्रिया की दृष्टि में अपना हर्ष ही अर्पित कर दिया हो। कोई भट किसी से कह रहा था कि तुम बड़े कायर हो, अरे; सुभट लोग कभी कवच नहीं पहनते। कोई भट कह रहा था कि मैं जब तक चंड (रण) में बैरी मल्लों के खण्ड-खण्ड नहीं कर डालूँगा, तब तक फूल को नहीं बाँधूगा।

कोई भट कह रहा था कि यदि अपनी लम्बी-लम्बी भुजाएँ हैं, तो फिर धनुष वाण की आवश्यकता ही क्या? कोई भट कह रहा था कि जिसके हृदय में पार्श्वकुमार स्वयं विराजमान हो, उसके लिये कवच धारण करने का क्या प्रयोजन?

कोई-कोई भट अपनी प्रियतमा से कह रहा था कि हे कान्ते, अपने मन में मेरे सम्बन्ध को जानकर अपने हाथ को व्यर्थ में ही दूसरे के सम्मुख मत फैलाना। कोई-कोई भट यह कहे जा रहा था कि हे प्रियतम, जब तक मैं जयश्री के साथ वरण न कर लूँ, तब तक मैं तुम्हें अपना चुम्बन नहीं दूँगा।

कोई-कोई भट चिल्ला रहा था कि हे प्रिये, नखाघात से क्या लाभ, क्योंकि मेरा मन तो जयश्री के रस से जुड़ा हुआ है। कोई-कोई भट कह रहा था कि हे प्रियतमे, जब तक मैं शत्रु का संहार नहीं कर डालता, तब तक तुझे अपना आलिंगन नहीं दूँगा।

अपने कुल के लिये दीपक के समान कोई भट अपनी प्रियतमा से कह रहा था कि समस्त बैरियों का संहार कर तथा राज्य को निर्द्वन्द्व कर, हे कान्ते, जब तक उसे मैं अपनी स्वामी को नहीं सौंप देता, तब तक ताम्बूल का सेवन नहीं करूँगा। और, कोई-कोई भट तो चिल्ला-चिल्ला कर कह रहा था कि बैरीजनों के कपालों को विगलित कर उनकी मुण्डमाला का जब तक मैं नचा न डालूँगा, तब तक ऊँचाई में गज के कुम्भस्थलों को भी जीत लेने वाले अपनी प्रिया के स्थूल-स्तनों का स्पर्श तक नहीं करूँगा।

घत्ता— कोई-कोई भट तो अपनी प्रियतमा से यहाँ तक कह रहा था कि हे प्रियतमे, मेरी बात सुनो, सब कुछ जानते हुए भी में इस समय तुम्हारे मोह में नहीं उलझूँगा। अधिक क्या कहूँ, अपने सिर-कमल के दान के द्वारा मैं अपने प्रभु के प्रसाद के दान से उऋण होकर शुद्ध होना चाहता हूँ। (63)

4/5

Powerful Kings from distant countries also joined with their army to support Prince Pārśwa to whom he pays respects to all of them.

दुवइ— परबल मयंगलोह पंचाणणु पय-पाडिय पुरंदरो।
दुद्दम मारवीर सर णिरसणु पासकुमारु सुंदरो।। छ।।

सम्माणइँ दाणें णिव-समूहु चंडासि विहंडिय कुंभि जूहु।।
हारेण कीरु मणि-मेहलाए पंचालु-टक्कु-संकल-लयाए।।
5 जालंधरु पालंबेण सोणु मउडेण णिबद्ध सवाण तोणु।।
केऊरं सेंधउ कंकणेहिँ हम्मीरराउ रंजियमणेहिँ।।
मालविउ पसाहिउ कुंडलेहिँ णिज्जिय णिसि दिणयर मंडलेहिँ।।
खसु णिवसणेहिँ णेवालराउ चूडारयणेण गहीर-राउ।।
कासुवि अप्पिउ मयमत्तुदंति णं जंगमु महिहरु फुरिय कंति।।
10 कासुवि उत्तुंगु तरलु तुरंगु णावइ खय मयरहरहो तरंगु।।
कासुवि रहु करहु विइण्णु कासु जो जेत्थ दच्छु तं दिण्णु तासु।।
इय सयलु सबलु बल कियउ जाम हयसेण णराहिउ पुत्तु ताम।।

घत्ता— णिय तेओहामिय खरतरणि करपहार णिद्दलिय करिंदहो।
मणिगण णिम्मिय संदणि चडेवि णिग्गउ सम्मुहु जउणणरिंदहो।। 64।।

4/5

यवनराज के साथ युद्ध में कुमार पार्श्व का साथ देने के लिये दूर-दूर से अनेक राजागण ससैन्य पधारे। पार्श्व द्वारा उनका सम्मान—

द्विपदी—वे कुमार पार्श्व अत्यंत सुन्दर एवं वीर थे, पर-सेना रूपी गज-समूह के लिए वे सिंह के समान थे, इन्द्र को (अपने चरणों में) झुकाने वाले तथा दुर्दम कामवीर के बाण का नाश करने वाले थे।

जो राजा अपने प्रचण्ड खड्ग से गज-यूथ को विखण्डित करने वाले थे, उन सभी को पार्श्व प्रभु ने (विविध वस्तुओं के दान से) सम्मान देकर प्रसन्न किया। **कीर** देश के राजा को हार से, **पंचाल**देश के राजा को मणिमयी मेखला से, **टक्क** देश के राजा को (स्वर्णमयी) संकललता से (हार की लड़ी से), **जालंधर** देश के राजा को प्रालंब (लंबे हार) से और **सोन** देश के राजा को मुकुट तथा बाण सहित तूणीर से निबद्ध किया।

सिन्धु देश के राजा को केयूर (भुजबन्ध) से, **हम्मीर** राजा के चित्त को रंजित करने वाले कंकणों से, **मालव** देश के राजा को चंद्र-सूर्य मण्डलों को जीतने वाले कुंडलों से प्रसाधित किया।

खस देश के राजा को उत्तम वस्त्रों से, गम्भीर उद्घोष करने वाले **नेपाल** के राजा को चूडारत्न से प्रसाधित किया।

इसी प्रकार किसी को मदमत्त गज दिया गया, जो ऐसा प्रतीत होता था, मानों वह गज न होकर एक चलता-फिरता दीप्त कान्ति वाला कोई पर्वत ही हो। किसी को उत्तुंग चंचल तुरंग दिया गया, जो ऐसा प्रतीत होता था, मानों वह क्षयकाल के समुद्र की कोई तरंग ही हो। किसी को रथ दिया गया और किसी को करभ (उष्ट्र), इनके अतिरिक्त भी जो जिस विषय में दक्ष था, उसे वही-वही दिया गया। इस प्रकार जब अपनी समस्त सेना को सबल और सुसज्जित कर दिया, तब राजा हयसेन का पुत्र कुमार पार्श्व—

घत्ता— अपने तेज-समूह से सूर्य-मण्डल को भी निष्प्रभ कर देने वाले तथा मणियों से जटित रथ पर सवार होकर अपने कर-प्रहार से करीन्द्रों को भी दलित कर देने वाले उस यवनराज के सम्मुख चले। (64)

4/6

Fierce fighting between the two enemies begins.

दुवइ— रविकित्तिवि चडेवि रहे हयवरे कोवि णरिंदु दुद्धरो।
मयजल बूडिय करड करि-कंधरि कोवि मयारि-कंधरो।। छ।।

एयहिँ अवरेहिँ जिय भूरि समरेहिँ।।
सोहइ जिणो पासु णिम्महिय भवपासु।।
अहि य मणजूरेण संगाम तूरेण।।
इय सबलु आवंतु बहु बलु वि दावंतु।।
करकलिय करवालु रविकित्ति भूवालु।।
णाउण सहसत्ति पक्खरेवि वर पत्ति।।
जउणो वि संपत्तु रण-रंग-सिरि-रत्तु।।
अगणंतु सिवसद्दु दाहिणउ अणमद्दु।।
हयपुच्छ संजलणु बहुज्जीमूअ दरमलणु।।
रुहिरोह वरिसणउ जस-रासि णिरसणउ।।
पुणु-पुणु वि छिंकियउ मंतीहिं संकियउ।।
अहिणाहि खंडियउ पुहु रुहिर मंडियउ।।
अइकरुण रोवणउ बललच्छि लोवणउ।।
वायसहो कडु-राउ संहरिय अणुराउ।।
णियमणहो कय ताउ पडिकूलि मरुभाउ।।

घत्ता— समरंगणे रणतूरइँ हणेवि दूरज्झिय मज्जायइँ तावइँ।
अब्भिडियइँ णिरु बिण्णि वि बलइँ खयमरु पेरिय जलणिहि णावइँ।। 65।।

4/6

दोनों शत्रु सेनाओं में तुमुल-युद्ध प्रारम्भ—

द्विपदी—और इधर, राजा रविकीर्ति भी रथ पर आरूढ़ हुआ। कोई दुर्धर राजा उत्तम घोड़े पर सवार हो गया और मृगारि-सिंह के समान कांधौर वाला कोई सुभट मदजल में डूबे हुए गण्डस्थल वाले हाथी के कन्धे पर जा बैठा।

इस प्रकार (पूर्वोक्त) एकत्रित राजाओं तथा पदाति सेना से घिर हुए अनेक युद्धों के जीत लेने में सक्षम तथा भवपाश का उन्मूलन कर देने वाले वे कुमार पार्श्व (सुभटों के मध्य) अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे। (यवन जैसे) दुर्धर शत्रुजनों के मन को कँपा देने वाला संग्राम-तूर बजा दिया गया। शत्रुओं के बल को विदीर्ण करने वाले तथा सैन्य-समुदाय के साथ तलवार से भूषित हस्त वाले राजा रविकीर्ति को सहसा ही आता हुआ जानकर विपक्षी-शत्रु भी अपनी शक्तिशाली सेना को पंक्तिबद्ध सजाकर रण-रंगश्री में आरक्त वह यवनराज भी रणभूमि की ओर चल पड़ा। चलते समय उसने अपनी दाहिनी ओर अशुभ-सूचक शिवा (शृगाली) के शब्द को भी अनसुना किया, यशराशि का निरसन करने वाली घोड़ों की पूँछ के जलने तथा अनेक जीवों के रौंदे जाने के कारण रक्त-समूह की वर्षा, संशकित मन्त्रियों का बारम्बार छींकना, खण्डित एवं रुधिर युक्त सर्प द्वारा रास्ता काटा जाना, बल-लक्ष्मी के लोप का सूचक अतिकरुण रुदन का होना, अनुराग का संहार करने वाले वायस का कटु-शब्द बोलना, अपने मन के ताप की सूचक प्रतिकूल वायु का चलना आदि को भी उस यवनराज ने कुछ नहीं समझा।

घत्ता— तभी, मर्यादाओं का दूर से ही त्याग कर, समरांगण में दोनों दलों के रण-तूर बज उठे और दोनों ओर के सैन्य दल ऐसे भिड़ गये, मानों क्षयकालीन प्रलयवायु से प्रेरित होकर समुद्र-ज्वार ही उठ खड़ा हुआ हो। (65)

4/7

The earth is heavily gloomed with the storming dust arising from the violent fighting.

दुवइ— अमरिस-वस बलेहिँ धावंतेहिँ भासिय पोमिणीसरो।
आयड्ढिय किवाण किरणोहहिँ पच्छाइउ रिउ-दिणेसरो।। छ।।

खुट्टंत चलंत तुरंगमाहँ णित्तासिय भीम-भुअंगमाहँ।।
तिक्खण-खुर-पहरणि पीडियंगु णियंतु स सारहिं रहु पयंगु।।
5 मइलंतउ हय-मायंगजूहु उच्छलिउ बहुलु धूली-समूहु।।
अंतरि ठिउ सोहइ सुअणु णाइ मा जुज्झहु विणिवारंतु जाइ।।
दुहयारउ णावइ सुहु खलासु चंचलु णं जमजीहा विलासु।।
रइरंग समाहय पिययमासु अच्छोडिय णीवी बंधपासु।।
णं णवकलत्तु णयणइँ रहंतु तित्थयर जसु व जंतउ णहंतु।।
10 जलवारणे ठाइवि ठाइ चिंध तं मुएवि जाए पुणु विउलरंध।।
हक्कारणत्थु णं सुरयणाहँ समरालोयणलालसमणाहँ।।
पेक्खहि देवहो कोऊहलाइँ पच्चक्खइँ सुह-असुहहो फलाइँ।।
जुज्झंतहँ दोहंवि साहणाहँ णिरसिय रिउ णारि पसाहणाहँ।।

4/7

प्रचण्ड युद्ध-जनित धूलि ने पृथिवी को अंधकाराच्छन्न कर दिया—

द्विपदी—क्रोधावेश के कारण दोनों ओर के सैन्य-बलों ने जब (एक दूसरे पर आक्रमण करने के लिये) छलांगें मारी, तब म्यान के बाहर निकली हुई कृपाणों की किरणों की चमक से ऐसा प्रतीत होने लगा, मानों पद्मिनी-सरोवर ने शत्रु रूपी सूरज को ही ढँक दिया हो।

भयानक भुजंगमों को सन्त्रस्त करते हुए, भूमि को रौंदते-खुरचते चलते हुए घोड़ों के तीक्ष्ण खुरों के प्रहार से पीड़ितांग सारथी सूर्य - रथ के सारथी के समान प्रतीत हो रहे थे। घोड़े तथा मातंगों के समूहों की दौड़ के कारण उठी हुई, प्रचण्ड धूलि-समूह घोड़ों एवं मातंगों के यूथ को स्वयं मलिन कर रहा था।

वह (धूलि-समूह) ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों, यह कह रहा हो कि अब तुम लोग युद्ध मत करो अथवा ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों इस प्रकार रोकता हुई कोई सज्जन ही बीच में मध्यस्थ हो गया हो, अथवा मानों दुखकारक दुष्टजन का ही वह (धूलि-समूह) मुख हो, अथवा चंचल यमराज की जीभ का वह क्रीड़ा-विलास ही हो अथवा, मानों वह समाहत प्रियतमा वाले विधुर का नीवी-बन्धन-मुक्त रतिरंग ही हो, अथवा मानों नेत्रों को छिपाता हुआ कोई नव-कलत्र ही हो, अथवा, मानों तीर्थंकर का यश ही नभोमार्ग में उड़ रहा हो।

वह (धूलि-समूह) क्रमशः छत्रों (जल-वारणों) पर चढ़कर ध्वजाओं पर चढ़ बैठा। उन्हें भी छोड़कर वह मानों विपुल गुफा-गृहों में अथवा आकाश में चला गया, मानों युद्ध देखने की अभिलाषा वाले देवों को बुलाने तथा यह कहने के लिये ही जा रहा हो कि हे देवतागण, युद्ध में जूझते हुए पक्ष-विपक्ष के इन शत्रु-सैनिकों की नारियों के शृंगार को मिटा देने वाले शुभ-अशुभ के फल को कौतूहल पूर्वक प्रत्यक्ष ही आकर देख लो।

घत्ता— इय वट्टंतउ रउ गयणे जण मण असुहावणु अणिवारिउ।
अहिमाण कुलक्कम विक्कमेहिँ तो वि वीर पहरंति णिरारिउ।। 66।।

4/8

Fierce fighting between the two enemies.

दुवइ— केणवि मत्तकुंभ-कुंभत्थलु करवालेण दारिओ।
केणवि करु-धरेवि अच्छोडिउ केणवि मोडि मारिओ।। छ।।

केणवि कड्ढेवि कोसहो वालो आहउ भीम भडोह कवालो।।
णिग्गउ रत्तपवाहु भरंतो भूमियलं रयपूर हरंतो।।
जाय सुणिम्मलदिट्ठि भडाणं णिद्दलियारि करिंदघडाणं।।
तुंग-तुरंगहिँ-तुंग तुरंगा मत्तमयंगहिँ मत्त मयंगा।।
पक्कल वीरहिँ पक्कलवीरा भूहर-धीरहिँ भूहर-धीरा।।
कुंत-करग्गहिँ कुंत-करग्गा वग्गिय खग्गहिँ वग्गिय खग्गा।।
चारु रहोहहिँ चारु रहोहा दुज्जय-जोहहिँ दुज्जय-जोहा।।
भामिय चक्कहिँ भामिय चक्का सम भडा अवरोप्परु थक्का।।

घत्ता— समरंगण तूररवेण रणे पेक्खेवि सुहडहिँ सुहड भिडंतइँ।
भग्गइँ भय भरियइँ कायरइँ पाणलएवि विरसु रडंतइँ।। 67।।

घत्ता— इस प्रकार गगन-व्यापी वह रज-समूह जन-मन के लिये असुहावना था, फिर भी अनिवारित वह निर्बाध गति से यद्यपि वह गगन में फैलता ही जा रहा था, तो भी वे वीर सुभट निःशंक होकर अपने अभिमान, कुलक्रम और शक्ति-पराक्रम से एक दूसरे पर प्रहार कर रहे थे। (66)

4/8

दोनों शत्रु-सेनाओं में तुमुल-युद्ध—

द्विपदी—किसी वीर ने मत्तगजों के कुम्भस्थलों को खड्ग से विदीर्ण कर दिया, तो किसी ने उसकी सूँड को घुमा डाला और किसी ने उन्हें मरोड़कर मार डाला।

किसी वीर ने म्यान से तलवार निकाल कर भीमभटों के समूह के कपालों को आहत कर दिया, जिससे रजपूर को हटाता हुआ तथा भूमितल को भरता हुआ वह रक्त प्रवाहित होने लगा। शत्रु की गज-घटाओं को दलित करने वाले भटों की दृष्टि अतिनिर्मल हो गई। उन्नत घोड़ों से उन्नत घोड़े जा भिड़े। मत्त-गजों से मत्त गज, सुभट वीरों से सुभट वीर, धीर-वीर राजाओं से धीर-वीर राजा, हाथ में भाला पकड़ने वालों से हाथ में भाला पकड़ने वाले, उछलती हुई खड्ग वालों से उछलती हुई खड्ग वाले, सुन्दर रथ-समूहों के सम्मुख रथ-समूह वाले, दुर्जेय योद्धाओं से दुर्जेय योद्धा। चक्र घुमानेवालों से चक्र घुमाने वाले, इसी प्रकार समान शस्त्र वाले भट एक-दूसरे से लड़ने-भिड़ने लगे।

घत्ता— समरांगण में रण तूर की कर्कश ध्वनि के साथ सुभटों से सुभटों को भिड़ता हुआ देखकर भयभीत हुए कायर लोग अपने प्राण लेकर विरस रटते (रोते-कलपते) चीखें छोड़ते हुए रणभूमि से भाग निकले। (67)

4/9

Description of the fierce fighting.

दुवइ— चूरिउ मुग्गरेण रहु केणवि चिंधु फाडिओ।
संधिवि णिसियवाण वाणासणे केणवि कोवि पाडिओ।। छ।।

तिक्ख कुंतेण केणावि विद्धा हया रत्तलित्ता विमत्ता गया णिग्गया।।
कोवि केणावि मुट्ठीहिँ पद्धारिओ कोवि केणावि पण्हीए लत्थारिओ।।
कोवि केणावि कूरेण पच्चारिओ कोवि केणावि मारेवि उल्लारिओ।।
कोवि केणावि भल्लीहि णिद्दारिओ कोवि केणावि आयासे संचारिओ।।
कोवि केणावि आवंतु आलाविओ कुंजरारिव्व सिग्घं समुद्धाविओ।।
कोवि केणावि रुद्धो विरुद्धो भडो कंधरं तोडि णच्चाविओ णं णडो।।
कोवि केणावि धावंतु पेमाइओ तोमरेणोरु-वच्छत्थले घाइओ।।
कोवि केणावि दिट्ठो रुसा भीसणो वाणजालं मुअंतो महाणणीसणो।।
कोवि केणावि सत्तीहिँ ससल्लिओ पेयरायाहिवासं तुरं घल्लिओ।।
कोवि केणावि जुज्झंतु रेक्कारिओ दारिऊणं खुरुप्पेण मारिओ।।

घत्ता— जं तुट्टउ रिणु सामिहि तणउ तं सकियत्थु अज्ज हउँ जायउ।
एउ मण्णेवि वि णावइ सुहडघडु कासु वि णच्चिउ रणि उद्धायउ।। 68।।

4/9

तुमुल - युद्ध वर्णन—

द्विपदी—किसी वीर ने मुग्दर से शत्रु के रथ को चूर डाला, तो किसी ने किसी की ध्वजाओं को चिथड़ा बना दिया और किसी सुभट ने धनुष पर तीक्ष्ण बाण चढ़ाकर उसे अपने शत्रु-वीर पर फेंक दिया।

किसी सुभट ने तीक्ष्ण भाले से शत्रु के घोड़ों को वेध डाला, तो किसी के रक्त से लिप्त मत्त गज भाग निकले। किसी ने किसी को मुक्कों से पछाड़ दिया, तो किसी ने किसी को जूतों से लताड़ डाला।

किसी को किसी ने क्रूर अपशब्दों से ललकार दिया, तो किसी को किसी ने मारकर ऊपर उछाल दिया और किसी को किसी ने भल्ली (छुरी) से विदार डाला। किसी को किसी ने आकाश में उछाल दिया, तो किसी ने किसी आते हुए से आलाप किया और जिस प्रकार सिंह के सम्मुख गज नहीं ठहर सकता, उसी प्रकार उसे तत्काल ही हाँक दिया। किसी ने किसी प्रतिपक्षी भट को रोक लिया और उसकी गर्दन को तोड़-मरोड़ कर नट के समान नचा डाला।

किसी दौड़ते हुए शत्रु को किसी ने प्रेमपूर्वक पुचकारा और फिर तोमर नामक शस्त्र से उसके विशाल वक्षस्थल को घात डाला। किसी को किसी ने क्रोधावेश में भरते देखा और किसी ने बाणजाल छोड़ते हुए किसी को असमर्थ कर दिया। किसी ने किसी को शक्ति से शल्यित (घायल) कर दिया और उसे तुरन्त ही यमराज के घर भेज दिया। किसी को किसी ने जूझते हुए 'रे'कार शब्द से ललकारा और खुरपा से उसे विदीर्ण कर मार डाला।

घत्ता— "आज मेरे द्वारा मेरे स्वामी का ऋण चुक गया और मैं कृतार्थ हो गया" ऐसे पदों (वचनों) को विनम्रतापूर्वक कहते हुए किसी सुभट का धड़ रणभूमि में नाचने लगा और उछलने लगा। (68)

4/10

Intensity of the fierce fighting described.

दुवइ— विगयंगो वि कोवि कोहाणल जालोलिहि पलित्तओ।
पहरंतउ भडाहँ णउ विरमइ वण-रुहिरंबु लित्तओ।। छ।।

तहिँ दुद्धर वीर विमुक्करणे पवरामर-खेयर भीमरणे।।
विलुलंत वलंत तुरंग धडे विरसंत वियारिय हत्थि हडे।।
विगयंत भिडंत महासुहडो हरिसेण णडंत सुधीर-धडो।।
गय-घाय-वियट्टिय हेमरहे भड हक्क विहीसिय भीम गहे।।
रुहिरंबु बहंत सुकंदलए लउडोह विहोणिय मंदलए।।
सुरणारि विइण्ण सुमंगलए विलुलंत भुजोवरि कुंतलए।।
पररंजिय कूर कियंत मणे रुहिरामिस पोसिय भूअ गणे।।
पवणाहय धुव्विर चिंधचए वर चामर-भूसण-छत्त सए।।
णयणेहिँ णिहालिवि ता सबलं विवरम्मुहु जंतु सयं समलं।।
जस-पोरिस-माण-सिरी-रहियं घण-घाय-महाभय-संगहियं।।
परिसज्जिय संदण-हत्थि-हयं जउणावणिणाहभडोह हयं।।
रविकित्ति णरिंदु गहीरसणो सइँ धाविउ वीरु विलास मणो।।

घत्ता— म भीसंतउ परियणु सयलु धणु-गुण-बाण-णिवहु संधंतउ।।
अइ कोवारुणु लोयण-जुयलु हय-गय-रह-भडाइँ विंधंतउ।। 69।।

4/10

युद्ध की तीव्रता का वर्णन—

द्विपदी—कोई सुभट विकृत अंग तथा व्रण के रुधिर-जल से लिप्त होकर भी क्रोधाग्नि की ज्वालावलि से जलता हुआ, भटों के ऊपर प्रहार करने से विराम नहीं ले रहा था।

(युद्ध की भयंकरता से) अनेक दुर्धर वीरों ने भी उस रण-क्षेत्र को छोड़ दिया। वह युद्ध रण-प्रवर अमर, एवं खचरों के लिये भी भयंकर था। उस रण में घोड़ों के धड़ लुंज-पुंज होकर उछल रहे थे। विदारे गये हाथियों के समूह चिंघाड़ते हुए बिगड़ रहे थे। महासुभट विकृत होते हुये भी शत्रुओं से भिड़ रहे थे। सुधीरों के धड हर्ष से नाच रहे थे। स्वर्ण के रथ गदाओं के घात से उलट रहे थे। भटों की हाँक से भीम (भयंकर) ग्रह भी डर रहे थे, उनकी कंदला से रुधिर बह रहा था। लाठियों के समूह ने मंदल (मेरुदण्ड) की नसों के जाल को भी तोड़ दिया था। ऐसी देव नारियाँ, जिनकी भुजा पर केश लटक रहे थे, उस समय सुमंगल गीत गा रही थीं। क्रूर कृतान्त का मन रंजायमान हो रहा था। भूत-गण रुधिर, माँस से पोषित हो रहे थे। अपनी सेना के पवन से आहत बड़ी-बड़ी शुभ्रवर्णवाली ध्वजाओं तथा श्रेष्ठ चामर, आभूषण तथा छत्रों को स्वयं अपने ही नेत्रों से मलिन धूलिसात् होकर विवर-मुखों में जाते हुए देखकर तथा यश, पौरुष, मान एवं श्रीविहीन देखकर कठोर आघातों के महाभय से संत्रस्त तथा यवनराज के भटों द्वारा आहत होने के कारण रथ, हाथी एवं घोड़ों को छोड़कर जब भागने लगे तब वीरता के विलास में मतवाला राजा रविकीर्ति ललकारता हुआ आगे बढ़ा तथा—

घत्ता— अपने समस्त परिजनों के भय को दूर करता हुआ, धनुष, डोरी, बाण-समूह का सन्धान करता हुआ, अत्यधिक क्रोध से अरुण नेत्र वाला तथा हाथी, घोड़े, रथ एवं भटों को वेधने लगा। (69)

4/11

Brave King Ravikīrti destroys very badly all the arms and armaments and other battle resources of Yavanrāja and chased him away from the battle-field.

दुवइ— उब्भड भिउडि भंग भड भीसणे सइँ उट्ठिए णराहिवे।
वर वीराहिमाण-सिरि-रंजिए रिउमयगल मयाहिवे।। छ।।

धाविया तार णेवाल जालंधरा कीर-हम्मीर-गज्जंताण कंधरा।।
सेंधवा-सोण-पंचाल-भीमाणणा णाइँ ओरालि मेल्लंत पंचाणणा।।
मालवीयास-टक्का-खसा-दुद्दमा णं दिणेसासभाणत्थ भी कद्दमा।।
सामिणो भूरिदाणं सरंता मणे वज्जिऊणं पियापुत्तमोहं रणे।।
साउहं देवि जुज्झंति संकुज्झिया झत्ति कुंतग्ग भिण्णंगणो मुज्झिया।।
केवि संधेवि वाणालि वाणासणे कुंभि-कुंभं वियारंति संतासणे।।
केवि चक्केण छिंदंति सूरा सिरं कुंडललग्ग माणिक्कभा भासिरं।।
केवि सत्तीहिँ भिंदंति वच्छत्थलं माणियाणेयणारी-थणोरुत्थलं।।
केवि मेल्लंति सेलं समुल्लाविया वीरलच्छी विलासेण संभाविया।।
जंति उम्मग्ग लग्गा हयाणं घडा तुट्टिसीसा वि जुज्झंति सूरा भडा।।

घत्ता— जुज्झंतिहिँ रविकित्तिहिँ भडहिँ भग्गु असेसु जउणहो साहणु।
गेण्हंतु याण मेलंतु मउ णाणाविह संगहिय पसाहणु।। 70।।

4/11

रण-प्रचण्ड राजा रविकीर्ति यवनराज की समस्त रण - साधन-सामग्री नष्ट कर देता है और उसे रणभूमि से खदेड़ देता है—

द्विपदी— उद्भट तथा भ्रकुटि-भंग वाले, शत्रु-भटों के लिये भीषण रौद्र रूप वाले, श्रेष्ठ वीरों की अभिमानश्री से रंजित और शत्रु रूपी गजों के लिये सिंह के समान राजा रविकीर्ति को स्वयं ही आगे बढ़ता हुआ देखकर–

उस भीषण रण में **नेपाल**, **जालन्धर**, **कीर**, **हम्मीर** (हमीरपुर?) देशों के राजागण मदोन्मत गजों के समान चिंघाड़ते हुए तुरन्त ही दौड़ पड़े। **सिन्धु**, **सोण** एवं भयानक मुखवाले **पांचाल** नरेश तो ऐसे दौड़े, मानों गर्जना करते हुए सिंह ही दौड़ पड़े हों। **मालव**, **आस**, **टक्क** तथा सूर्य की किरणों की प्रभा को भी मलिन कर देने वाले दुर्दान्त **खस** राजा गण अपने स्वामी के विपुल दानों का मन में स्मरण करते हुए अपनी-अपनी प्रियतमाओं एवं पुत्रों के प्रति मोह को छोड़कर, आयुधों को (निरस्त्र–) प्रतिपक्षियों को प्रदान कर निर्भीकता पूर्वक उनसे जूझ रहे थे और कुन्ताग्रों से भिन्न अंग होकर भी तत्काल मूर्च्छित नहीं हो रहे थे प्रत्युत लगातर युद्धरत बने रहे।

कई सुभट सन्त्रासकारक धनुष पर बाणावलियाँ साधकर गज-कम्भों को विदीर्ण कर रहे थे। कोई-कोई शूरवीर मणिक्यों की प्रभा से सुशोभित कुण्डलों से युक्त सुभटों के सिरों को चक्र से काट डालते थे। कोई-कोई मानी सुभट अपनी शक्ति से अनेक मानिनी नारीजनों के घनस्तनों तथा उरुस्थलों का भोग करने वालों के वक्षस्थलों को भेद रहे थे और जय-लक्ष्मी की विलास-क्रीड़ा से सम्भावित (सम्मानित) कोई-कोई वीर प्रतिपक्षियों को ललकार कर उन पर शैल-शस्त्र से प्रहार कर रहे थे। घोड़ों के धड़ उन्मार्गगामी होकर गिर रहे थे और अनेक शूरवीर सुभटों के सिरों के टूट जाने पर भी वे युद्ध में जूझ रहे थे।

घत्ता— युद्ध में जूझते हुए राजा **रविकीर्ति** एवं उनके सुभटों ने **यवनराज** के समस्त रण-साधन नष्ट कर डालें, इस कारण एकत्र किये हुए नाना प्रकार के प्रसाधनों को वहीं छोड़कर अपने दर्प को भुलाकर अपने प्राणों की रक्षा हेतु वह यवनराज अपने सुभटों के साथ वहाँ से भाग खड़ा हुआ। (70)

4/12

The strength of Yavanrāja described.

दुवइ— छुडु पहरण पहार परिपीडिउ परबलु जंतु दिट्ठओ।
ता कलयलु सुरेहिँ किउ णहयले रविकित्ति वि पहिट्ठओ।। छ।।

एत्थंतरेण णिमिसंतरेण।।
जउणे समत्ते वियसंतवत्ते।।
बहु मच्छरिल्ल संगरिरसल्ल।।
पक्कर करिवि सत्ति पयडियससत्ति।।
धाविय तुरंत रुइ विप्फुरंत।।
पहुरिणु सरंत जयसिरि वरंत।।
मरु-मरु भणंत विंभउ जणंत।।
ओरालि लिंत रेक्कारु दिंत।।
कण्णाड लाड कोंकण वराड।।
तावियड दविड भूमाय पयड।।
मरुहच्छु कच्छु अइवियड वच्छ।।
डिंडीर विंझ अहियहिँ दुसज्झ।।
कोसल मरट्ठ सोरट्ठ धिट्ठ।।
एयहि असेस परबल णरेस।।
णिज्जिणिय केम करि हरिहिँ जेम।।
कोवि छिण्णु केम तरुराइ जेम।।
कोवि धरेवि पाए खित्तउ विहाए।।
कोवि हियए विद्धु वाणहिँ वि रुद्धु।।

4/12

यवनराज की पराक्रम-शक्ति—

द्विपदी— शस्त्रों के पूर्ण प्रहार से परिपीडित पर-बल **(यवनराज)** को युद्धभूमि से पलायन करते हुए जब देखा, तब देवों ने तत्काल ही नभस्तल में कलकल-निनाद किया (जयध्वनि की) और उसे सुनकर राजा रविकीर्ति हर्षोन्मत हो उठा।

इसी बीच, निमिष मात्र में ही **जउणराज** (यवनराज) का विकसित वदन वाला, छली-कपटी, युद्धरसिक, अपनी शक्ति का परिचय देता हुआ प्रकृष्ट शक्ति सम्पन्न हाथी पर आरूढ होकर अपनी युद्धरुचि का प्रदर्शन करता हुआ एक भक्त अपने स्वामी नरेश के ऋण का स्मरण करता हुआ, जयश्री का वरण करता हुआ, मारो, मारो, चिल्लाता हुआ लोगों को विस्मय में डालता हुआ चक्कर लगाता हुआ और 'रे' कार देता हुआ तुरन्त झपटा।

यवनराज के उस पराक्रमी भक्त ने **कर्नाटक**, **लाट**, **कोंकण**, **वराट**, **ताप्तितट** (ताविय‌ड) **द्रविड**, भू-भाग में प्रकट **भृगुकच्छ** (भडौंच), **कच्छ**, अतिविकट समझा जाने वाला **वत्स**, शत्रुओं के लिये अत्यन्त दुःसाध्य समझे जाने वाले **डिंडीर** एवं **विन्ध्य**, **कोसल**, **महाराष्ट्र**, एवं धृष्ट **सौराष्ट्र** के राजाओं को साथ में लेकर शत्रुपथ (रविकीर्ति पक्ष) को किस प्रकार जीत लिया? ठीक उसी प्रकार जीत लिया, जिस प्रकार कि हाथी सिंह के द्वारा जीत लिया जाता है। कोई-कोई किस प्रकार छिन्न-भिन्न कर दिये गये? ठीक, उसी प्रकार जिस प्रकार कि वृक्ष-पंक्तियाँ काट डाली जाती हैं।

कासुवि कवालु तोडिउ रवालु।।
चूरिय रहाइँ दिढ पग्गहाइँ।।
तासिय तुरंग मरु चंचलंग।।
दारिय करिंद दूसिय णरिंद।।
फाडिय धयाइँ चामर चयाइँ।।
खेडिय भडाइँ वयणुब्भडाइँ।।

घत्ता— हय-गय-रह-भडयण सयदलहिँ सहइ रणावणि झत्ति समायहो।
णाणा रसोइ णं वित्थरिय रणसिरियए णिमित्तु जमरायहो।। 71।।

4/13

The vigourus fighting-power of King Ravikīrti.

दुवइ— पेक्खेवि खीण सत्ति परिणिज्जिय रिउ वावल्ल सल्लिया।
सेंधव-सोण-कीर-हम्मीर वि संगरु मेल्लिय चल्लिया।। छ।।

णिव सक्कवम्म णरणाह पुत्तु जयसिरि-पडाय संगहण-धुत्तु।।
रविकित्ति समुट्ठिउ कलयलंतु रहवरे चडेवि पडिभड खलंतु।।
भग्गउ णियपरियणु धीरवंतु अवियल वाणावलि खिवंतु।।

किसी-किसी ने शत्रु-भट के पैर पकड़कर उसे आकाश में उछाल दिया। किसी शत्रु-सुभट के हृदय को वाणों से छलनी कर दिया, किसी शत्रु के सुन्दर कपाल को फोड़ डाला, प्रसाधनों द्वारा सुदृढ़ बनाये गये रथों को भी चूर-चूर कर डाला। हवा को भी मात देने वाले चंचल घोड़ों को संत्रस्त कर दिया, शत्रु राजाओं के उत्साह को दूषित कर दिया, ध्वजाओं को फाड़ डाला, चामर-समूहों को क्षार-क्षार कर डाला तथा उद्धत शत्रुभटों के मुखों को खण्डित (मुखों को नोंच-नोंच कर विरुपित) कर डाला।

घत्ता— शत्रुओं के घोड़े, हाथी, रथ एवं सुभटों के सैकड़ों-सैकड़ों टुकड़ों से तत्काल ही वह रणभूमि ऐसे सुशोभित हो रही थी, मानों समागत यमराज (रूपी पाहुने) के निमित्त रण-लक्ष्मी ने उस समरभूमि में नाना-प्रकार की रसोई को ही विस्तारित कर दिया हो। (71)

4/13

राजा रविकीर्ति का शौर्य-वीर्य-पराक्रम—

द्विपदी— शत्रु द्वारा जीत लिये जाने पर अपनी निराश एवं क्षीण-शक्ति-सेना को देखकर **सैंधव, शोण, कीर** और **हम्मीर** देश के राजा बड़े ही व्याकुल हुए और घायल हो जाने के कारण युद्ध को छोड़कर चल दिये।

तब जयश्री की पताका का संग्रहण करने में चतुर **शक्रवर्मा** का वह पुत्र राजा **रविकीर्ति** कलकल निनाद करता हुआ उठा और जब अपने रथ पर सवार हुआ तो प्रतिभटों में खलबली मच गई। उसने भागते हुए अपने परिजनों को धैर्य बँधाया।

अविरल गति से वह ऐसी वाणावली छोड़ता था, जो प्रज्वलित अग्नि में घी डालने जैसी आग उगलती थी।

घयसित्तउ जलणु व पज्जलंतु पहरणु व सुरिंदहो दरमलंतु।।
गज्जंतउ णं खयकालमेहु अमरगिरि णाइँ णिक्कंप देहु।।
अइ दुण्णिरिक्खु णं पलय-भाणु ससहरुव समग्गकल णिहाणु।।
आसीविसहर इव कूरदिट्ठि खयकरणु णाइँ उग्गमिउ विट्ठि।।
10 हरिणारिव वइरीयणु करालु कुंजरु व कठिणकरु रणरसालु।।
कुवियउ कयंतु व गहियपाणु सव्वत्थु वि पवणु व धावमाणु।।
महमयरहरुव मज्जाय मुक्कु समरंगेण परबल सम्मुहु ढुक्कु।।

घत्ता— सोहइ सुहयण णिम्मल सुव अणिवारिउ संगामि चलंतउ।
दंडाहउ रिउ अग्गए करेवि गोवाल वि गोहणु चालंतउ।। 72।।

4/14
The bravery of King Ravikīrti.

दुवइ— णव-पाउस-घणोव्व उच्छरियउ छायंतउ णहंगणं।
णिसियाणण विसाल वर वाणहिँ कीलिर वर सुरंगणं।। छ।।

अपने प्रहरणों से मानों जिसने इन्द्र के वज्रास्त्र को फीका कर दिया था उसकी गर्जना ऐसी प्रतीत हो रही थी मानों क्षयकालीन मेघ ही गरज रहा हो। (निकट रण भूमि में भी–) उसकी देह ऐसी निष्कम्प थी, मानों वह अचल सुमेरु पर्वत ही हो।

वह **रविकीर्ति** ऐसा दुर्निरीक्ष्य था मानों प्रलयकालीन सूर्य ही हो। वह समग्र कलाओं का निधान था, मानों पूर्णमासी का चन्द्र ही हो। वह भयंकर सर्प के समान क्रूर-दृष्टि वाला था। वह ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों प्रलयकालीन वृष्टि का ही उदय हुआ हो। शत्रुजनों के लिये वह सिंह के समान भयंकर था। जिस प्रकार कुंजर कठोर सूँड वाला तथा रणप्रिय होता है, उसी प्रकार वह राजा रविकीर्ति भी कठोर भुजाओं वाला तथा रण रसिक था।

जिस प्रकार क्रुद्ध कृतान्त (यमराज) प्राणियों के प्राणों को निगल जाता है, उसीप्रकार शत्रुओं के प्राणों को लेने वाला तथा सर्वत्र पवन वेग से दौड़ने वाला वह रविकीर्ति मर्यादा विहीन महासमुद्र के समान शत्रुसेना में जा ढुका (घुस गया)।

घत्ता— जिस प्रकार गोपालक अपने हाथ में डण्डा लेकर अपने गोधन को आगे बढ़ाता (हाँकता) है, उसी प्रकार वह राजा रविकीर्ति भी अपने हाथों में युद्ध का डण्डा (भाला, गदा आदि) लेकर शत्रु को आगे कर अबाध गति से संग्राम-भूमि से हाँकता हुआ उसी प्रकार सुशोभित हो रहा था, जैसे सुहृदजनों का निर्मल यश। (72)

4/14
राजा रविकीर्ति का शौर्य-वीर्य-पराक्रम वर्णन—

द्विपदी— जिस प्रकार वर्षाकालीन मेघ नभांगण को आच्छादित कर लेते हैं, उसी प्रकार (राजा **रविकीर्ति** के–) तीक्ष्ण मुख वाले उत्तम बाणों द्वारा अप्सराओं के क्रीड़ास्थल बने हुए सुरांगण (आकाश) को कीलित कर दिया गया।

चूरइ लूरइ रह-धयवडाइँ फाडइ पाडइ गयमुहवडाइँ।।
दावइ णच्चावइ रिउधडाइँ धावइ पावइ उब्भडभडाइँ।।
कोक्कइ रोक्कइ कड्ढेवि किवाणु पच्चारइ मारइ मुएवि वाणु।।
हक्कइ थक्कइ रिउ-पुरउ झत्ति णिहणइँ विहुणइँ तोलइँ ससत्ति।।
वंचइ संचइ सरचामराइँ पोसइ तोसइ खयरामराइँ।।
आसंधइ लंघइ गयवराइँ दारइँ संहारइँ हयवराइँ।।
उद्दालइ लालइ पहरणाइँ धीरहँ वीरहँ दप्पहरणाइँ।।
वग्गइ भग्गइ संगरु रउद्दु डोहइ खोहइ णरवर समुहु।।
पेल्लइ मेल्लइ ण किवाणलट्ठि गज्जइ तज्जइ दरिसइ णरट्ठि।।
अवहेरइ पेरइ भीरु सूर पासइ संतासइ वाणकूर।।

घत्ता— जुज्झंते सुहड भयंकरेण एकल्लें रविकित्ति णरिंदें।
आयासिउ परबलु भुअबलेण असुरणियरु णावइ अमरिंदें।। 73।।

4/15

Fierce fighting of King Ravikīrti with five brave and indomitable warriors of Yavanrāja.

दुवइ— घोसेवि साहुक्कारु गिव्वाणहिँ कुसुमंजलि पमेल्लिया।
रविकित्तिहिँ भडेहिँ जयतूरइँ पविहय रयरसोल्लिया।। छ।।

वह राजा रविकीर्ति रथों को चूर-चूर कर धूलिसात करने लगा, ध्वजा-पताकाओं को चीरने लगा और हाथियों के पलानों तथा उनके मुख-वस्त्रों को फाड़कर फेंकने लगा। शत्रुओं के धड़ों को दबाने और नचाने लगा और शत्रु पक्ष के उद्‌भट भटों को जहाँ भी पाता था, उन्हें हाँककर दौड़ा देता था उन्हें कृपाण निकालकर ललकारता और रोक लेता था, शत्रुओं को पुचकार कर अपने पास बुलाता, अपनी शक्ति को तौलता और बाण से उसे मार डालता था। हाँका हुआ और थका हुआ शत्रुभट तत्काल उसके सम्मुख आता और उसे पकड़कर वह हिला-हिलाकर जान से मार डालता था। शत्रुओं से बाण तथा चामरों को छीनकर उनका संचय करता था और खचरों को पोषता तथा अमरों को सन्तुष्ट करता था। गजवरों को लक्ष्य कर उन्हें लाँघता था, उत्तम घोड़ों को विदीर्ण कर उनका संहार करता था, धीर-वीरों के दर्प का हरण करने वाले प्रहरणास्त्रों को चमका-चमकाकर उछालता हुआ चलता था। वह दर्पीले बोल बोलता था तथा रौद्ररूप धारण कर युद्ध कर रहा था। वह शत्रुभटों रूपी समुद्र को क्षुब्ध कर उसका मन्थन करता था, अपनी कृपाण को वह शत्रुभटों (के वक्षस्थलों) में पेल डालता था, वह उसे छोड़ता न था। वह गर्जन-तर्जन करता हुआ शत्रु नरों की हड्डियाँ दिखलाता रहता था। वह भीरुजनों की अवहेलना करता था तथा क्रूरता पूर्वक बाणों द्वारा उन्हें सन्त्रस्त करता था। इसके विपरीत वह शूर-वीरों को प्रेरक दृष्टि से देखता था।

घत्ता— सुभटों के लिये भयंकर उस राजा रविकीर्ति ने अकेले ही रण में जूझते हुए अपने भुजबल से शत्रुओं को उसी प्रकार नियन्त्रित कर लिया, जिस प्रकार असुर-समूह को अमरेन्द्र नियन्त्रित कर देता है। (73)

4/15

राजा रविकीर्ति की यवनराज के पाँच दुर्दान्त योद्धाओं से भिड़न्त—

द्विपदी—(राजा रविकीर्ति की अपराजेय वीरता को देखकर–) गीर्वाणों (देवों) ने साधु-साधु का जय-जयकार कर पुष्प-वर्षा की। राजा **रविकीर्ति** के भटों ने भी हर्ष-राग के रस से उन्मत्त होकर विजय के नगाड़े पीटे।

जह पवणहो सारय-जलहराइँ जह गरुडहो आसीविसहराइँ।।
जह सीहहो मत्त-मयंगयाइँ जह वणसेरिहहो तुरंगमाइँ।।
तह सयलइँ मज्जंतइँ णिएवि भड भीसण भूभंगइँ रएवि।।
उट्ठिय जउणहो णिव पंचवीर दुद्दम संगाम विमद्द धीर।।
कल्लाणमालु अहिमाणभंगु तह विजयवालु जणजणिय रंगु।।
गुज्जर-तडक्क-रहवर-ठिएहिँ एयहिँ जयसिरि उक्कंठियेहिँ।।
वेढिउ रविकित्ति णरिंदु केम सावण-घणेहिँ धरणिहरु जेम।।
हेलए मुअंति अणवरय वाण आसीविसहर विग्गह-समाण।।
अह तिक्खइँ णावइ तीमणाइँ खलवयणइँ णं असुहावणाइँ।।
खयरवि किरणइँ णं दूसहाइँ कय तणु पीडइँ णं दुग्गहाइँ।।
णहगमणइँ णं मुणि-चारणाइँ अइ चंचल णं हयवरगणाइँ।।
उण्णय पक्खइँ णं सज्जणाइँ दरसिय फलाइँ णावइ जिणाइँ।।
दुट्ठइ णं धम्मगुणह चुआइँ सुअण सहावइ णं उज्जआइँ।।

घत्ता— ते वाण विहंडिय भुय बलेण अद्धागय रविकित्ति णरिंदेँ।
णिय वाणावलियहिँ णिट्ठुरहि णं विसहरु सरोस खयरिंदेँ।। 74।।

जिस प्रकार पवन के द्वारा शरदकालीन मेघ उड़ा दिये जाते हैं, गरुड़-द्वारा भयानक सर्प भगा दिये जाते हैं, सिंह द्वारा मत्तगज भगा दिये जाते हैं और वन के भैसों द्वारा घोड़े भगा दिये जाते हैं, ठीक उसी प्रकार, अपने सुभटों का पलायन देखकर भीषण भ्रूभंगों के साथ उस **जउनराजा** (यवनराज) के दुर्दम संग्राम को सहन करने वाले, सुभट जनों में रण-रंग उत्पन्न करने वाले तथा जयश्री से वरण करने के लिये उत्सुक पाँच धीर-वीर सुभट युद्ध हेतु उठ खड़े हुए— (1) **कल्याणमल्ल**, (2) **अभिमान भंग**, (3) **विजयपाल**, (4) **गुज्जर** एवं (5) **तडक्क**। वे पाँचों सुभट अपने- अपने श्रेष्ठ रथों पर आरूढ़ हुए।

उन्होंने राजा **रविकीर्ति** को उसी प्रकार घेर लिया, जिस प्रकार कि श्रावण-मास के घने बादल धरणीधर-पर्वत को घेरे लेते हैं। वे लीला ही लीला में भयानक विषधारी सर्प के शरीर के समान अत्यन्त तीक्ष्ण वाणों की अखण्ड वर्षा करने लगे। वे (बाण) ऐसे प्रतीत होते थे, मानों तीमन ही हों, अथवा मानों दुष्टजनों के असुहावने बोल ही हों। अथवा, मानों प्रलयकालीन सूर्य की दुस्सह किरणें ही हों, अथवा मानों शरीर को पीड़ित करने वाले दुष्ट ग्रह ही हों, अथवा मानों आकाशगामी चारण मुनि ही हों। वे (बाण) इतने चंचल थे, मानों तीव्र गति वाले चपल हयवरों का समूह ही हो। वे उन्नत पक्षों (पखों) वाले, ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानों उन्नत पक्षों वाले (शत्रु एवं मित्र दोनों के समन्वयकारक–) सज्जन ही हों। वे बाण परिणामों का उसी प्रकार साक्षात् प्रदर्शन कर रहे थे, जिस प्रकार जिनदेव के दर्शनों का साक्षात् फल मिलता है। धनुष की डोरी से छोड़े गये वे बाण ऐसे दुष्ट थे, मानों धर्मगुण से च्युत खल-दुष्टजन ही हों तथा वे ज्ञानीजनों की ऋजुता के समान सीधे मार्ग से (बिना वक्रगति) उड़े जा रहे थे।

घत्ता— (वेगगति से आने वाले–) उन निष्ठुर तीक्ष्ण बाणों को भी राजा रविकीर्ति ने बीच में ही अपनी बाणावली द्वारा केवल अपने भुजबल से ही उसी प्रकार नष्ट कर दिया, जिस प्रकार क्रुद्ध खचरेन्द्र (गरुड़) विषधर को समाप्त कर डालता है। (74)

4/16

Nine brave sons of Yavanrāja come into the arena owing to the defeat of five previous great warriors. Ravikīrti himself beheads all of them.

दुवइ— छिंदिवि छत्त-गत्त-धय-चामर-रहवर-तरल हयवरा।।
पाडिय पंचवीर समरंगणे णं पवणेण तरुवरा।। छ।।

जा पाडिय पंच वि पवर वीर तो धाविय णावइ खय समीर।।
उद्दाम सिंह संकास देह गज्जंत णाइँ खयसमय-मेह।।
महिणाह जउण विग्गह पसूअ णं मारण मण जमराय दूअ।।
कूरंतरंग रिउ भीमरूव णं णवगह सइँ पच्चक्ख हूव।।
आरुहिवि ससारहिँ रहि तुरंत तिक्खण पहरण करयले धरंत।।
एयहिँ वेढिउ रविकित्ति केम वणे पंचाणणु करि वरिहिँ जेम।।
वाणइँ मेल्लंतेहिँ तेहिँ वुत्तु सिरिसक्कवम्म णरणाह पुत्तु।।
भो पडिभड भंजण भाणुकित्ति जइ अज्जु ण णिरसहुँ तुज्झ कित्ति।।
समरंगणि पयडिय वीर वित्ति ता जणणहो पय पेक्खं ण वित्ति।।
जइ माणिणि मणहर अत्थि सत्ति ता लइ लहु मेल्लहि किण्णसत्ति।।

4/16

दुर्धर पाँच यवन-भटों के पतन के बाद यवनराज के दुर्दान्त 9 पुत्र युद्ध में उतरते हैं। रविकीर्ति अकेले ही उनके सिरों को विखण्डित कर डालता है—

द्विपदी— राजा **रविकीर्ति** ने समरांगण में उन पाँचों शत्रु-सुभटों को, उनके शरीर सहित छत्र, ध्वज, चामर, रथवर और चंचल हयवरों का छेदन कर उसी प्रकार गिरा दिया, जिस प्रकार कि पवन द्वारा विशाल वृक्ष-पंक्ति गिरा दी जाती है।

जब शत्रुपक्ष के उन पाँचों वीरों को धराशायी कर दिया गया, तब उनके साथी सुभट भी समरांगण छोड़कर इतनी तीव्र गति से भागे, मानों प्रलयकालीन वायु ही प्रवाहित होने लगी हो।

तब पृथिवीनाथ यवनराज के शरीर से उत्पन्न, उद्दाम एवं सिंह के समानदेह वाले, क्षयकालीन प्रचण्ड-वायु के समान गरजते हुए, क्रूर, चंचल, लम्बी देह एवं रौद्र रूप वाले तथा शत्रु-पक्ष के संहार करने के लिये यमराज के दूत के समान मनवाले (यवनराज के) 9 पुत्र इस प्रकार उपस्थित हो गये, मानों साक्षात् नवग्रह ही जुट गये हों।

तीक्ष्ण प्रहरणास्त्र हाथों में लेकर उन नौ यवन-पुत्रों ने सारथियों के साथ रथपर सवार होकर राजा रविकीर्ति को रणभूमि में किस प्रकार घेर लिया? ठीक, उसी प्रकार, जिस प्रकार कि वन में सिंह करिवरों द्वारा घेर लिया जाता है।

बाणों की वर्षा करते हुए उन यवन-पुत्रों ने नरनाथ शक्रवर्मा के पुत्र राजा रविकीर्ति से कहा— प्रतिभटों के भंजक हे रविकीर्ति, यदि इस समरांगण में आज हम तुम्हारी कीर्ति का निरसन कर अपनी वीर-वृत्ति को प्रकट न कर दें, तो हम अपने पिता के चरणों के दर्शन एवं सेवा की वृत्ति से वंचित हो जायें।

मानिनियों के मन को हरण करनेवाले हे शक्ति-सम्पन्न, यदि तेरे पास शक्ति-शस्त्र हो, तो उसे लेकर तत्काल ही हम पर क्यों नहीं छोड़ता? उनकी चुनौती भरी ललकार सुनकर रविकीर्ति क्षुब्ध हो उठा। उसके रोंगटे खड़े हो

तं सुणिवि वयणु उद्धसिय रोमु अरुणच्छिच्छोहविच्छुरिय वोमु।।
णिल्लूरिय णिय वइरियण-पोमु अइ विसमउ णं खय-समय-सोमु।।

15 घत्ता— रविकित्ति णरिंदें करि करेवि गुण-मंडिउ गंडीउ पयंडेहिँ।
संधिवि दुद्धर सरघोरणिए णवहँ वि सिरि पाडिय दोहंडेहिँ।। 75।।

4/17

Śrinivāsa, the General of Yavanrāja encircles with the volley of arrows to King Ravikīrti.

दुवइ— णव-णव णिय तणूअ परिणिवडणे विउलु वि बलु पहिल्लओ।
णिरु सिरारणालु विहुणंतउ जउणु वि हियए सल्लिओ।। छ।।

एत्थंतरे वाहिवि रहु सराहु कुवियाणणु धाइउ णाइँ राहु।।
णिसियग्ग किवाणु-लया सणाहु णामेण पसिद्धउ मलयणाहु।।
5 सो पडिउ खुरप्पें णिहउ केम सिंहाहउ मत्तगइंद जेम।।
जा दिट्ठउ पडियउ मलयणाहु णं मरुणाहउ तरुवरु ससाहु।।
ता पणवेवि जउण णराहिवासु उट्ठिउ गज्जंतउ सिरिणिवासु।।
ते भिडिय परोप्परु तामसेण णावइ दुज्जोहण भीमसेण।।

गये, उसकी आँखों में खून उतर आया, जिनकी लालामी आकाश में भी फैल गयी। वह ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों अपने बैरी रूपी कमलों को नष्ट करने के लिये अतिविषम प्रलयकालीन सोम (चन्द्र) ही हो।

घत्ता— इस प्रकार अपने हाथी पर सवार राजा **रविकीर्ति** ने गुण (डोरी) से मण्डित प्रचण्ड गाण्डीव-धनुष पर दुर्धर शर-पंक्ति को जोड़कर उन नौ यवन-पुत्रों के शिरों को भी स्वयं अकेले ही अपने भुजदण्ड से दो भागों में विखण्डित कर डाला। (75)

4/17

शत्रु-राजा का प्रधान सैन्याधिकारी - श्रीनिवास राजा रविकीर्ति को अपने बाण-समूह से घेर लेता है—

द्विपदी—अपने नौ-नौ पुत्रों के बुरी तरह पतन हो चुकने अर्थात् अग्र पंक्ति वाले बल के अत्यन्त कमजोर हो जाने पर भी, वह **यवनराज**, शत्रु-सेना के सिर-कमलों को विधुनित करता (काटता) हुआ भी अपने हृदय में संशकित हो उठा।

इसी बीच कुपित होकर **मलयनाथ** नाम से प्रसिद्ध नरेश अत्यन्त तीक्ष्ण खड्ग-लता एवं कवच धारण कर बाणों से सुसज्जित रथ पर सवार होकर राहु के समान दौड़ा। **रविकीर्ति** ने उसे भी तीक्ष्ण क्षुरप्र (खुरपे) से मारकर उसी प्रकार पटक दिया, जिस प्रकार की सिंह से आहत होकर मत्त गजेन्द्र पटका जाता है।

प्रचण्ड आँधी से गिरे हुए शाखाओं सहित विशाल तरुवर के समान जब उस राजा मलयनाथ को भी भूमि पर गिरा हुआ देखा, तब यवनराज को प्रणामकर **श्रीनिवास** नाम का एक राजा गर्जना करता हुआ उठा।

तामसिक वृत्ति वाले (अथवा अन्धकार एवं सूर्य के समान वे) दोनों (राजा श्रीनिवास एवं रविकीर्ति) इस प्रकार भिड़ गये, मानों दुर्योधन एवं भीमसेन ही भिड़ रहे हों, अथवा मानों कंस-दैत्य एवं वासुदेव कृष्ण ही हों, अथवा मानों,

णावइ कंसासुर वासुएव णावइ तिहुवणवइ कामएव।।
णावइ दूसह दाणव सुरिंद णावइ मयमत्त महाकरिंद।।
णावइ रहुवइ रावण सदप्प णावइ छणरोहिणिवइ विडप्प।।
णावइ किरीडि रविसुअंसगाव णावइ ससरीर सुपुण्ण-पाव।।
णावइ अणिवारिय देह जीव णावइ दुलंघ मयरहर दीव।।

घत्ता— विरसंतउ दिढ गुणु धणु लएवि सिरिणिवास णामेण णरिंदैं।
छाइउ रविकित्तिं सरेहिं लहु णं दिणयर-मंडलु घणविंदैं।। 76।।

4/18

Enemy-General Śriniwāsa wounds seriously King Ravikīrti.

दुवइ— णिसियाणणु खुरप्पु मेल्लेप्पुणु गुण-गंडीउ छिण्णओ।
मोग्गर गुरु-पहार-परिचूरिउ रहु वच्छयलु भिण्णओ।। छ।।

हा-हा रउ घुट्ठउ सुरयणेण संगाम-रंग-रंजिय मणेण।।
हल्लोहलि हूअउ सयलु सेण्णु अवरहि रहि रविकित्ति वि णिसण्णु।।
णहरहिँ णिरसंतउ केसपासु दरदरिसंतउ सवयणु सहासु।।
जपंतंउ पडिमडु सिरिणिवासु सच्चउ तुहुँ महियलु सिरिणिवासु।।

त्रिभुवनपति जिनेन्द्र एवं कामदेव ही हों, अथवा मानों, दुस्सह-दानव एवं सुरेन्द्र ही हों, अथवा मानों महाशक्ति शाली दो करीन्द्र ही हों, अथवा मानों, रघुपति एवं दर्पीला रावण ही हो, अथवा मानों पूर्णचन्द्र एवं राहु ही हों, अथवा मानों किरीट एवं सूर्य-किरणों का समूह ही हो, अथवा मानों पाप एवं पुण्य ही सशरीरी होकर वहाँ इकट्ठे हो गये हों, अथवा मानों अनिवारित शरीर और जीव ही हों, अथवा मानों दुर्लघ्य समुद्र एवं द्वीप ही वहाँ उपस्थित हो गये हों।

घत्ता— टंकार करते हुए सुदृढ़ ज्या वाले धनुष को लेकर **श्रीनिवास** नामक उस शत्रु-राजा ने राजा **रविकीर्ति** को बाणों द्वारा तत्काल ही उसी प्रकार आच्छादित कर लिया, जिस प्रकार कि मेघ-समूहों द्वारा सूर्यमण्डल आच्छादित कर लिया जाता है। (76)

4/18

शत्रु-राजा का प्रधान सैन्याधिकारी — श्रीनिवास राजा रविकीर्ति को बुरी तरह घायल कर देता है—

द्विपदी—(उस राजा श्रीनिवास ने अपना) — तीक्ष्णमुखी क्षुरप्र-शस्त्र छोड़कर राजा **रविकीर्ति** के गाण्डीव-धनुष की डोरी को काट डाला, और मुद्गर के भीषण प्रहार से रथ को तो चूर-चूर कर ही डाला, उसके (रविकीर्ति के) वक्षस्थल को भी आहत कर दिया।

संग्राम के रंग में रंगे हुए मन वाले सुरगणों के द्वारा हा-हाकार मचा दिया गया। समस्त सेना में कोलाहल मच गया। रविकीर्ति ने भी अपना रथ बदलकर दूसरे पर सवार हो गया। नख रूपी कंघी से अपने बालों को सम्हालता हुआ अपने मुख पर कुछ-कुछ मुस्कुराहट की झाँकी देता हुआ अपने प्रतिभट **श्रीनिवास** को यह कहता हुआ कि—

पइँ मुएवि अण्णु को मइँ समाणु पारंभइ संगरु णरु-समाणु।।
पइँ मुएवि अण्णु को महिहिँ जाउ जो छिण्णइ महु धउ-छत्तु चाउ।।
पइँ मुएवि ण संदणु कोवि मज्झु संचूरइ रिउ पहरणु अवज्झु।।
10 तुहु वीरलच्छि मंडिय सरीरु संगाम धरणि धीरविय भीरु।।
इय भणेवि विसज्जिउ वाणजालु धग-धग-धगंतु णहयले विसालु।।
तेणाहउ पडियउ धरणिवीढे गय पक्खु गरुड णं कुरुहगीढे।।
मुच्छा विहलंघलु धुलिय देहु णावइ णायरिणिहउ महेहु।।
खणु एक्कु पुणुवि उट्ठिउ तुरंतु वाणासणु वाणइ संभरंतु।।

15 घत्ता— रविकित्तिहि साहणे उच्छरिउ णावइ कालेविणि गज्जंतउ।।
पइँ पाडिउ हउँ पावेवि छलु णउ बलेण पुणु-पुणु जंपंतउ।। 77।।

4/19

King Ravikīrti puts him to death.

दुवइ— मेल्लेवि सिरिणिवास णरणाहेँ बेणारायदारुणा।
परपाणावहारणं विसहर रिउ वणसोणियारुणा।। छ।।

ते खंडिय बेण्णिवि बाण जाम रविकित्तिणरिंदेँ चारि ताम।।

"हे श्रीनिवास, पृथिवीतल पर तू ही सच्चा वीर है। तुझे छोड़कर और कौन मेरे समान स्वाभिमानी व्यक्ति है, जो मेरे साथ युद्ध प्रारंभ कर सकता है? तुझे छोड़कर इस पृथिवी पर अन्य कौन सुभट ऐसा उत्पन्न हुआ है, जो मेरी ध्वजा एवं छत्र को काट सके और तुझे छोड़कर इस पृथिवी पर अन्य कोई उत्पन्न नहीं हुआ है, जो प्रहरणों से अबध्य मेरे रथ को चूर-चूर कर सके। तेरा शरीर वीर-लक्ष्मी से मण्डित है, और रण-भूमि में भीरु-सुभटों को धैर्य बँधाने वाला है।

यह कहकर राजा **रविकीर्ति** ने विशाल नभस्तल में धग-धग करते हुए अपने बाण-जाल को छोड़ा। उनसे आहत होकर वह **श्रीनिवास** उसी प्रकार समर-भूमि में गिर पड़ा मानों गरुड़राज ही कटे पंख के समान वृक्षसमूह के मध्य गिर गया हो। मूर्च्छा से विह्वल और घुलित देह वाला वह श्रीनिवास ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों सिंह द्वारा आहत करीन्द्र ही हो। क्षणेक के बाद तत्काल ही वह (श्रीनिवास) उठा और पुनः धनुष बाण सम्हालने लगा।

घत्ता— उसने उछलकर रविकीर्ति पर गरजते हुए इस प्रकार शर-सन्धान किया, मानों मेघ-माला ही गरज रही हो और बार-बार इस प्रकार चिल्लाने लगा-"तूने मुझे अपनी शक्ति से नहीं, बल्कि छल-बल से मारा है।" (77)

4/19

राजा रविकीर्ति श्रीनिवास का वध कर डालता है—

द्विपदी— शत्रु राजा **श्रीनिवास** ने शत्रु के प्राणों का अपहरण करने वाले विष से भरे हुए, अत्यन्त दारुण तथा घावों से रिसते हुए लाल-रक्त के समान दो बाण अपने शत्रु-राजा रविकीर्ति पर दागे—

राजा **रविकीर्ति** ने जब उन दोनों बाणों को खण्डित कर डाला, तब उसने पुनः चार बाण दागे। उन्हें भी

पट्ठविय तेवि खंडिय तुरंत णं विवरँ विसहरि विप्फुरंत।।
पुणु वसु विमुक्क लहु तेवि छिण्ण चउदिसहिँ स बाणहि वलि वि दिण्ण।।
पुणु सोलह ते कप्परिय केम तिहुअण णाहेण कसाय जेम।।
पुणु कोउ करेवि वत्तीस मुक्क णं जम परिपेरिय दूअ दुक्कु।।
गय विहल तेवि णं पुण्णहीण अद्धागय मारण मणणिहीण।।
इय बाणजालु खंडिउ समग्गु पुणु स सिलीमुहु मेल्लणहिँ लग्गु।।
रविकित्ति कित्ति पूरिय दिसासु विरइय वइरीयण बाणपासु।।
तेहिँ वि पच्छाइउ सिरिणिवासु णावइ कम्महिं जीवहो विलासु।।
चूरेवि रहु छिंदेवि चारु छत्तु फाडेवि धयवडु विरएविअ खत्तु।।
तिक्खग्ग खुरुप्पेँ छिण्णु सीसु कमलु व हंसेँ भूभंगभीसु।।
गय सीसु वि धडु धावंतु भाइ बहु रूअ धारि णडु-पवरु णाइँ।।

घत्ता— पुणु सोवि सहइ रण महि पडिउ सर संथरु वित्थरेवि णिरुत्तउ।
सिरि दाणेँ तोडिवि सामि-रिणु णिच्चिंतउ होएविणु सुत्तउ।। 78।।

रविकीर्ति ने तत्काल ही उसी प्रकार खण्डित कर दिया, मानों बाँबी से सर्प ने फुफकार मारकर ही उन्हें धराशायी कर दिया हो।

पुनः उस वीर **श्रीनिवास** ने आठ बाण छोड़े। **रविकीर्ति** ने उन्हें भी छिन्न-भिन्न कर दिया। ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों चारों दिशाओं में उन बाणों की बलि ही चढ़ा दी गई हो। श्रीनिवास ने पुनः सोलह बाण छोड़े। रविकीर्ति ने उन्हें भी नष्ट कर डाला। किस प्रकार? ठीक, उसीप्रकार, जिस प्रकार कि त्रिभुवननाथ जिन द्वारा कषायों को नष्ट कर दिया जाता है।

तब क्रुद्ध होकर उस श्रीनिवास ने बत्तीस बाण छोड़े, जो ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानों यमराज द्वारा प्रेरित उसके दूत ही उसकी ओर ढूँक रहे हों। किन्तु वे भी मार करने में उसी प्रकार विफल हो गये, जैसे मनहीन (संकल्परहित) पुण्यहीन व्यक्ति अपने कार्य में बीच में ही विफल हो जाता है। इस प्रकार राजा रविकीर्ति ने (स्वयं ही) अपने बाण इस प्रकार छोड़ना प्रारम्भ किया, मानों उसकी कीर्ति से दशों दिशाएँ ही भर गई हों। उसके बाणों ने बैरीजनों को अपने बाण-पाश में जकड़ दिया। श्रीनिवास इन बाणों द्वारा उसी प्रकार आच्छादित कर लिया गया, जिस प्रकार कर्मों के द्वारा जीव का विलास (ज्ञान-स्वरूप) ढँक दिया जाता हे। उसने श्रीनिवास के रथ को चूर-चूर कर उसके सुन्दर छत्र को क्षार-क्षार कर डाला, ध्वजा को फाड़ कर उसे क्षत-विक्षत कर दिया और फिर उसने तीखी नोक वाले खुरपे से भ्रूभंग से भयानक दिखाई देने वाले इस श्रीनिवास के सिर को उसी प्रकार छेद डाला, जिस प्रकार हंस कमल को। सिरविहीन वह धड़ रणभूमि में ऐसे दौड़ रहा था, मानों कोई कुशल बहुरुपिया-नट ही दौड़ लगा रहा हो।

घत्ता— रणभूमि में पड़े हुए श्रीनिवास का धड़ सुशोभित होने लगा। वह ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों शर-शैया पर ही पड़ा हो। इस प्रकार उसने अपना सिर दान में देकर अपने स्वामी **यवनराज** का ऋण चुका दिया और निश्चिन्त होकर सदा-सदा के लिये सो गया। (78)

4/20

Fierce fighting between Padmanātha, the vigourus enemy-General and King Ravikīrti.

दुवइ— एत्थंतरे सदप्पु सइँ उट्ठिउ जुइ णिज्जिय पयंगओ।
महिवइ पोमणाहु पोमाणणु पोमालिंगियं गओ।। छ।।

पढमु तेण रणरंगे चूरिओ
उप्पएवि करणेहिँ सुंदरो
जाम अण्ण संदणि परिट्ठिओ
भज्जमाणे एत्थंतरे रहे
धणु लएवि सिय भाणु-कित्तिणा
पोमणाहु वच्छत्थले हओ
पाविऊण चियणं पुणुट्ठिओ
ताम तासु चूरिउ महारहो
तं मुएवि विज्जए विलग्गओ
चडइ जाम तिज्जइ तुरंतओ
पुणु वि भग्ग संदणु चउत्थओ
सत्तमो वि अट्ठमु पराइओ

भाणुकित्ति रहु बाण पूरिओ।।
भाणुकित्ति तह जह पुरंदरो।।
ताम तेण सो लहु विणिट्ठिओ।।
वासरेस संदणि विहारहे।।
संधिऊण णिव भाणुकित्तिणा।।
धरणिवीढि परिवडिय देहओ।।
मेल्लमाण वाणइ ण संठिओ।।
मोग्गरेण रविकित्तिणा रहो।।
सो वि तेण सहसत्ति भग्गओ।।
दलिउ सो वि मणिगण-फुरंतओ।।
पंचमो वि छट्ठो पसत्थओ।।
सो वि तेण वाणेण घाइओ।।

4/20

पद्मनाथ एवं रविकीर्ति का तुमुल-युद्ध—

द्विपदी—इसी बीच (शत्रु-राजा **श्रीनिवास** के पतन के तुरन्त बाद ही–) अपनी द्युति से सूर्य-प्रभा को भी जीत लेने वाला, कमल के मुख के समान सुन्दर तथा जय-लक्ष्मी से आलिंगित देह वाला महीपति **पद्मनाथ** बड़े ही दर्प के साथ युद्ध हेतु (**यवनराज** की ओर से) स्वयं ही उठ खड़ा हुआ।

सर्वप्रथम उस पद्मनाथने रणभूमि में स्थित रविकीर्ति के रथ को वाणों से पूर कर उसे चूर-चूर कर दिया। इस विपन्नता की स्थिति में भी राजा रविकीर्ति अपनी इन्द्रियों एवं मन की दृष्टि से पुरन्दर-इन्द्र के समान सुन्दर (एवं हँसमुख) दिखाई देता रहा। जब वह रविकीर्ति दूसरे रथ पर आरूढ हुआ, तो उसे भी उस पद्मनाथ ने तत्काल ही विनष्ट कर डाला। सूर्य-रथ के समान तेज कान्ति-सम्पन्न उस रथ के भग्न हो जाने पर सूर्य के समान कीर्ति (आभा) वाले राजा रविकीर्ति ने धनुष लेकर उस पर बाण चढ़ाकर उसे पद्मनाथ के वक्षस्थल पर दे मारा, जिससे वह धरती पर (मूर्च्छित होकर) लुढ़क गया। (थोड़ी ही देर में) चेतना आने पर वह पुनः उठ खड़ा हुआ और रथ पर सवार होकर वह अपने बाण छोड़ भी न पाया था कि रविकीर्ति ने अपने मुद्गर की मार से उसके वेगगामी महारथ को चूर-चूर कर डाला।

पद्मनाथ जब पुनः नये रथ पर चढ़ा, तब उसे भी रविकीर्ति ने देखते ही देखते भग्न कर डाला। जब पद्मनाथ तुरन्त ही मणियों से स्फुरायमान तीसरे रथ पर सवार हुआ, तो उसे भी रविकीर्ति ने नष्ट कर दिया। उस पद्मनाथ के चौथे रथ को भी उसने भग्न कर दिया, पाँचवें एवं छठे प्रशस्त रथों को भी भग्न कर डाला। पुनः सातवें एवं आठवें रथ पर वह चढ़ा, किन्तु रविकीर्ति ने उन्हें भी अपने बाणों से नष्ट कर उसे पराजित कर दिया। पुनः लार

लहइ थत्ति सो जा ण रहवरे मुक्कलाल लोलंत हयवरे।
ता हसंति गयणे सुरासुरा सिरकिरीड किरणोलि भासुरा।।

घत्ता— एत्थंतरे मण्णेवि णियमणेण एहु वाणासण वाणहिँ दुज्जउ।
धाइउ कड्ढेवि करवालु लहु उग्गउ णाइँ सणिच्छरु विज्जउ।। 79।।

4/21

King Ravikīrti chivalrously slains Padmanatha, the vigourous enemy-General with all of his terrific warriors.

दुवइ— तं पेक्खेवि सरोसु आवंतउ करयल-कय-किवाणओ।
रविकित्ति वि तुरंतु अब्भिडियउ तज्जिय चाव-वाणओ।। छ।।

बे वि समच्छर णाइँ सणिच्छर।।
बे वि महाबल णं भीसम बल।।
बे वि भयंकर सुहड खयंकर।।
बे वि गुणायर सउल दिवायर।।
बे वि महाभड हयकुंजर घड।।
बे वि विसुद्धा जयसिरि लुद्धा।।
बे वि रुद्धा जममुह कुद्धा।।
बे वि पसिद्धा धण-कण-रिद्धा।।

टपकाते हुए चंचल घोड़ों वाले रथ पर वह चढ़ भी न पाया था कि अपने सिर की किरीट-किरणावलि से भास्वर दिखने वाले सुर एवं असुर देव (उसकी पराजय देखकर) आकाश में ही हँस पड़े।

घत्ता— इसी बीच में जब **पद्मनाथ** ने अपने मन में यह अनुभव कर लिया कि बाण-वर्षा में दुर्जेय **रविकीर्ति** को जीत पाना अत्यन्त कठिन है, तब उसने झपटकर करवाल को म्यान से निकाला और रविकीर्ति पर इस प्रकार टूट पड़ा, मानों उसके ऊपर शनीचर-ग्रह का ही उदय हो गया हो। (79)

4/21

राजा रविकीर्ति द्वारा पद्मनाथ एवं उसके यवन-सुभटों का विनाश—

द्विपदी—राजा **रविकीर्ति** ने क्रोधित **पद्मनाथ** को कृपाण हाथ में लेकर जब आता हुआ देखा, तब रविकीर्ति भी अपना धनुष-बाण फेंककर तथा तलवार लेकर तुरन्त ही उससे आ भिड़ा।

वे दोनों (रविकीर्ति एवं पद्मनाथ) उसी प्रकार मत्सर-गुण वाले थे, जैसे मानों (एक दूसरे के लिये) शनीचर-ग्रह ही हों (शनीचर-ग्रह कृष्ण वर्ण वाला माना गया है)। निर्भीक शक्ति सेना सम्पन्न वे दोनों ही भीषण महाबली थे। वे दोनों ही अत्यन्त भयंकर, प्रतिसुभटों का संहार करने वाले, दोनों ही गुणाकर, अपने-अपने कुलों के लिये दोनों ही दिवाकर के समान, दोनों ही महासुभट, दोनों ही महाकुंजरों के धड़ों को विदीर्ण कर डालने वाले, दोनों ही विशुद्ध, जयश्री के दोनों ही लोभी, दोनों ही अत्यन्त रुष्ट, दोनों ही यमराज के समान क्रोधित मुख वाले, दोनों ही प्रसिद्ध एवं धन-धान्य-कणों से समृद्ध, दोनों ही सुन्दर, तथा जयलक्ष्मी का हरण करने वाले, दोनों ही सुन्दर केश धारी तथा

बे वि मणोहर जय लच्छीहर।।
बे वि सबाला वइरि कराला।।
बे वि रवाला उण्णय भाला।।
अमरि सभग्गा रणमहिं लग्गा।।
तो एत्थंतरे सुहड णिरंतरे।।
जउणहो वीरे संगर धीरे।।
भडविब्भाडेवि खग्गु भमाडेवि।।
विहिय महाहउ रविकित्ती हउ।।
रहिरु विणिग्गउ जा मुच्छंगउ।।
ता किउ कलयलु बहिरिय णहयलु।।
उहय बलेहि मि विगय बलेहि मि।।
वियलिय वेयण पाविवि चेयण।।
पासहो मामँ भुअणेस णामँ।।
रणमहि वंते लहु उट्ठंते।।
खग्गुग्गामेवि कोहें भामेवि।।
जउण णरिंदहो दलिय करिंदहो।।
सुहडु सणामो कामिणि कामो।।
हउ वच्छत्थले णं कुंभत्थले।।
वण तंबेरमु णयण मणोरमु।।
हरिणा हीसें भिउडि विहीसें।।

घत्ता— णट्टलु व जसेणालंकियउ सिरिहरणयणु णरिंद वरिट्ठउ।।
रविकित्ति पसंसिउ सुरवरहिँ सूरत्तण-गुण-लच्छि-गरिट्ठउ।। 80।।

शत्रुजनों के लिये कराल-काल के समान थे। वे दोनों ही रमणीक एवं उन्नत भाल वाले थे। दोनों ही अमर्ष से भग्न और रणरंग में संलग्न थे।

इसी बीच सुभटों से ठसाठस भरे हुए युद्ध-क्षेत्र में यवनराज के साथ संग्राम में अत्यन्त धीर-वीर **विभ्रावट** नामक सुभट ने खड्ग घुमा-घुमाकर, महान् संहार कर रविकीर्ति को आहत कर दिया, उसके शरीर से खून बहने लगा और वह मूर्च्छित हो गया। इस कारण नभस्तल में बहिरा कर डालने वाला कुहराम मच गया। दोनों ही सेनाएँ विश्रान्त शक्तिहीन हो गई।

वेदना दूर होने पर चेतनावस्था को प्राप्त कर रणभूमि में ही स्थित कुमार पार्श्व के **भुवनेश** नाम का मामा तत्काल आगे बढ़ा, खड्ग को उठाया और क्रोधित होकर उसे घुमाकर वह **यवनराज** के करीन्द्रों का दलन करने लगा। कामिनियों के लिये कामतुल्य अपने ही नामधारी एक सुभट के कुम्भस्थल के समान वक्षस्थल मे अपना वह खड्ग उतार दिया। वह ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों भीषण लाल-लाल भ्रकुटि वाले सिंह के नयन-मनोरम वन्यगज के कुम्भस्थल को ही आहत कर दिया हो।

घत्ता— यश से अलंकृत **साहू नट्टल** के समान तथा **श्रीधर** जैसे पारखी नेत्र वाले वरिष्ठ कवि ने देवगणों द्वारा प्रशंसित शूरवीरता तथा गुणलक्ष्मी से गरिष्ठ राजा **रविकीर्ति** की प्रशंसा का यहाँ वर्णन किया है। (80)

Colophon

इय सिरि-पासचरित्तं रइयं बुहसिरिहरेण गुणभरियं।
अणुमण्णियं मणोज्जं णट्टल-णामेण भव्वेण।। छ।।

वण-रत्त-लित्त-गत्तणि वग्ग सयदल-समासिए समरे।
रविकित्ति-पसंसणए चउत्थी संधी परिसमत्ता।। छ।। संधि 4।।

Blessings to Sāhu Naṭṭala, the inspirer

येनाराध्य विशुद्ध-धीर-मतिना देवाधिदेवं जिनम्,
सत्पुण्यं समुपार्जितं निजगुणैः सन्तोषिताः बान्धवाः।
जैनं चैत्यमकारि सुन्दरतरं जैनी प्रतिष्ठा तथा,
सः श्रीमान् विदितः सदैव जयतात् पृथिवीतले नट्टलः।।

पुष्पिका

इस प्रकार गुणों से भरित, **नट्टल (साहू)** नामक भव्य के द्वारा 'मनोज्ञ' कहकर अनुमोदित इस **पार्श्वचरित** की रचना बुध **श्रीधर** (नामक) कवि ने की है।

मृत सुभटों के सैकड़ों शरीरावयवों से व्याप्त समर भूमि में व्रणों के रक्त से लिप्त अंग-प्रत्यंग वाले राजा **रविकीर्ति** की प्रशंसा करने वाली **चौथी सन्धि** हुई।

आश्रयदाता के लिये आशीर्वाद

विशुद्ध धीर-मति के द्वारा, जिसने देवाधिदेव की आराधना कर, अपने गुणों के द्वारा सत्पुण्य का उपार्जन किया, जिसने अपने बन्धु-बान्धवों को सन्तुष्ट किया, और जिसने सुन्दरतर इस जिन-चैत्यालय का निर्माण कराया तथा जैन-पद्धति से प्रतिष्ठा कराई, वह श्रीमान् **साहू नट्टल** इस पृथिवीतल पर सदैव जयवन्त बना रहे।

पंचमी संधी

5/1

Enemy Yavanrāja in a fit of anger, traps King Ravikīrti with his elephants.

घता– भज्जंतउ णियसाहणु णिएवि जउणु णराहिउ परबल कुद्धउ।
भूभाल चडावेवि खरणहरु हरिव करिंद-मंस-रस-लुद्धउ।। छ।।

दुवइ— मा-मा-मा-पलाहु जइ जाणहु महु उवयरिउ णियमणे।।
तं आयण्णिऊण पुणु लज्जइँ बलु भिडियउ रणंगणे।। छ।।

पयवडण णिपीडिय विसहरेहिँ चिक्कार परज्जिय जलहरेहिँ।।
सकणाणिल विहुणिय महुअरेहिँ उप्पाडिय दिढयर तरुवरेहिँ।।
नक्खत्तमाल-मंडियउरेहिँ विद्धंसिय णयरायरपुरेहिँ।।
पसरिय कर परिसियदिणयरेहिँ अणवरयमुक्क कर सीयरेहिँ।।
दिढदसणमुसल-हय-महिहरेहिँ णियबल कंपाविय महिहरेहिँ।।
कणयमय-सारि-सिरि-सुंदरेहिँ घंटा रव बहिरिय कंदरेहिँ।।
गिज्जावलि वलयालंकिएहिँ पडिगय-मारण-णीसंकिएहिँ।।
करडयल-गलिय-मयजल-कणेहिँ अगणिय महबल परवल कणेहिँ।।

5/1

क्रोधावेश में आकर यवनराज राजा रविकीर्ति को अपने गज-व्यूह से घेर लेता है—

घत्ता— अपने साधन (सैन्यदल) को पलायन करता हुआ देखकर वह यवनराजा राजा रविकीर्ति की सेना पर क्रोध करता हुआ, भौंहों को भाल पर चढ़ाए हुए ऐसा लग रहा था, मानों हाथियों के माँस-रस का लोभी तीक्ष्ण नखों वाला कोई सिंह ही हो।

द्विपदी—(पलायन करते हुए अपने सुभटों के प्रति वह (यवनराज) चिल्लाकर बोला–) हे वीरो, यदि तुम लोगों के मन में मेरे द्वारा किये गये उपकारों का कुछ भी स्मरण आवे, तो, रणभूमि से पलायन मत करो, भागो मत, मत भागो। (स्वामी का) यह आवाहन सुनकर समस्त सैन्य-बल लज्जित हो गया और रणांगण में लौट कर शत्रुओं से पुनः भिड़ने लगा।

उस यवनराज ने ऐसे मदोन्मत्त उत्तुंग एवं चपल गजों से राजा रविकीर्ति को जा घेरा, जिनके पदाघात ने विषधरों को भी पीड़ित कर डाला था, जिनकी चिंघाड़ ने मेघों को भी पराजित कर दिया था, जिनके कानों की वायु ने भ्रमर-पंक्ति को भी विधुनित कर डाला था, जिन्होंने सुदृढ़ तरुवरों को भी उखाड़ डाला था, जिनके उरुस्थल नक्षत्र मालाओं के हार से सुशोभित थे, जिन्होंने नगर, आकर एवं पुरों का विध्वंस कर डाला था, जिनकी उन्नत सूँडें सूर्य का स्पर्श कर रही थीं, जो अपनी-अपनी सूँडों से अनवरत जल-शीकर (जल कण) छोड़ते रहते थे, जो अपने दाँतों रूपी मुशल से पर्वतों को भी तोड़ते-फोड़ते रहते थे और अपने बल से पर्वतों को कँपाते रहते थे। जो स्वर्णमयी सारी (झूलों) एवं हौदों की शोभा से सुशोभित थे, जिनके घण्टा-रवों ने कन्दराओं को भी बहिरा बना दिया था, जिनकी ग्रीवाएँ वलयों से अलंकृत थीं, और जो प्रति-गजों को मारने में निःशंक थे, जिनके गण्डस्थलों से मद-जल-कण प्रवाहित हो रहे थे, और जो शत्रु-सैन्य के मदोन्मत्त गजों की अपेक्षा गणना में अगणित थे। जो शत्रु-सुभटों

णिद्दारिय रिउ-वच्छत्थलेहिँ सिंदूर-भरिय-कुंभत्थलेहिँ।।
जंगम-सिहरिहि व मणोरमेहिँ मयमत्त-तुंग तंबेरमेहिँ।।

15 घत्ता— एयहि वेढिय रविकित्ति कह जउणाणए विरएविणु मंडलु।
पंचास पंचदस सयणिवहँ जह दाणवविंदहिँ आहंडलु।। 81।।

5/2

King Ravikīrti becomes furious and destroys many excited elephants and soldiers of Yavanrāja.

दुवइ— मयमत्तइँ णिएवि मातंगइं मेल्लिवि खग्ग-लट्ठिया।
आवंतइँ सरोस धावंतइ करयले करेवि लट्ठिया।। छ।।

रविकित्तिणरिंदँ समरमज्झ बइरिय विमुक्क करिवर दुसज्झ।।
हउ कासुवि कुंभिहि तणउ कुंभु भीसण भड वच्छत्थल णिसुंभु।।
5 लइयइँ णिम्मल-मुत्ताहलाइँ णं णियजस धरणीरुह फलाइँ।।
तोडिउ कासु वि सुंडाल सुंडु रोसेण अमेल्लिय सुहड संडु।।
णिवडिउ होएविणु खंडु-खंडु महिमंडलि णं णव कयलिदंडु।।
कासुवि दसणइँ उप्पाडियाइँ दुज्जण-कुलाइँ णं साडियाइँ।।

के सिन्दूर से भरे हुए कुम्भस्थलों के समान वक्षस्थलों को विदीर्ण करने वाले थे, और जो जंगम पर्वत-शिखरों के समान मनोरम थे।

घत्ता— उस यवनराज ने इस प्रकार अपने 1550 गजराजों के द्वारा राजा रविकीर्ति को किस प्रकार घेरा? ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार मानों कि दानव-समूह द्वारा इन्द्र को ही घेर लिया गया हो। (81)

5/2

रौद्र रूप धारण कर राजा रविकीर्ति यवनराज के अनेक मदोन्मत्त हाथियों तथा उसके सुभटों को मार डालता है—

द्विपदी— यवनराज के मदोन्मत्त मातंगों से अपने को घिरा हुआ देखकर राजा रविकीर्ति भी अपनी खड्ग-यष्टि फेंककर अपने हाथों में गदा-लाठी लेकर उसकी ओर झपट्टा मारता हुआ दौड़ा।

उस राजा रविकीर्ति ने समर के मध्य शत्रु-पक्ष द्वारा छोड़े गये दुःसाध्य करिवरों में से किसी करिवर के गण्डस्थल को चीर डाला और भीषण भटों के वक्षस्थलों को वेध डाला। करिवरों के गण्डस्थलों से गिरे हुए निर्मल मुक्ताफलों को उसने स्वयं ले लिया। वे ऐसे प्रतीत होते थे, मानों उस (रविकीर्ति) के यश रूपी वृक्ष के फल ही हों। अत्यन्त रोष से भरकर उसने किसी-किसी गज की डाल के समान सुन्दर सूँड को ही तोड़ डाला और शत्रु-सुभटों की उन भुजाओं को भी न छोड़ा, जो पृथिवी-मण्डल पर खण्ड-खण्ड होकर गिरते ही ऐसी प्रतीत हो रही थीं, मानों नवीन-नवीन कदली-दण्ड ही उग रहे हों।

उस रविकीर्ति ने किसी-किसी गजराज के दाँतों को ही उखाड़ डाला, मानों उसके दुर्जन-कुलों को ही नष्ट कर दिया हो। वे गज-दन्त ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानों नागों, देवों एवं मनुष्यों के नेत्रों को आनन्द देने वाले जयश्री

खंभइ णं जयसिरि-मंदिरासु फणिसुर-णर-णयणाणंदिरासु।।
10 बालहिँ धरि कड्ढिउ कोवि केम भुव-जुअ बलेण घर साणु जेम।।
कासु वि णिरसिय णक्खत्तमाल णं वइरि-कित्ति-बल्ली विसाल।।
कासु वि संचूरिउ पुक्खरग्गु सीयर मुअंतु गयणयले लग्गु।।
कासु वि सयदल-कय-कणयसारि णं बिणिवारिय आवंति मारि।।
कासु वि पाडिय गुडमुहवडाइँ कासु वि णिद्धाडिय धयवडाइँ।।

15 घत्ता— रविकित्ति णरिंदहो रिउगयइँ करयलकय गयाए कुट्टंतहो।
गय-गयसयदल होएवि जिणहो कम्मपयडि णं तउ विरयंतहो।। 82।।

5/3

Yavanrāja is let down but stands up soon and gets Ravikīrti trapped with his elephants again.

दुवइ— परिगलियाउहो वि रिउ दुज्जउ जाणेवि जउणसामिणा।
पुणु वि करिंदविंद बेढाविउ मत्तमयंगगामिणा।। छ।।

ता णिएवि भाणुकित्ति लद्धसेय भाणुकित्ति।।
सक्कवम्मराय पुत्तु चारु वीरलच्छि जुत्तु।।

रूपी मन्दिर के स्तम्भ ही हों।

किसी-किसी सुभट के बालों को पकड़कर उसने अपनी ओर खींच लिया, किस प्रकार? ठीक, उसी प्रकार जिस प्रकार कि घर के कुत्ते को हाथ से पकड़ कर अपनी ओर खींच लिया जाता है। किसी-किसी हाथी की नक्षत्र-माला को उसने नष्ट कर दिया, मानों शत्रु की विस्तृत कीर्ति रूपी बल्ली को ही नष्ट कर दिया हो। किसी-किसी मत्तगज की मदजल के कणों को छोड़ने वाली गगनचुम्बी सूँड के अग्र भाग को ही उसने चूर-चूर कर डाला। किसी-किसी हाथी की स्वर्णनिर्मित सारी झूलों एवं हौदों के सैकड़ों टुकड़े कर डाले, मानों आती हुई महामारी के रोग को ही रोक दिया गया, हो। किसी-किसी हाथी के गुडरूप (लगे हुए सुन्दर) मुखपटों को फाड़ डाला, तो किसी-किसी के ध्वजापटों को ही नष्ट कर डाला गया।

घत्ता— इस प्रकार राजा रविकीर्ति ने अपने हाथ की गदा से शत्रु-पक्ष के मत्तगजों को कूटते-कूटते सैकड़ों टुकड़ों में, उसी प्रकार नष्ट कर डाला, जिस प्रकार जिनेन्द्र के द्वारा कर्म-प्रकृतियों को खण्ड-खण्ड कर नष्ट कर दिया जाता है। (82)

5/3

यवनराज ने मुँहकी खाकर भी रविकीर्ति को गज-समूह से पुनः घिरवा लिया—

द्विपदी—मदोन्मत्त गजेन्द्र पर आरूढ़ उस यवनराज ने जब यह जाना कि शत्रु राजा रविकीर्ति आयुध रहित हो जाने पर भी दुर्जेय है। अतः उसने उसे अपने करीन्द्र-समूह द्वारा चारों ओर से पुनः घिरवा दिया।

सूर्य की श्वेत किरणों के समान कान्ति वाले तथा सुन्दर वीर-लक्ष्मी से युक्त राजा शक्रवर्मा के पुत्र, राजा

मत्ततुंग हत्थि-जूहु धत्थ बेरिराय बूहु।।
णं चरो धरोहु णं सविग्गहो घणोहु।।
धाविओ हसंतु केम संगरे कियंतु जेम।।
कोवि पाइ धारिऊण खित्तु वोमे मारिऊण।।
कोवि भूअले णिहित्तु कोवि जायवेय दित्तु।।
कोवि तोलिओ करेण कोवि कुट्टउ भरेण।।
कोवि कुंभ एसि भिण्णु को बि लोयवाल दिण्णु।।
कोवि पाणिणा धरेवि संगरंगणे सरेवि।।
सेयवारि विंदु सित्तु रत्तवाह मज्झे घित्तु।।
कोवि भग्गु चिक्किरंतु सेल्ल लोउ संहरंतु।।
झत्तिरालिऊण सारि रत्तलित्त गत्तु हारि।।
एम सव्व हत्थि जाम पेल्लिया बलेण ताम।।

घत्ता— रविकित्ति णराहिउ पवर बलु जयसिरि सीमंतिणि रसभाविउ।
रोसेण पुणुवि पुणु गयवरहिँ जउण णरेसरेण वेढाविउ।। 83।।

रविकीर्ति ने अपने को शत्रु के मदोन्मत्त उत्तुंग हस्ति-समूहों से घिरा हुआ देखकर, पर्वत-समूह के समान, अथवा मूर्तिमान मेघ-समूह के समान उस गज यूथ को नष्ट करने के लिये वह (रविकीर्ति) हँसता हुआ किस प्रकार दौड़ा? ठीक, उसी प्रकार, जिस प्रकार कि युद्ध-भूमि में यमराज दौड़ पड़ता है।

किसी-किसी सुभट-शत्रु के पैर पकड़कर उसे चीर कर आकाश की ओर फेंक देता था, तो किसी-किसी को मारकर भूमि पर ही पटक देता था, और किसी को अग्नि में झोंक देता था।

किसी-किसी को हाथों पर तौलकर उसने झुला दिया, तो किसी-किसी को हथौड़े से कूट डाला। किसी-किसी के कुम्भस्थल को विदार दिया, तो किसी-किसी को लोकपालों को सौंप दिया।

पसीने में तर किसी-किसी को हाथों पर धरकर समरांगण में प्रवाहित रक्तधारा के मध्य सरका दिया, तो (शत्रु का) कोई-कोई हाथी अपने दाँतों से लोगों का संहार करता हुआ, चिंघाड़ता हुआ ही भाग खड़ा हुआ। रक्त से लिप्त गात्र वाला कोई-कोई हाथी अपने सारि (झूलों) तथा हौदों को ही पटक कर भाग खड़ा हुआ। इस प्रकार राजा रविकीर्ति ने घेरा डाले हुए उन समस्त हाथियों को अपने भुजबल से जब पेल डाला, तब—

घत्ता— अत्यन्त बलवान, जयश्री रूपी सीमन्तिनी के सुरस से भावित, उस यवनराज ने राजा रविकीर्ति पर क्रोधित होकर पुनः उसे अपने गज-समूह द्वारा घिरवा दिया। (83)

5/4

On request from Prime counsellers Prince Pārśwa proceeds again to the-battle-field with his big army (Akshauhiṇi-senā which normally consists of 109350 experienced foot-soldiers, 65610 trained horses, 21870 chariots and 21870 trained elephants).

दुवइ— एत्थंतरे महंत-मइ मंतिहिँ पणविवि पाय-पंकयं।
विण्णविओ जिणेंदु हयसेणहो णंदणु विगय-पंकयं।। छ।।

भो वम्मदेवि-णंदण णिराय छव्वग्ग-बइरि-विसहर-विराय।।
णीसेस णरिंद किरीडरयण णीलुप्पल संकास णयण।।
सयमह-सय-संथुव गुण-विसाल खयरोरय-णर-सुर-सामि-साल।।
जय-लच्छि-विहूसिय बाहुडाल णियवंस-सरोरुह-वण मराल।।
हय दुद्धर मार-णरिंद दप्प सूरोवि सूरु किं करइ बप्प।।
जइ होइ ण सारहि रहि महंतु ता किं गच्छइ भणु रवि णहंतु।।
दहणोवि दहणु ण दहणसमत्थु जइ पवणु ण पज्जालइ महत्थु।।
जइविणु माणुण्णइ सिरि धरेइ तो वि एकल्लउ भाणु किं करेइ।।
रिउ-गयवरेहिँ रविकित्तिराउ वेढिउ णं परिवेसेहिँ राउ।।
जह-जह चूरइ रिउ कुंजराइँ बल कंपाविय दिक्कुंजराइँ।।
तह-तह रविकित्तिणरिंदु तेण वेढिउ अवरेहिमि तक्खणेण।।

5/4

महामन्त्रियों का निवेदन सुनकर राजकुमार पार्श्व अक्षौहिणी-सेना (जिसमें कि लगभग 109350 प्रशिक्षित अनुभवी पदाति-सेना, 65610 प्रशिक्षित अश्व-सेना, 21870 प्रशिक्षित रथ-सेना और उतनी ही प्रशिक्षित गज-सेना रहती है-) के साथ रण-प्रयाण करते हैं—

द्विपदी— इसी बीच महामति मन्त्रियों ने हयसेन के पुत्र-जिन-पार्श्व के विगत मल चरण-कमलों में प्रणाम कर निवेदन किया—

हे वामादेवी के नन्दन, हे वीतराग, अन्तरंग के शत्रु-षड्वर्ग (काम, क्रोध, मद, हर्ष, माया एवं लोभ) रूपी विषधरों के लिये गरुड़ के समान हे देव, सम्पूर्ण राजाओं के मुकुटों के हे किरीट रत्न, नीलकमल के समान नेत्र वाले हे देव, सैकड़ों शतमखों-इन्द्रों द्वारा संस्तुत, गुण-विशाल, विद्याधर, नाग, नर एवं सुरों के हे स्वामिन्, जयलक्ष्मी से विभूषित हे विशाल भुजबल, अपने वंश रूपी कमल वन के हे मराल हंस, आप दुर्धर काम रूपी नरेन्द्र के दर्प के नाशक हैं।

कोई कितना ही शूरवीर क्यों न हो, फिर भी बाप रे बाप, वह तब तक अकेला कर ही क्या सकता है, जब तक कि उसके रथ पर कुशल एवं अनुभवी सारथी ही न हो? सुयोग्य सारथी के बिना आप ही बतलाइये कि क्या सूर्य और उसका रथ आकाश में चल सकता है? जलाने में समर्थ अग्नि भी तब तक जला डालने में सक्षम नहीं होती, जब तक कि प्रचण्ड वायु उसे प्रज्वलित न कर दे। भले ही रविकीर्ति ने उन्नत मान-अहंकार अपने सिर पर धारण किया, तो भी आप ही कहिये कि वह (रविकीर्ति) अकेले कर ही क्या सकता है?

वह राजा रविकीर्ति शत्रु-गजवरों से इस प्रकार घिरा हुआ है, मानों चन्द्रमा स्वयं अपने ही मण्डल से घिरा हुआ हो। वह रविकीर्ति दिक्कुंजरों के बल को भी कँपा देने वाले शत्रु-कुंजरों की जैसे-जैसे चटनी बना डालता है, वैसे ही वैसे वह उस यवनराज के दूसरे कुंजरों द्वारा तत्काल ही बेढ़ दिया जाता है।

हरु-हरि-विरिंचि-पुरंदरो वि तुह भुयवलेण तइयहँ ण कोवि।।
अम्हेहिँ मण्णिय ण रिउ कयंतु संधाणु ण तह कण्णा वरंतु।।
किं सामिण बहुणा भासिएण णियकज्जारंभ पणासिएण।।
हण्णइ ण जाम रविकित्ति देव मण्णहु ता अम्हहँ तणिय सेव।।

घत्ता— तं णिसुणिवि करुणारसभरिउ पासु कुमारु देउ संचल्लिउ।
अक्खोहिणी परिमिय बल सहिउ समरब्भर-सद्दें जगु हल्लिउ।। 84।।

5/5

Entry of Prince Pārśwa into the blood-flooded battle-field.

दुवइ— परियरियउ समंतिसामंतहिँ मंडलियहिँ जिणेसरो।
बहुविह धयवडोह जलवारण पच्छाइय दिणेसरो।। छ।।

अरि-करिडि-कुंभ-णिद्दलण सीहु कड्ढिय कराल करवाल जीहु।।
घणसार धूलि धूसरिय देहु णिय माय सहोयरे बद्धणेहु।।
सम्माणदाण पोसिय सवक्खु सपयावलच्छि तासिय विवक्खु।।
दुव्वार-वइरि सारंग बाहु हयसेण तणुरुहु पासणाहु।।
गंजोल्लिय-मणु सण्णहे वि गत्तु ताण वि विसालु सेयायवत्तु।।

हर (महादेव) हरि (विष्णु) विरंचि (ब्रह्मा), पुरन्दर (इन्द्र) इनमें से कोई भी आपके भुजबल की समानता नहीं कर सकता। इसीलिये हम लोगों ने अपने शत्रु यवनराज को न तो कृतान्त (यमराज) माना और न ही अपनी कन्या के वर-रूप में उसके साथ सन्धि ही की है।

हे स्वामिन्, अपने कार्यारम्भ को नष्ट करने तथा अधिक बोलने से क्या लाभ? हे देव, राजा रविकीर्ति के जीवित रहते हुए तक की हमारी भी सेवा मानिए।

घत्ता— मन्त्रियों का निवेदन सुनकर करुणा रस से भरे हुए कुमार पार्श्व देव अपनी अक्षौहिणी-सेना के साथ जब चलने लगे, तब समर-प्रयाण सूचक शब्दों से सारा जगत् हिल उठा। (84)

5/5

कुमार-पार्श्व का रक्त-रंजित समर-भूमि में प्रवेश—

द्विपदी— अपने महामन्त्रियों, सामन्तों एवं माण्डलिक राजाओं से घिरे हुए पार्श्व जिनेश्वर ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानों विविध प्रकार के ध्वजपटों और जलवारण-छत्र से ढँका हुआ सूरज ही हो।

शत्रु-पक्ष के गज-कुम्भों को विदीर्ण करने में सिंह के समान पार्श्व ने कराल-काल की जिह्वा के समान तलवार म्यान से बाहर निकाल ली।

कपूर-रज से धूसरित देह वाले, अपनी माता के सहोदर (मामा)–रविकीर्ति के स्नेह से बँधे हुए, स्वपक्ष के लोगों को सम्मानादि-दान से पोषित करने वाले, अपने प्रताप रूपी लक्ष्मी से विपक्ष को संत्रस्त करने वाले, दुस्साध्य शत्रुरूपी हरिणों के लिये व्याध के समान, राजा हयसेन का पुत्र पार्श्वनाथ, रोमांचित कर देने वाले कवच को अपने शरीर पर धारण कर विशाल श्वेतातपत्र को (सिर पर) तानकर, हाथ में धनुष धारण कर, उसकी डोरी को खींचकर, उत्तम

करे करेवि सरासणु गुणु लुहेवि जोत्तिय हयवरे रहे आरुहेवि।।
णिग्गउ णिरु सिरसररुहु धुणेवि रविकित्ति-मंति वयणइँ सुणेवि।।
10 रिउ-समुहुँ ढुक्कु केरिसु विहाइ खय-समय-समुब्भउ भाणु णाइ।।
अइ दुण्णिरिक्खु णं धूमकेउ जज्जल्लमाणु णं जायवेउ।।
कुवियाणणु ण पच्चक्ख कालु दूसहु णं सणि संगर-रसालु।।

घत्ता— तं पेक्खिवि परबलु थरहरिउ णं कयलीदलु पवण-समाहउ।
थक्कउ पेक्खंतहँ सुरयणहँ गलियमाणु परिहरिवि महाहउ।। 85।।

5/6

Prince Pārśwa by his fighting tactices lets down very badly the flock of excited elephants of Yavanrāja.

दुवइ— अहवा इउ ण चोज्जु तहो दंसणे जरिउ पत्तणिग्गहो।
जाया जसु जयम्मि णामेणवि दूरोसरहि दुग्गहो।। छ।।

जउणाणउ बलु भीसिवि भरेण पीडेवि फणिवइ णियरहभरेण।।
रविकित्ति णरेसरु धीरवेवि करे ससरु सरासणु परिठवेवि।।
5 बावल्लहिँ जोहहिँ खउ करेवि धाविउ गयसम्मुहुँ करेवि।।

जाति के घोड़ों से जुते हुए रथ पर सवार होकर, अपने सिर रूपी कमल को धुनकर, रविकीर्ति के मन्त्रियों के निवेदन को सुनकर जब उस रणभूमि में ढूँका, तब वह किस प्रकार सुशोभित हुआ? ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार कि मानों प्रलयकालीन प्रचण्ड सूर्य का ही उदय हुआ हो। योद्धाओं की उस भीड़ में भी वह उसी प्रकार दुर्निरीक्ष्य था, जैसे कि मानों धूमकेतु ही हो, अथवा मानों जाज्वल्यमान जातवेद-(धगधगाती हुई प्रचण्ड) अग्नि ही हो, अथवा मानों कुपित मुखवाला साक्षात् यमराज ही हो, अथवा मानों युद्ध-रसिक दुस्सह शनीचर ही (आ गया) हो।

घत्ता— कुमार पार्श्व को समरभूमि की ओर आता देखकर, शत्रुपक्ष उसी प्रकार थर्रा उठा, जिस प्रकार कि पवनाहत कदली पत्र। गलित मान होकर शत्रु पक्ष का सैन्य-समूह अपना युद्ध-कार्य छोड़कर देवगणों की ओर निहारता हुआ स्तम्भित ही रह गया। (85)

5/6

कुमार पार्श्व अपने रण-कौशल से यवनराज के करीन्द्रों के छक्के छुड़ा देता है—

द्विपदी—अथवा, संसार में जिस कुमार पार्श्व का नाम लेने मात्र से ही जब दुष्ट ग्रहों तक का नाश हो जाता है तब यह कोई आश्चर्य का विषय ही नहीं कि उसके दर्शन-मात्र से ही शत्रु-पक्ष का भी निग्रह न हो गया हो।

यवनानी सेना को डराकर वह कुमार पार्श्व अपने रथ के भार से शेषनाग को पीड़ित कर, (अपने मामा–) राजा रविकीर्ति को धैर्य बँधाकर, हाथ में बाण सहित धनुष को साधकर, बाबले योद्धाओं का क्षय करने हेतु, शत्रुगजों के क्षय करने हेतु उनके सम्मुख झपटा और तीक्ष्ण असिधार द्वारा कितने ही गजकुम्भों का निर्दलन कर उसने कर्कश

णिसियासि-धार णिद्दलिय केवि कुंभत्थले कडुरडि थरहरेवि।।
णिवडिय महिमंडलि सहहिं केम सयमह-पवि-हय धरणिहर जेम।।
उत्तुंग गिरिंद समाण जेवि दीहर कुंतग्गहिँ भिण्ण तेवि।।
णं सलिल पवाहहिँ महिहरिंद विवरंतरि धारिय किण्णणरिंद।।
10 तिक्खग्ग खुरुप्पहिँ छिण्ण केवि गय-मूलतरुव परिवडिउ तेवि।।
णिद्दलिय केवि कड्ढेवि करालु करवालु दलिय वइरिय-कवालु।।
परिवडिय सहहिं रंणे गरुअकाय णं जयसिरि कीला सेलराय।।
करडयल गलिय मयमत्त जेवि ओसारिय बाणहिँ हणेवि तेवि।।
णं णीरय पलय-समीरणेहिँ गयणंगणे रेणु समीरणेहिँ।।

15 घत्ता— परिहरिय केवि चूरियदसण सत्ति तिसूल घाय घुम्माविय।
दुज्जण इव दरिसिय मय-विहव भूअवलेण धरणीयलु पाविय।। 86।।

5/7

Yavanrāja gets furious on the heavy destruction of his extremely powerful elephants.

दुवइ— इय णिद्दलिय सयलमह मयगल पासकुमार सामिणा।
सयलामलससंक सण्णिह मुह सुरवणियाहिरामिणा।। छ।।

शब्दों में ललकार (कडुरडि) कर उन्हें थर्रा दिया। वे शत्रु-गज महिमण्डल पर गिरकर किस प्रकार सुशोभित हो रहे थे? ठीक, उसी प्रकार जिस प्रकार कि शतमख-इन्द्र के बज्रवाणों द्वारा आहत धरणीधर-पर्वत सुशोभित होता है। जो गज उत्तुंग गिरीन्द्र के समान थे, उन्हें भी कुमार पार्श्व ने दीर्घ कुन्ताग्रों से विदार कर भूमिसात् कर डाला। वे ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानों सलिल-प्रवाहों से प्रवाहित महिहरेन्द्रों (पर्वतों) को किन्नरेन्द्रों ने विवरान्तरों (गुफागृहों) में ही छिपा लिया हो।

किसी-किसी शत्रु-गज को तेजधार वाले खुरपों के अग्रभागों से छिन्न-भिन्न कर डाला। वे भूमि पर उसी प्रकार गिर पड़े, जिस प्रकार कि जड़विहीन वृक्ष गिर पड़ता है। कराल करवाल निकालकर उसने किसी शत्रु-गज का निर्दलन कर दिया तो किसी के कपाल को दलित कर डाला। रणभूमि पर पड़े हुए भीमकाय वाले वे शत्रु-गज ऐसे सुशोभित हो रहे थे, मानों जयश्री रूपी नायिका के लिये क्रीडा-पर्वत ही हों। जिन गजों के गण्डस्थलों से मद प्रवाहित हो रहा था, उन्हें भी बाणों से मारकर दूर गिरा दिया। वे ऐसे लग रहे थे, मानों प्रलयकालीन धूलिमिश्रित वायु के द्वारा गगनांगन में बादल ही उड़ा दिये गये हों।

घत्ता— भुजबलि उस कुमार पार्श्व ने अपनी शक्ति के साथ घुमा-घुमाकर त्रिशूल के घातों द्वारा मद की उन्मत्तता के वैभव को दिखाने वाले किसी-किसी शत्रु-गज के दाँतों को चूर-चूर कर उन्हें मदोन्मत्त दुर्जन के समान धरती तल पर (कूड़े के ढेर में) फेंक दिया। (86)

5/7

यवनराज अपने महागजों की संहार-लीला से अत्यन्त क्रोधित हो उठता है—

द्विपदी—इस प्रकार पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान मुख वाले, सुरांगनाओं (तथा सुन्दर नागकन्याओं) को मोहित करने वाले उन स्वामी पार्श्वकुमार ने यवनराज के समस्त मदोन्मत्त शत्रु-गजों को निर्दलित कर डाला।

रुहिरोल्लियाइँ सरसल्लियाइँ।।
गयचेयणाइँ बहुवेयणाइँ।।
वियलिय गुडाइँ तह मुहवडाइँ।।
लुअ धय-वडाइँ हय-हय-थडाइँ।।
भीसावणाइँ असुहावणाइँ।।
चुअचामराइँ हसियामराइँ।।
गलिय-जसाइँ पूरिय-रसाइँ।।
विहडिय-दियाइँ अवगय-सियाइँ।।
णिवडिय-सिराइँ खंडिय-कराइँ।।
पहराउराइँ ताडिय उराइँ।।
भिंदिय-णसाइँ किंदियवसाइँ।।
सोसिय-रसाइँ हय-साहसाइँ।।
पयडिय-मुहाइँ पाविय-दुहाइँ।।
णिरसिय-सिवाइँ पोसिय-सिवाइँ।।
तह वायसाइँ महरक्खसाइँ।।
तज्जिय-मयाइँ महियल गयाइँ।।
अइ संकुलाइँ करिवर-कुलाइँ।।

घत्ता— पेक्खेवि रोसारुणलोयणहिँ जउण णराहिवेण परिभावउ।
को महियले महु मयगलहिँ जो ण महाणरवइ संताविउ।। 87।।

उसके (सभी निर्दलित गज) बाणों से बिद्ध रहने के कारण रुधिर से लथपथ थे, अतीव वेदना के कारण मूर्च्छित हो रहे थे, उनके मुखपट तथा वचन विगलित हो गये थे और ध्वजा-पताकाएँ चिथड़े-चिथड़े हो गई थीं, घोड़ों के समूह के समूह मृत हो चुके थे, जो अत्यन्त भयावने एवं अशोभन लग रहे थे। उनके चामर ध्वस्त हो गये थे, अतः देव गण उनकी हँसी उड़ा रहे थे। उनकी गली हुई नसों (जसा) से पृथिवी पट गई थी, उनके दाँत विखण्डित होकर शोभारहित हो गये थे। उनकी शिराएँ (जहाँ-तहाँ–) गिरी हुई थीं, सूँडें खण्डित पड़ी थीं, प्रहारों के कारण वे आकुल व्याकुल थे। उनके उरस्थल ताडित थे, नसें कटी हुई थीं और वसा (चर्बी) बिखरी पड़ी हुई थी। किसी-किसी की रसादि धातुएँ शुष्क हो रहीं थी, इस कारण वे साहस विहीन हो रहे थे। कोई-कोई मुँह के बल गिरे पड़े थे, अतः कष्ट पा रहे थे। जिनका शिव (सुख) नष्ट हो चुका था अर्थात् जो मृत हो चुके थे, वे शिवाओं (शृगालों), कौवों तथा महाराक्षसों का पोषण कर रहे थे अर्थात् उनका माँस शृगाल, कौवे और महाराक्षस खा रहे थे और वे मृगों को डाँट-डाँट कर भगा रहे थे। इस प्रकार करिवरों के कुल-समूह अत्यन्त संकुलित होकर धरती पर बिखरे हुए पड़े थे।

घत्ता— क्रोधावेश से भरकर रक्तवर्णाभ नेत्रों से अपने गज-समूहों का संहार देखकर वह यवनराज अपने मन में चिन्तित होकर सोचने लगा कि महीतल पर ऐसा कौन सा महानरपति है, जो हमारे मदोन्मत्त महागजों से सन्तप्त न हुआ हो? (87)

5/8

Yavanrāja is worried over the heavy loss of his elephants and thinks about the strength of his powerful enemy (Pārśwa).

दुवइ— एक्कल्ले अणेण पुणु दारिय चूरियमत्त कुंजरा।
अइगंभीरघोस घण-विग्गहं महु णं ककुह-कुंजरा।। छ।।

एरिसु विक्कमु जसु एत्थु अत्थि महियले तहो दुल्लहु किंपि णत्थि।।
मण्णमि सुरवरु एहु पवरहेइ इयरह कह महबलु खयहो णेइ।।
अहवा किं वरविज्जा करंडु विज्जाहरु रण-जणणिहि तरंडु।।
इयरहँ कह मत्त महागयाइँ महु तणइँ खणेण समाहयाइँ।।
अहवा किं मणुअहो करेवि वेसु महु बलु चप्पिउ रोसेण सेसु।।
अवयरिउ एत्थु करिचूरणत्थु विसमय बाणहिँ भूसेवि हत्थु।।
अहवा जो जगि जिणणाह वुत्त जुअ खउ लोयहिँ सो एहु पुत्तु।।
इयरह कह गय संहरिय सव्व णिरसिय वइरिय जण महंत गव्व।।
अहवा महु रिउणा भत्तियाए मण-वयण-तणुहिं मह सत्तियाए।।
आराहिउ होसइ कोवि देउ इयरहँ कह मायंगहँ अजेउ।।
अहवा किं महु पवियप्पणेण कयसंदेहें पुणु-पुणु अणेण।।
करे कंकणु जो दप्पणे णिसेइ तं पेक्खिवि को णउ णरु हसेइ।।

5/8

यवनराज अपने गज-समूह के संहार पर चिन्तित होकर अपने महाशत्रु (पार्श्व) की शक्ति पर विचार करता है—

द्विपदी—अत्यन्त गम्भीर घोष करने वाले, घन के समान विग्रह (शरीर) वाले, मेरे जो हाथी दिग्गज के समान बलशाली थे, उन्हें भी इस वीर ने अकेले ही चूर-चूर कर डाला।

इस समरभूमि में जिसका ऐसा पराक्रम है, महीतल पर उसके लिये कुछ भी दुर्लभ नहीं है। मैं तो ऐसा मानता हूँ कि प्रवर अस्त्र धारी यह कोई सुरवर ही है, अन्यथा मेरे इस महाबल का संहार वह कैसे कर सकता था? अथवा, क्या यह श्रेष्ठ विद्याओं का करण्ड-पिटारा वाला कोई विद्याधर है? अथवा, रण रूपी समुद्र का सन्तरण कराने वाला कोई जहाज? अन्यथा यह देखते-देखते ही मेरे महामत्तगज-समूह को क्षण भर में ही कैसे रौंद डालता?

अथवा, क्या यह मनुष्य-वेश धारण किये हुए कोई शेषनाग है, जिसने विषमय वाणों से भूषित हाथों द्वारा हमारे गज-समूह को चूर-चूर करने के लिये ही मानों इस भूमि पर अवतार धारण किया है और उसने क्रोधावेश से भरकर मेरे महाबल को चाँप दिया है? अथवा, जम्मत् में जो जिननाथ कहे जाते हैं, और जो लोगों के राग-द्वेष (जुअ) का क्षय करने वाले हैं, वही इस समर-भूमि में आ पहुँचे हैं? यदि ऐसा न होता, तो इन्होंने अकेले ही मेरे गजों का संहार कैसे कर डाला? और अपने बैरीजनों के महान गर्व को कैसे निरस्त कर डाला?

अथवा, मेरे महा शत्रु-रविकीर्ति ने मन-वचन-काय की अत्यन्त एकाग्र भक्तिपूर्वक महाशक्ति-सम्पन्न किसी देव की आराधना की होगी। अन्यथा, वह हमारे मत्तगज-समूहों से अजेय कैसे रह पाता? अथवा, मेरे द्वारा अनेकविध विकल्प और बार-बार इस प्रकार के सन्देह करने से क्या लाभ? हाथ में कंकण होने पर भी, जो उन्हें दर्पण में देखता रहता हो, उसे देखकर कौन व्यक्ति उसकी हँसी नहीं उड़ायेगा?

घत्ता— एहु संगरु एहु सुणरपवरु जेण महारा गयवर घाइय।
उवरोहे रविकित्तिहे णिवहो पेयरायमंदिर पहि लाइय।। 88।।

5/9

Abusing dialogues between Yavanrāja and Pārśwa in the arena.

दुवइ— दिव्वाउह खिवेवि विणु खेवँ लक्खेवि बइरि जइ रणे।
पेक्खंतहँ सुराहँ विणिवायमि ता जसु भमइ तिहुयणे।। 6।।

इय चिंतिवि सो पलयक्कतेउ वइरीयण विसहर-वइणतेउ।।
गज्जंतउ दिक्करडिव रउद्दु मज्जाय-विवज्जिउ णं समुद्दु।।
णामेण जउणु जयलच्छिणाहु धायहु पवणु व जहिँ पासणाहु।।
जंपंतउ को सो मज्झ जेण विणिवाइय गयवर णरवणेण।।
अमुणंतें महु पोरिसु विसालु समरंगणे जयलच्छीरसालु।।
लहु सरउ सरणु महु चरण ताम ण विसज्जमि दुद्धर बाण जाम।।
तं सुणिवि वयणु कोवारुणेण पिसुणिउ कालेण व दारुणेण।।
वाणारसि-सामि तणुरुहेण कररुह परिमलिय सिरोरुहेण।।
रे-रे मयंध मायंगु जेम बोल्लंतु ण लज्जहि धिट्ठ तेम।।
हउँ पासणाहु हयसेणपुत्तु मइँ चूरिय तुह गयवर णिरुत्तु।।

घत्ता— यह विशेष युद्ध और ऐसा विशेष नर-प्रवर, जिसने कि हमारे गजवरों का संहार कर डाला है, प्रतीत होता है कि राजा रविकीर्ति के अनुरोध से ही हमारे ये महागज यमराज के मन्दिर के पथ पर लगाये गये हैं। (88)

5/9

यवनराज एवं कुमार पार्श्व का समर-भूमि में भर्त्सनापूर्ण वार्त्तालाप—

द्विपदी—(कपट-भावना से यवनराज ने अपने मन में विचार किया कि–) बिना समय खोए तत्काल ही रणभूमि में शत्रु-जनों को देखते ही यदि उन पर मैं दिव्यायुधों का प्रक्षेपण कर डालूँ, तो देवों के देखते हुए भी उन शत्रुओं को मैं मार सकूँगा और इससे मेरा यश भी तीनों लोकों में फैल जाएगा।

इस प्रकार विचार कर प्रलयकालीन सूर्य के समान तेजस्वी, शत्रुजन रूपी भुजंगों के लिये गरुड़ के समान, दिग्गजों के समान गरजता हुआ वह (यवनराज) ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों मर्यादाविहीन रौद्र-रूपधारी समुद्र ही उछल रहा हो। वह कुख्यात यवनराज प्रचण्ड वायु के समान उस ओर झपटा, जहाँ जयलक्ष्मी के नाथ पार्श्वनाथ स्थित (मोर्चा सम्हाले हुए) थे। वहाँ उसने चिल्लाते हुए कहा— इस रण में वह कौन सा नरेन्द्र है, जिसने हमारे श्रेष्ठ गज-समूह का विनिपात (संहार) किया है? वह (निश्चय ही) समरांगण में जयलक्ष्मी के रसाल मेरे विशाल पौरुष को नहीं समझ सका है। अतः मैं अपने दुर्धर धनुषबाण जब तक छोड़ूँ, इसके पूर्व ही, वह मेरे चरणों की शरण ले ले।

यह सुनकर क्रोधावेश में तमतमाये मुख वाले, दारुण काल के समान भयंकर, वाराणसी-नरेश के सुपुत्र पार्श्वनाथ हथेलियों से अपना सिर सहलाते हुए, उस पिशुन (यवनराज) से बोले — रे-रे मदान्ध, रे धीठ, मातंग के समान, तुझे बोलते हुए लज्जा क्यों नहीं आती? मैं हयसेन का पुत्र पार्श्वनाथ हूँ, मैंने ही तेरे मदोन्मत्त समस्त गजवरों को चूर-चूर किया है। यदि तू मेरी शक्ति को जान गया है, तब अपने भुजयुगल की शक्ति दिखाये बिना, तू शीघ्र ही रण से विरत हो जा।

घत्ता— जह तुह पेक्खंतहो मयगलइँ मइँ मुसुमूरिय समरि दुसज्जए।
तह जइ ण पासु तुव गलि घिवउ ता पासणामु ण वहमि जण मज्झए।। 89।।

5/10

Fierce fighting between the two with various arms and ammunitions (missiles etc.)

दुवइ— जइ तुह चित्ति अत्थि कवि अज्जवि दर अहिमाण लच्छिया।
ता लइ खिवहि किण्ण महु पहरणु सयदल-दल-चलच्छिया।। छ।।

तं सुणिवि तियस भेरी-सरेण जउणाहिहाण धरणीसरेण।।
मेल्लिउ तिमिराउहु तमु करंतु णिद्दालसु जिंभणु वित्थरंतु।।
5 तं हउ तवणक्खँ पहरणेण पासेण सत्तु-दप्पहरणेण।।
सरहेण हरिणावइ जलहरेण हुअवहु व सहि महमयगलेण।।
आसीविसहरु विणयासुएण मंतेण महारक्खसु रएण।।
सीहेण करडि तरु हुअवहेण महिहरु सुरवरपवराउहेण।।
महिसेण तुरउ वाएण मेहु जं-जं जि खिवइ परिखिण्णदेहु।।
10 जउणावणीसु तं तं कुमारु लीलएँ णिरसइ रमणियण मारु।।
विगयाउहु जायउ जाम बेरि अणवरय समेण परिबद्ध खेरि।।
ता धाइ लिंतु महातिसूलु सयलावराह वल्लरिहे मूलु।।

घत्ता— जिस प्रकार मैंने देखते ही देखते इस दुसाध्य समर-भूमि में तेरे मदोन्मत्त गज-प्रवरों को मसल डाला है, उसी प्रकार मैं यदि तेरे गले में नागपाश भी न डाल दूँ, तो इस जनसमूह के मध्य मैं अपने 'पार्श्व' नाम को धारण नहीं करूँगा (अर्थात् अपना यह नाम छोड़ दूँगा) (89)

5/10

विविध प्रहरणास्त्रों द्वारा दोनों में तुमुल-युद्ध—

द्विपदी—(कुमार पार्श्व ने यवनराज को चुनौती देते हुए पुनः कहा—) शतदल कमल के समान चंचल नेत्र वाले हे यवनराज, यदि तेरे चित्त में जय-लक्ष्मी का लेश मात्र भी अहंकार अभी तक शेष बचा हो, तो तू अपने प्रहरणास्त्र लेकर मुझ पर आक्रमण क्यों नहीं कर रहा?

देवों के भेरी-स्वर के समान प्रतीत होने वाली उस धरणीश्वर कुमार पार्श्व की गर्जना सुनकर यवनराज ने अन्धकार, निद्रा, आलस्य एवं जम्हाई का विस्तार करने वाले **'तिमिर'** नाम के आयुधास्त्र को छोड़ा। शत्रु के दर्प का हरण करने वाले उस पार्श्व ने उस आयुध को नष्ट करने के लिये अपना **'तपन'** नाम का आयुधास्त्र छोड़ा, जिसने कि उसके तिमिरायुध को उसी प्रकार नष्ट कर दिया, जिस प्रकार शरभ (अष्टापद) द्वारा सिंह नष्ट कर दिया जाता है।

इसी प्रकार यवनराज के **अग्नि-बाण** को महा **मेघ-बाण** द्वारा, **नाग-बाण** को **गरुड़-बाण** के द्वारा, **महाराक्षस-बाण** को **मन्त्र-बाण** द्वारा, **गज-बाण** को, **सिंह-बाण** के द्वारा **अग्नि-बाण** द्वारा **वृक्ष-बाण** को, इन्द्र के **प्रवरायुध (बज्र)-बाण** द्वारा **पर्वत-बाण** को, **महिष-बाण** द्वारा, **अश्व-बाण** को और **मेघ-बाण** को **पवन-बाण** द्वारा नष्ट कर दिया। इस प्रकार खिसियाया हुआ तथा थका हुआ वह यवनराज, जिन-जिन शस्त्रास्त्रों का प्रक्षेपण करता था, रमणी-युवतियों के लिये कामदेव के समान कुमार पार्श्व, लीला-लीला में ही उन्हें नष्ट कर डालता था।

अनवरत रूप से युद्धरत और अपने मन में निरन्तर ईर्ष्याभाव रखने वाले उस यवनराज के जब समस्त आयुध समाप्त हो चुके तब समस्त अपराधों के मूल जड़रूप **महात्रिशूल** को लेकर वह कुमार पार्श्व की ओर झपटा—

घत्ता— पविदंडँ सो महियउच्छुडु ता कुद्धउ जउणु णराहिउ।
संजायउ अइदूसहु विसमु णं खय समयखत्तु दिवसाहिउ।। 90।।

5/11

Prince Pārśwa lets down Yavanrāja very badly in the battle-field.

दुवइ— पुणरवि लेवि बाण णिय तोणीरहो मेल्लहो णिरु भयंकरा।
अगणिय वीस-तीस-सय-दहसय परबल-बलखयंकरा।। छ।।

रुसा हयसेण तणूरुहु पासु विवक्ख महागलकंदल पासु।।
सबाणहिँ बाणइँ तोडिवि तासु महारणभूमि विहाय गयासु।।
5 गयंदहँ जूहु मयाहिउ जेम करेविणु अग्गइ पेल्लइ तेम।।
पुणोवि विसज्जिवि तिक्खणवाण अहीसरु दीहरु देह समाण।।
विहंडेवि संदणु च्छिंदेवि छत्तु सचिंधु सचामरु भिंदिवि गत्तु।।
महावियडुल्लय वच्छपएसु विपुण्णह दुल्लहु लच्छिणिवेसु।।
खरग्ग खुरुप्पहिँ कप्पइ जाम णिओ जउणक्खु पमुच्छिउ ताम।।
10 खणेक्क विलंवेवि उट्ठिउ केम सु दूसहु केउ-महागहु जेम।।
चडेविणु अण्णहिँ संदणे थक्कु रणंगणे णाइँ महापलयक्कु।।

घत्ता— कुमार पार्श्व ने उसे भी अपने बज्र दण्ड से मथ डाला। इससे वह नराधिप यवनराज और भी अधिक क्रुद्ध हो उठा और उसने अपना अत्यन्त दुस्सह विषम रूप धारण कर लिया, मानों प्रलयकालीन समय-विनाश-सूचक कोई सूर्य ही उदित हो रहा हो। (90)

5/11

कुमार पार्श्व ने युद्ध में यवनराज के छक्के छुड़ा दिये—

द्विपदी—उस क्रुद्ध यवनराज ने अपने तूणीर से शत्रु-सेना के बल को नष्ट कर डालने के लिये बीस, तीस, सौ एवं हजारों ही नहीं, बल्कि अगणित भयंकर बाण लेकर पुनः छोड़ना प्रारम्भ किया—

हयसेन के पुत्र उस पार्श्व ने, क्रोध से भरकर विपक्षी की गर्दनों के लिये भयंकर नागपाश के समान अपने बाणों से उस यवनराज के बाणों को तोड़ डाला और जिस प्रकार मृगाधिप गजेन्द्र-यूथ को अपने आगे ले आकर पेल डालता है, उसी प्रकार निराशा भरे उस यवनराज को कुमार पार्श्व ने भी समरभूमि से बुरी तरह खदेड़ (पेल) दिया। पुनः उसने नाग की दीर्घ-देह के समान लम्बे एवं अत्यन्त तीक्ष्ण बाण छोड़कर उसके रथ को चकनाचूर कर दिया, उसकी ध्वजा, चामर एवं छत्र को भी छिन्न-भिन्न कर डाला, उसके वक्ष को भी बेध डाला ओर पुण्यहीनों के लिये दुर्लभ लक्ष्मी-निवेश के समान ही, उस यवनराज ने जब कुमार पार्श्व के महाविकट वक्ष-प्रदेश में खुरपे की तीक्ष्ण नोक से आक्रमण करने का विचार किया, तभी वह (यवनराज) स्वयं ही मूर्च्छित होकर धरती पर गिर गया।

किन्तु क्षणेक के विलम्ब के बाद ही वह किस प्रकार उठ बैठा? ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार कि सुदुस्सह केतु जैसे महाग्रह का उदय होता है।

वह यवनराज दूसरे रथ पर सवार होकर रणांगण में पुनः इस प्रकार आया, मानों प्रलयकालीन सूर्य ही हो।

दलंतु बलाइँ लवंतु विरूउ समायउ णं जमरायहो दूउ।।
सबाणु सरासणु गेण्हइ जाम दवत्ति पुणो वि समाहउ ताम।।
ससंदणु बाणु सरासणु तासु कओ हयसेण सुएण हयासु।।

15 घत्ता— जह-जह ण कज्ज परिसंघडइ विहिवसेण पारंभिउ विहडइ।
तह-तह विउणउ अमरिसु चडइ धीरमणह ता जा फलु पयडइ।। 91।।

5/12

Sensing his defeat excited Yavanrāja throws away powerfull ballistic missiles on Pārśwa.

दुवइ— एत्थंतरे करेवि करि जउणेँ खयरवियर सुदित्तिया।
मुक्क अमोहसत्ति सुहणासणि णावइ पिसुणवित्तिया।। छ।।

दीसइ समरंगणि गच्छमाण णहयल-णिवडिय उक्का समाण।।
रयणियरिव रेहइ बलु दलंति जमरायहो जीह व सलवलंति।।
5 धुत्ति व परणरवरे संचरंति तक्करिव पाण-रयणइँ हरंति।।
यममुत्ति व सहसा जणु हणंति दुव्वारिणि णारि व भउ जणंति।।

सेना को रौंदता हुआ तथा भोंडे-भोंडे प्रलाप करता हुआ वह ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों यमराज का दूत ही हो। जब उसने बाण सहित धनुष ग्रहण किया, तभी तत्काल ही हताशा भरे उसे पार्श्व ने पुनः आहत तो कर ही दिया, उसके रथ तथा धनुषबाण भी नष्ट कर डाले।

घत्ता— जैसे-जैसे इच्छित कार्य में धीर-वीर मनवालों को सफलता नहीं मिल पाती और दुर्भाग्य से प्रारम्भ में ही उनके कार्य का विघटन हो जाता है, वैसे-वैसे ही उन्हें तब तक द्विगुणित रोष बढ़ता रहता है, जब तक कि उन्हें अपनी सिद्धि प्राप्त नहीं हो जाती। (91)

5/12

अपनी पराजय होती देखकर क्रुद्ध यवनराज कुमार पार्श्व पर अमोघ शक्ति-प्रक्षेपास्त्र छोड़ता है—

द्विपदी—इसी बीच उस यवनराज ने क्षयकालीन सूर्य-किरणों के समान सुदीप्त एवं सुख नाशक अमोघ शक्ति नामक आयुधास्त्र का प्रहार किया। वह ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों उसने शुभ नाशक पिशुनवृत्ति का ही प्रक्षेप किया हो।

समरांगण में जाती हुई वह अमोघशक्ति नभस्तल से गिरी उल्का (विद्युत्पात) के समान दिखाई दे रही थी। वह रज-समूह के समान सुन्दर लग रही थी किन्तु वह सैन्य-समूह का दलन कर रही थी। वह यमराज की जीभ के समान सलबला रही थी, जिस प्रकार धूर्त्त कुट्टिनी नारी पर-नरों के पास (निस्संकोच ही) चली जाती है, उसी प्रकार वह अमोघशक्ति भी उस नर-वर कुमार पार्श्व के पास शीघ्रतापूर्वक चली जा रही थी। चोर जिस प्रकार रत्नों को चुराता है, उसी प्रकार वह अमोघशक्ति भी अपने शत्रुओं के प्राणरूपी-रत्नों का अपहरण करने वाली थी। यममूर्त्ति जिस प्रकार सहसा ही लोगों को मार डालती है, उसी प्रकार वह अमोघशक्ति भी प्रतिपक्षियों का संहार करने वाली थी और इस प्रकार वह दुश्चारिणी नारी के समान सभी के मन में भयावेग उत्पन्न कर रही थी।

दवदहण सिहेव फुलिंग वंति पुण्णालिव सव्वत्थ वि रवंति।।
परसण वहवेल्लिव वेयवंति दिणयरकिरणोलिव तेयवंति।।
णियपउरतेय पूरिय धरित्ति आवंति णिएवि सहसत्ति सत्ति।।
मलसंगइँ सुररयणायरेण तमयारिणि रयणि दिवायरेण।।
रइ-मुणिणा माया-णिज्जरेण गइ सिद्धि सइरिणि सुपुरिसेण।।
तिहुअण जणणाहँ हिंस जेम पासेण वि सा परिहरिय तेम।।

घत्ता— गय विहल सत्ति पिक्खेवि पुणु लेवि करालु करवालु अब्भिडियउ।
णं विज्जदंड-मंडिउ चवलु गिम्हहो णवघणु अमरिस चड्डियउ।। 92।।

5/13
Extra-ordinary power of Yavanrāja described.

दुवइ— जइवि अमोहसत्ति पइँ णिरसिय तो वि ण वहमि भउ मणे।।
जा करयल किवाणु महु वि सहइ संगरि मिलिय बहुजणे।। छ।।

इय भणिवि भिडिउ रण-रस णडिउ।।
महिवहि जउणु अमुणिय सउणु।।
कुल-णह-दुमणि सुहड-सिरोमणि।।

दावाग्नि के समान वह अमोघशक्ति स्फुलिंग छोड़ रही थी और पुण्णालि (धौंकनी) जैसी विरूप शब्द कर रही थी। परसण-बेल की तीव्र गति के समान तीव्रवेग वाली, सूर्य की तेज किरणों के समान तेजवाली, अपने प्रवरतेज से सम्पूर्ण पृथिवी को पूरती हुई, उस शक्तिपुंज को सहसा ही अपनी ओर आता देखकर, जिस प्रकार क्षीरसागर से मल-संगति, सूर्य से तमकारक रात्रि, मुनि से रति, कर्म-निर्जरा से माया, सिद्धि प्राप्त सुपुरुष से स्वैरिणी नारी तथा त्रिभुवननाथ से हिंसा छूट जाती है; उसी प्रकार कुमार पार्श्व के सम्मुख यवनराज द्वारा मुक्त वह अमोघशक्ति भी (स्वतः ही) नष्ट हो गई।

घत्ता— अमोघ शक्ति की विफलता को देखकर उस यवनराज को प्रचण्ड क्रोध उभर आया। अतः वह कराल करवाल लेकर पुनः उन पार्श्व से आ भिड़ा। उस समय वह ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों विद्युत्दण्ड से मण्डित कोई चपल नवमेघ ही रोषपूर्वक ग्रीष्मऋतु से आ भिड़ा हो। (92)

5/13
यवनराज की असाधारण-शक्ति का वर्णन—

द्विपदी—(यवनराज ने क्रोधित होकर कुमार पार्श्व को ललकारते हुए कहा)- यद्यपि तूने मेरी अमोघशक्ति-आयुधास्त्र को नष्ट कर दिया है, तो भी मैं अपने मन में अभी तक भयभीत नहीं हुआ हूँ। जब तक मेरे हाथ में कृपाण सुशोभित है, तब तक मुझे युद्ध में तुम जैसे अनेक शत्रु-सुभटों से अभी भेंट करना शेष है—

यह कहकर सुभट-शिरोमणि वह महिपति यवनराज शकुन-अपशकुन का विचार किये बिना ही रण के रस में उन्मत्त होकर नाचने लगा और भिड़ गया।

कुल रूपी आकाश के लिये सूर्य के समान, गजरूपी पर्वतों के लिये बज्र के समान, अश्व रूपी वृक्षों के लिये

करि-कुहर पवि हरि कुरुह हवि।।
सुहि सुहकरणु जय-सिरि वरणु।।
मणिमय रसणु सलिलह रसणु।।
परियणु भरणु पहरण हरणु।।
विरइय करणु असरण सरणु।।
भुअवल पवलु सिय जस धवलु।।
वर तिय रमणु गइवर गमणु।।
रिउमय-समणु पडिमड दमणु।।
रहवर दलइ मयगल मलइ।।
हयवर हणइँ पडिभड भणइँ।।
चमरिय लुणइँ धयवड धुणइँ।।
सइंरिउ भमइँ महियलु कमइँ।।
फणिवइ तसइ असरिसु हसइ।।
पुणु-पुणु भसइ परवलु गसइ।।
धर थरहरइ वणरुहु सरइ।।
किडिकडयडइ गिरिखडहडइ।।
जलणिहि चलइ दिणयरु खलइ।।

घत्ता— जुज्झंतहो तहो दप्पुब्भडहो जउण णराहिवासु रण महियले।
पसरिउ कसाउ मणि विउणयरु वासारत्ति जेम घणु णहयले।। 93।।

अग्नि के समान तथा सुख चाहने वाले प्राणियों के लिये सुखी बनाने वाला, जयश्री का वरण करने वाला, मणिमय रसना (करधनी) धारण करने वाला, मेघ के समान घोष करने वाला, परिजनों का भरण-पोषण करने वाला, शत्रुओं के प्रहरणास्त्रों को हरने वाला, करण (परिणामों) को रचने वाला (अर्थात् कर्त्तव्यनिष्ठ), निराश्रितों को शरण देने वाला, प्रबल भुजबल वाला, धवल यश वाला, उत्तम रमणियों से रमण करने वाला, श्रेष्ठगजों की गति के समान गमन करने वाला, रिपु के मद को शान्त कर देने वाला, प्रतिभटों का दमन करने वाला, शत्रुओं के रथों का दलन एवं मदोन्मत्त गजों को रौंदने वाला, शत्रुओं के श्रेष्ठ घोड़ों का हनन कर डालने वाला, प्रतिभटों को ललकारने वाला, चामरों को काट डालने तथा ध्वजपटों को धुन डालने वाला, शत्रुओं के मध्य स्वच्छन्द रूप से घूमने वाला, महीतल को लाँघ जाने वाला, फणिपति (शेषनाग) को त्रस्त करने वाला, असाधारण हँसी वाला, बार-बार शत्रुओं को ललकारने वाला, शत्रुओं की शक्ति को नष्ट करने वाला, पृथिवी को थर्रा देने वाला, वन-वृक्षों को उखाड़ डालने वाला एवं शत्रुओं पर कटकटाता हुआ, पर्वतों में खलबली मचाता हुआ समुद्र को चंचल बना देने वाला, तथा सूर्य को भी स्खलित कर देने वाला, एवं—

घत्ता— रणभूमि में कुमार पार्श्व से जूझता हुआ, दर्पोद्भट उस नराधिप यवनराज के मन में क्रोध-कषाय बढ़कर उसी प्रकार द्विगुणित हो गईं, जिस प्रकार वर्षाकालीन रात्रि में नभस्तल में मेघ-समूह द्विगुणित वेग वाला हो जाता है। (93)

5/14

Being deeply wounded by the poisonous arrow of Prince Pārśwa Yavanrāja faints.

दुवइ— दुक्कालु वि विहाइ हय-गय-रह सुहडइ खउ करंतओ।
णं ससरीरु कालु अवयरियउ दीसइ संचरंतओ।। छ।।

वसुणंदालंकिय वामपाणि धावइ परबलहो करंतु हाणि।।
तं पेक्खिवि हयसेणहो सुएण परियाणिय णिम्मलयर सुएण।।
करे करेवि सरासणु संधिवि वाण अणवरउ मुएप्पिणु अप्पमाण।।
कप्परिउ तासु करवालु केम चउगइ संसारु जिणेण तेम।।
णाणा मणिमउ सण्णाहु जेम णिल्लूरिउ वच्छत्थलु वि तेम।।
मेल्लइ ण स विक्कमु तो वि धीरु परबल धरणीयल दलण सीरु।।
एत्थंतरे अवरु किवाणु लेवि णीसेसु वि पर-बलु णिद्दलेवि।।
मच्छर-भरियउ विहियाहिमाणु अगणंतउ सरसंधाण ठाणु।।
धाविउ सरोसु लहु पयाहि तेत्थु सरसंधइ पासकुमारु जेत्थु।।
असि वाहइ पइसिवि झत्ति जाम पासेण वि वाणहिँ लिहउ ताम।।

घत्ता— मुच्छंगउ जउणु णराहिवइ पासकुमारहो बाणहिँ सल्लिउ।
तणु वण णिग्गय सोणिय जलहि सयलु महीयल मंडलु रेल्लिउ।। 94।।

5/14

कुमार पार्श्व के विषैले बाण से घायल वह यवनराज मूर्च्छित हो जाता है—

द्विपदी—घोड़े, हाथी, रथ एवं शत्रु-सुभटों का क्षय करता हुआ वह दुष्ट यवनराज, यमराज के समान सुशोभित हो रहा था। वह ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों काल ने ही सशरीरी बनकर अवतार ले लिया हो, और वही वहाँ संचरण करता हुआ दिखाई दे रहा हो—

उसका बायां हाथ वसुनन्दा (तलवार) से अलंकृत था, जिससे वह पर-बल की हानि करता हुआ झपट्टा मार रहा था। यह देखकर हयसेन के निर्मलतर श्रुत के ज्ञाता सुपुत्र पार्श्व ने अपने हाथ में धनुष बाण लेकर उस यवन पर लगातार अगणित बाण छोड़े और उस यवनराज की तलवार पार्श्व ने किस प्रकार तोड़ डाली? उसी प्रकार, जिस प्रकार कि जिनेन्द्र चतुर्गति स्वरूप संसार को नष्ट कर डालते हैं। उन्होंने नाना प्रकार के मणियों से जटित कवच को भेदकर उसके वक्षस्थल को भी बेध डाला।

इतनी हानि हो जाने पर भी, शत्रुपक्ष को रणभूमि में दलन करने के लिये हलधर के समान उस धीर-वीर यवनराज ने अपना पुरुषार्थ-पराक्रम नहीं छोड़ा।

इसी बीच वह यवन दूसरा कृपाण लेकर अधिकांश शत्रुसैन्य का निर्दलन करता हुआ, मत्सर से भरा हुआ वह अहंकारी (यवन), पार्श्व के शर-सन्धान की भी अवहेलना करता हुआ, रोष पूर्वक तत्काल ही उस ओर दौड़ पड़ा, जहाँ से कुमार पार्श्व शर-सन्धान कर रहे थे। उनके घेरे में घुसकर वह वहीं पर तलवार भाँजने लगा, किन्तु पार्श्व के बाण द्वारा उसकी वह तलवार भी चाँट ली गई और स्वयं वह यवन भी घायल होकर पटकी खा गया।

घत्ता— इस प्रकार कुमार पार्श्व के बाण द्वारा विद्ध होकर वह नराधिप यवन मूर्च्छा को प्राप्त हो गया। उसके शरीर के घावों से इतना रक्त रूपी जल प्रवाहित हुआ कि उससे समस्त महि-मण्डल में जैसे बाढ़ ही आ गई। (94)

5/15
Defeat of indefeatable Yavanrāja

दुवइ— पडिवालेवि खणेक्कु पुणु उट्ठिउ हरिणारि व समच्छरो।
रण रोमंचकंचु अंचियतणु भीसणु णं सणिच्छरो।। छ।।

दट्ठोट्ठ दुट्ठ करवालु लेंतु रिउ सम्मुहु तण्णय पयइं दिंतु।।
हक्कंतु ठंतु रिउ बलु दलंतु पयपंकएहिँ महियलु मलंतु।।
रुंधंतु वरंतु पुरउ सरंतु दारंतु जंतु पहरणु सरंतु।।
पहरंतु हरंतु पराउहाइँ वग्गंतु लवंतु पराउहाइँ।।
हरिसंतु णहंगणेँ देववग्गु अच्छरगण परिवाडिउ समग्गु।।
आवंतु जउणु पेक्खेवि णिवेहिँ संरुद्धउ इच्छिय पहु सिवेहिँ।।
उग्गामिवि तडिदंड व किवाणु चूरिउ रिउ-चाउ सतोणु वाणु।।
पवियारिउ सत्तु-समूहु जाम णहयले किउ कलयलु सुरेहिँ ताम।।
तं तियस-घोसु आयण्णिऊण अप्पउ सलग्घु मणे मण्णिऊण।।
मण पवणु व तक्खणे पत्तु तेत्थु तिहुअणवइ पासकुमारु जेत्थु।।
ता पेक्खेवि हयसेणंगएण असराल-सरहिँ सामंगएण।।
पुणरवि कराल-करवाल-लट्ठि तहो चूरिय दारिय वइरिरट्ठि।।
असि मेल्लिवि जउणणराहिवेण असिधेणु लइय मारुव जवेण।।

5/15
दुर्धर यवनराज की पराजय—

द्विपदी—ईर्ष्यालु वह (घायल-मूर्च्छित) यवनराज कुछ ही क्षणों के बाद सचेत होकर सिंह की भाँति पुनः उठ बैठा। रण-रस से रोमांचित शरीर वाला वह ऐसा भीषण लग रहा था, मानों शनिश्चर-ग्रह ही हो।

अपने ओठों को काटता हुआ, तीक्ष्ण करवाल लेकर अपने रिपु-कुमार पार्श्व के सम्मुख वेग पूर्वक पग बढ़ाता हुआ, हाँक देता हुआ, ठहरता हुआ, शत्रुजनों का दलन करता हुआ, अपने पद-पंकजों से महीतल को रौंदता हुआ, रुकता हुआ, अपने को छिपाता हुआ, सम्मुख सरकता हुआ, शत्रुजनों को काटता हुआ, प्रहरणों का स्मरण करता हुआ, प्रहार करता हुआ, शत्रुओं के आयुधों को छीनता हुआ, उछल-कूद मचाता हुआ, शत्रुओं के आयुधों को निष्फल करता हुआ, नभांगण में अप्सराओं से घिरे हुए समग्र देव-समूह को हर्षित करता हुआ, जब वह दुष्ट यवनराज आ रहा था, तब उसे देखते ही पार्श्व के हित-चिन्तक एक राजा द्वारा उसे वहीं रोक दिया गया। विद्युत-दण्ड के समान अपना कृपाण निकालकर उसने उस शत्रु के तूणीर सहित धनुष-बाण को चूर-चूर कर डाला। इस प्रकार उस राजा ने शत्रु को जब चारों ओर से घेर लिया, तब देवों ने आकाश में कलकल निनाद किया।

देवों के उद्घोष को सुनकर उस यवनराज ने मन में अपनी ही प्रशंसा मानकर वह मन एवं पवन की गति से तत्काल ही वहाँ पहुँचा, जहाँ त्रिभुवनपति पार्श्वकुमार स्थित थे। शान्त-वृत्ति वाले हयसेन-पुत्र पार्श्व ने उस यवन को सम्मुख आया हुआ देखकर लगातार बाण-वर्षा कर, उसकी कराल-करवाल को पुनः चकनाचूर कर उसकी ऋद्धि को ही नष्ट कर डाला।

सवि चूरिय एत्तहो मोग्गरेण णहे करणु वेवि जउण वि भरेण।।
वियलिय मउ संदणे चडउ जाम बद्धउ हयसेण-सुएण ताम।।

घत्ता— मेल्लेप्पिणु जालु विसालु सिरि असिपुत्तिएँ सहु झत्ति णिबद्धउ।।
णट्टलु व पसंसिउ पासु जिणु सिरिहरेहिँ सुरवरहिँ पसिद्धउ।। 95।।

Colophon

इयसिरि पासणाहचरित्तं रइयं बुहसिरिहरेण गुणभरियं।
अणुमण्णियं मणोज्जं णट्टल णामेण भव्वेण।।
रविकित्ति-सुक्ख-जणेण पासकुमारस्स जयसिरीलंभे।
जउणारि-माणमहणे पंचमी संधी परिसमत्तो।। छ।। संधि 5।।

तब उस यवन नराधिप ने अपनी असि छोड़कर पवन के समान अत्यन्त वेग से असिधेनु (कटार) उठा ली। उसे भी कुमार पार्श्व ने अपने मुग्दर से चूर दिया। जब विगलित मद वाला यवनराज अपने बल से आकाश में उठकर अपने दूसरे रथ पर सवार होने लगा, उसी समय पार्श्व ने उसे अपने पाश में बाँध लिया।

घत्ता— इस प्रकार उस यवनराज के सर पर विशाल जाल डालकर उसे असि-पुत्री (कटार) के साथ तत्काल ही बाँध लिया गया और जिस प्रकार सुरवरों ने पार्श्व जिनेन्द्र की प्रशंसा की, उसी प्रकार कवि श्रीधर ने साहू नट्टल की प्रशंसा कर उन्हें प्रसिद्ध किया। (95)

पुष्पिका

रविकीर्ति के लिये सुखजनक, पार्श्वकुमार के लिये विजयश्री का लाभ एवं यवन-शत्रु के मान का मर्दन करने वाली यह पाँचवी सन्धि समाप्त हुई।

इस प्रकार गुणों से भरपूर इस पार्श्वनाथचरित की रचना बुध श्रीधर ने की है, जिसको मनोज्ञ कहकर उसकी अनुमोदना नट्टल नाम के भव्य (साहू) ने की है।

छट्ठी संधी

6/1

Prince Pārśwa very kindly forgave all the anemy-soldiers.

घत्ता— छुडु बद्धउ जउणाहिउ अजउ महाहिउ ता गयणंगणे सुरवरेहिँ।
हणेवि महारउ तूरइँ तिहुअण पूरइँ महिहिँ पसंसिउ णरवरेहिँ।। छ।।

कह दीसइ बद्धउ जउणु राउ जह पंजरे छुद्धउ हरिणराउ।।
जह वाइएण सुयसयसमूहु जह वारिणि बंधणे दुरयजूहु
जह आयस वलयहिं दंतिदंतु जह णाणाकम्महिँ जीउ संतु।।
तं णिएवि तुट्ठु रविकित्ति राउ रोमंच कंचुआ पिहिय काउ।।
तहिँ अवसरि जउणहो सुहडपत्त भयभीय विसंठुल खिण्ण गत्त।।
जंपंतु दीणु पासहो णवेवि सिरिसिहरोवरि करयल ठवेवि।।
अविणउ जं विरइउ देव-देव अम्हेहिँ अण्णाणिहिँ तिजय-सेव।।
तुहु सव्वु खमहिँ तं सामि साल अम्हहुँ मियंक-दल सरिस-भाल।।
देहंतरि णिवसइ जीउ जाम तुहं चरणाराहण करहु ताम।।
आएसु देहि विरइवि पसाउ परिहरिवि देव दूसहु कसाउ।।

घत्ता— ताह वयणु आयण्णेवि णियमणे मण्णेवि सयल वि मं भीसेविणु।
संगरे णरवरविंदहो हयरिउविंदहो दिण्ण केर विहसेविणु।। 96।।

6/1

कुमार पार्श्व ने सभी शत्रु-भटों को क्षमादान प्रदान किया—

घत्ता— कुमार पार्श्व ने जब उस दुर्जय, महाशत्रु यवनराज को देखते ही देखते बाँध लिया, तब गगनांगन में देवों ने तूरादि वाद्य बजा-बजाकर ऐसा जयघोष किया कि उसने तीनों लोकों को पूर दिया। नरवरों ने उसकी बड़ी प्रशंसा की।

और, बाँधा हुआ वह क्षुब्ध यवनराज कैसा दिखाई दे रहा था? ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार कि पिंजड़े में बन्द सिंहराज दिखाई देता है अथवा जिस प्रकार पिंजड़े में बद्ध शुक-समूह, खूंटे से बँधा हुआ गज-यूथ, लोहे की बेड़ी में जकड़ा हुआ हाथी और नाना कर्मों से बँधा हुआ जीव दिखाई देता है। उसे देखकर रोमांचित कर देने वाले कवच से आच्छादित शरीर वाला वह राजा रविकीर्ति बड़ा संतुष्ट हुआ।

उसी समय यवनराज के अत्यन्त भयभीत, अस्त-व्यस्त एवं खिन्न गात्र वाले सुभट जन आये और अपने माथे पर दोनों हाथ रखकर दीनता पूर्वक कुमार पार्श्व को प्रणाम कर बोले—त्रिजग द्वारा सेवित हे देवाधिदेव, हम अज्ञानियों द्वारा यदि कोई अविनय की गई हो, तो द्वितीया के चन्द्रमा के समान मस्तक वाले हे देव, विशाल हृदय वाले हे स्वामिन्, उन सभी के लिये आप हमें क्षमा कर दीजिये। जब तक इस शरीर में आत्मा का निवास रहेगा, तब तक हम सभी आपके चरणों की आराधना करते रहेंगे। हे देव, दुस्सह कषाय का परित्याग करने की कृपा कीजिये और हमारे योग्य कार्य हेतु अपनी आज्ञा प्रदान कीजिये।

घत्ता— उन शत्रु-सुभटों के दीन-वचन सुनकर तथा उन्हें अपने मन में अपने जैसा मानकर उन्होंने कहा—"तुम लोग डरो मत" और समरभूमि में रिपु-समूह को नष्ट करने वाले सभी नर वृन्दों के लिये कुमार पार्श्व ने विहँसकर आशीर्वाद दिया। (96)

6/2

Prince Pārśwa, as a vigourous conquerer enters into the very artistically decorated town-Kuśasthala with King Ravikīrti.

एत्थंतरि पासकुमारु वीरु रविकित्ति णराहिव सहिउ धीरु।।
संचलिउ कुसत्थलणयरे जाम उच्छउ विरइउ लोएण ताम।।
घरि-घरि वद्धउ मण-चोरणाइँ णव सुरतरु-पल्लव-तोरणाइँ।।
घरि-घरि मोत्तिय रंगावलीउ पूरिय उद्धरिय धयावलीउ।।
घरि-घरि णच्चिय पवरंगणाउ पय पयरुह पहणिय पंगणाउ।
घरि-घरि परिसंताविय खलाइँ वरणारिहिँ दिण्णइँ मंगलाइँ।।
घरि-घरि किउ छडउल्लउ जणेण णेहीर विमीसिय जावणेण।।
घरि-घरि सविहूसण कामिणीहिँ पसरिय मयणाणल सामिणीहिँ।।
उच्चाइय ससलिल कणयकुंभ पल्लव पिहियाणण मलणिसुंभ।।
दुव्वंकुर-दहि-चंदण-विलित्त माणिक्क पवर किरणोहदित्त।।

घत्ता— बहुविह तूर-णिणद्देहिँ जणसम्मदेहिँ सहु रविकित्ति णरिंदेँ।
पासुकुमारु पहिट्ठउ णयरे पइट्ठउ सविहव विहय सुरिंदेँ।। 97।।

6/2

विजेता के रूप में कुमार पार्श्व रविकीर्ति के साथ कुशस्थल नगर में प्रवेश करते हैं : नगर-सजावट का वर्णन—

तत्पश्चात् धीर-वीर वे कुमार पार्श्व राजा रविकीर्ति के साथ जब अपने (ममयावरे) कुशस्थल-नगर के लिये चले, तब लोगों के द्वारा बड़ा उत्सव मनाया गया। घर-घर में मन को चुराने-लुभाने वाले कल्पवृक्षों के नवीन पल्लवों के तोरण बाँधे गये। घर-घर में मोतियों की रंगावलि (रंगोली) पूरी गई। ध्वजा-पताकाएं फहराई गई। घर-घर में प्रवर-कोटि की नारियों ने अपने-अपने चरण-कमलों से प्रांगणों को प्रहत करने वाला नृत्य किया। कुलीन नारियों ने घर-घर में खल जनों को सन्तप्त कर देने वाले मंगलाचार-गीत प्रस्तुत किये। घर-घर में लोगों ने केशर (णेहीर) एवं जपा-कुसुम मिश्रित सुगन्धित जल का छिड़काव किया। घर-घर में वस्त्राभूषणों से अलंकृत कामाग्नि के प्रसार की स्वामिनी (सुहागिन) कामिनियों द्वारा नव-पल्लवों से आच्छादित दूर्वादल के अंकुरों, दहि एवं चन्दन से विलिप्त एवं उत्तम जाति के माणिक्यादि रत्नों की किरणों द्वारा प्रदीप्त, निर्मल जल-प्रपूरित स्वर्णघटों को उठाकर माथे पर रखा—

घत्ता— नाना प्रकार के तूर-वाद्यों के निनादों के द्वारा जन-समूह के बीच राजा रविकीर्ति के साथ हर्षित मन से कुमार पार्श्व ने सुरेन्द्र को भी मात देने वाले अपने वैभव के साथ उस (कुशस्थल) नगर में प्रवेश किया। (97)

6/3

Ravikīrti also releases the arrogant Yavanrāja on the humble request of his (enemy's) counsellors.

रविकित्ति णरिंदँ पासणाहु णीयउ णियहरु परियण सणाहु।।
भुंजाविउ भत्तिए छउरसेहिँ उक्कोविय मयरद्धय सरेहिँ।।
परिहाविउ णिम्मल णिवसणेहिँ भूसिउ कणयमय विहूसणेहिँ।।
एत्थंतरे जउण-णरेसरासु अणवरय समरे मेल्लिय सरासु।।
5 मंतिहि विण्णत्तउ भाणुकित्ति पाविय ससंक संकास कित्ति।।
सविणय वयणहिँ भो पुहविपाल वइरियण विहट्टण पलयकाल।।
जहँ तुंगत्तणु धरणीसराहँ जह तुरयहँ चरणु मुणीसराहँ।।
रहवरहँ णेमि मउ मयगलाहँ चलणयण जुअलु मुहसयदलाहँ।।
तह णरहो माणु भंडणउ होइ एरिसउ देव वज्जरइ जोइ।।
10 तं णिरसिउ पइँ जउणाहिवासु बंधावेवि पासहो सिरिवरासु।।
एव्वहिँ मेल्लिज्जउ मुएवि कोउ णरपुंगव वइरत्तणेण होउ।।
तं सुणिवि वयणु कारुण्णभाउ जायउ रविकित्तिहि पहयपाउ।।

घत्ता— मुक्क-संकर-करावेवि पयजुए णावेविच्छुडु रविकित्ति णरिंदँ।
ता गउ पणवेवि पासहो रविसंकासहो सणयरु सहुं णरविंदँ।। 98।।

6/3

शत्रु-मन्त्रियों द्वारा प्रार्थना किये जाने पर रविकीर्ति यवनराज को भी बन्धन-मुक्त कर देता है—

राजा रविकीर्ति कुमार पार्श्वनाथ को उनके परिजनों के साथ अपने घर ले गया और भक्तिपूर्वक कामदेव के बाणों को भी उत्तेजित कर देने वाले षडरसों वाला भोजन कराया, अमूल्य निर्मल वस्त्रों को पहिनाया और स्वर्ण-निर्मित आभूषणों से विभूषित किया।

इसी बीच, समर-भूमि में अनवरत बाण-वर्षा करने वाले यवनराज के मन्त्रियों ने चन्द्रतुल्य (धवल) कीर्ति के धारक भानुकीर्ति (रविकीर्ति) के समक्ष आकर विनम्र शब्दों में निवेदन किया —शत्रुजनों के विध्वस्त करने के लिये प्रलयकाल के सामान हे पृथिवीपाल, जिस प्रकार राजाओं एवं पर्वतों की श्रेष्ठता उनके तुंगत्व (महानता) से, घोड़ों की श्रेष्ठता उनकी तीव्रगति से, मुनीश्वरों की शोभा तथा श्रेष्ठता उनके चरित्र (कठोर चर्या-पालन) से, रथों की श्रेष्ठता उनकी नेमि से, गजों की श्रेष्ठता उनके मदजल से और जिस प्रकार कमल-मुख की शोभा उसके चंचल नेत्र-युगल से मानी जाती है, उसी प्रकार हे देव, मान-दर्प मनुष्य का मण्डन माना गया हे, ऐसा योगियों ने कहा है।

आपने यवनराज को, श्री-शोभा के निवास-स्थल के समान कुमार पार्श्व द्वारा बँधवाकर उसके मान का मर्दन करा ही दिया है। अतः अब हे नर पुंगव, आप अपना क्रोध शान्त कर शत्रुता का भाव भूलकर उसे बन्धन मुक्त करा दीजिये।

शत्रु-मन्त्रियों के वचन सुनकर रविकीर्ति के मन का पाप धुल गया और उसका कारुण्य-भाव जग गया—

घत्ता— अतः उस (रविकीर्ति) ने शीघ्र ही यवनराज को अपने पद-युगल में झुकवाकर सांकल से बन्धन मुक्त कराकर छुड़वा दिया। वह यवनराज सूर्य के समान तेजवाले कुमार पार्श्व को भी प्रणाम कर अपने सुभटों के साथ अपने नगर को वापिस लौट गया। (98)

6/4

Arrival of Spring season. Figurative description of the natural beauty and scene and scenery. King Ravikīrti comes to his counsel-chamber with his senior ministers to consult some urgent matter.

तओ तुरंतओ समागओ वसंतमासओ।
अणंगतावसोसियाबला वसंतमासओ।।
चलंतचूअ-मंजरी णिबिद्ध कीरसंकुलो।
सुअंध फुल्ल रेणु रंजियालि कोइलाउलो।।
जगंत पूर भूरि तूर-राव रावियांबरो।
सकामकामिणी जणेण धित्तभूसणंबरो।।
सकुंकुमंबुधारसित्त मंदिरोरुपंगणो।
णडंत अच्छरा सरिच्छरूव भाव-रंगणो।।
विसाल वेल्लि मंडवंत कीलमाण कामुओ।
सपोमदीहिया गहीर णीर केलि-संजुओ।।
सुराव-रामिणीहिं गिज्जमाण गेय रम्मओ।
गएसभामिणीजणाहँ धत्त चित्त-सम्मओ।।
सफुल्ल किंसुआवलीविराइयाखिलासओ।
समाण माणिणी महंत माणं पणासओ।।
महीयले अजेय कामएव राय बंधओ।
विचित्तफुल्लबाणजालकामिलोयविंधओ।।

6/4

वसन्त मास का आगमन : वसन्त-सौन्दर्य - वर्णन
राजा रविकीर्ति अपने विश्वस्त मन्त्रियों के साथ मन्त्रणा-गृह में आता है—

तत्पश्चात् तुरन्त ही वसन्त मास का आगमन हुआ, जो अनंग के ताप से शोषित अबलाजनों को सन्त्रस्त करने वाला था।

हवा के झकोरों से डोलती हुई आम्र मंजरियाँ शुक-समूह से झुकी हुई थीं, सुगंधित पुष्प-पराग से रंजित भ्रमरों के गुंजारों तथा कोयल-समूह के स्वरों ने जगत के अन्त भाग को भी भर दिया था। विविध प्रकार के तूर-वाद्यों की ध्वनियों ने आकाश को भी गुंजा डाला था। उस वसन्त मास में काम-विकार से उत्तेजित कामिनी-जन वस्त्राभूषणों से अलंकृत हो रही थी, कुंकुम मिश्रित जलधारा से भवनों के विशाल प्रांगण सींचे जा रहे थे और अप्सराओं के सदृश रूपवाली उत्तम अंगनाएँ भावोत्तेजक नृत्य कर रही थीं। एक ओर कामुक जन विशाल लता-मण्डपों में क्रीडाएँ कर रहे थे, तो दूसरी ओर रसिकजन कमल-पुष्प युक्त गहरी बाबडियों के जल में क्रीडारत थे और कहीं-कहीं रमणियों के द्वारा सुमधुर ध्वनि में मनोहारी गीत गाये जा रहे थे।

वह वसन्त मास, जिनके पति परदेश गए हुए हैं, उनकी पत्नियों के चित्त को अशान्त बनाने वाला, किंशुक जाति के विकसित पुष्प-समूह से समस्त दिशाओं को सुशोभित करने वाला, मानवती मानिनियों के महान् मान का प्रणाशक, महीतल में अजेय कामदेव के राग को बाँधने वाला तथा चित्र-विचित्र पुष्प-बाणों के जाल से कामीजनों को बींधने वाला था।

घत्ता— इय वसंतु जा आयउ जण विक्खायउ ता रविकित्ति णरेसरु।
गउ समंति मंतणहरु बुहयण मणहरु णिय कुल-कमल-दिणेसरु।। 99।।

6/5

King Ravikīrti decides to marry his daughter Prabhāwatī with Prince pārśwa. An astrologer is called upon to find out auspicious day for the purpose.

रविकित्ति भणइ तहि महु तणूअ णामेण पहावइ अइसुरूअ।
दिज्जइ एह तिहुवण-सिरिवरासु सिरि पासकुमारहो हयवरासु।।
उज्झिवि वियप्प संकप्पभाउ परियाणेवि रविकित्तिहि सहाउ।
मंतिहिँ वज्जरिउ वियक्खणेहिँ परिहच्छिय बहुविह लक्खणेहिँ।।
5 जं अम्हहो मणे परिवसइ देव तं तुम्हेंहि जंपिउ मणुअसेव।
को कणयरयण संजाउ राय मण्णइ ण वइरि वारिहर वाय।।
तं णिसुणिवि हरिसिउ भाणुकित्ति आवज्जिय समरसहास कित्ति।
एत्थंतरे हक्कारिवि सुबुद्धि जोइसिय सिरोमणि विमलबुद्धि।।
वइसारिवि पवरासणि पउत्तु सो सहरिसेण गुणरयण-जुत्तु।
10 कहि सुअ-विवाह वासरु विसिट्ठु जह जोइस-सुअ णाणेण दिट्ठु।।

घत्ता— जब वह वसन्त मास आया, तब लोगों में विख्यात, बुधजनों के मन का हरण करने वाला और अपने कुल रूपी कमलों के लिये दिवाकर के समान वह रविकीर्ति नरेश्वर अपने मंत्रियों के साथ अपने मन्त्रणा गृह में गया। (99)

6/5

राजा रविकीर्ति अपनी पुत्री प्रभावती का विवाह कुमार पार्श्व के साथ करने का निश्चय करता है। मुहूर्त-शोधन के लिये वह ज्योतिषी को बुलवाता है—

(मन्त्रणा-गृह में मन्त्रियों के सम्मुख) राजा रविकीर्ति ने कहा—मेरी प्रभावती नामकी अत्यन्त सुन्दर पुत्री है। वह त्रिभुवन रूपी लक्ष्मी के वर के समान तथा शत्रुजनों को निराश करने वाले श्री पार्श्वकुमार को दी जाय, ऐसी मेरी इच्छा है।

राजा रविकीर्ति के मनोगत भावों को जानकर बहुविध लक्षण-शास्त्रों के ज्ञाता एवं विलक्षण प्रतिभा-सम्पन्न मन्त्रियों ने अपने संकल्प-विकल्प के भावों को छोड़कर उससे (स्पष्ट) कहा—नरेन्द्रों द्वारा सेवित हे देव, जो बात हमारे मन में थी, उसे तो आपने स्वयं ही कह दिया है। मेघ रूपी शत्रु के लिये वायु के समान हे राजन्, स्वर्ण एवं रत्न के संयोग को कौन नहीं मानता ? सहस्रों युद्धों में कीर्ति को अर्जित करने वाला राजा भानुकीर्ति (रविकीर्ति), उन मन्त्रियों के कथन सुनकर अत्यन्त हर्षित हुआ।

इसी बीच में उस राजा रविकीर्ति ने सुबुद्ध ज्योतिषियों में शिरोमणि विमलबुद्धि नामक ज्योतिषी को अपने यहाँ बुलवाकर एवं उच्च स्थान पर बैठाकर हर्षित होकर उससे कहा—ज्योतिष-शास्त्र के ज्ञान से आपने जैसा देखा हो, उसे गुणरत्नों से विभूषित हमारी पुत्री के विवाह के योग्य विशिष्ट शुभ-दिवस बतलाइये।

घत्ता— तेण वि तं णिसुणेविणु समणे मुणेविणु ससि-दिणु ससि-बल गह-तिहि भयणइँ।।
केवि अच्चंत विरुद्धइँ केवि विसुद्धइँ अइ छक्कट्ठ तिकोणइँ।। 100।।

6/6

King Ravikīrti proposes to Pārśwa to marry with his dear daughter — Prabhāwatī.

जंपियउ कुसत्थल-णयरणाहु समरावज्जिय जयसिरि-सणाहु।
णरणाह णत्थि जोइसिय सिद्धु मणहरु विवाह-वासरु-विसिद्धु।।
पर भणमि किंपि तुह पुरउ राय अणवरयदाण पीडिय वराय।
जइ णिव विवाह-वासर-विसुद्धि पावियइ ण कहवइ वि ण रिद्धि।।
ता गोधूलिय-बेलहिँ हवेइ एरिसु णिरुत्तु बुहयणु लवेइ।
तं सुणेवि राउ हरिसिय सरीरु गउ तहिँ जहिँ पासकुमारु वीरु।।
णिवसइ सुहासिणियरहिँ असज्झे छुहरस-धवलिय-धवलहर-मज्झे।
पणएण पाणिसंगहेवि वुत्तु वाणारसिरायहो तणउं पुत्तु।।
महु दुहिय देव तुहु परिणि तेम पुज्जंति मणोरह मज्झु जेम।
तं णिसुणिवि अणुमण्णिउ जवेण पासेण वि तं समणुच्छवेण।।

घत्ता— एत्थंतरे जगणाहँ णाणसणाहँ पेक्खिवि सालंकारउ।
गच्छंतउ णायर-जणु अइ उच्छुअ मणु विविहंबर विप्फारउ।। 101।।

घत्ता— उस बिमलबुद्धि ज्योतिषी ने भी राजा का कथन सुनकर अपने मन में चन्द्र-दिन, चन्द्र-बल, ग्रह, तिथि, नक्षत्रों एवं भगणों पर विचार किया। उनमें से कोई-कोई तो अत्यन्त विरुद्ध थे और कोई-कोई विशुद्ध योग्य और कितने ही षडष्टक-योग और त्रिकोण-योग वाले थे। (100)

6/6

राजा रविकीर्ति पार्श्व के सम्मुख अपनी पुत्री प्रभावती के साथ विवाह का प्रस्ताव रखता है—

समर-भूमि में उपार्जित जयश्री से समृद्ध कुशस्थल के उस नगराधिपति रविकीर्ति से ज्योतिषी ने कहा—हे नरनाथ, हमारा ज्योतिष कह रहा है कि इस मनोहर विवाह के लिए यद्यपि अभी विशिष्ट शुभ-दिवस लग्न नहीं आया है, तथापि अनवरत ही दीन-हीन बेचारे पीडित लोगों के लिये दान देने वाले हे राजन्, मैं आपके सम्मुख यह तो निश्चित रूप से कह ही सकता हूँ कि यदि उभय पक्ष के लिये ऋद्धि-दायक विवाह के शुभ-दिवस का लग्न कदाचित् न मिल सके, तो उसे गोधूलि-बेला में कर देना चाहिए, ऐसा बुधजनों में उत्तम ज्योतिषियों ने कहा है।

ज्योतिषी का मत जानकर हर्षित होकर राजा रविकीर्ति वहाँ पहुँचा, जहाँ वीरवर कुमार पार्श्व सुखासन पर विराजमान थे। उस समय वे देवों के लिये भी असाध्य छुई-रस से धवलित धवलगृह में निवास कर रहे थे। वहाँ रविकीर्ति ने अत्यन्त प्रेम पूर्वक वाणारसी के नरेश हयसेन के उस सुपुत्र पार्श्व का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा—हे देव, मेरी पुत्री का तुम वरण करो, जिससे मेरा मनोरथ पूर्ण हो जाय। रविकीर्ति का प्रस्ताव सुनकर उस कुमार पार्श्व ने तत्काल ही हर्षित एवं उत्साहित मन से अपनी अनुमति प्रदान कर दी।

घत्ता— इसी बीच में उन ज्ञानी जगन्नाथ (पार्श्व) ने अलंकारों से विभूषित रंग-बिरंगे परिधानों से सजे हुए एवं अतिउत्सुक मन वाले नागरिक-जनों को मार्ग में जाते हुए देखा। (101)

6/7

Prince Pārśwa goes with Ravikīrti to that particular spot of the city where some ascetics were busy with severe penance before the burning fire.

पुच्छिउ रविकित्ति णिहय-विरोहु
एहु जाइ केत्थु जणु जणिय सोहु।
तं सुणिवि कुसत्थल-सामिएण
संलत्तउ गयवर सामिएण।।
वणु भीमु अत्थि रंजिय सुरासु
अवरुत्तरंते एयहो पुरासु।
लक्खिज्जइ एक्कँ जोयणेण
सेविज्जइ बहु सावय गणेण।।
तहिँ तउ तवंति तावस सतेय
अहणिसु पज्जालिय जायवेय।
फल-कंद-मूल-पीणिय सदेह
परिचत्त सपुत्त-कलत्त-णेह।।
तहु पय पणाम विरयण णिमित्तु
एहु लोउ जाइ भूसणाहि दित्तु।
तं सुणिवि कुमारँ भणिउ एउ
अम्हइमि जाहु मा करहि खेउ।।
देक्खहु तहु तावस तणिय वित्ति
अण्णाण-मग्गे विरइय पवित्ति।
कोऊहलेण एउ भणिउ जाम
केणवि आणिउ मायंगु ताम।।

घत्ता— णिव रविकित्तिहे वयणँ भाविय सयणँ तहिँ चडेवि बिण्णिवि जण।
गय सपरियण वरिय तहिँ ते तवसहिँ जहिँ तउ तवंति हरिसियमण।। 102।।

6/7

कुमार पार्श्व रविकीर्ति के साथ नगर में उस स्थल पर पहुँचते हैं, जहाँ अग्नि-तापस कठिन तपस्या कर रहे थे—

विरोधों को नष्ट करने वाले कुमार पार्श्व ने राजा रविकीर्ति से पूछा—सज-धज कर ये लोग कहाँ जा रहे हैं? कुमार का यह प्रश्न सुनकर श्रेष्ठ गजों के स्वामी तथा कुशस्थल नरेश ने उत्तर में कहा—

इसी नगर के उत्तर-पश्चिम के अन्त (वायव्य कोण), में देवों का मनोरंजन करने वाला भीम नामक एक वन है, जो यहां से एक योजन की दूरी पर लक्षित है। वह अनेक श्रावक गण द्वारा सेवित है। वहाँ अनेक तेजस्वी तपस्वी तप किया करते हैं और अहर्निश जातवेद (पवित्र अग्नि) प्रज्वलित किया करते हैं। फल कन्द, मूल का भक्षण कर स्वदेह पोषण करते हैं, अपने पुत्र-कलत्र आदि के स्नेह-मोह को उन्होंने छोड़ दिया है। उन्हीं के चरणों में प्रमाण करने के निमित्त वस्त्राभूषणों से सज-धज कर ये लोग वहाँ जा रहे हैं।

यह सुनकर कुमार पार्श्व ने कहा—मैं भी वहाँ जाना चाहता हूँ। मेरे जाने का आप खेद मत करना। मैं वहाँ जाकर अज्ञान मार्ग में प्रवृत्त उन तपस्वियों की वृत्ति एवं प्रवृत्ति को देखूँगा। पार्श्व कौतुहल पूर्वक जब यह कह ही रहे थे कि उसी समय किसी ने एक मातंग (हाथी) लाकर उनके पास खड़ा कर दिया—

घत्ता— स्वजनों को प्रसन्न रखने वाले राजा रविकीर्ति के कथन से वे दोनों ही जन उसी हाथी पर सवार हुए और अपने परिजनों से आवृत्त होकर हर्षित मन से वहाँ पहुँचे, जहाँ वे तापसगण तपस्या कर रहे थे। (102)

6/8

While Prince Pārśwa was beholding minutely the actions, reactions and psychological tendencies of the Tāpasas (Ascetics), at the same time an evil hearted ascetic named after Kamaṭha arrives at the scene.

तहिँ दिट्ठु कोवि हुअवहु हुणंतु कलवाणि कोवि पंचमु झुणंतु।
पंचग्गि कोवि णिच्चल मणेण साहंतु परिज्जिय सरकणेण।।
जड-जूड-मउड-मंडियउ केवि चम्मट्ठि परिट्ठिय देहु कोवि।
वक्कल कोवीणु करंतु कोवि उद्धलंतउच्छारेण कोवि।।
5 जड-वप्पण-विहि विरयंतु कोवि हर सिरि गडुअ ढालंतु कोवि।।
कणयपसूणहिँ पुज्जंतु कोवि गुरुयर भत्तिए णच्चंतु कोवि।।
हाहाइ सद्दु विरयंतु कोवि कत्तारियालंकियपाणि कोवि।
विरयंतउ सिक्क-समूहु कोवि कय्धरिय सत्थु चितंतु कोवि।।
केयारपुराणु पढंतु कोवि तिणयणहो पयाहिण दिंतु कोवि।
10 थिर-लोयणु संभासंतु कोवि .....।।

घत्ता— एत्थंतरे असुहंकरु भिउडि-भयंकरु भुवण भवणे विक्खाययउ।
सिरकय लक्कड भारउ णिसिय कुठारउ तावसु कमठु समाययउ।। 103।।

6/8

कुमार पार्श्व जब तापसों की वृत्ति एवं प्रवृत्ति देख रहे थे, तभी कमठ नामका एक अशुभंकर तापस वहाँ आया—

उस तपोभूमि पर जाकर कुमार पार्श्व ने देखा कि कोई तापस तो अब अग्नि में होम कर रहा है और मुधर वाणी से पंचम स्वर में मन्त्र-ध्वनि कर रहा है। कोई-कोई तो निश्चल मन से शत्रुजनों को जीत लेने वाले बाण के समान सरकण्डों से पंचाग्नि तप को साध रहा है और कोई जटाजूट के मुकुट से मण्डित हो रहा है। कोई-कोई चर्म एवं अस्थि में स्थित देह मात्र वाले (अर्थात् नरकंकाल) थे, तो कोई बल्कल-कौपीन धारण किये हुए थे और कोई देह में भस्म लपेट रहे थे। कोई पौधों में जल-सेचन की क्रिया कर रहा था, तो कोई हर-हर महादेव के सिर पर गडुआ से जल ढाल रहा था। कोई कणय-पुष्पों (धतूरे के पुष्पों) से पूजा कर रहा था, तो कोई अत्यन्त भक्ति-भरित होकर नाच रहा था। कोई अहा-अहा शब्द का उच्चार कर रहा था, तो कोई हाथों को कैंची के समान अलंकृत कर रहा था। कोई सींकों का समूह बना रहा था, तो कोई-कोई हाथ में शास्त्र धारण कर उसका चिन्तन कर रहा था और कोई शिवपुराण (केयारपुराण) का अध्ययन कर रहा था। कोई त्रिनेत्र धारी (शिव) की प्रदक्षिणा कर रहा था, तो कोई स्थिर नेत्रों से सम्भाषण कर रहा था। कोई.....

घत्ता— इसी बीच वहाँ अशुभंकर, भृकुटि से भयंकर, लोगों में कमठ के नाम से विख्यात एक तापस अपने सिर पर लक्कड़ों का बोझ रखे हुए तथा तीक्ष्ण कुठार लिये हुए आया। (103)

6/9

Being resented on Pārśwa's utterances and with the view to curse him indignant hits on the wooden log by a sharp axe.

पंचग्गि मज्झे अमुणंतु कट्ठु अण्णाण-तवेण अखंड कट्ठु।
जा घिवइ धूलिधूसरिय गत्तु गउरीस पाय-पंकरुह भत्तु।।
ता लहु तिलोयवइणा पउत्तु मा घिवइ दारु जडबुद्धि जुत्तु।
तउ गुरउ जाउ दुरसणु सरोसु अंतरे एयहु भीसणु सदोसु।।
5 तं सुणेवि फरसु भासिउ मणेण कमठु कयंतु व कुवियउ खणेण।
कहँ गुरउ महारउ गुण-गरिट्ठु णीसेस तवसि संतइ वरिट्ठु।।
कहँ पवणासणु भीसणु सदप्पु संजायउ सविसु सरोसु सप्पु।
एउ वयणु पयंपिउ जं अणेण णरवइणा तं अहियत्तणेण।।
मण्णमि किं बहुणा भासिएण रोसेण लोयसंताविएण।
10 एयहो देक्खंतहो एउ दारु दारेविणु देक्खमि उरउ फारु।।
किं अत्थि णत्थि जइ ता जणाहँ पेक्खंतहँ दूसमि थिरमणाहँ।
पच्छा रूसेप्पिणु देमि साउ तह जह दवत्ति खउ जाइ राउ।।

घत्ता— एउ चिंतेवि सरोसें पयणिय दोसें करयले करेवि कुठारउ।
सविस विसहर कट्ठहो तरु पब्भट्ठहो कमठें दिण्णु पहारउ।। 104।।

6/9

पार्श्व के कथन से रुष्ट होकर तथा उन्हें शाप देने का विचार करता हुआ क्रोधित कमठ लक्कड पर तीक्ष्ण कुठार चलाता है—

पंचाग्नि-तप से होने वाले कष्टों पर ध्यान दिये बिना ही धूलि-धूसरित-गात्र वाले तथा शंकर जी के चरण-कमलों का परमभक्त वह कमठ अपने अज्ञानता पूर्ण तप के लिये बिना कटा अखण्ड लक्कड़ जब पंचाग्नि कुण्ड में झोंकने लगा, तभी त्रैलोक्यपति कुमार पार्श्व ने उससे (भर्त्सना पूर्ण स्वर में) तत्काल कहा— हे जड़बुद्धि, अग्नि कुण्ड में उस अखण्ड लक्कड़ को मत झोंक, क्योंकि इसके भीतर अत्यन्त भीषण दुष्ट एवं क्रोधी स्वभाववाला एक नाग है, जो पूर्वजन्म का तेरा गुरु है।

कुमार पार्श्व का यह कठोर कथन सुनकर वह कमठ तत्क्षण ही कृतान्त के समान क्रोधित हो उठा और बोला— कहाँ तो हमारा महार्घ्य गुण-गरिष्ठ एवं समस्त तपस्वियों में वरिष्ठ महान् गुरु और कहाँ पवन-भोजी, भीषण, दर्पीला, भयंकर विषधारी एवं क्रोधी सर्प (अर्थात् हमारा महान् गुरु सर्पयोनि में जन्म कैसे ले सकता है) (यह सर्वथा असम्भव है। फिर वह अपने मन में सोचता है कि–) नरपति पार्श्व ने अधिकार रूप में जो वचन कहे हैं, उन्हें मैं (थोड़े समय के लिये) मान लेता हूँ और अधिक कहने से क्या लाभ ? यही मानकर लोक को सन्तापित करने वाले क्रोध में भरकर देखते ही देखते इस लक्कड (दारु) को चीरकर मैं उस विशाल उरग (भुजंग) को देखूँ तो कि उसमें वह है भी अथवा नहीं। यदि नहीं निकला, तो स्थिर मन में (एकटक होकर) देखने वाले लोगों के समक्ष मैं इस (पार्श्व) को दोष दूँगा और बाद में क्रोधित होकर मैं उसे ऐसा शाप दूँगा कि जिससे कि वह राजा (पार्श्व) तत्काल ही क्षय को प्राप्त हो जाय।

घत्ता— ऐसा विचार कर, उस तापस कमठ ने रोषपूर्वक (पार्श्व को) दोष लगाते हुए तीक्ष्ण कुठार अपने हाथ में लेकर, वृक्ष से काटकर लाये गये विषधर भुजंग युक्त उस लक्कड पर तीक्ष्ण प्रहार किया। (104)

6/10

Seeing the snake smeared with blood Prince Pārśwa develops himself the feeling of renunciation. Due to the effect of Namokāra Mantra, given by Prince Pārśwa, the snake, after his death, takes birth in the Heaven as Dharṇendra Deva. On the other hand the indignant Kamaṭha, after his death becomes a Damon God (Asurendra Deva) named Meghamālina.

तहो धाएँ विसहरु छिण्णु जाम सकलुस तवसिहिँ उवहसिउ ताम।।
उवहासेँ तहो अहिमाणु जाउ अहिमाणें विरएवि असण-चाउ।।
कइवय दिणेहिँ पंचत्तु पत्तु संजाउ सग्गे विप्फुरिय गत्तु।।
णामेण पसिद्धउ मेहमालि असुरिंदु सुरुइपह अंसुमालि।।
एत्तहे पुणु वम्मा-तणुरुहेण संसार-गहिर-महणारुहेण।।
पेक्खेवि रुहिरारुण तणु भुअंगु गुरुयर पहार दुहपीडियंगु।।
करुणइँ तहो दिण्णउ कण्णि जाउ णिसुणंतु सोवि णिद्दलिय काउ।।
मेल्लेवि वि सदेहु धरणिंदु जाउ पायालि तिपल्लहिँ परिमियाउ।।
पेक्खेवि दुजीहु परिचत्तपाणु चिंतइ कुमारु हय-कुसुम-वाणु।।
किं लच्छिए महु किं भूसणेण अइदुल्लह णरभव दूसणेण।।
खणदिट्ठ णट्ठ जहिँ जीवियव्वु सरयब्भ-गब्भ-संकासु दव्वु।।
तहिं लहु विरयमि तउ घोरु वीरु उववासहिँ परि सोसमि सरीरु।।
दूरुज्झिवि बहिरंतरु पसंगु तणु मणु वयणहिँ णिज्जिय णिरंगु।।

6/10

खून से लथपथ भुजंग को देखकर पार्श्व को वैराग्य हो जाता है। णमोकार-मन्त्र के प्रभाव से वह भुजंग मर कर धरणेन्द्र देव का जन्म प्राप्त करता है और इधर क्रोधित कमठ मरकर मेघमाली नामक असुरेन्द्र-देव होता है—

कमठ द्वारा किये गये प्रहार से जब वह विषधर छिन्न-भिन्न हो गया, तब कलुषित मन वाले तापसों ने उस तापस (कमठ) का बड़ा उपहास किया। उस उपहास को देखकर कमठ का अभिमान जाग उठा और इसी (अभिमान) के चलते उसने अशन-त्याग का व्रत ले लिया और कुछ ही दिनों में मरकर वह स्वर्ग में सूर्यप्रभा को मन्द करने वाले स्फुरायमान शरीर का धारी होकर मेघमाली नामका असुरेन्द्र हो गया।

और इधर, संसारोदधि का गम्भीर रूप से मथंन करने वाले वामादेवी के पुत्र पार्श्व ने जब कमठ द्वारा किये गये कठोर प्रहार से पीडित अंग वाले उस भुजंग के लाल-लाल रक्त से लथपथ कटे-फटे शरीर को तडपता हुआ देखा तो अत्यन्त करुणा पूर्वक उन्होंने उस (भुजंग) के कान में मन्त्रोच्चारण किया। कटे-फटे शरीरवाले उस भुजंग ने भी उसे (ध्यानपूर्वक) सुना और मृत्यु को प्राप्त हुआ। वह पाताल लोक में तीन पल्य प्रमाण आयुष्य वाला धरणेन्द्र देव हुआ।

उस द्विजिह्व (सर्प) को मरा हुआ देखकर कामबाणों को नष्ट करने वाले उन कुमार पार्श्व ने चिन्तन किया—

मुझे लक्ष्मी से क्या (प्रयोजन) और इन आभूषणों से भी क्या (प्रयोजन)? इनसे अति दुर्लभ नर-भव को दूषित क्यों किया जाय? जहाँ शारीरिक जीवन क्षणभर में देखते ही देखते नष्ट हो जाता हैं, यह द्रव्यादि सम्पत्ति भी शरदकालीन मेघ के समान क्षणिक है। अतः मुझे तत्काल ही वैराग्य धारण कर कठोर वीर-तप करना चाहिए और उपवासों के द्वारा शरीर का शोषण करना चाहिए। मुझे बाह्याभ्यन्तर-प्रसंग (परिग्रह) दूर से ही छोड़ देना चाहिए और तन-मन एवं वचन से काम को जीतना चाहिए।

घत्ता— जं उप्पाएवि केवलु पावेवि तव बलु तिजय वत्थु जाणिज्जइ।
अविणस्सर सुहकारिणि मुणि-मण-हारिणि मोक्खलच्छि माणिज्जइ।। 105।।

6/11

Renunciation of Pārśwa. Lord Indra arranges his auspecious bath (Abhiṣeka)-ceremony with the holy water of Ksheera-Sāgara.

इय चिंतवंतु तवसिरि वरंतु।।
हयसेणु पुत्तु गुणरयण जुत्तु।।
लोयंतिएहिँ ससियंतिएहिँ।।
जंपिउ जईसु णिज्जयरईसु।।
तुहुँ देव धण्णु परिचत्तमण्णु।।
णिज्जियकसाउ वज्जिय विसाउ।।
कुरु धम्ममग्गु दरिसहिँ समग्गु।।
सग्गापवग्गु जणु पाव लग्गु।।
संबोह सामि सिवमग्ग गामि।।
इय भणेवि जाम पल्लट्ट ताम।।
आवेवि जवेण तियसाहिवेण।।
णियमिय मणेण वरमणि गणेण।।
णिम्मियउ जाणु भासंत भाणु।।
तहिँ चडिउ पासु परिगलिय पासु।।

घत्ता— तपोबल को प्राप्त कर, केवलज्ञान को उत्पन्न कर, मुझे त्रिलोक के तत्वों को जानना चाहिए और अविनश्वर सुख की कारण तथा महामुनियों के मन को हरण करने वाली मोक्ष-लक्ष्मी का आलिंगन करना चाहिए। (105)

6/11

पार्श्व को वैराग्य। इन्द्र ने क्षीरसागर के पवित्र जल से उनका अभिषेक किया—

इस प्रकार गुणरत्नों से युक्त वे हयसेन-पुत्र कुमार पार्श्व अपनी (सांसारिक) स्थिति पर विचार करते हुए तपश्री को वरण करने के लिये जब तैयार हुए, तभी चन्द्रमा के समान कान्ति वाले लौकान्तिक देव वहाँ आये और कामविजेता यतीश (पार्श्व) से निवेदन किया कि हे देव, आप धन्य हैं, जो अपने क्रोध का त्याग कर दिया है, कषायों को निर्जित कर दिया है और विषाद शोक करना छोड़ दिया है, अब आप धर्म मार्ग का प्रवर्तन कीजिये और सभी को स्वर्गापवर्ग के मार्ग का दर्शन कराइये। पाप-मार्ग में लगे हुए लोगों के लिये हे शिवमार्ग गामिन्, हे स्वामिन्, आप सम्बोधित कीजिये।

यह प्रार्थना कर जब वे लौकान्तिक देव अपने-अपने स्थान पर वापिस लौट गये, तभी त्रिदशेन्द्र ने तत्काल ही वहां आकर नियमित (स्थिर एकाग्र) मन से श्रेष्ठ मणि-रत्नों द्वारा सूर्य के समान भास्वर एक यान निर्मित किया।

भव-जाल को नष्ट करने वाले वे पार्श्व प्रभु, उस पर चढ़े। सर्वप्रथम मनुष्यों द्वारा, और तत्पश्चात् सुरवरों द्वारा

पढमउ णरेहिँ पुणु सुरवरेहिँ।।
णीयउ वणंते णहयर झुणंते।।
तरुवर विसाले सरवर रसाले।।
तहिँ रयणवीढे हरिणवइ पीढे।।
उअविट्ठ देउ जियमयरकेउ।।
जय-जय रवेण अमराहिवेण।।
मणि मण्णिऊण करि गिण्हिऊण।।
कलिमल-णिवारि खीरुअहि-वारि।।
ण्हाविउ कुमारु णिज्जिय कु मारु।।

घत्ता— हरियंदणेण विलेविउ चमरहिँ सेविउ णाणाहरणहिँ भूसिउ।
सुरहिँ सुकुसुमहिँ पुज्जिउ पुण्णु समज्जिउ णविउ ण जो रइदूसिउ।। 106।।

6/12

Pārśwa gives up all of his clothes, donated his precious ornaments etc. and accepts asceticism (Muni-Dīkshā).

तहिँ अवसरि सहसा पूसमासि धवलेयर दसमिहिँ सुहपयासि।।
पासेण वि पणविवि परमसिद्ध सइँ पंचमुट्ठि तिहुअण पसिद्ध।।
उप्पाडिय कुडिल सिरोरुहाइँ णावइ संसार-महीरुहाइँ।।
उत्तारिउ वच्छत्थलहो हारु णावइ भव-संभव-दुक्खभारु।।
दुरुज्झिय मणिमय कंकणाइँ णावइ रइणारि णिबंधणाइँ।।

उन्हें उस वनान्त में ले जाया गया, जहाँ नभचर पक्षी (कल-कल) ध्वनि कर रहे थे। वह वनान्त विशाल तरुवरों एवं सरोवरों से रसाल था। वहीं रत्न जटित एक सिंहासन पीठ पर कामजयी (जिय मयर-केउ) उन पार्श्व को विराजमान किया गया।

पुनः इन्द्र ने जय-जयकार-ध्वनि पूर्वक अपने मन में कलिमल के निवारक क्षीरसागर के जल को अपने हाथ में लेकर कुत्सित काम को निर्जित करने वाले उन कुमार पार्श्व का अभिषेक किया।

घत्ता— पुनः हरिचन्दन से लेपनकर, चामरों से सेवित, नाना प्रकार के आभूषणों से भूषित उन पार्श्व की देवों ने पुष्पों के द्वारा पूजा की, पुण्यों का उपार्जन किया और जो रति से दूषित नहीं हुए थे, उन पार्श्व को नमस्कार किया। (106)

6/12

समग्र वस्त्राभूषणादि का त्याग कर पार्श्व ने मुनि-दीक्षा धारण कर ली—

उसी अवसर पर पौष मास की धवलेतर (कृष्ण) दशमी की सुख-प्रकाशक तिथि में कुमार पार्श्व ने सहसा ही, त्रिभुवन में प्रसिद्ध परम सिद्धों को प्रणाम कर स्वयं ही पंचमुष्टि में अपने कुटिल केशों को ऐसे उपाड़ डाला, मानों संसार रूपी वृक्ष को ही उपाड़ डाला हो। वक्षस्थल से हार उतार फेंका, मानों संसार में होने वाले दुखों के बोझ

परिहरिउ रयणजडियउ किरीडु णावइ मणसिय बाण-णियर णीडु।।
मुक्कइ मणि णिम्मल कुंडलाइँ णावइ दुहयर खल-मंडलाइँ।।
ण समिच्छिय कडिरसणा रसंति णावइ चउगइ णाइणि डसंति।।
अवगण्णिउ णिम्मलु बाहुरक्खु णावइ णिरु णिव्वाणहो विवक्खु।।
10 अवमण्णिय णव-सेलिंघ-माल णावइ भवदुह संतइ वमाल।।
पच्चालिय पवरंगुत्थलीउ णावइ मणरुह रायत्थलीउ।।

घत्ता— छुडु कोमल सुइवसणइँ विरइय वसणइँ चत्तइ तणु आवरणइँ।
ता आलिंगिउ तवसिरियए वियलिय हिरियए दरिसंतिए तियरयणइँ।। 107।।

6/13

Extra-ordinary five wonders appear at the time of taking Āhāra (Pious food) by Pārśwa-Muni at the city of Gajapura.

एत्थंतरे इंदेँ पणय जिणेंदेँ सिररुहइँ।
मणिभायणे लेविणु विणउ करेविणु अलिणिहइँ।।
खित्तइँ अइपविमले खीरण्णवजले तहि समए।

को ही उतार फेंका हो। माणिक्य जटित कंकणों को दूर फेंक दिया, मानों रति-नारी के बन्धनों को ही तोड़ डाला हो। रत्न जटित किरीट को छोड़ दिया, मानों कामदेव के बाण-समूह का घर ही त्याग दिया हो। उन्होंने मणि निर्मित सुन्दर कुण्डलों को उतार दिया, मानों दुखकारी खल-मण्डल को ही हटा दिया हो। कटिभाग में बजती हुई रसना (करधंनी) की भी उन्हें चाहना न रही, वह ऐसी प्रतीत हो रही थी मानों उन्हें चतुर्गति रूप नागनी ही डँस रही हो। बाहुरक्षक निर्मल भुजबन्ध भी तिरस्कृत कर दिये, मानों वे निर्वाण प्राप्ति के बाधक ही हों, नव-पुष्पों की माला को भी तिरस्कृत कर दिया, मानों उनके लिये वह भवदुखों की परम्परा ही हो। अंगुलियों से प्रवर अंगूठियों को भी उतार फेंका, मानों उनके लिये वे कामराज की रंगस्थली ही हों।

घत्ता— सुकोमल सुन्दर आवरण वसनों (वस्त्रों) को व्यसनकारी (दुखकारक) समझकर तत्काल उनका भी परित्याग कर दिया। तभी तीन रत्नों को दिखलाती हुई तपोलक्ष्मी ने लज्जा का परित्याग कर पार्श्व प्रभु का आलिंगन किया। अर्थात् उन्होंने दैगम्बरी-दीक्षा धारण कर ली। (107)

6/13

गजपुर नगर में पार्श्व के आहार के समय पंचाश्चर्य प्रकट हुए—

तत्पश्चात् जिनेन्द्र पार्श्व को नमस्कार कर उनके भ्रमर सदृश केशों को मणिभाजन में रखकर वह इन्द्र विनय पूर्वक चला और उसी समय उसने क्षीरसागर के पवित्र जल में उनका क्षेपण कर दिया।

सय तिण्णि णरिंदहँ जाय मुणिंदहँ जिण समए।।
णिक्खवण-पहावण सिवसुह-पावण णह गमणे।।
जो गउ स विमाणए करिवि समाणए सइ-रमणो।।
परिहार सुसंजमु उववासट्ठय गहिवि जिणो।।
गइ पारण वारणो तव-वित्थारणे तिजय-इणो।।
गयउर वरदत्तें वियसिय वत्तें रइरहिउ।।
ठा ठाहु भणेविणु सिरिपणवेविणु पडिगहिउ।।
अंचेविणु चरणइँ भवभयहरणइँ जियसरहो।।
दिण्णउ वरभोयणु सुहसंजोयणु जिणवरहो।।
गंधोवय-वरिसणु जणवय-हरिसणु महिमहिउ।।
सुरसाहुक्कारउ तिहुअणसारउ गुण-सहिउ।।
दुंदुहि-रउ सुंदरु बहिरियकंदरु मणिवड्ढणो।।
कुसुमरयविमीसिउ पवणु पसंसिउ सुहघडणो।।
एयहिँ अच्चरियइँ हय दुच्चरियइँ सुंदरए।।
जायइ तक्खणे तहिँ जिणु जिमियउ जहिँ मंदिरए।।

घत्ता— अक्खयदाणु भणेविणु पाउ हणेविणु पासणाहु गुणभरियउ।
विहरइ जणु बोहंतउ रइ रोहंतउ णाणा रिसि परिवरियउ।। 108।।

पार्श्व के दीक्षा-काल में 300 अन्य राजा भी मुनीन्द्र बन गये। इस प्रकार पावन शिव-सुख को प्राप्त कराने वाली महाभिनिष्क्रमण-प्रभावना करके तथा नवदीक्षित उन राजाओं का सम्मान करके वह इन्द्र अपनी इन्द्राणी के साथ विमान में बैठकर नभ मार्ग से वापिस लौट गया।

तीनों लोकों के लिये सूर्य के समान उन पार्श्व मुनीन्द्र ने अपने तप-विस्तार के लिये परिहार-विशुद्धि संयम धारण कर अष्टमोपवास (तेला) व्रत ग्रहण किया और पारणा के निमित्त गजपुर (हस्तिनापुर) पहुंचे।

वहाँ के राजा वरदत्त ने प्रसन्न मुद्रा पूर्वक रतिजयी उन पार्श्व का अत्र-अत्र, तिष्ठ-तिष्ठ कहकर, सिर नवाकर, उन्हें पडगाहा और कामदेव को पराजित करने वाले, भव-भय का हरण करने वाले उनके चरणों की पूजाकर उन जिनेन्द्र के लिये शुभ-संयोजक प्राशुक उत्तम आहार दान दिया।

उन मुनीन्द्र ने जिस भवन में आहार ग्रहण किया, उसी समय वहां पांच प्रकार के दुश्चरितों को नष्ट करने वाले आश्चर्य हुए (1) पृथिवीतल पर महान् तथा जनपद को हर्षित करने वाली गन्धोदक वृष्टि, (2) त्रिभुवन में सारभूत, गुण-समृद्ध देवों द्वारा साधुकार (जय-जयकार), (3) पर्वत-कन्दराओं को भी बधिर कर देने वाले सुन्दर दुन्दुभि-वाद्यों का वादन, (4) मणिरत्नवृष्टि, एवं (5) कुसुमरज मिश्रित सुखद पवन का बहना।

घत्ता— अक्षयदान घोषित कर, पापों को नष्ट कर, गुण-समृद्ध एवं रतिजयी वे पार्श्वनाथ नाना मुनीन्द्रों के संघ सहित लोगों को सम्बोधित करते हुए विहार करने लगे। (108)

6/14

Aggrieved on account of acceptance of asceticism by Prince Pārśwa, King Ravikīrti has with a very heavy heart to return back alone to Kuśasthala.

जा कुमारु दिक्ख थक्कु ता विवक्खु राणउ।
सविसण्णु भाणुकित्ति कण्णउज्ज राणउ।।
हा विहाय किं तया सचित्तेणाविवेइउ।
जेण णाणवंतु संतु झत्ति दिक्ख जोइउ।।
धत्थ-बुद्धि धिट्ठ छुद्द रज्ज-दूसणा।
कट्ठ-कट्ठ सिट्ठ-भट्ठ दुट्ठ-मग्ग-भूसणा।।
सच्छरामरोह लद्ध संसु समरंगणे।
जायरूव सेलंधीरु तोसियामरंगणे।।
देव देउ मेल्लिऊण सत्तु को विहंजिही।
चित्तहारि चाउरंग रायलच्छि रंजिही।।
एम सोय माणुसोय जाय वेयणाउरो।
मुच्छिऊण भूगओ हणंतु पाणिणा उरो।।
पाविऊण चंदणंबुसिंचिणं ससोसणं।
उट्ठिउ खणेक्कु अच्छिदेह पोसणं।।
संभरंतु माणसंतरे गुणोहु सामिणो।
दुक्खलक्ख खीण-गत्तु मोक्खमग्ग गामिणो।।

6/14

कुमार पार्श्व के दीक्षित हो जाने के कारण शोकाकुल रविकीर्ति को अकेले ही कुशस्थल लौटना पड़ता है—

जब कुमार पार्श्व दीक्षित, हुए, तभी से कान्यकुब्ज (कन्नौज) का विपक्षी राजा भानुकीर्ति (रविकीर्ति) विषाद से भर गया और चिल्लाने लगा कि— हाय पार्श्व, अपने चित्त से तूने ऐसा अविवेक पूर्ण कार्य कैसे कर डाला, जो हमें अकेला ही छोड़ गया। इतना समझदार होते हुए भी इतनी जल्दी दीक्षा कैसे ले ली ?

तूने ध्वस्त-बुद्धि, धृष्ट, क्षुद्र, राज्य को दूषित बनाने वाले, अतिकष्टकारक, शिष्टाचार से भ्रष्ट, दुष्ट मार्ग के भूषण जैसे लोगों को नष्ट कर डाला था।

सुमेरु पर्वत के समान धीर-वीर, देव-देवियों के लिये हर्षोत्पादक, समरांगण में अप्सराओं तथा देवों द्वारा प्रशंसा प्राप्त हे देव, तुम्हें छोड़कर अब ऐसा कौन है, जो मेरे शत्रुओं का भंजन करेगा ? चित्त का हरण करने वाली चतुरंग राज्यलक्ष्मी का अब रंजन कौन करेगा ?

इस प्रकार मन में शोक करता हुआ, शोकजनित वेदना से आतुर वह रविकीर्ति अपनी छाती पीटता हुआ मूर्च्छित होकर पृथिवी पर जा गिरा। देह को पोषक-तत्व देने वाले चन्दन के जल से सिंचन और शीतल-वायु के सेवन से वह कुछ ही क्षणों में उठ बैठा और भव-दुखों के लक्ष्य से क्षीण-गात्र, गुण-समृद्ध तथा मोक्षमार्ग-गामी स्वामी पार्श्व का वह अपने मन में स्मरण करने लगा।

एत्थु अंतरे विसाल बुद्धिणा पवोहिओ।
सव्व सत्थ चंचुरेण मंतिणा णराहिओ।।
भंगुरं पयंपिऊण पुत्त-मित्त-मंदिरं।
सत्ति-पत्ति-संदणंगणा रसंत चंदिरं।।

घत्ता— वज्जिवि सोउ असारु दुण्णयगारु सिरिभूसिय वच्छत्थलु।
दुम्मण परियणसहियउ जगगुरु-रहियउ गउ रविकित्ति कुसत्थलु।। 109।।

6/15

Heart rendering crying of Princess Prabhāwatī, due to the separation from her dear Pārśwa.

तहिँ समए कुमारहो सुणेवि वत्त परिपालिय संजम तणिय जत्त।।
आमेल्लिय धाह पहावईए उब्भेवि भुअ-जुअलु पहावईए।।
थोरंसु णिहय थोव्वड थणाए पियविरह वेयणाउलु मणाए।।
लोयण-कज्जल मइलिय मुहाए पयणिय णिय हियय महादुहाए।।
णिवडंतिए धरणीयले लसंति आबद्ध णिविड वरदंत पंति।।
पावेवि सपवणु सलिलाहिसेउ उट्ठिय पुणु विमण भणंति एउ।।
णित्तुलउ मुणमि णियमणि विहाय सुहियण संतइ मत्थय णिहाय।।

इसी बीच, राजा रविकीर्ति की यह दशा देखकर सर्वशास्त्रों में निष्णात, विशाल बुद्धि के धारक एक मन्त्री ने उसे प्रबोधित किया और समझाते हुए कहा—

हे राजन्, पुत्र, मित्र, मन्दिर (भवन आदि), सत्ति (घोड़ा), पत्ति (पदाति-पैदल) सेना, स्यन्दन (रथ), मनोरंजन करने वाली रसिक अंगनाएँ आदि ये सभी क्षणिक हैं—

घत्ता— तथा सभी दुर्नयकारक हैं। अतः उन्हें निस्सार समझकर शोक करना छोड़ दीजिये। यह सुनकर हार-मण्डित वक्षस्थल वाला वह रविकीर्ति शोकाकुल परिजनों सहित किन्तु जगत् गुरु (पार्श्व) रहित होकर अपने कुशस्थल नगर में लौट आया। (109) (त्रोटक छन्द)

6/15

प्रिय-विरह में राजकुमारी प्रभावती का करुण-क्रन्दन—

उसी समय पार्श्व कुमार के संयम-पालन सम्बन्धी यात्रा का वृत्तान्त सुनकर (राजकुमारी) प्रभावती ने अपने स्वर्णाभा वाले भुजयुगल ऊपर की ओर उठाकर जोर से धाड़ मारी। अश्रुधारा के प्रवाह से उसके उन्नत कठोर स्तन भीग गए। प्रिय-विरह-जनित वेदना से उनका मन अत्यन्त व्याकुल हो उठा। नेत्रों में लगे काजल के बह जाने से उसका मुख श्यामवर्ण का हो गया। वह अपने हृदय में महान् दुख का अनुभव कर रही थी। मूर्च्छित होकर वह धरती पर गिर पड़ी उस समय उसकी अत्यन्त घनी आबद्ध दन्तपंक्ति सुशोभित हो रही थी। जब उसके मुख पर शीतल जल का सिंचन एवं हवा की गई, तब वह उठी और अनमनी होकर बोलने लगी—हे पार्श्व, मैं तो आपको अपने मन में अनुपम मानव मानती रही हूँ और अपनी चिन्ताओं को छोड़कर मैं सुधीजनों के साथ निरन्तर ही अपना मत्था टेकती रही हूँ।

ण गओसि कयाइवि णेह मज्झे अम्हारिस माणुस अइ दुसज्झे।।
इयरह कह विच्छोइय पिएण णिट्ठुरि कय णिग्घिण हउँ पिएण।।
अहवा इह कोवि ण दइव दोसु जं महु परिगणिउ हवंतु तोसु।।
णउ अण्ण जम्मे मइ कियउ किंपि जिणभणिउ धम्मु तिलमेत्तु जंपि।।
तेणायउ बहुविह दुक्ख दिंतु भोयंतराउ महु पाण लेंतु।।

घत्ता— एव्वहिं किं पुणु बहुणा जा गइ पहुणा परिरंभिय परिओसेँ।
सा मज्झु वि इउ बोल्लिवि मण्णु णिहोल्लिवि थिय घरि किं बहु सोसेँ।। 110।।

6/16

After hearing the news King Hayasena plunges into deep grief on account of heart breaking separation from his dearest son Pārśwa.

णिय बहिणि-णेह णिहियंत रंगु रविकित्ति राउ परिगलिय रंगु।।
गउ वाणारसि णयरिहिं तुरंतु सिरीपासकुमारहो गुण-सरंतु।।
तहिँ जाएवि दिट्ठउ धरणिणाहु हयसेणु राय-लच्छी सणाहु।।
पणवेप्पिणु पयजुअलउ जवेण जंपिवि वइसिवि गग्गिर रवेण।।
अंसुअ परिपूरिय लोयणेण बहु दुक्ख भारेण वियाणणेण।।
जह जिणिवि जउणु परिदिण्ण रज्जु तह हुउ विराउ चिंतिउ सकज्जु।।

आप तो कभी भी स्नेह में नहीं रमें, किन्तु मुझ जैसी नारी के लिये तो वह अत्यन्त दुस्साध्य (एवं दुस्सह्य) हो गया है। मैं तो अभागिनी हूँ, अन्यथा यह प्रिय-विछोह होता ही क्यों ? हाय, मैं तो अब निष्ठुर प्रिय के द्वारा घृणित कर दी गई हूँ। (लेकिन इसमें किसे दोष दूँ?) इसमें किसी का दोष नहीं, यह तो केवल दैव का ही दोष है, जिसे स्वीकार कर मुझे सन्तुष्ट हो जाना चाहिए। मैंने पूर्वजन्म में कोई सुकर्म हीं नहीं किया था, जिनेन्द्र द्वारा प्रतिपादित धर्म का भी तिलमात्र पालन नहीं किया था, उसके फल स्वरूप मेरे प्राणों का हरण करने वाले तथा विविध प्रकार के दुख देने वाले भोगान्तराय-कर्म का उदय हो गया है।

घत्ता— किन्तु अब अधिक सोच-विचार से क्या लाभ ? और अधिक शोक करने से भी क्या लाभ? प्रभु पार्श्व ने सन्तोष पूर्वक जो मार्ग पकड़ा है, अब मेरा भी वही मार्ग होगा। यह कहकर मन को समझाकर वह घर में ही स्थिर होकर रहने लगी। (110)

6/16

पुत्र-वियोग में राजा हयसेन शोकाकुल हो जाते हैं—

अपनी बहिन बामादेवी के स्नेह-रस में पगा हुआ वह राजा रविकीर्ति उल्लास रहित होकर (परिगलियरंगु) तथा श्रीकुमार पार्श्व के गुणों का स्मरण करता हुआ तुरन्त ही वाणारसी नगरी पहुँचा। वहाँ पहुँचकर उसने (सर्वप्रथम) राज्य-लक्ष्मी से समृद्ध पृथिवीनाथ हयसेन के दर्शन किये। उसने शीघ्र ही उनके चरण-युगल में प्रणाम किया, फिर बैठकर अश्रु-प्रपूरित नेत्रों से भारी दुख के भार से झुके हुए मुख से गद्‌गद् वाणी में कहा—

कुमार पार्श्व ने जैसे ही यवनराज को जीता और फिर उसका राज्य उसी को वापिस कर दिया, तभी उन्होंने (पार्श्व ने) आत्म कल्याण करने वाले वैराग्य के विषय में विचार किया।

जह धरियउ ण पहावइ करग्गु जह जिणवरु संजमजत्त लग्गु।।
तं सुणिवि वयणु हयसेणु राउ जायउ अइदुक्खिउ णं वराउ।।
सो आदण्णउ परिवडिउ केम महियले विमूलु चिर कुरुहु जेम।।
10 उट्ठिउ पुणोवि चेयण लहेवि सोयंतउ सयणहिँ सिरु धुणेवि।।

घत्ता— हा-हा पुत्त सलक्खण जाणिय लक्खण कुल उययगिरि दिवायर।
मइं एक्कल्लउ मेल्लिवि परियणु सल्लेवि कँहि गओसि गुणसायर।। 111।।

6/17

Aggrieved Hayasena is consold by his counsellor.

पइँ बिणु को मुज्झ मणोरहाइँ पूरवइ पुत्त पयणिय सुहाइँ।।
पइँ बिणु को वाहइ वर तुरंग हा पुत्त दमइ को तह मयंग।।
पइँ बिणु को पच्चुत्तरु करेइ रणि जंतहो महु को करु धरेइ।।
पइँ बिणु वाणारसि सयल सुण्ण तुव विरहवेयणादण्ण रुण्ण।।
5 इय सोउ करइ हयसेणु जाम णिउण-मइहिँ मंतिहिँ वुत्तु ताम।।
भो देव मेल्लि सुअ तणउ सोउ संसारहो कारणु जणिय रोउ।।
जह हवइ जोउ तह पुणु विओउ एउ मुणेवि विउसु को करइ सोउ।।

उन्होंने (पार्श्व ने) जिस प्रकार (राजकुमारी) प्रभावती के साथ पाणिग्रहण नहीं किया और जिस प्रकार वह जिनवर अपनी संयम-यात्रा में लग गया, यह समस्त वृत्तान्त (अथ से लेकर इति तक) उन्हें कह सुनाया।

रविकीर्ति से समस्त वृत्तान्त सुनकर राजा हयसेन दीन-हीन की भांति अत्यन्त दुखी हो उठे। उसे सुनकर वे (हयसेन) किस प्रकार गिर पड़े? ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार कि जड़ रहित जीर्ण वृक्ष भूमिसात हो जाता है।

थोड़ी ही देर में चेतना पाकर वह पुनः उठ बैठे और पलंग पर लेटकर सिर धुनने लगे और कहने लगे—

घत्ता— हाय-हाय, हे लक्षण-समृद्ध पुत्र, हे लक्षण शास्त्रों के ज्ञाता, हे उदयगिरि के दिवाकर, हे गुणसागर, मुझे अकेला ही छोड़कर तथा परिजनों को दुखी बनाकर तुम कहाँ चले गये ? (111)

6/17

राजा हयसेन को शोकाकुल देखकर उनका मन्त्री उनको समझाता है—

(पुत्र को लक्ष्य कर) हे पुत्र, अब तुम्हारे बिना मेरे सुखदायक मनोरथ कौन पूर्ण करेगा और सुख देगा? तुम्हारे बिना उत्तम घोड़ों को कौन चलायेगा ? और हे पुत्र, तुम्हारे बिना अब मत्तगजों को कौन वश में करेगा ? तुम्हारे बिना प्रत्युत्तर कौन करेगा और हाथ पकड़कर मुझे युद्ध में जाने से कौन रोकेगा? तुम्हारे बिना समस्त वाणारसी नगरी शून्य हो गई है और तुम्हारी विरह-वेदना से सभी दुखी और रुदन कर रहे हैं।

इस प्रकार जब राजा हयसेन शोक व्यक्त कर रहे थे, तभी एक निपुण-मति मन्त्री ने उन्हें समझाते हुए कहा— हे देव, पुत्र का शोक करना छोड़िए। क्योंकि शोक ही संसार का कारण और रोगों को उत्पन्न करने वाला है। जगत में जैसे संयोग होता हे, वैसे ही वियोग भी आता है। प्रकृति का यही नियम है। अतः ऐसा कौन विद्वान् है जो शोक करेगा। यही सोचकर जिन्होंने सुमेरु पर्वत पर जलाभिषेक प्राप्त किया है, जिन्होंने समस्त लोक-मार्ग का ज्ञान प्राप्त

परमेसरु पुणु जो पासु देउ सुरगिरिहिँ पत्तु सलिलाहिसेउ।।
जें बुज्झिउ सयलु वि लोयमग्गु जसु चरणहिँ तियसाहिवइ लग्गु।।
10 तेवीसमु जो तित्थयर देउ अहणिसु णरिंद-णाइंद धेउ।।
जो दूरुज्झिवि संसारु भारु तवसिरि संट्ठिउ णिम्महि वि मारु।।
जो परमु परंपरु मोक्खगामि पयणिय सुह सिद्धि पुरंधि सामि।।

घत्ता— सो सोय णह जुत्तउ होइ निरुत्तउ तुह तं वयणु सुणेविणु।
णियमणि परिभावेविणु हियवउ देविणु मेल्लिउ सोउ मुणेविणु।। 112।।

6/18

Figurative description of Loud weeping of mother Vāmādevī at the time of separation of her dearest son.

परमेसरि णिवसइ वम्म जेत्थु संपत्तु जंतु रविकित्ति तेत्थु।।
ससहोयरि सज्झ स भरिय गत्तु लज्जए परिहरियउ मलिणवत्तु।।
पणवेप्पिणु पय वज्जरिय वत्त छुडु वणे रणे मंदिरे जेम वित्त।।
ता तक्खणे णिवडिय वम्मदेवि महियले थणजुअलउ करहिं लेवि।।

कर लिया है, जिनके चरणों में इन्द्र भी नत मस्तक रहते हैं, जो तेईसवें तीर्थकर देव हैं, जो अहर्निश देवेन्द्रों एवं नागेन्द्रों के आराध्य हैं, जिन्होंने संसार के भार को दूर से ही छोड़ दिया है, जो मन्मथ का मन्थन कर तपश्री में संस्थित हैं, जो परम श्रेष्ठ हैं, परम्पर हैं, मोक्षगामी हैं और सुख की सिद्धि रूप रमणी-पुरन्ध्री के स्वामी हैं।

घत्ता— अतः ऐसे पुत्र का शोक करना निश्चय ही आपके लिये उचित नहीं। मन्त्री के इन हितावह वचनों को सुनकर अपने मन में उनका अनुभव कर राजा हयसेन ने भी शोक करना छोड़ दिया। (112)

6/18

प्रिय पुत्र-वियोग में माता वामादेवी का करुण-क्रन्दन—

(राजभवन में ही–) चलते-चलते राजा रविकीर्ति वहाँ पहुँचा, जहाँ परमेश्वरी वामादेवी निवास करती थीं। वह अपनी सहोदरी-बहिन के दुख से पहले से ही भरा हुआ था। लज्जा से वह खोया-खोया हुआ तथा म्लान-मुख था। उसने उसके चरणों में प्रणाम किया और तत्काल ही रण से लेकर कुशस्थल के भवन में जाने तथा वहां से भीमवन में जाने सम्बन्धी कुमार पार्श्व का समस्त वृत्तान्त जैसे ही उसे कहा, तभी वह तत्काल ही वक्षस्थल पर हाथ ठोकती हुई धरती पर गिर पड़ी और हाय पुत्र, हाय-पुत्र कहती हुई मूर्च्छित हो गई। उसके वस्त्र गिर गये और शरीर चेतना-शून्य हो गया।

इसी बीच में कोई दासी तो चन्दन का लेप करने लगी और कोई दौड़ी-दौड़ी आकर शीतल वायु हांकने लगी। कोई दौड़कर जल का सिंचन करने लगी और कोई विजना (पंखा) झलने लगी। जैसे तैसे जब वह होश में आकर उठी, तो अपने आंसुओं से महीतल को भरने लगी। वह पुकार-पुकार कर कहने लगी कि हाय पुत्र, तेरा मनोज्ञ मुख अब कैसे देख पाऊँगी?

हा पुत्त भणंती मुच्छ पत्त गलियंबर चेयण-रहिय गत्त।।
एत्थंतरे कवि चंदणु लयंति धाविय कवि सिसिराणलु घिवंति।।
कवि धाविय जल-सिंचणु करंति कवि वम्मदेवि विज्जणु धरंति।।
कह कहव पुणुट्ठिय संभरंति णिय तणुरुहु अंसुहि महि भरंति।।
हा तं मुहु कहि पेच्छमि मणोज्जु तं वच्छत्थलु जं जणिय चोज्जु।।
ते कर ते पय ते बाहुदंड हा पुत्त परज्जिय कुसुम कंड।।
कहिँ पेच्छमि मण वीसामठाम ससहर-मंडल संलिहिय णाम।।
हा-हा पइँ बिणु गुणरयणजुत्त मइ माय भणेसइ कवणु पुत्त।।

घत्ता— इय सोयइ जा तणुरुहु ता मइलिय-मुहुँ परियण सुह-संकोयणु।
रोअइ सोआदण्णउ महिहि णिसण्णउ अंसुज्जोलिय लोयणु।। 113।।

6/19

Wise and sympathetic persons of the kingdom console the grief striken mother Vāmādevī. Ravikīrti returns back to Kuśasthala.

तहिँ अवसरि भासिउ बुहयणेहिँ णिय गुणगण रंजिय सुरगणेहिँ।।
मा रुवहि माए सुमरिवि कुमारु मुहुं लुहेवि देवि सुणु वयणु सारु।।
रोविज्जइ सो जो होइ हीणु मइ विहव परक्कम चाय खीणु।।
परमेसरु पुणु सग्गहो समाउ अवयरेवि गब्भि तुह पुत्त जाउ।।

आश्चर्य (चोज्जु) उत्पन्न करने वाला तेरा वह वक्षस्थल, वे दोनों हाथ, दोनों पैर, वे बाहुदण्ड कहाँ देखने को मिलेंगे? कुसुम कंड (काम-बाण) को पराजित करने वाले, हाय पुत्र, अब मैं तुझे कैसे देख पाऊँगी? हाय मेरे मन के विश्राम-धाम, तेरा नाम तो चन्द्रमण्डल में लिखा हुआ है। हाय, हाय गुण रूपी रत्नों से समृद्ध हे मेरे पुत्र, तेरे बिना अब मुझे माँ कहकर कौन पुकारेगा ?

घत्ता— इस प्रकार वह माता वामादेवी अपने पुत्र के लिये विलाप कर रही थी, तभी उसके दुख से दुखी, म्लान मुख लिये परिजन लोग अपना-अपना सुख छोड़कर शोकाकुल होकर सभी लोग रुदन करने लगे और भूमि पर बैठकर अपने आंसुओं को बहाने लगे। (113)

6/19

महामति बुधजनों ने शोकाकुल माता वामादेवी को सम्बोधित किया। रविकीर्ति वाणारसी से अकेला ही वापिस कुशस्थल लौट आता है—

उसी अवसर पर अपने गुण-समूह से देवों को भी रंजित कर देने वाले बुधजनों ने माता को सम्बोधित करते हुए कहा— हे माते, कुमार (पार्श्व) का स्मरण कर रोइए मत। हे देवी, मुख धोकर हमारे सारभूत वचनों को सुनिए— रोता वही है, जो हीन-वृत्ति का होता है और जो मति से, विभव से, पराक्रम से और त्याग से क्षीण होता है। परमेश्वर (पार्श्व) तो स्वर्ग से आये थे और आपके गर्भ में आकर पुत्र रूप में अवतरित हुए थे। जिसने बचपन

बालुवि ण्हाविउ मेरुहि भरेण खीरण्णव सलिलहिँ सुरवरेण।।
लीलएँ मयरद्धउ जित्तु जेण णिम्मल तिणाण परमेसरेण।।
णीसेसुवि जाणिउ रायमग्गु समरंगणि जउणु णरिंदु भग्गु।।
मामहो दिण्णु णिक्कंटु रज्जु जाणेवि जगु चिंतिउ मोक्खकज्जु।।
एरिस गुण-जुत्तउ गुण-णिहाणु खयरामर-णर-विसहरपहाणु।।
सो किं तणुरुहु रोवियइ माए मेल्लियइ ण जो लक्खणरमाए।।
अवरु वि सुणु केवलणाण जुत्तु आविहइ एत्थु दिवसहि णिरुत्तु।।
इय संबोहिय जा वम्मदेवि ता पणवेवि आसीवाउ लेवि।।

घत्ता— णट्टलु व मणोहरु वरगुण-सिरिहरु अमल-जसेण पसाहिउ।।
लूरिय रिउ वंसत्थले णयरि कुसत्थले गउ रविकित्ति णराहिउ ।। 114।।

Colophon

इय-सिरि पासचरित्तं रइयं बुहसिरिहरेण गुणभरियं। अणुमण्णियं मणोज्जं णट्टल-णामेण भव्वेण।। छ।।
जउणारिमाणहरणे पासकुमारस्स चारु-णिक्खवणे। हयसेण-सोय-जणणे छट्ठी संधी-परिच्छेओ सम्मत्तो।। छ।।

Blessings to Sāhu Naṭṭala, the inspirer

यः सर्वदा शुचिरनागत कार्यवेदी त्यागी-गुणी-शुभमति-सुभगो विवेकी।
श्रीमान् मंदरुचिरप्रतिमो यशस्वी जीयादसौ जगति-नट्टल नामधेयः।। छ।।

में उस इन्द्र द्वारा सुमेरु पर्वत पर क्षीरसागर के जल से अभिषेक प्राप्त किया था, जिसने लीलापूर्वक ही कामदेव को जीत लिया था, जो निर्मल तीन ज्ञान का धारी था, जिसने समस्त राजमार्ग (राजनीति) को जान लिया था, जिसने समरभूमि से यवनराज को पराजित कर बाँध लिया था, और अपने मामा (रविकीर्ति) के लिये निष्कण्टक राज्य सौंप दिया था तथा जगत् के स्वभाव को जानकर अब मोक्ष-कार्य को साधने का विचार किया है।

ऐसे गुण-समृद्ध, गुण-निधान, विद्याधरों, देवेन्द्रों एवं नागेन्द्रों में प्रधान अपने उस सुन्दर लक्षणांकित पुत्र के लिये हे माते, आप क्यों रुदन कर रही हैं? और भी सुनिए कि जब वह (पार्श्व) केवलज्ञान प्राप्त कर लेंगे, तब कुछ ही दिनों में वे विहार करते हुए यहाँ अवश्य ही आयेंगे। इस प्रकार उन्होंने वामादेवी को सम्बोधित किया और प्रणाम कर आशीर्वाद लेकर चले गये।

घत्ता— धवल-यश से प्रसाधित नट्टल के समान मनोहर और गुण-समृद्ध, बुध श्रीधर के समान श्रेष्ठ, वंसस्थल के शत्रुओं को जड़मूल से उखाड़ देने वाला, वह नराधिप रविकीर्ति अपने कुशस्थल नगर में वापिस लौट आया। (114)

पुष्पिका

मनोज्ञ एवं गुणभरित श्री पार्श्वनाथ-चरित की रचना बुध श्रीधर ने की है, जिसका अनुमोदन नट्टल नाम के भव्य (साहू) ने किया है।

इस प्रकार यवनराज शत्रु के मान-हरण, पार्श्वकुमार के सुन्दर निष्क्रमण तथा राजा हयसेन एवं वामादेवी के शोक का वर्णन करने वाली छठी सन्धि (परिच्छेद) समाप्त हुई।

आश्रयदाता नट्टल साहू के लिये आशीर्वाद

जो निरन्तर पवित्र आचरण वाला, अनागत कार्यों का जानकार, त्यागी, गुणी, शुभमति, सुभग, विवेकी, श्रीमन्त, भद्र-रुचियों वाला और जो अप्रतिम यशस्वी है, ऐसा नट्टल नामधारी (आश्रयदाता) संसार में नन्दित-वर्धित रहे।

सत्तमी संधी

7/1

While wandering ascetic Pārśwa comes to Bhimāṭawī, a very dense forest.

घत्ता— एत्थंतरे दुद्धर तवयरणु खयरोरयणर-सुरवर सरणु।
भवियण-मण-गय-संसय-हरणु वर विमलणाण लच्छी-सरणु।। छ।।

वत्थु-छन्द— विमल तवसिरि-णारि रंजंतु।
मउ भव-भडहो भंजंतु मणि महंतु सिव सोक्ख संगमु।
चूरंतु मिच्छत्ततरु जिय णिरंगु मुणि-णियर पुंगमु।।
कूर-करण पक्कल करडि कुंभत्थलइँ दलंतु।
विहरइ पासु जिणाहिवइ मणरुह माणु मलंतु।। छ।।

मिच्छादंसणेक्कु छिंदंतउ अइदूसह दो दोस मुअंतउ।।
तिरयण रयणाहरणु धरंतउ चउविह आराहण सुमरंतउ।।
पवियल पंचायार चरंतउ छायासय-सरूव सुमरंतउ।।
सत्त तच्च पवियारु रयंतउ अट्ठ सिद्ध गुणु सिरि आयंतउ।।
णव णय-विहि भावंतु सुसंतउ दहविह धम्मु जइणु पोसंतउ।।
एयारह अंगइं पयडंतउ . . . . . ।।
बारह वय सावयहँ गणंतउ तेरहविहु चारित्तु चरंतउ।।

7/1

पार्श्व मुनि की साधना का वर्णन, वे विहार करते हुए भीमाटवी-वन में पहुँचते हैं—

घत्ता— तत्पश्चात् खेचर, उरग, नर एवं सुरों को शरण देने वाले, भव्यजनों के मन में व्याप्त संशय का हरण करने वाले, उत्तम निर्मल ज्ञान-लक्ष्मी के आश्रय-स्थल वे पार्श्व प्रभु दुर्धर तपश्चरण करने लगे—

वत्थु (वस्तु) छन्द— निर्मल तप-लक्ष्मी रूपी नारी को रंजित करते हुए, संसार भट (कामदेव) के मद को भंग करते हुए, अपने मन में महान् शिव-सुख के संग का अनुभव करते हुए, मिथ्यात्व रूपी वृक्ष को चूर करते हुए, अनंग को वश में किये हुए, मुनि संघ में सर्वश्रेष्ठ, क्रूर इन्द्रियरूपी दर्पीले गज़ के कुम्भस्थल का दलन करते हुए, काम का मान-मर्दन करते हुए, वे जिनाधिपति पार्श्व (पृथिवी-मण्डल पर) विहार करने लगे।

एक मिथ्यादर्शन का छेदन करते हुए, अतिदुस्सह राग एवं द्वेष इन दोनों का त्याग करते हुए, रत्नत्रय रूपी तीन रत्नाभरणों को धारण किये हुए, चार प्रकार की आराधना का स्मरण करते हुए, पाँच प्रकार के निर्मल आचारों का आचरण करते हुए, षडावश्यकों के स्वरूप का उत्तम विधि से स्मरण करते हुए, सप्ततत्वों का ध्यान-चिन्तन करते हुए, सिद्धों के अष्ट गुणों की लक्ष्मी को प्राप्त करते हुए, नव-नयों की विधि की सुशान्त भाव से भावना करते हुए, दस प्रकार के धर्म का यत्नपूर्वक पोषण करते हुए, ग्यारह प्रकार के अंगागमों को प्रकट करते हुए, ...श्रावकों के लिये बारह प्रकार के व्रतों का उपदेश करते हुए, तेरह प्रकार के चारित्र का पालन करते हुए, चौदह प्रकार के

चउदह जीव-समास मुणंतउ चउदह गुणठाण-वियार कुणंतउ।।
पण्णारह पमाय मारंतउ सोलहविह कसाय विरंतउ।।
कव्वड-खेड-मडंवारामइँ दोणामुह-संवाहण-गामइँ।।
पट्टणपुर णयराइँ भमंतउ विहरंतउ भीमावइ पत्तउ।।

घत्ता— जहिँ णउलोरय संगरु करहिँ वणवासिय-विंतर-मणुहरहिँ।
गिरिवर समाण गंडय चलहिँ अवरोप्परु वाणर किलिकिलहिँ।। 115।।

7/2

Pārśwa-Muni sits for meditation in Kāyotsarga Mudrā (stand still form) on a tattered rock situated in a corner of the Bhīmāṭawī full of various wild animals and trees.

वत्थु-छन्द— जहिँ गयाहिव भमहिँ मच्चंत।
जहिँ हरिण फालइँ करहिँ जहिँ मयारि मारंति कुंजरं।
जहिँ तरणि किरणोसरहिँ जहिँ सरोस घुरुहुरहिँ मंजरं।।
जहिँ सरि-तीरुब्भव बहल कद्दमरस लोलिहिँ।
जुज्झिज्जइ सिसु ससि-सरिस दिढ-दाढहिँ कीलिहिँ।। छ।।

जहिँ हिंताल-ताल-तालूरइँ साल-सरल-तमाल-मालूरइँ।।
अंब-कयंब-णिंब-जंबीरइँ चंपय-कंचणार-कणवीरइँ।।
टउह-कउह-बब्बूल-लवंगइँ जंबू-माउलिंग-णारंगइँ।।

जीव समासों एवं गुणस्थानों का मनन-विचार करते हुए, पन्द्रह प्रकार के प्रमादों को मारते हुए, सोलह प्रकार की कषायों का निवारण करते हुए, कर्वट, खेड, मडम्ब, आराम, द्रोण, मुख, संवाहन, ग्राम, पट्टन, पुर एवं नगरों आदि का भ्रमण करते हुए, अपने विहार के क्रम में वे प्रभु उस भीमाटवी में पहुँचे जहाँ—

घत्ता— नेवले एवं सर्प लड़ते रहते थे, वनवासी (आदिवासी जंगली) लोग व्यन्तरों के मन का हरण करते थे, जहाँ पर्वत के समान शरीर वाले गेंडे घूमते रहते थे और जहाँ वानरगण परस्पर में क्रीड़ाएँ करते रहते थे। (115)

7/2

विविध जंगली जानवरों से युक्त तथा विभिन्न वृक्षावलियों से सुशोभित भीमाटवी-वन की एक खुरदरी शिला पर पार्श्व मुनि कायोत्सर्ग-मुद्रा में ध्यानस्थ हो गये—

वस्तु-छन्द—जहाँ (जिस भीमाटवी-वन में) उछलते कूदते हुए गजाधिप घूम रहे थे, जहाँ हिरण चौकड़ियाँ भरकर उछल-कूद कर रहे थे, जहाँ सिंह गर्जों को मार रहे थे, जहाँ सूर्य की किरणें (उन्नत घने वृक्षों के कारण) अवरुद्ध हो जाती थीं, जहाँ मार्जार (वन-विलाव) रोषपूर्वक घुरघुरा रहे थे, जहाँ के सरोवरों के तटों पर उत्पन्न अत्यधिक कर्दम-(कीचड) रस में चपलता पूर्वक खेलते हुए चन्द्रमा के समान शुभ्र दाढों वाले शूकर अपने बच्चों के साथ क्रीड़ाएँ कर रहे थे।

जहाँ हिंताल, ताल, तालूर, सरल सीधे साल, तमाल (अशोक), मालूर (देवदारु), आम्र, कदम्ब, निम्ब, जम्भीर, चम्पक, कचनार, कणवीर, (कनेर) टउह, कउह (अर्जुन), बबूल, लवंग, जम्बू, मातुलिंग (बिजौरा), नारंगी, अरलू,

अरलू-पूयप्फल-सिरिहिल्लइँ सल्लइं-कोरंटिय-अंकोल्लइँ।।
10 जासवण्ण-धव-धम्मण-फणिसइँ वंस-सिरीस-पियंगु-पलासइँ।।
केयइ-कुरव-खइर-खज्जूरइँ तिंदुअ-तिलय-वउल-कच्चूरइँ।।
पाडलि-सिंदूरी-मुचुकुंदइँ मज्झण्णिय मुणि महिरुह-कंदइँ।।
पीलू-मयण-पक्ख-रुद्दक्खइँ कंथारी-कणियारि-सुदक्खइँ।।
उंबरि-कंटुबरि-वरणायइँ चिंचिणि-चंदणक्क-पुण्णायइँ।।
15 णालिएरि-गंगेरि-वडारइँ सेंबलि-वाण-वोर-महुबारइँ।।

घत्ता— तहिँ मंडिय सयल धरायलए फासुअ सुविसाल सिलायलए।
थिउ तणु विसग्गु विरएवि मुणि णं गिरिवरिंदु वारिहरज्झुणि।। 116।।

7/3

Meghamālīn (Kamaṭha) the King of demons wandering sportingly flies over the Bhīmāṭawī.

वत्थु-छन्द— णिरहु णिरुवमु णिम्मलायारु
णिद्दंदु णिरसिय वसणु णिव्विसाउ णिप्पिहु णिरामउ।
णिद्दोसु णिरवेक्ख णिद्दारहिउ णिहयमोह णीरागु णिम्मउ।।
णियणासग्ग णिसिय णयणु णिरहंकार णिरोसु।
5 णिज्जिय-मयणु णिराहरणु णिम्मच्छरु णिद्दोसु।। छ।।

पूगीफल (सुपाडी), सिरिहिल्ल (गुंजा), सल्लकी, कोरंटक, अंकोल्ल, जासवण्ण (जसोन, चमेली), धव, धम्मन, फणिश (पनश), बाँस, शिरीष, प्रियंगु, पलाश (छेवला), केतकी, कुरवक, खदिर, खज्जूर, तिंदुक, तिलक, बकुल (मोरसली), कच्चूर (कदर), पाटल, सिन्दूरी, मुचुकुन्द, मध्याहिक दोपहरिया, मुनि (अगस्तिया), कन्द वृक्ष, पीलू, मदन, पलक्ष (पाखर), रुद्राक्ष, कन्धारी (कैंथ), गंगेरन, कर्णिकर (कनेर), सुद्राक्षा (किशमिस), ऊमर, कठूमर, वरनाक, चिंचणी (इमली) चन्दन, अर्क (आक), पुन्नाग, नारियल, गंगेर, बडार, सेम्बल (शाल्मलि), बाण, बोर (बेर), महुवार (महुआ) आदि–

घत्ता— के वृक्षों से जहाँ का धरातल मण्डित था। वहाँ की एक प्राशुक विशाल शिला पर वे पार्श्व मुनि कायोत्सर्ग-मुद्रा में स्थित हो गये। वे ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानों मेघ ध्वनि वाला गिरिवरीन्द्र—सुमेरु पर्वत ही हों। (116)

7/3

असुराधिपति मेघमाली (कमठ) क्रीडा-विहार करता हुआ उस भीमाटवी-वन में आया—

वस्तु-छन्द— वे मुनीन्द्र निरघ (पापरहित), निरुपम, निर्मलाकार, निर्द्वन्द्व, निरवस्त्र, विषादरहित, निस्पृह, निरामय, निरपेक्ष, निद्रारहित, निर्मोह, वीतराग, निर्मद अपनी नासाग्रपर स्थापित दृष्टिवाले, निरहंकार, रोषरहित, मदनजयी, निराभरण निर्मत्सर एवं दोष-रहित (होकर जब ध्यानस्थ) थे—

सुसारम्मि एत्थंतरे साल साले महाभूहराहीसतुंगे विसाले।।
गवक्खग्ग दिप्पंत मुत्तापवाले सुसेलिंधलुद्धालि-मालारवाले।।
सुराणं मणोहारि किम्मीर-कम्मे पलंबंत घंटाटणक्कार रम्मे।।
फुरंतोरु माणिक्क-कंती-तमोहे मराली चलच्चामराली विमोहे।।
10 पभाभार उज्जोइया सेस वोमे मरुद्धूअ चिंधावली चारु पोमे।।
विचित्तावभासंत णाणा दुवारे विमाणग्ग संदिण्ण सोवण्णवारे।।
सुरावाल सीमंतिणी गीय गेए खरंसुप्पहा वारणे वायवेए।।
णडंतामराणी पियादिण्णतोसे दंडी-झल्लरी-वेणु-वीणा-सुघोसे।।
दिसासास वासंत णिग्गंतवासे ससोहा जियाहिंददेविंद वासे।।

15 घत्ता— एरिसए विमाणे समारुहेवि दिप्पंतउ पहरणु संगहिवि।
तणु तरणि किरण परिविप्फुरिउ विहरण कीलारइ-रस-भरिउ।। 117।।

7/4

The Aeroplane (Vimāna) of the demon king Meghmālī (Kamaṭha) suddenly struck in the midway due to the influence of extra-ordinary penance of Pārśwa Muni.

वत्थु-छन्द— जाम गच्छइ विउल गयणयले।
स विमाण मज्झट्ठियउ असुरराउ णावइ सुरेसरु।
संपत्तु तहिँ जहिँ ठियउ तणु विसग्गु विरएवि जिणेसरु।।

इसी बीच में सारभूत उत्तम शिखरों से सुशोभित, महाभूधराधीश (पर्वतराज) के समान उत्तुंग एवं विशाल मोतियों एवं प्रवालों से सुदीप्त गवाक्षाग्र-भाग वाले, पुष्पों की सुगन्ध से लुब्ध भ्रमरों से शब्दायमान, देवों का मनोहरण करने वाले चित्र-विचित्र चित्रों से चित्रित, लटकती हुई घण्टियों की टंकार से रम्य, स्फुरायमान विशाल माणिक्यों की छटा से अन्धकार को मिटाने वाले, हंसनी के समान चलायमान चामरों से मोहित करने वाले, अपनी प्रभा के भार से समस्त आकाश को उद्योतित करने वाले, पवन से स्फुरायमान तथा सुन्दर कमलों के समान ध्वजावलि की उत्तम शोभा से सम्पन्न, विमान के अग्रभाग में प्रदत्त स्वर्ण निर्मित सोपान-मार्ग से शोभित, सुरबाला-सीमन्तनियों के सुन्दर संगीत से पूर्ण, सूर्य की प्रखर किरणों को रोकने वाले, पवन वेग से चलने वाले, नृत्य करती हुई देवांगनाओं को प्रिय, सन्तोष प्रदान करने वाले, दण्डी, झालर, वेणु एवं वीणा के सुघोषों वाले, उत्तम धूप की निकलती हुई सुगन्धि से दसों दिशाओं को सुगन्धित करने वाले, अपनी शोभा से नागेन्द्र एवं देवेन्द्र के विमानों को भी जीतने वाले,—

घत्ता— विमान पर आरूढ होकर दीप्त प्रहरणों को लेकर, बाल-सूर्य की किरणों से स्फुरायमान, विहार करने के क्रीडा-रस से भरा हुआ वह असुराधिपति मेघमाली वहाँ आया (117)

7/4

पार्श्व मुनीन्द्र की असाधारण तपश्चर्या के प्रभाव से असुराधिपति मेघमाली (कमठ) का विमान बीच में ही अवरुद्ध हो जाता है—

वस्तु-छन्द— जब वह असुरराज सुरेश्वर के समान अपने विमान के मध्य भाग में बैठकर विस्तृत आकाश में उड़ा जा रहा था, तभी वह वहाँ पहुँचा, जहाँ पार्श्व जिनेश्वर कायोत्सर्ग मुद्रा में ध्यानारूढ़ थे। सैकड़ों

छुडु जिण-उवरि समावडिउ रयण सएण विमाणु।
जिणवर-तव-तेयाहयउ थक्कउ ताम विमाणु।। छ।।

जह विवाहु कुल-लच्छि विहीणहो जह विग्गहु वाउहिँ खीणहो।
जह कवित्तु कुकइहे जडबुद्धिहे जह विलासु वियलिय वररिद्धिहे।।
जह सुदव्वु धरणीयले किवणहो जह सत्थावबोहु अण्णमणहो।।
जह मउ गोरिगीयलुद्धासउ जह परिवियलियरायहो हासउ।।
जह सुणेहु बहुलोहाविट्ठहो जह पारद्धु कज्जु पाविट्ठहो।।
जह सुधाउ विरयण चिरपुरिसहो जह संभासणु विहियामरिसहो।।
जह जसोहु कयसंगमुणिंदहो जह कर-णियर-पसरु दिणे चंदहो।।
जह पुण्णज्जणु विसयासत्तहो जह वच्छल्लवयणु मयमत्त हो।।
जह जणपोसणु णिव्वसायहो जह दुच्चरुचारित्तु सरायहो।।
जह तीरिणि पवाहु रयणालए जह मुणि विहरणु वरिसायालए।।

घत्ता— णिण्णायणयरे ववहारु जह सविमाणु णिएविणु थक्कु तह।
मणि मेहमालि असुराहिवइ केणेहु वियंभिउ चिंतवइ।। 118।।

रत्नों से जटिज असुरराज का वह विमान जब जिनेश्वर के ऊपर से उड़ा, तभी उनके तपस्तेज से आहत होकर वह विमान वहीं अवरुद्ध हो गया।

जिस प्रकार कुल एवं लक्ष्मी विहीन का विवाह, जिस प्रकार वायुरोग से क्षीण पुरुष का विग्रह (शरीर), जिस प्रकार जड़बुद्धि कुकवि की कविता जिस प्रकार विगलित ऋद्धि वाले का वर-विलास, जिस प्रकार कृपण (कंजूस) का धरती में गड़ा हुआ विपुल द्रव्य, जिस प्रकार अन्यमनस्क का शास्त्र-ज्ञान, जिस प्रकार गोपियों के गीत-श्रवण में लुब्ध आशयवाला मृग, जिस प्रकार रागरहित का हास्य, जिस प्रकार बहुलोभाविष्ट का सुस्नेह, जिस प्रकार पापिष्ठ का प्रारब्ध-कार्य, जिस प्रकार चिर-स्थविर (वृद्ध-पुरुष) की उत्तम वीर्यादि धातुओं का निर्माण, जिस प्रकार क्रोधी का सम्भाषण, जिस प्रकार परिग्रहधारी साधु की संगति से यशपुंज, जिस प्रकार दिन में चन्द्रकिरणों का प्रसार, जिस प्रकार विषयासक्त का पुण्यार्जन, जिस प्रकार मदोन्मत्त (घमण्डी) की वात्सल्य पूर्ण वाणी, जिस प्रकार व्यवसायहीन व्यक्ति का जनपोषण, जिस प्रकार रागी साधु का दुश्चर चारित्र, जिस प्रकार रत्नालय (समुद्र) में नदी का प्रवाह और जिस प्रकार वर्षाकाल (चातुर्मास) में मुनियों का विहार तथा–

घत्ता— जिस प्रकार अन्यायपूर्ण नगरी में व्यवहार (विधि-विधान, न्याय) रुक जाता है, उसी प्रकार असुराधिपति मेघमाली ने अपने विमान को जब रुका हुआ देखा, तब वह (क्रोधित होकर–) अपने मन में सोचने लगा कि— मेरा यह विमान रोका किसने है? (118)

7/5

Yaksharāja named after Saumanas (a devine soul) advises sincerely to the demon-king not to bring obstacles (Upsargas) on deep meditating ascetic (Pārśwa Muni).

वत्थु-छन्द— किं सुरेसिण किंमहिराएण।
केणावि किं वइरिएण किं जिणेण केवल-समिद्धिएण।
किं खयर रायाहिवेण किमपरेण भुअबल विरुद्धिएण।।
इय संकप्प वियप्पयरु कमठासुरु हुउ जाम।
लहु विहंगु विवरीउ तहो णाणुप्पण्णउ ताम।। छ।।

स-मणि तेण णाणेण वियाणिउ चिरविरइउ विरोहु परियाणिउ।।
सो मरुभूइ एहु महु वइरिउ जो चिरु पंचवार मइँ मारिउ।।
अज्जवि तं विरोहु णउ मेल्लइ जेण तेण एउ जाणु ण चल्लइ।।
एयहो कूरत्तणु विणिवारमि जह चिरु तह एव्वहि पुणु मारमि।।
किं बहु भासिएण तवतत्तउ कम्म-वसेण एहु इह पत्तउ।।
एव्वहिँ जाइ जियंतउ दुक्करु मइँ दिट्ठउ कहि थाइ सुहंकरु।।
जइ फणवइ फण-मंडिवि पइसइ अह सुरायहो सरणु पईसइ।।
तोवि ण छड्डमि तणु मल मंडिउ जाम ण दुट्ठासउ मइँ खंडिउ।।
एम भणेविणु जाम पधाइउ करयल कय पवि-पहरण राइउ।।

7/5

सौमनस नामक यक्ष ध्यानस्थ पार्श्व पर उपसर्ग न करने के लिये असुराधिपति मेघमाली को समझाता है—

वस्तु-छन्द— क्या सुरेश्वर इन्द्र ने ? क्या अहिराज नागेन्द्र ने? क्या किसी शत्रु ने अथवा क्या कैवल्य-समृद्ध जिनेन्द्र ने? क्या किसी राजाधिराज विद्याधर ने? अथवा, क्या किसी दूसरे मेरे बाहुबल-विरोधी ने मेरे इस विमान को रोका है? जब वह असुरराज कमठ संकल्प-विकल्प कर रहा था, तभी उसे विपरीत विभंग-अवधिज्ञान हो गया—

अपने मन में उस विभंग ज्ञान द्वारा उसने जाना और पूर्वकृत विरोध का स्मरण किया कि—यह मेरा वही शत्रु मरूभूति है, जिसे पूर्वभव में मैंने पाँच बार मारा था। (देखो–) आज तक भी उसने अपना विरोध-भाव नहीं छोड़ा है और इसीलिये उसके द्वारा रोके जाने के कारण ही मेरा यह यान आगे नहीं चल पा रहा है। इसकी क्रूरता का मैं अब निवारण किये देता हूँ।

किन्तु अधिक कहने से क्या लाभ? तपस्या करता हुआ कर्म संयोग से वह मुझे यहाँ पुनः मिल ही गया है, अतः अब इसका जीवित बच पाना दुष्कर है। मेरी दृष्टि से अब यह सरलतापूर्वक बचकर जायेगा कहाँ?

यदि यह फणिपति के फण मण्डल में भी घुसकर बैठ जाय, अथवा देवेन्द्र की शरण में भी चला जाय, तो भी इस मल-मण्डित तनधारी को (जीवित) नहीं छोड़ूँगा, और इस दुष्टाशय को खण्डित करके ही रहूँगा।

यह कहकर वह अपने हाथ में बज्र-शस्त्र लेकर, जैसे ही पूर्व जन्म के मरुभूति के जीव इन (पार्श्व) की ओर

15 एत्थंतरे सुरवइ पवराणए कंपाविय दिढ दाणव पाणए।।
जो ठिउ रक्खवालु जिणणाहहो णिम्मलयर तवलच्छि-सणाहहो।।
वुत्तु तेण सउमणस धणेसँ भत्ति णविय तणु पणुअ जिणेसँ।।

घत्ता— भो-भो असुरेस णिरंजणहो चउ घाइ घणोह पहंजणहो।
तवसिरि-भूसिय जिणवरहो णउ उवसग्गु करेव्वउ जुत्तु तहो।। 119।।

7/6

Yaksharāja again and again advises the demon King not to disturb ascetic Pārśwa.

वत्थु-छन्द— जो रईसरराय संहरणु तेलोक्कहो सरणु।
पवर पंचकल्लाण-भायणु णिव्वाण-सोक्ख-करणु।
कूरकम्म करि कुंभघायणु।।
तहु उवसग्गु मुएवि लहु पणवहि पय णिय-सोक्खु।
5 जं जर मरणुप्पत्ति दुहच्छिंदेवि पावहि मोक्खु।।

अवरु वि पयंपेमि तुह पुरउ हऊँ किंपि।
पइँ सुणु वियारणिउ समणेण सइँ तंपि।।
तित्थयर उवसग्गु जे करहिँ पाविट्ठ।

झपटा, इसी बीच में सुरपति की प्रवर आज्ञा से नियुक्त, निर्मलतर, तपोलक्ष्मी से समृद्ध जिननाथ (पार्श्व) का दानव के प्राणों को भी कँपा देने वाला, जो सौमनस नामक कुबेर-रक्षपाल था, उसने भक्ति-पूर्वक जिनेन्द्र के चरणों में नमस्कार कर उस असुरेश से कहा–

घत्ता— हे-हे, असुरेश, ये मुनीन्द्र (पार्श्व) निरंजन (भावकर्मरहित) हैं, चतुर्विध घातिया (द्रव्य) कर्मरूपी, मेघ-समूह को उड़ा डालने के लिये प्रभंजन-वायु के समान हैं, तपश्री से भूषित जिनवर हैं, अतः इन पर तुम्हारे द्वारा उपसर्ग किया जाना उचित नहीं। (119)

7/6

सौमनस-यक्ष असुराधिपति को पार्श्व मुनीन्द्र पर उपसर्ग न करने की पुनः सलाह देता है—

वस्तु-छन्द— जो रतीश्वर-राज (कामराज) के संहारक हैं, जो त्रैलोक्य के शरण हैं, प्रवर पंचकल्याणकों के भाजक हैं, निर्वाण-सुख के कारण हैं, क्रूर अष्टकर्म रूपी गज के कुम्भस्थल के घातक हैं, उनके ऊपर उपसर्ग करने का विचार छोड़ और अपना हित-सुख चाहने के लिये उनके चरणों में तत्काल ही प्रणाम कर, जिससे तेरे जन्म, जरा एवं मृत्यु के दुखों का नाश हो एवं तुझे मोक्ष-सुख प्राप्त हो सके।

और भी, मैं तेरे सम्मुख जो कुछ भी कह रहा हूँ और जो तुझे तेरे अपने मन में स्वयं भी विचारणीय है, उसे भी सुन—

जो पापिष्ठ, तीर्थंकरों के ऊपर उपसर्ग करते हैं, वे तीनों लोकों में (एकेन्द्रियादि निकृष्ट कोटि में) जन्म प्राप्त

ते तिविह भुवणम्मि जायंति उव्विट्ठ।।
णरयम्मि विसहंति दुक्खाण लक्खाइँ।
गच्छंति सयखंडु होउ विलक्खाइँ।।
जिणणाह पयभत्तु सुरराउ रूसेवि।
विज्जाबल ताहँ सहसत्ति दूसेवि।।
सिरकमल उवरम्मि पाडेइ महवज्जु।
उवसग्गु णिरसेवि चिंतवइ णियकज्जु।।
इय मुणिवि उवसग्गु विसहरु व परिहरहि।
सिरिपास जिणणाह चरणाइँ अणुसरहि।।
मा तुज्झु भुअसत्ति विहडेवि विल्हसइ जाउ।
मा भमउ दुज्जसु तिलोयम्मि जह वाउ।।
मा डज्झु अहिमाण मह जायवेएण।
मा भज्ज विज्जा महावाय वेएण।।
मा खज्ज चिर वइर महणायराएण।
मा णिज्ज णियमंदिरं पेयराएण।।
लहु जाहि तहिँ जहिँ ण सुरराउ।
गय राय उवसग्गयर जलयक्खयवाउ।।

घत्ता— तं भासिवि णिसुसिवि उल्ललिउ घयसित्तु हुयास व पज्जलिउ।
कोहाणलेण अप्पउ खवइ तहिँ अवसरि मेघमालि लवइ।। 120।। —*(मयणावयास-छंद)*

करते हैं और नरक में जाकर लाखों प्रकार के दुख सहते हैं। वहाँ उनके शरीर को सैंकड़ों टुकड़ों में खण्डित किये जाने से वे बिलखते रहते हैं। जिननाथ के चरणों के भक्त सुरेन्द्र भी उस असुराधिपति से रुष्ट होकर सहसा ही उसके विद्याबल को दूषित कर देता है और वह उसके सिर-कमल पर महाबज्र पटक देता है। अतः उपसर्ग दूर कर आत्महित के चिन्तन का कार्य कर और उचित समझकर विषधर के समान उपसर्ग करना छोड़कर श्री पार्श्व जिननाथ के चरणों का अनुसरण कर।

तू अपना भुजबल व्यर्थ में नष्ट करके प्रसन्न मत बन। तेरा दुर्यश तीनों लोगों में कहीं वायु के समान न फैल जाय, अभिमान की महाग्नि में अपने को मत जला, प्रलयकालीन वायु के वेग से अपनी विद्या को भग्न मत कर, पूर्वजन्मकृत बैर से अपने को खण्डित मत कर, (पूर्वजन्म के) प्रेत-राग से अपने मन्दिर (विमान) को निन्द्य मत बना। जल्दी से वहाँ भाग जा, जहाँ सुरेन्द्र भी पता न लगा सके। क्योंकि वह (सुरेन्द्र) किसी भी वीतरागी पर उपसर्ग करने वाले को उसी प्रकार उड़ा कर ले जाता है, जिस प्रकार क्षयकालीन वायु मेघों को उड़ाकर ले जाती है।

घत्ता— सौमनस यक्ष का कथन सुनकर वह असुराधिपति उसी प्रकार तमक पड़ा, जिस प्रकार घृत-सिक्त अग्नि प्रज्वलित हो उठती है। क्रोधाग्नि से उसने अपने को जला डाला और उसी समय उस मेघमाली (कमठ) ने चिल्लाकर कहा—(120) —*(मदनावतास-छन्द)*

The demon-king Meghmālina scolds very badly to yaksharāja Saumanas for his insulting advise.

वत्थु-छन्द— अरिरि णिग्घिण किविण सउमणस।
सुरराय संसाकरण महु विवक्ख गुणरासिभूसण।
गुण-दोस विवरण-रहिय विहिय पाव वरलच्छि-दूसण।।
एउ बोल्लंतहो तुह अलिउ महु रिउ-पक्ख-समीह।
सयसक्करु होएवि लहु कह गय मुहहो ण जीह।। छ।।

तिहुअणि कवणु ण विसयासत्तउ तिहुअणि कवणु ण जम्मणु पत्तउ।।
तिहुअणि कवणु ण कम्मेँ जित्तउ तिहुअणि कवणु ण सोयहिं सित्तउ।।
तिहुअणि कवणु ण रोयहिँ रोहिउ तिहुअणि कवणु ण वइरि णिसुंभिउ।।
तिहुअणि कवणु ण णिद्दए भुत्तउ तिहुअणि कवणु ण मयहिँ विगुत्तउ।।
तिहुअणि कवणु ण भुक्खए खिण्णउ तिहुअणि कवणु ण चिंता दण्णउ।।
तिहुअणि कवणु ण तण्हए त्ताविउ तिहुअणि कवणु ण भयहिँ विहाविउ।।
तिहुअणि कवणु ण कम्मेँ बद्धउ तिहुअणि कवणु ण मायए खद्धउ।।
तिहुअणि कवणु ण जरए णिवीडिउ तिहुअणि कवणु ण कालें लोडिउ।।
तिहुअणि कवणु ण रोस वसंगउ तिहुअणि कवणु ण मूढ वसंगउ।।

घत्ता— मज्झत्थु महत्थु मुणिंदु जइ ता कह पडिखलइ विमाणगइ।
विहरंतहो महो विमलंबरए परिघोलिर तियस-तियंबरए।। 121।।

7/7

असुराधिमति मेघमाली द्वारा अनिच्छित सलाह के लिये सौमनस-यक्ष की भर्त्सना—

वस्तु-छन्द— अरे-रे निर्घृण्य, कृपण (कृतघ्न) सौमनस (यक्ष), इन्द्र की प्रशंसा के गीत गाने वाले, मेरे विपक्षी शत्रु की गुणावली बखानने वाले, गुण-दोष के विचार से हीन बुद्धिवाले, पापकार्य से उत्तम लक्ष्मी को दूषित करने वाले, मेरे शत्रु पक्ष की समीक्षा करने वाले, तेरे द्वारा इस प्रकार के झूठे बोल बोलते हुए, तेरे मुख की जीभ के हजार-हजार टुकड़े होकर बिखर क्यों नहीं गये ?

त्रिभुवन में ऐसा कौन है, जो विषयासक्त नहीं? त्रिभुवन में ऐसा कौन है, जिसने जन्म प्राप्त नहीं किया? त्रिभुवन में ऐसा कौन है, जो कर्मों द्वारा जीता नहीं गया? त्रिभुवन में ऐसा कौन है, जो शोक से सन्तप्त न हो? त्रिभुवन में ऐसा कौन है, जो रोगों से ग्रसित न हो? त्रिभुवन में ऐसा कौन है, जो शत्रुओं द्वारा घाता नहीं गया? त्रिभुवन में ऐसा कौन है जो निद्रा के द्वारा भोगा नहीं गया हो? त्रिभुवन में ऐसा कौन है, जो मद के द्वारा नष्ट नहीं किया गया? त्रिभुवन में ऐसा कौन है, जो भूख के कारण खिन्न न हो? त्रिभुवन में ऐसा कौन है, जो चिन्ता से व्याकुल नहीं? त्रिभुवन में ऐसा कौन है, जो तृष्णा से तप्त नहीं? त्रिभुवन में ऐसा कौन है, जो भय से प्रभावित नहीं, त्रिभुवन में ऐसा कौन है जो कर्मों से बंधा न हो? त्रिभुवन में ऐसा कौन है, जो माया के द्वारा खा नहीं डाला गया हो? त्रिभुवन में ऐसा कौन है, जो जरा से पीड़ित न हो? त्रिभुवन में ऐसा कौन है, जो काल के द्वारा बिलोडा नहीं गया हो? त्रिभुवन में ऐसा कौन है, जो रोष का वशीभूत न हो? त्रिभुवन में ऐसा कौन है, जो मूढता (अज्ञान मोह) के वश में न हो?

घत्ता— यदि ये मुनीन्द्र (पार्श्व) मध्यस्थ (समवृत्तिवाले) एवं महार्थ होते, तब तू ही बता कि उसने देवांगनाओं के वस्त्रों को फरफराने वाले निर्मल आकाश में विहार करने वाले मेरे विमान की गति को स्खंलित क्यों किया? (121)

7/8

On Failure to hit by the Bajra-Weapons the demon King Meghamālin creates disturbances (Upasarga) on Pārśwa through the heavy rains.

वत्थु-छन्द— किं बहुत्तहिँ विहल-वयणेहिँ।
पुणु पुणु वि उच्चारिएहिँ एहु वइरि जमपंथि लायमि।
को धरइ मारंतु मइँ अज्जु वज्ज-घाएण घायमि।।
अहवा अहिमाणुव्वहहि रे सउमणस हयास।
ता रक्खेज्जहि वइरि लहु महु मारंतहो दास।। छ।।

इम खरयर वयणइँ उच्चारिवि बार-बार धणवइ पच्चारिवि।।
थोर पवर दीहर भुअ-दंडहिँ जिय तियसाहिव करिवर-सुंडहिँ।।
बज्जु लएप्पिणु पासकुमारहो जा सिरु चूरइ चूरिय मारहो।।
ता जिणवर-तप-तेय-समाहउ हत्थहो गलिउ वहंतु महामउ।।
तह रयणायरे रयणु णिहीणहो चिर विरइय गुरुयर रय खीण हो।।
तहिँ अवसरि णवणलिणदलक्खउ मेघमालि सो हुयउ विलक्खउ।।
जहि ण परक्कमु फुरइ महंतउ पुणुउ आउ चिंतइ मइवंतउ।।
बहुविह भेयइँ माया दरिसेवि एयहो दिढज्झाणहो मणु णिरसेवि।।
पुणु पंचत्तु णेमि णिद्दारेवि इय असुराहिवेण मणिधारेवि।।
विरइय पंचवण्ण णव जलहर तक्खणेण गयणयले समलहर।।

7/8

बज्र-प्रहरण असफल होने पर वह असुराधिपति मेघमाली पार्श्व मुनीन्द्र पर असाधारण मेघवर्षा कर उपसर्ग करता है—

वस्तु-छन्द— बार-बार निष्फल बहुत वचनों के उच्चारण से क्या लाभ? इस शत्रु को (अवश्य ही) यम-पन्थ पर ले आऊँगा। मुझ मारते हुए को कौन रोक सकता है? आज ही उस मुनीन्द्र (पार्श्व) को बज्राघात से मार डालूँगा अथवा, हे हताश सौमनस यक्ष, हे मुनीन्द्र-दास, यदि तू अभिमान का सच्चा वाहक है, तो मेरे द्वारा मारे जाते हुए मेरे शत्रु (मुनीन्द्र पार्श्व) की रक्षा कर—

इस प्रकार कर्कशतर वचनों का उच्चारण कर, धनपति कुवेर (सौमनस यक्ष) को बार-बार फटकार कर, इन्द्र के गजेन्द्र की सूँड को भी मात कर देने वाले स्थूल दीर्घ भुजदण्डों के द्वारा बज्र को लेकर काम के मद को चूरने वाले पार्श्वकुमार के सिर को चूरने के लिये जब वह चला, तभी वह पार्श्व जिनवर के तपस्तेज से आहत हो गया और अत्यन्त भयाकुल हो गया तथा उस नीच के हाथ से वह बज्र धरती पर उसी प्रकार गिर गया, जिस प्रकार, पूर्वकृत महापाप के कारण पानी के भयाकुल हाथ से उसका रत्न समुद्र में गिर जाता है।

उसी समय, नवीन कमल-पत्र के समान नेत्रों वाले उस मेघमाली का महान् पराक्रम स्फुरायमान-सफल न हो सका और वह जब विलक्ष्य हो गया, तब मतिवन्त उस (मेघमाली) ने पुनः अन्य कोई उपाय सोचा। अनेक प्रकार से माया-प्रपंच का प्रदर्शन कर उन मुनीन्द्र पार्श्व के मन को दृढ़-ध्यान से विचलित कर उनको खण्ड-खण्डों में विदार कर क्यों न मार डालूँ? ऐसा विचार कर उस असुराधिपति मेघमाली ने अपनी विक्रिया-ऋद्धि से पाँच वर्णवाले नवीन मेघों की रचना कर दी, जिससे तत्काल ही सारा आकाश अन्धकार से भरकर मलिन हो गया—

घत्ता— अविरल ससलिल वरवोमयर पच्छाइय दिणयर सोमयर।
खयरामर णरमण्ण खोहयर ज्झाणट्ठिय थिर मुणि ण मोहयर।। 122।।

7/9

On being failure to disturb Pārśwa-Muni, through heavy rains, the demon King Meghamālin obstructs him by blowing strong winds.

वत्थु-छन्द— केवि ससहर हंस संकास।
केवि रत्तणावइ पवर जंगमोरु गेरुवइं।
केवि सिहिकंठ समाण पंचवण्ण ठियणहे।।
णिविड णावइ सुरह विमाण.....।
.....

णीसेसुवि जगु अंधारंतउ अहिम्मव पाउससिरि धारंतउ।।
एरिसु मेहागमु णियणयणहिँ णहे पेक्खेविणु मउलिय वयणहिँ।।
तेण ण कंपिउ पास जिणेसरु एक्क मुएविणु जाय परमसरु।।
महिहरु जह तह पेक्खेवि थिरयरु ओलंबिय दुद्दम दीहरयरु।।
तहि अवसरि चिंतिउ असुरेसँ खय-परसणु कंपाविउ णरेसँ।।
पत्तउ तरुहराइ पाडंतउ फलसेलिंघ पत्तइँ झाडंतउ।।

घत्ता— उन सघन मेघों ने सूर्य-चन्द्र को भी आच्छादित कर दिया और सारे आकाश को अविरल वर्षा-जल से व्याप्त कर दिया। उसने खेचरों, अमरों एवं मनुष्यों को क्षुब्ध कर दिया, किन्तु ध्यान में स्थित उन पार्श्व मुनीन्द्र के मन को वह मोहित न कर सका। (122)

7/9

असुराधिपति मेघमाली द्वारा पार्श्व मुनीन्द्र पर किये गये दुर्धर मेघोपसर्ग के असफल हो जाने पर प्रचण्ड वायु द्वारा पुनः उपसर्ग—

वस्तु छन्द— कितने ही मेघ चन्द्र एवं हंस के समान थे, कितने ही लाल वर्ण के थे, जो ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानों चलते-फिरते प्रवर गेरु के रंग को ही धारण किये हुए हों। कितने ही मेघ मयूर-कण्ठ के समान वर्ण वाले थे। इस प्रकार समस्त आकाश में पंचवर्ण के सघन मेघ व्याप्त थे। वे ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानों पंचवर्ण वाले स्वर्ग के विमान ही हों।.....

समस्त जगत को अन्धकार से आच्छादित करते हुए तथा अभिनव पावस-ऋतु को सिर पर ओढे हुए, उन मेघों का आगमन अपने नेत्रों के द्वारा स्मित मुख मुद्रा से आकाश में देखकर भी वे पार्श्व मुनीन्द्र वचनों से मौन रहे। वे (पार्श्व जिनेश्वर) उनसे (जरा भी) कम्पित न हुए। उन्होंनें एक मात्र परमस्वर (का वाचनिक उच्चारण) भी छोड़ दिया और मौन हो गये।

लटकाये हुए दुर्दम दीर्घतर हाथों वाले उन पार्श्व मुनीन्द्र को पर्वत के समान स्थिरतर देखकर, अपने कर्कश-स्पर्शमात्र से ही राजाओं को कँपा देने वाले उस असुरेश ने उसी समय वायु का चिन्तन-स्मरण किया और वृक्षावलियों को अखाडती हुई, फल, पुष्प एवं पत्तों को झड़ाती हुई, ऐसी तीक्ष्ण वायु तत्काल ही वहाँ आ पहुँची, जो पृथिवी

समहि महीहर सिर चालंतउ तारा-रिक्ख-पंति टालंतउ।।
सरय-णरय-णायर-सोसंतउ विवरंतर विसहर-रोसंतउ।।
महमंडलियायारु करंतउ जणवय लोयण-पसरु हरंतउ।।
बडवानल जालोलि गिलंतउ धूलीरउ णहयले मेल्लंतउ।।
15 कंदर-विवरंतर विहरंतउ विउणु-तिउणु-चउगुणु-पसरंतउ।।
कप्पामर-विमाण-खोहंतउ मरुरूवेण जमु व सोहंतउ।।

घत्ता— इय दूमस जहु मरु जय-भयजणणु असुहावणु असुरहँ असुहाणणु।
सिरिपासकुमारहो कयहरिसु पडिहासइ चमराणिल सरिसु।। 123।।

7/10

When Meghamālin fails to stray Pārśwa from his deep meditation, he again sends beautiful angels (Apsarās) to create hindrances.

वत्थु-छन्द— जा ण चालिउ पलय-पवणेण।
झाणत्थु सिरिपासु जिणु त्ता सुरेस तिक्खण पहाउह।
सहसत्ति रोसेण सिरि पज्जलंत मेल्लिय महाउह।।
मोग्गर झसर भुसुंढिसरा सब्वलहल करवाल।
5 कोंत कणय पट्टिस फरिस मुसल तिसूल कराल।। छ।।

सहित पर्वत-शिखरों को चलाती हुई, तारा एवं नक्षत्र माला को टालती हुई, रत्नयुक्त सागर का शोषण करती हुई, वामियों में छिपे हुए विषधरों को रुष्ट करती हुई, महामण्डलाकार का रूप धारण करती हुई, जनपद की दृष्टि से दृष्टि-प्रसार का हरण करती हुई, वडवानल की ज्वालावलि को निगलती हुई, धूलि को आकाश में व्याप्त करती हुई, कन्दराओं एवं गुफाओं में विचरण करती हुई, दुगुनी, तिगुनी एवं चौगुनी मात्रा में प्रसृत होती (फैलती) हुई, कल्पवासी देवों के विमानों को क्षुब्ध करती हुई, मरुत् के रूप में यमराज के समान सुशोभित होती हुई—

घत्ता— जगत को भयाकुल करने वाली असुहावनी, प्राणियों के लिये अशुभ तथा असुरों के लिये भी अशुभकारी वह दुस्सह वायु भी, उन मुनीन्द्र पार्श्वकुमार के लिये हर्षित करने वाली चामरों की वायु के सदृश प्रतीत हुई। (123)

7/10

असुराधिपति प्रहरणास्त्रों से जब पार्श्व को तपस्या से न डिगा सका, तब वह रूपस्विनी अप्सराएँ भेजकर उन पर पुनः उपसर्ग करता है—

वस्तु छन्द— ध्यानस्थ श्रीपार्श्व-जिन जब प्रलयकालीन वायु से भी चलायमान न हुए, तब उस असुर ने रोष पूर्वक सहसा ही उनके सिर पर तेज प्रभा वाले प्रज्वलित तीक्ष्ण शस्त्रों-आयुधों तथा मुग्दर, झसर, भुसुण्डि, सब्बल, हल, तलवार, कोंत, कणय, पट्टिस, फरिस (फरशा), मुसल और कराल-त्रिशूल छोडे।

छुडु असुरिंदहो करयल वियलिय पहरणमत्त सिलीमुह सवलिय।।
ता होएवि तरुब्भव मालउ पिंजर पवर पराय रमालउ।।
णिवडिय पास सिरोवरि सुंदर णिय परिमल परिवासिय कंदर।।
जा जिणु तवसिरिणिलउ ण मारिउ णिसियाणण पहरणहिँ ण दारिउ।।
ता असुरेण विणिम्मिय रइहर पवरच्छर पीणुण्णय थणहर।।
णाय-णरामर माणस हरणउ रत्तुप्पल समाण वरचरणउ।।
मोहिय विज्जाहर वर संघउ मणसिय-तोण-सरिससुह-जंघउ।।
मयरद्धउ कय ताव णिसुंभउ उरु-सिरि-जिय कयली-खंभउ।।
वियलिय-रइ मुणिमण रमणीयउ पिहुलुण्णय णिम्मल रमणीयउ।।
तणुपरिमलविणिहय मयणाहिय सुरसरिजलविब्भम सुह-णाहिय।।
णिय लावण्ण णिहय रइ राहउ जाइ कुसुममाला सम वाहउ।।
वियलिय घण छण ससहर वयणिउ णवणीलुप्पलचलदल णयणिउ।।
तणु जुइ जिय णवकंचण-कमलउ भुअ सिहरोवरि ठिअ सुइ जुअलउ।।
दुगुणिय सत्ता हरणालंकिया विउल-भाल तिलएण समंकिया।

घत्ता— मयमत्त-मऊर-कलावसम चंचलयर-कुंतल रमण-खमा।
जिणपुरउ दवत्ति समोवडिया णं बहुभेयहँ रइविहि घडिया।। 124।।

उस असुरेन्द्र मेघमाली के हाथ से छूटते ही वे समस्त प्रहरण तत्काल ही मदोन्मत्त मँडराते हुए भ्रमरों से युक्त, प्रवर पराग से व्याप्त वृक्षोद्भव-पुष्पों की सुगन्धित सुन्दर मालाएँ बन गए। अपनी परिमल से पर्वत कन्दराओं को भी सुगन्धित करती हुई वे मालाएँ पार्श्व मुनीन्द्र के सिर एवं कण्ठ में आ गिरीं। इस प्रकार जब तीक्ष्ण प्रहरण-शस्त्र भी उन तपश्री के निलय स्वरूप पार्श्व-जिन को विदीर्ण कर उन्हें न मार सके, तब उस (असुर) ने अपनी विक्रिया-ऋद्धि से पीनोन्नत स्तनों वाली, रति के गृह के समान ऐसी उत्तम अप्सराओं का निर्माण किया, जो नागों, नरों एवं अमरों के मानस को चुराने वाली, रक्तोत्पल के समान उत्तम चरणों वाली, विद्याधरों को भी मोहने वाली, कामदेव की तूणीर के समान सुखद, सुन्दर जंघाओं वाली, मकरध्वज के काम-सन्ताप को मिटाने वाली, कदली के खंभों को भी मात देने वाली, पिंडलियों की शोभा वाली, रति रहित मुनिजनों के मन को भी रमणीक, पृथुल (सुघर-मोटी) उन्नत, निर्मल, रमणीक, शरीर की सुगन्धि से कस्तूरी को भी नीचा दिखाने वाली, गंगा नदी के जलावर्त्त के समान सुन्दर नाभि वाली, अपने लावण्य के सौन्दर्य से रति एवं राधा को भी मन्द कर देने वाली, जाति-पुष्पों की माला के समान कोमल बाहुओं वाली, मेघ रहित पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान सुन्दर मुखवाली, नवीन नीलोत्पल के चंचल-दल के समान नेत्रों वाली, अपने तन की द्युति से नव स्वर्णाभ कमलों की शोभा को भी जीतने वाली, भुज-शिखर के ऊपर स्थित कर्णयुगल वाली, चौदह प्रकार के आभरणों से अलंकृत और तिलक द्वारा समलंकृत विशाल ललाट वाली—

घत्ता— मदोन्मत्त मयूर की पूँछ के समान चंचलतर कुन्तलों वाली, रमण-कार्य में सक्षम, वे अप्सराएँ तत्काल ही उन जिनेन्द्र पार्श्व के सम्मुख उपस्थित हो गयी, मानों विधि ने रति को अनेक भेदों (रूपों) में घड़ दिया हो। (124)

7/11

Even the postures and gestures of beauty queen angels proved ineffective on meditating Pārśwa.

वत्थु-छन्द— कावि गायइ सरस सुइ-महुरु।
कावि चलि णयणहिँ णियइ कावि थोर थणजुयलु दरिसइ।
कावि हावभावइँ करइ कावि विलासविब्भमहिँ हरिसइ।।
कावि दक्खवइ मणि रसणु अद्धुमिल्लु करेवि।
कावि मग्गइ णिय सिरु धुणेवि चुंबणु पुरउ सरेवि।। छ।।

कावि भणइ तुहुँ णिद्दक्खिण्णउ महु तणुरुहु विरहाणल खिण्णउ।।
देव ण देक्खहि किं मणु भिण्णउ पंचसरेण सरेहिँ सुछिण्णउ।।
कावि पयंपइ किं पविलंबहि किण्ण महारइ गलिय बिलंबहि।।
अहणिसु णियमणि किं णिज्झायहि दयकरि मयणाणलु उल्लावहि।।
कावि सुहासइ मम्मण वयणेहिँ जिणु णियंति अणियालिहिँ णयणहिँ।।
को आएसु ण मइँ संगहियउ जेण मउणु पइँ सामिय विहियउ।।
कावि हसंति पयंपइ सुंदरि मरद्धय धरणीहर कंदरि।।
एउ अउव्वु अडंबरु मेल्लिवि बाहुदंड बेण्णिवि उब्वेल्लिवि।।
चप्पेवि थण-जुअलु सहारउ किण्णालिंगहि कंठु महारउ।।

7/11

ध्यानस्थ पार्श्व मुनीन्द्र पर उन रूपस्विनी अप्सराओं के भाव-विभ्रमों का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा—

वस्तु छन्द— उन पार्श्व मुनीन्द्र के सम्मुख कोई अप्सरा तो श्रुति-मधुर गीत गा रही थी, तो कोई उन्हें अपने चपल नेत्रों से निहार रही थी और कोई-कोई उन्हें अपने पृथुल स्तनयुगल दिखा रही थी, कोई उनके सम्मुख कामोत्तेजक हाव-भावों का प्रदर्शन कर रही थी, तो कोई अपने विलास-विभ्रमों से हर्षित करने का प्रयत्न कर रही थी, कोई-कोई अप्सरा अर्ध नेत्र निमीलित कर अपनी मणिजटित रसना (करधनी) दिखला रही थी, तो कोई-कोई अपना सिर धुनती हुई आगे पहुँचकर चुम्बन माँग रही थी।

कोई-कोई अप्सरा पार्श्व से कह रही थी कि तू अत्यन्त निरा अदाक्षिण्य (मूर्ख) है। मेरा तन तेरे विरहानल के कारण सन्तप्त है। रे देव, क्या देख नहीं रहा है कि कामदेव के वाणों ने मेरा मन छिन्न-भिन्न कर डाला है। कोई -कोई अप्सरा कह रही थी कि विलम्ब क्यों कर रहे हो, मेरे साथ सुखद रतिकर्म क्यों नहीं करते ? अपने मन में तुम अहर्निश किसका ध्यान करते रहते हो ? अरे, कुछ तो दया करो, मुझे मदनाग्नि से क्यों नहीं बचाते ? कोई कोई कटाक्ष भरे तिरछे नेत्रों से जिनेन्द्र को ताक रही थी, मानों कह रही हों कि हे देव, मैंने तुम्हारा कौन सा आदेश नहीं माना है, जिसके कारण तुमने मौन धारण कर लिया है ?

कोई-कोई अप्सरा इस प्रकार हँस रही थी, मानों मकरध्वज रूपी राजा के रहने के लिये वह स्वयं पर्वत रूपी कोई कन्दरा ही हो। वह कहे जा रही थी कि अब इस अपूर्व आडम्बर को छोड़कर अपने दोनों बाहुदण्डों को

15 कावि ससज्झ सवेविर विग्गह कहइ कणय केऊर परिग्गह।।
जा जीवेस ण जीविउ णिग्गइ जा ण कयंतु अखत्ते लग्गइ।।
ता णियमणु रइकीलणे पेरहि मा णिट्ठुरु होएवि अवहेरहि।।

घत्ता— सुर-असुरहिँ जेहिँ णिरिक्खियइँ तहु रूवइँ मयण सवक्खियइँ।
णिय माणसि तेहिँ विसूरियइँ पुणु-पुणु णिय तणु मुसुमूरियइँ।। 125।।

7/12

When the beautiful angels failed to disturb Pārśwa, the wicked demon tries unsuccessfully to create obstructions through the God of Fire (Agnideva).

वत्थु-छन्द— किं सुरत्तेण अम्ह दुक्खाण लक्खाण।
मणे वित्थरेण जहिँ ण चित्त संतावहम्महिँ।
एयाउ पीवर थणिउ महुरवाणि अणवरउ रम्महि।।
डज्झउ सो देवत्तणु वि जहि जायइ मण-सोउ।
5 वरि भवे-भवे अम्हहँ हवउ हयमणदुहु णर लोउ।। छ।।

सुर-कामिणिहिँ ण चालिउ जाविहँ ज्झाणहि पासजिणेसरु ताविहँ।।
सिर-सेहरु किरणावलिभासुरु आउलमणु चिंतइ कमठासुरु।।

उद्वेलित कर (घेराकार बनाकर) हार-सहित मेरे महारतिजनक स्तन-युगलों को चाँपकर कण्ठ का आलिंगन क्यों नहीं कर रहे हो ? स्वर्णनिर्मित केयूर धारण किये हुए, कोई-कोई अप्सरा अत्यन्त संकोचशील तथा कम्पित विग्रह (शरीर) से कह रही थी कि —हे जीवेश, जब तक प्राण नहीं निकल जाते और जब तक कृतान्त नहीं आ जाता, तब तक तुम अपने मन को रति-क्रीड़ा में प्रेरित करते रहो, निष्ठुर बनकर मेरा तिरस्कार मत करो।

घत्ता— जिन देवों एवं असुरों ने मदन से सापेक्ष तुम्हारे रूप को देखा हे, अपने-अपने मन में वे भी झूरते रहे और अपना शरीर पुनः पुनः खोते रहे। (125)

7/12

जब रूपस्विनी अप्सराएँ भी पार्श्व को ध्यान से विचलित न कर सकीं, तब वह दुष्ट कमठासुर अग्निदेव के द्वारा उपसर्ग कराने का असफल प्रयत्न करता है—

वस्तु छन्द— हमारे लिये ऐसे देवत्व से क्या लाभ, जिसने हमारे लिए लाखों दुख उत्पन्न किये हों ? ऐसे देवत्व से भी हमें क्या लाभ, जो हमारे चित्त के सन्ताप तक को नहीं मिटा सकते ? कहाँ तो हमारे ये पीवर-स्तन, कहाँ हमारी मधुर वाणी और कहाँ हमारी यह रम्य-चारुता की निरन्तरता ? खाक हो जाय हमारा यह देवत्व, जहाँ मन केवल शोकाकुल ही बना रहता है। बल्कि, जन्म-जन्म में हमें मन के दुखों को नष्ट करने वाला यही मनुष्य-लोक प्राप्त हो, (यही हमारी मनोकामना है)।

ध्यान स्थित पार्श्व जिनेश्वर जब अप्सराओं के द्वारा भी चलायमान न किये जा सके, तब मुकुट की किरणों से भास्वर मस्तक वाले उस कमठासुर ने व्याकुल मन से अग्निदेव का स्मरण किया। अतः वह भी पवन के समान ही वहाँ आ पहुँचा। आते ही उसने क्षयकालीन सूर्य के समान समस्त जल को सुखा डाला, जहाँ-तहाँ वडवानल

हुववउ पत्तु तुरंतउ पवणु व सोसंतउ सलिलइँ खयतवणु व।।
वडवानल जह तह पजलंतउ समहीयलु णहयलु मइलंतउ।
धूमकेउ जह तह धूमालउ पसरिय दीहर-जाल वमालउ।।
दस दिस मुक्क फुलिंगुग्गारउ रत्तवण्णु णावइ अंगारउ।।
खयकालु व सयलिंगि खयंकरु फणि सुर-णर-गयणयर भयंकरु।।
तडतडंतु जालाहिँ तुडंतउ घर-पुर-णयरहँ उवरि पडंतउ।।
जालोलिहिँ गयणयलु रहंतउ तरुवर वल्लहिँ कुहर दहंतउ।।
वोमहो वोमयरइँ पाडंतउ विवर भुअंगइँ णीसारंतउ।।

घत्ता— एरिसु वि हुआसणु जिणवरहो पय-पंकय पाडिय सुरवरहो।
पयपुरउ परिट्ठिउ परिसहइ णं दीवउ दासत्तणु वहइ।। 126।।

7/13

When the disturbances created by the God of Fire becomes ineffective the roaring ocean, sent for the purpose is highly impressed with the brilliance penance of Pārśwa and becomes his servant (slave) fells on his feet accepting him (Pārśwa) as his Master.

वत्थु-छन्द— जा ण दड्ढउ जायवेएण।
जिण पायरुह रएण अरुह तित्थ तव धत्थ तेएण।
पाय पुरउ संपत्तएण अतिमार परिमुक्कवेएण।।

प्रज्वलित होने लगी, जिसने मही से लेकर नभ-मण्डल तक को मलिन कर डाला। फैली हुई लम्बी ज्वालाओं से व्याप्त वह ऐसा धूमालय जैसा हो गया, मानों (साक्षात्) धूमकेतु ही हो।

उस अग्निदेव ने दसों दिशाओं में ऐसे स्फुलिंग छोड़े, मानों वे रक्त वर्ण के अंगारे ही हों। क्षयकाल के समान सभी प्राणियों का क्षय करने वाला, नागेन्द्र, सुरेन्द्र, नरेन्द्र एवं विद्याधरों के लिये भी भयंकर, तड-तड कर टूटती हुई ज्वालाओं को घरों, पुरों एवं नगरों के ऊपर गिराता हुआ, ज्वालावलियों में गगनतल को आच्छादित करता हुआ, तरुवरों, बल्लरियों एवं उनके कुहरों को जलाता हुआ, आकाश के पक्षियों को गिराता हुआ, और विवरों से भुजंगों को खदेड़ता हुआ–

घत्ता— वह प्रचण्ड अग्निदेव भी, जिनके पद-कमलों में इन्द्र भी नतमस्तक रहा करता है, ऐसे जिनेन्द्र के चरणों के सम्मुख ऐसा सुशोभित होने लगा, मानों दीपक ने ही उनकी दासता को स्वीकार कर लिया हो। (126)

7/13

असुराधिपति द्वारा प्रेषित अग्निदेव-कृत उपसर्ग के निष्प्रभावी हो जाने के बाद पुनः उपसर्ग हेतु भेजा गया रौद्र-समुद्र पार्श्व के तपस्तेज से प्रभावित होकर उनके चरणों का सेवक बन जाता है–

वस्तु छन्द— जब वह अग्निदेव भी अर्हत् तीर्थंकर (पार्श्व प्रभु) को उनके तपस्तेज के प्रभाव के कारण उन्हें चलायमान न कर सका और वह उनके प्रभाव से निष्प्रभ ही नहीं हो गया, बल्कि उनके चरणों के आगे आकर भक्तिभाव से झुककर अपनी वेग गति को छोड़कर, शान्त भी हो गया, तब उस

ता चिंतिउ असुराहिवेण घणकल्लोलुरउद्दु।
चउरंगबल विराइयउ सेण्णु व पत्तु समुद्दु।। छ।।

तुंग तरंग तुरंगम वंतउ मयर महंत मयंगम वंतउ।।
हारोहर रहराइ विराइउ धवल फेण छत्तावलि छाइउ।।
बहुकुलीर पाइक्क भयंकरु कूलमहापडिकूल खयंकरु।।
चवल-लहरि परिफंसिय सुरहरु बोडिय सरि-सर-सधर-धराहरु।।
दस-दिसि सीमंतिणीउ रमंतउ कठिण कुम्म वसु णंदयवंतउ।।
उच्छलंत मच्छा सिलयालउ विविह भवण णिसियासि करालउ।।
खय समयाणिल परिपेल्लिय जलु खयर-सुरासुर-णर दूसहु बलु।।
णाणा रयणाहरण-धरंतउ कंदर-विवर-दरीउ-भरंतउ।।
गिरिवर-सिहरइँ रेल्लंतउ णीसेसुवि णहयलु लंघंतउ।।
घडहडंतु मज्जाय-विमुक्कउ जलणिहि-रूवेँ णं जमु ढुक्कउ।।

घत्ता— एरिसु वि समुद्दु सुदुत्तरणु तव-तेय-विहंसिय संचरणु।
भत्तिए भवियण विरइय कमल पक्खालइ जिणवर कम-कमलु।। 127।।

असुराधिपति ने (अपनी विक्रिया-ऋद्धि से) अत्यन्त चपल-कल्लोलों वाले, रौद्ररूपधारी, चतुरंग-बल से सुशोभित सेना के समान समुद्र का स्मरण किया और वह भी वहाँ तत्काल उपस्थित हो गया–

जो समुद्र उत्तुंग तरंग रूपी घोड़ों से युक्त, महान् मगर रूपी मातंगों से युक्त, घडियाल (हारोहर) रूपी रथों वाला, और धवल फेन रूपी छत्रावली से आच्छादित था। वह कुलीर (केंकड़े) रूपी पदाति सेना (पाइक्क) से भयकारी, धरती के दोनों तटों के लिये क्षयकारी, चंचल लहरों से स्वर्ग (आकाश) तल को छूता हुआ, नदियों, सरोवरों, निर्झरों, एवं पर्वतों को अपने में निमग्न करता हुआ, दस-दिशा रूपी सीमन्तिनियों के साथ रमण करता हुआ, कठिन कच्छप रूपी अष्ट नन्दकों (शस्त्रों) का प्रवर्तन करता हुआ, उछलते हुए मच्छ रूपी कटारों वाले, विविध भंवर (आवर्तों) रूपी भयंकर तीक्ष्ण तलवारों से व्याप्त, प्रलयकालीन वायु के समान वायु से जल को ढकेलता हुआ, विद्याधरों, सुरों, असुरों एवं नरेन्द्रों के लिये दुस्सह बल वाला, नाना प्रकार के रत्न रूपी आभरणों को धारण किये हुए, कन्दराओं, विवरों एवं दरों को भरता हुआ, गिरिवरों के शिखरों को रेलता हुआ, समस्त आकाश का उल्लंघन करता हुआ, घडघडाते हुए मर्यादाओं का उल्लंघन करता हुआ वह समुद्र, ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों यमराज ही आकर वहाँ उपस्थित हो गया है।

घत्ता— किन्तु ऐसा दुस्तर समुद्र भी पार्श्व के तपस्तेज से विध्वस्त होकर संचार-हीन हो गया और जिस प्रकार भव्यजन भक्तिपूर्वक जिनेन्द्र के चरण-कमलों का प्रक्षालन करते हैं, उसी प्रकार वह समुद्र भी उनके चरणों का प्रक्षालन करने लगा। (127)

7/14

Dangerous fearful wild animals also could not deviate Pārśwa from his meditation.

वत्थु-छन्द— जा ण बोल्लिउ वाहिणीसेण।
जिणणाहु असुराहिवेण ता विमुक्कु सावय-सहासइँ।
दिढ दाढ तिक्खाणणेहिँ तिविह लोय महाभयपयासइँ।।
गय-गंडोरय-गयणयर-महिस-वियय-सद्दूल।
5 वाणर-विरिय-वराह-हरि-सिरलोलिर लंगूर।। छ।।

केवि कूरु घुरहुरहिँ दूरत्थ फुरहुरहिँ।।
केवि करहि ओरालि ण भुवंति पउरालि।।
केवि दाढ दरिसंति अइ विरसु विरसंति।।
केवि भूरि किलिकिलहिँ उल्ललेवि वलि मिलहिँ।।
10 केवि णिहय पडिकूल महि हणिय लंगूल।।
केवि करु पसारंति हिंसण ण पारंति।।
केवि गयणयले कमहिँ अणवरउ परिभमहिँ।।
केवि अरुण णयणेहिँ भंगुरिय वयणेहिँ।।
केवि अणवरउ तासंति केवि अकियत्थ तूसंति।।
15 केवि धुणहिँ सविसाण कंपविय परपाण।।

7/14

विकराल श्वापद-गण भी पार्श्व प्रभु को उनकी तपस्या से विचलित न कर सके—

वस्तु छन्द— वह रौद्र समुद्र भी जब अपनी वाहिनी-सेना द्वारा जिननाथ को न डुबा सका, तब असुराधिप ने उन पार्श्व पर सहस्रों श्वापद (हिंसक पशु-पक्षी) छोड़े, जो सुदृढ़ दाढ़, तीक्ष्ण मुख वाले तथा जो तीनों लोकों के लिये महान् भयाकुल करने वाले थे। ऐसे श्वापदों में गज, गैंडा, उरग (सर्प) गगनचर (पक्षी) जंगली भैंसे, विकट शार्दूल, बानर, विरिय (बर्र) शूकर, सिंह आदि थे, जिनके सिर पर कम्पायमान पूँछ तनी हुई थी—

कोई-कोई क्रूर श्वापद घुरघुरा रहे थे, तो कोई-कोई श्वापद दूर से ही फुरफुरा रहे थे। कोई-कोई (श्वापद) ओराली (लम्बी और मधुर आवाज) कर रहे थे और अपना प्रवर संग नहीं छोड़ रहे थे। कोई-कोई दाँत दिखा रहे (चिढ़ा रहे) थे, और बेसुरी चीखें मार रहे थे। कोई-कोई बेहद किलकिला रहे थे, तो कोई-कोई उछल-उछल कर मिल रहे थे।

कोई-कोई अपनी पूँछ को भूमि पर पटक कर शत्रु को मारते थे, तो कोई कोई सूँड के समान अपना हाथ फैला रहे थे किन्तु मार डालने में पार नहीं पा रहे थे, कोई गगनतल में घूम रहे थे और अनवरत रूप में चक्कर काट रहे थे।

कोई लाल-लाल नेत्रों से मुँह को टेढ़ा-मेढा कर (चिढा) रहे थे और कोई-कोई अनवरत रूप से डाँट (खिसिया) रहे थे और कोई-कोई व्यर्थ में ही सन्तुष्ट हो रहे थे। कोई-कोई दूसरों के प्राणों को कंपा देने वाले अपने सींगों

केवि दुट्ठ कुप्पंति पक्खिहिँ झडप्पंति।।
केवि पहु ण पावंति डसणत्थु धावंति।।
गयसत्ति हुअ जाम णिप्फंदयिय ताम।।
हय वइरि गावेण जिण तव पहावेण।।
20 ण फुरंति ण चलंति महिवीढु ण दलंति।।
चित्तेवि ण वडंति णवियाणणा ठंति।।

घत्ता— जिणवरु परमेसरु भयरहिउ भीषण वणयर ण्यिरहिँ सहिउ।
णीसेस धराधर राउ जह पेक्खेवि णिक्कंपु सरीरु तह।। 128।।

7/15

When the demon King remained unsuccessful even after creating disturbances through ghosts he hopelessly started chewing his lips in fury.

वत्थु-छन्द— ता सुरेसिण भीमवयणेण।
थिरय वियणिय लोयणिणा कुविय मणिण वेयाल झाइया।
दरिसंत माया विविह तहिं असेस तक्खणे पराइया।।
रक्खस पण्णय गरुउ गह डाइणि साइणि भूअ।
5 विंतर पेय पिसायवइ णं खयकालहो दूअ।। छ।।

को धुन रहे थे। कोई दुष्ट क्रोधित हो रहे थे, तो कोई-कोई अपने पंखों से झपट्टा मार रहे थे। कोई-कोई प्रभु (पार्श्व) को न पाकर डँसने के लिये दौड़ रहे थे।

किन्तु जिनेन्द्र के तप के प्रभाव से वे बेरी-समूह (श्वापदगण) जब शक्ति विहीन एवं निष्क्रिय हो गये तब कोई न तो स्फुरायमान रहा, न चंचल ही, और न धरती को रौंद ही रहे थे, वे चित्त में स्थित नहीं हो पा रहे थे। अतः नतमस्तक होकर वे निश्चल होकर ही रह गये।

घत्ता— भीषण वन्य प्राणियों (श्वापदों) से घिरे रहने पर भी तथा उन्हें देखकर भी जिनेश्वर परमेश्वर पर्वतराज के समान निष्कम्प शरीर बने रहे। (128)

7/15

वैतालों द्वारा उपसर्ग कराये जाने पर भी जब असुराधिपति वह कमठ पूर्णतया असफल हो गया, तब क्रोधारक्त होकर वह अपना अधरोष्ठ चबाने लगा—

वस्तु छन्द— तब भयंकर मुख वाले उस असुराधिप ने अपने नेत्रों को स्थिर कर, मन ही मन क्रोधित होकर, वैतालों का स्मरण किया। स्मरण करते ही अनेक प्रकार की मायाविनी विद्याओं वाले राक्षस, पन्नग, गरुड़, ग्रह, डाकिनी, शाकिनी, भूत, व्यन्तर, प्रेत एवं पिशाचपति जैसे बैताल तत्काल ही वहाँ आ पहुँचे। वे ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानों प्रलयकाल के दूत ही हों—

रुहिरामिस-वस-मंडियगत्तइँ सभिउडि भाल विहीसणवत्तइँ।।
णीसेसु वि णहयलु छायंतइँ डवडवंत डमरु व वायंतइँ।।
फरहरंति पिंगल सिरचूलइँ करयलि संचारंति तिसूलइँ।।
उग्गामिय लसंत करवालइँ णर कवाल कंकाल करालइँ।।
10 गयवरचम्मावरणु धरंतइँ णिब्भरु हुं हुंकार करंतइँ।।
करिदंत्तिय किरणालि फुरंतइँ बंधु-बंधु-बंधुच्चारंतइँ।।
हणु-हणु-हणु भणंत धावंतइँ दारुण दिढ दाढइँ दावंतइँ।।
भीमोरालिहिँ भुअणु भरंतइँ जिणणाहहो पय पुरउ सरंतइँ।।
णिय-णिय भुअ-जुअ-सत्ति-पयासेवि माया-विरइय रुअइँ दरिसेवि।।
15 णिप्फंदइ होएविणु थक्कइँ दूरुज्झेवि भावइँ लल्लक्कइँ।।
अकयत्थइँ वियलिय गुरु गव्वइँ भत्तिएण वियाणणइँ व सव्वइँ।।
पास जिणेसर तवभयगीढइँ जा दिट्ठइँ सेविय महिवीढइँ।।

घत्ता— ता कमठासुर भासुर वयणु णिद्दरियारुणदारुण णयणु।
तणु जुइ विच्छुरिय विउलगयणु अहरोवरि विणिवेसिय रयणु।। 129।।

रुधिर,, माँस एवं वसा से लिप्त शरीर वाले तथा भाल तथा फैली भृकुटि एवं भयंकर मुख वाले वे सभी वैताल समस्त आकाश-मण्डल में व्याप्त हो गये तथा डमडम करते डमरु बजाते हुए, अपने पिंगल वर्ण वाले सिर की चोटी को फहराते हुए, अपने हाथों में त्रिशूल को घुमाते हुए और (हाथों में) तलवारों को चमकाते हुए, डरावने लगने वाले नरकपाल-कंकालों से युक्त, गजवरों के चर्म का आवरण धारण किये हुए, जोरों से हुँ-हुँकार करते हुए, हाथी के दाँतों (खींसों) के समान दाँतों की किरणावली से स्फुरायमान, "उसे बाँध लो", उसे बाँध लो, उसे बाँध लो, की चिल्ल-पों मचाते हुए, मारो-मारो कहकर छापा मारते हुए, दारुण दृढ़ दाढ़ों को दबाते (चबाते) हुए, भयानक गर्जनाओं से भुवन को भरते हुए, जिननाथ के चरणों की ओर सरकते (खिसकते) हुए, अपनी-अपनी भुजाओं की शक्ति का प्रदर्शन करते हुए, मायारचित अपने विविध मायावी रूपों को दिखलाते हुए, जब वे थक गये, तब निश्चेष्ट हो गये और फिर उन्होंने अपनी भयंकर भावनाओं को दूर से ही त्याग कर दिया।

अकृतार्थ हो जाने से उनका समस्त अहंकार विगलित हो गया और वे सभी पार्श्व जिनेश्वर के तप के प्रभाव से भयभीत होकर उन (पार्श्व) के प्रति नतमस्तक हो गये और उनमें से जिसको भी देखो वही इस पृथिवी पर उनकी सेवा करने में तत्पर हो गया।

घत्ता— (इस उपसर्ग में भी अपने को असफल पाकर–) भास्वर वदन, तथा फाड़े हुए रक्त वर्ण के भयानक नेत्रों वाला वह असुराधिपति-कमठ अपने शरीर की कान्ति से गगनतल को व्याप्त करता हुआ अपने अधरोष्ठ को दाँतों से चबाने लगा। (129)

7/16

Fully disappointed and disgruntled the demon King again creates hindrances through dark heavy clouds invited for the mean purpose.

वत्थु-छन्द— स मणि चिंतइ ससिरु विहुणंतु।
किं मज्झ देवत्तणेण किं विभूइ-भूसिय विमाणेण।
किं चारु अच्छरगणेण किं सुहेण णिहय माणेण।।
किं बहुविह विज्जा-विहिया रूवहिँ रिउ चंडेहिँ।।
किं कंकण-केऊर रुइ सवलिय भुअ-दंडेहिँ।। छ।।

जेहि ण वियारिउ वइरिउ दूसहु विरइय मह-अहिमाण परीसहु।।
किउ उवसग्गु णिरारिउ एयहो तव तेओहामिय रवितेयहो।।
तो वि ण वइरिउ रोमु विकंपिउ जइवि फरुस खर-वयणहिँ जंपिउ।।
एव्वहिँ किं करेमि बल-हीणउँ बहु उवसग्गु करंतउ खीणउँ।।
कहिं गच्छमि परिगलिय मणोरहु एहु कज्जु महु जायउ भारहु।।
एम जाम मणि णिज्झायइ ता उवसग्गु चित्ते तहो जायइ।।
अविरल धारहिँ पाडमि पाणिउँ करि मयरोहरहारहिँ माणिउँ।।
ताम जाम वइरिउ रेलिज्जइ धरणि महाविविरंतरि णिज्जइ।।

7/16

निराश एवं उदास वह कमठासुर घने मेघों को आमन्त्रित कर उनके माध्यम से पार्श्व पर उपसर्ग करता है—

वस्तु छन्द— तब वह कमठासुर अपना सिर घुनता हुआ चिन्ता करने लगा कि मेरे इस देवत्व से क्या लाभ? विभूति-विभूषित विमान (के स्वामित्व) से क्या लाभ? सुन्दर अप्सराओं के साथ रहने से क्या लाभ? मानहीन सुख-भोगों से क्या लाभ? बहुविध (मायाविनी) विद्याओं से क्या लाभ? (निरर्थक हो जाने वाले) अपने अनेक प्रकार के मायावी एवं प्रचण्ड रूपों को भी शत्रु को दिखाते रहने से क्या लाभ? कंकण एवं केयूर (भुजबन्द) की द्युति से शबलित इन भुजदण्डों के रहने से भी क्या लाभ?

जिनसे परीषहजयी इस दुस्सह बैरी को विदारित नहीं किया जा सकता। मैंने महान् अभिमान पूर्वक अपने तेज से रवि के तेज को भी मन्द करने वाले इस (पार्श्व) पर लगातार कठोर उपसर्ग किये थे, तो भी इस बैरी का एक रोम भी विकम्पित नहीं हो सका। यद्यपि (उपसर्ग-काल में) उसके लिये भयावह कर्कश-कठोर वचन भी बोले गये। अतः अनेक उपसर्गों के करते-करते क्षीण तथा बलहीन हो जाने के बाद अब मैं क्या करुँ परिगलित मनोरथ वाला मैं अब कहाँ जाऊँ ? क्योंकि अब तो यह कार्य मेरे लिये अति भार-स्वरूप हो गया है।

इस प्रकार जब वह असुर अपने मन में चिन्ता कर रहा था, तभी उसके मन में एक अन्य उपसर्ग करने का विचार उठा। उसने निश्चय किया कि मैं हाथी, मगर, घडियाल आदि से युक्त पानी की तेज अविरल-धारा तब तक बहाऊँ, जब तक कि हमारा बैरी (पार्श्व) उसके रेले में न आ जाय और तब तक वह उसे बहाकर धरती के बड़े-बड़े विवरों में न ले जाय।

इय णिज्झाएवि आइउ जलहरु अलिउल-कज्जल-कसणु-समलहरु।।
15 गरुअत्तण जिय अंजणगिरिवरु गुरु गहीर रव रोसिय हरिवरु।।

घत्ता— अमुणिय पमाणु णहयल-सरिसु बहुविह पायव पयणिय हरिसु।
णिरसिय गिम्हारि महामरिसु थिर-थोर-धार-सलिलहि वरिसु।। 130।।

7/17

Figurative description of the water carrying heavy dark clouds.

वत्थु-छन्द— भुअणु भीसणु तडिलयाहरणु।
जमराय-राहाहरणु कसण-वडल पच्छाइय मंदरु।
सुरचावलच्छी धरणु जलभरेण पूरंतु कंदरु।।
खय-कालाणिल-पेरियउ कय बहु जीवपमाउ।
5 णं णियठाणहो संचलिवि मयरहरु समाउ।। छ।।

दीसह णवघणु विहियाडंबरु जणवएण पूरिय घण-डंबरु।।
दुण्णिरिक्ख णं आसीविसहरु गहिरवाणि णं गोत्तमु गणहरु।।
दुप्पुत्तु व छाइय कुलणहयलु कुणरिंदु व परिबोलिय महियलु।।
भवियजणु व अविरलु वरिसंतउ कुसमय मुणि व सुपहु णिरसंतउ।।

यह विचार कर उसने मेघ का स्मरण किया। स्मरण करते ही गुरुता में अंजन-पर्वत के समान तथा गर्जना से सिंह को भी कुपित कर देने वाले तथा भ्रमर के समान काले काले श्यामल मेघ भैसों के झुण्ड के समान वहाँ आकर उपस्थित हो गये।

घत्ता— वे मेघ आशातीत अप्रमाण, नभस्तल के समान विस्तृत, विविध प्रकार के पादप-वृक्षों के लिये हर्षित करने वाले और ग्रीष्म ऋतु के महाक्रोध का निरसन करने वाले थे। उन्होंने अविरल मोटी धारा वाली जलवर्षा प्रारम्भ कर दी। (130)

7/17

सघन-मेघों का आलंकारिक वर्णन—

वस्तु छन्द— कृष्णवर्ण वाले वे सघन मेघ लोक में अति भयंकर थे, बिजली ही मानों उनका आभरण था, वे (मेघ) यमराज की राधा (भैंस) को भी हरने वाले थे, अपने कृष्ण-पटल से वे मंदर (सुमेरु) पर्वत को आच्छादित कर रहे थे, इंद्र-धनुष की लक्ष्मी को धारण किये हुए थे, अपने जल-भार से वे कंदरा को पूर रहे थे, क्षयकाल की वायु के समान वायु से पेरे जा रहे थे, जीवों को प्रमादी बना रहे थे। इस प्रकार वे (मेघ) ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानों अपने स्थान से चलकर समुद्र ही आकर उनमें समा गया हो।

जिस समय विहित आडंबर वाले वे नवीन मेघ दिखाई दे रहे थे, उस समय समस्त जनपद महान् कोलाहल से पूर्ण हो उठा। जिस प्रकार आशी विषधर (सर्प) दुर्निरीक्ष्य होता है उसी प्रकार वे मेघ भी दुर्निरीक्ष्य थे। उन मेघों की वाणी (गर्जना) गौतम गणधर की वाणी के समान गंभीर थी। जिस प्रकार दुष्पुत्र (कपूत) कुल रूपी आकाश को ढाँक देता है, उसी प्रकार वे मेघ भी आकाश को ढँके हुए थे। जिस प्रकार खोटा राजा पृथ्वीतल को कँपाता रहता है, उसी प्रकार वे मेघ भी महीतल को क्षुब्ध कर रहे थे। भव्यजन जिस प्रकार निरन्तर आनंद के अश्रु बरसाते

भत्ति-जुत्तु सीसु व पणवंतउ वेसयणु व सव्वत्थ रमंतउ।।
पलयाहिवइ व भुवणु गिलंतउ अवरोप्परु सुहियणु व मिलंतउ।।
कलहंसुज्झिउ किवण कलत्तु व बहु विसवंतउ विसहरगत्तु व।।
कुलिस किरण विप्फुरिउ सुरिंदु व घडहडंतु दिसणियर करिंदु व।।
जडसहाउ दोसयरु कुसीसु व गयपयाउ विहडिय धरणीसु व।।
चारणमुणि व गयेण वियरंतउ जिणणाणु व दसदिसि पसरंतउ।।

घत्ता— बुहयणे वायरणु व वित्थरेवि वयणुब्भडसुहडु व उत्थरेवि।
मेल्लिवि जल-बहल सिलीमुहइँ हउ गिंभु महारिउ दुम्मुहइँ।। 131।।

7/18

Serious disturbances from the heavy rains described

वत्थु-छन्द— सहइ पाणिउं गयणे तुट्टंतु।
हारु व सुरकामिणिहिँ उल्ललंतु गिरि-सिहरि सीहु व।

रहते हैं, उसी प्रकार वे मेघ-गण भी अविरल वर्षा कर रहे थे। जिस प्रकार मिथ्यात्वी साधु सुपथ को बिगाड़ते रहते हैं, उसी प्रकार वे मेघ भी सुपथों को बिगाड़े जा रहे थे, (अर्थात् वर्षा से मार्गों को काट रहे थे)।

भक्ति युक्त शिष्य जिस प्रकार नतमस्तक रहते हैं, उसी प्रकार वे मेघ भी नीचे झुके जा रहे थे। जिस प्रकार वेश्या का मन सर्वत्र रमता है, उसी प्रकार वे मेघ भी समस्त दिशाओं में सुशोभित हो रहे थे। प्रलय कालीन समुद्र जिस प्रकार भुवन (आर्यखण्ड) को निगल जाता है, उसी प्रकार वे मेघ भी भुवन को (लोकों को) निगले जा रहे थे। सुधी जन जिस प्रकार परस्पर में मिलते हैं, उसी प्रकार वे मेघ भी परस्पर में मिल रहे थे।

जैसे कृपण की नारी अपने प्यारे पति को छोड़ देती है, उसी प्रकार वे मेघ भी वर्षाजल छोड़ रहे थे। वे मेघ अत्यन्त विषैले विषधरों के समान शरीर वाले थे। जैसे इन्द्र बज्र की किरणों से चमकता रहता है, वैसे ही वे मेघ भी उल्का-किरणों से दमक रहे थे। जिस प्रकार दिग्गज धड़धड़ाते हुए घोर-गर्जना करते हैं, उसी प्रकार जल-स्वभावी वे मेघ भी गरज रहे थे। जिस प्रकार, जडस्वभावी कुशिष्य दोषकारी होता है, उसी प्रकार वे मेघ भी अपने काले रंग के कारण रात्रि को काला कर रहे थे। जैसे गज के पाद से पर्वत गिरा दिया जाता है उसी प्रकार वे मेघ भी अपने मद-जल के प्रभाव से धरणी को विघटित कर रहे थे। जिस प्रकार चारण-मुनि गगन में विचरते हैं और जिनेन्द्र के ज्ञान का दशों दिशाओं में प्रचार करते हैं, ठीक उसी प्रकार वे मेघ भी गगन में विचर रहे थे। जिस प्रकार जिनेन्द्र का ज्ञान दशों-दिशाओं में फैलता है, वैसे ही वे मेघ भी दसों-दिशाओं में ध्वनि कर रहे थे।

घत्ता— जिस प्रकार बुधजनों में व्याकरण का विस्तार होता है, वैसे ही उन मेघों का भी विस्तार हुआ। सुभट जिस प्रकार आदेशानुसार क्रिया करते हैं, ठीक उसी प्रकार वे मेघ भी अपूर्व क्रिया कर रहे थे। वे मेघ जगह-जगह जलरूपी वाणों को सुभट के समान छोड़ रहे थे। (अधिक क्या कहा जाये) उन मेघों ने तो ग्रीष्म रूपी महा शत्रु के दुर्मुख को भी नष्ट कर दिया था। (131)

7/18

सजल मेघ का महा उपसर्ग—

वस्तु-छन्द—आकाश में देवियों ने मेघ वर्षा-जल को ऐसे देखा मानों टूटे हुए मोतियों का हार ही बिखरकर सुशोभित हो रहा हो। पर्वत के शिखरों को सिंह जिस प्रकार गर्जना से भर देता है, ठीक उसी प्रकार वे मेघ भी

फुट्टंतु पालिहे खलु व धरणिरंधि जंतउ दुजीहु व।।
वियरंतु विब्भमसयइँ विसायणु व धसंतु।
मंदिर सिहरहो तक्करु व फेणावलिहि हसंतु।। छ।।

अणिवारिउ दसदिसि धावंतउ असुरेसहो पेसणु व करंतउ।
कहिंमि ण रइ-बंधइ विरहियणु व दूसहु दुहयरु दुज्जण वयणुव।।
कहिंमि ण माइ सुपुरिस विढत्तु व घुलइ पडइ पडिक्खलइ पमत्तु व।।
उहिँ रवि हरि वर तासइ गयणि चरंते खयर णिण्णासइ।।
वण-करिकुंभ गलिय मय विहुणइँ वाणर-विरिय-हरिणगण-णिहणइँ।।
सिहरिहु पवर सिलायल चालइ गढ-मढ-देउल-मंदिर ढालइ।।
पट्टण-पुर-णयरायर रेल्लइँ गामाराम महीरुह पेल्लइ।।
उब्बासइँ तावसहँ णिवासइँ सिरिहल सहियइँ वणसंकासइँ।।
वज्जणिहाए गिरिवर घायइँ जणवय चित्ते महाभउ लायइँ।।
सयल सलिलणिहि जलु आकरिसइ जइवि णिरंतरु जलहरु वरिसइ।।

गरज-गरज कर अविरल वर्षा कर रहे थे। जिस प्रकार खल-पुरुष न्याय-पद्धति को नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं, उसी प्रकार वे मेघ भी तटों की तोड़-फोड़ कर रहे थे। जिस प्रकार द्विजिह्व-सर्प धरणि-रंध्र (वामी) में प्रवेश कर जाते हैं, उसी प्रकार वे मेघ भी भूमि में प्रवेश कर रहे थे। जिस प्रकार वेश्याजन सभी के मन में विभ्रम-विलास उत्पन्न करती हुई सर्वत्र विचरती रहती हैं, उसी प्रकार वे मेघ-समूह भी सर्वत्र विचरण कर रहे थे। जिस प्रकार चोर हँसता हुआ धवल मंदिर-शिखर के कलश को चुरा लेता है ठीक उसी प्रकार वे मेघ भी अपनी फेनावली के माध्यम से मानो हँसते हुए महलों के शिखरों को ढँक रहे थे।

जिस प्रकार असुरेश के दासगण दशों दिशाओं में निर्विघ्न रूप से दौड़ते रहते हैं, उसी प्रकार वे मेघ गण भी दशों दिशाओं में मानों असुरेश की दासता को स्वीकार करते हुए ही अनिवार्य रूप से दौड़ लगा रहे थे। विरही-जन की तरह वे मेघ कहीं भी रति बन्ध नहीं कर रहे थे अर्थात् वे कहीं भी पड़ाव नहीं डाल रहे थे। दुःसह दुःखकर दुर्जन-वचनों की तरह वे मेघ भी दुःसह दुःख उत्पन्न कर रहे थे। जिस प्रकार सत्पुरुषों का स्वामित्व-वर्धन कहीं भी नहीं समाता, उसी प्रकार उन मेघों का समूह भी कहीं नहीं समा रहा था। पटह की ध्वनि के समान वे मेघ ध्वनि करते हुए ऐसे घूम रहे थे मानों कोई प्रमत्त पुरुष ही गिरता-पड़ता स्खलित हो रहा हो। जिस प्रकार आकाश में सूर्य के घोड़े त्रास देते हैं, उसी प्रकार वे मेघ भी आकाश में चलते हुए खेचरों को त्रस्त कर रहे थे (अर्थात् आकाश में चलते हुए सूर्य की किरणों को वे मेघ नष्ट कर रहे थे)।

वनगजों के मस्तक से गिरे हुए मद-जल को वे मेघ नष्ट कर रहे थे। वे वानर, विरिये (चिड़ियाँ) हरिण-गणों को नष्ट कर रहे थे। वे मेघ अपने प्रवर-वेग से पर्वतों के विशाल शिलातलों को भी चलायमान कर रहे थे। गढ़, मठ, देवालय-मंदिर को ढहाते हुए जा रहे थे। पट्टनों, पुरों, नगरों एवं आकरों में रेला मचा रहे थे। ग्रामों, उद्यानों एवं वृक्षों को पेल डाल रहे थे। वहाँ के तापसों, उपासकों एवं निवासियों के निवास-स्थलों को उजाड़े जा रहे थे। श्री समृद्ध हल्य क्षेत्रों को भी वन-तुल्य बनाते जा रहे थे। जिस प्रकार वज्र के प्रहार से पर्वतों का घात होता है, उसी प्रकार वे मेघ भी पर्वतों का घात कर रहे थे। इस प्रकार समस्त जनपदों के निवासियों के चित्त में महान् भय उत्पन्न कर रहे थे। यद्यपि वे मेघ-समूह निरन्तर वर्षा कर रहे थे, फिर भी वे समुद्र के जल को भी आकर्षित कर रहे थे।

घत्ता— तो वि णाय-णरामर मणहरहो रोमि वि ण दुविह-तव-सिरिहरहो।
कंपिय सिरिपासजिणेसरहो णट्टलु-मण-पयरुह णेसरहो।। 132।।

Colophon

इय सिरि-पासचरित्तं रइयं बुह सिरिहरेण गुणभरियं।
अणुमण्णियं मणोज्जं णट्टल-णामेण भव्वेण।।

भीमाडइ वणमज्झे कमठासुर-विहिय भीम उवसग्गे।
पास-परीसह सहणे सत्तमी संधी परिसमत्तो।। छ।। संधी 7

Blessings to Naṭṭala Sāhu, the inspirer

यस्य स्वर्गपतेर्पुरः सुरगुरुर्ब्रूते सदा सत्कथा,
राजन्, पृथिवीतले प्रतिदिनं संभाषणं कुर्वते।
पाताले फणिनांपतेः प्रियतमा गायन्ति कीर्त्तिर्मुदा,
कृतस्येहं नट्टलस्य विबुधः सम्भाषते सद्गुणान्।।

घत्ता— इतना सब होने पर भी नागों, नरों एवं अमरों के मन को हरने वाले तथा दोनों प्रकार की कठिन तपस्या करने वाले उस तपस्वी (पार्श्व) का बाल भी बाँका नहीं हुआ। वे प्रभु पार्श्व अकम्पित ही रहे। भव्य-कमलों के लिये सूर्य के समान वे पार्श्व जिनेश्वर उसी प्रकार स्थिर थे, जिस प्रकार कि नट्टल साहू का मन। (132)

पुष्पिका

सौमनस-धनपति द्वारा भीमाटवी वन में असुरेश को उपसर्ग करने से रोकने सम्बन्धी आदेश का तथा असुरेश द्वारा आकर विविध उपसर्गों को रोकने और पार्श्व प्रभु के परिषह के सहन करने का वर्णन करने वाला सातवीं संधि-परिच्छेद समाप्त हुआ। (संधि 7) (छ)

गुणभरित एवं मनोज्ञ यह श्रीपार्श्वनाथ चरित श्रीधर बुध ने रचा है और इसका अनुमोदन-अभिनन्दन भव्य नट्टल साहू ने किया है।

आश्रयदाता के लिये आशीर्वाद

हे राजन्, जिस पार्श्वप्रभु की सत्कथा, बृहस्पति भी स्वर्गपति (इन्द्र) के सम्मुख निरन्तर कहता रहता है और जो पृथिवीतल पर प्रतिदिन प्रवचन करता रहता है, पाताल में फणिपति की प्रियतमा भी प्रसन्न होकर जिसके प्रशंसा-गीतों का संकीर्तन करती रहती है, उन्हीं पार्श्वप्रभु के चरित सम्बन्धी ग्रन्थ की रचना मुझ बुध श्रीधर ने **साहू नट्टल** के गुण-गणों से प्रभावित होकर तथा उसी के विशेष अनुरोध से की है।

अट्ठमी संधी

8/1

The special chair kept on two lions (Siṃhāsana) of Dharaṅendra-Deva (the seven hooded God-snake) in the Heaven suddenly starts trembling to know about the great disturbances on Pārśwa in penance.

घत्ता— इम घोरुवसग्ग जिणेसरहो विसहंतहो जिय-दुज्जिय-सरहो।
वियलियइँ सत्त-सरयणि दिणइँ विरइय जणवय आउलमणइँ।। छ।।

वत्थु-छन्द— तो वि दुरियउ तोउ असुरेसु।
जिण उवरि मेल्लइ सघणु मुसल सरिस थिर थोर धारहिँ।
अणवरउ अणिवारियउ णिहिल तिरियायण पाणहारहिँ।।
जह-जह जिण-खंधहो उवरि जलु उल्लोलेहिँ जाइ।
तह-तह कमठासुरहो मणु रहसेँ कहिंमि ण माइ।। छ।।

तहिँ अवसरे धरणिंदहो आसणु चलियउ मणिकिरणहिँ तिमिरासणु।।
जह मणु मणुअहो विसयासत्तहो जह सुरूउ तरुणेयर गत्तहो।।
जह कुकविहे कहबंधु अलक्खणु जह जिणधम्महो मुक्खु विलक्खणु।।
जह वासिउ भोयणउ सुसायहो जह पुण्णक्खए णरवइ रायहो।।
जह परिवडियचरणु वड्ढउ जलु जह पवणाहय कयली कंदलु।।
जह रणे पइ-विहीणु चउविहु बलु जह अगुणिज्जंतउ विज्जाबलु।।

8/1

स्वर्ग में धरणेन्द्र का सिंहासन कम्पित हो उठता है—

घत्ता— इस प्रकार-दुर्जेय-काम को जीतने वाले जिनेश्वर को समस्त जनपद के लिये दिन-रात आकुल-व्याकुल कर देने वाले असह्य उपसर्गों को सहन करते हुए लगातार सात दिन-रात व्यतीत हो गये।

वस्तु छन्द— तो भी वह दुरितात्मा (पापी) असुरेश जिनेन्द्र के ऊपर घन-मुसल के समान मोटी-मोटी स्थिर अखण्ड रूप से अनवरत और अनिवारित तथा तिर्यंच प्राणियों की प्राणहारिणी सघन जल-वर्षा करता रहा। जैसे-जैसे वह वर्षाजल बढ़ते-बढ़ते जिनेन्द्र के कंधों के ऊपर लहराता जा रहा था, वैसे ही वैसे उस कमठासुर के मन में भी हर्ष नहीं समा रहा था। उसी अवसर पर मणि-किरणों से तिमिर को नाश करने वाले धरणेन्द्र का आसन चलायमान हो उठा।। (छ)

धरणेन्द्र का वह आसन किस प्रकार चलायमान हुआ? ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि विषयासक्त मनुष्य का मन चंचल होता है, जिस प्रकार वृद्ध मनुष्य के शरीर का स्वरूप चलायमान हो जाता है, जिस प्रकार कुकवि का लक्षण (व्याकरण छंदादि) विहीन-कथाबंध चलायमन हो जाता है, जिस प्रकार वासा भोजन सुस्वाद से चलायमान हो जाता है, जिस प्रकार पुण्य का क्षय होने पर राजा का राज्य क्षतिगस्त हो जाता है, जिस प्रकार चरणों में पड़ा हुआ जल बढ़ते रहने पर चलायमान हो जाता है अथवा बँधा हुआ जल चरण पड़ते ही चलायमान हो जाता है। जिस प्रकार पवन से आहत कदली-दल चलायमान हो जाता है, जिस प्रकार रण में सेनापति-विहीन चतुर्विध सेना

जह सिणेहु आलावविवज्जिउ जह सुहडग्गाए भीरुहे गज्जिउ।।
जह मइ-पसरु सोयसंगहियहो जह कलत्तु मंदिरु ठिउ पहियहो।।
जह विस्सासु सच्चपरिहीणहो जह चिरमलु खरयर-तव-खीणहो।।
जह ववहारु णज्झिय णयरहो जह तमणियरु तरुणु अहिमयरहो।।
जह रइ रंगु कडु अक्खरवयणहो जह सुच्चत्तु सुसेविय मयणहो।।

घत्ता— जह णिद्दाभरु चिंताउरहो जह कर-पीडिउ जणवउपुरहो।
जह जिणवर जम्मणे सुरवइहो तह आसणु कंपिउ फणिवइहो।। 133।।

8/2

Dharaṇendra Deva arrives soon at the spot of disturbance (Upsarga).

वत्थु-छन्द— तं णिएविणु उरयराएण।
परियाणिउ तक्खणेण पुव्व-जम्मु बइर अवहिमाणेण।
गय जलय सारय सयल विप्फुरंत ससियरसमाणेण।।
जासु पसाएँ अइ दुलहु मइं पावियउ पहुत्तु।
तहो वट्टइ परमेसरहो घोरुवसग्गु बहुत्तु।। छ।।

भी कम्पित हो जाती है, जिस प्रकार अनभ्यासी (नहीं गुनने वाले) का विद्याबल नष्ट हो जाता है, जिस प्रकार प्रियवचन रहित स्नेह चलायमान हो जाता है, जिस प्रकार सुभट के आगे कायर-भीरु की गर्जना भी लड़खड़ा जाती है, जिस प्रकार शोकाकुल व्यक्ति का मति-प्रसार रुक जाता है, जिस प्रकार मंदिर (भवन) में ठहरे हुए पथिक की कलत्र (पत्नी) चलायमान हो जाती है, जिस प्रकार सत्यविहीन के प्रति विश्वास कंपित हो जाता है, जिस प्रकार उग्र तप से क्षीण साधु का चिरकाल से संचित कर्ममल नष्ट हो जाता है, जिस प्रकार नगर छोड़ने वाले पुरुष का व्यवहार (लेन-देन) चलायमान हो जाता है, जिस प्रकार तरुण सूर्य के सम्मुख तमोनिकर चलायमान हो जाता है, जिस प्रकार कटु अक्षर बोलने से रति का रंग चलायमान हो जाता है, और जिस प्रकार काम-सेवी की शुचिता चलायमान हो जाती है–

घत्ता— जिस प्रकार चिन्तातुर की निद्रा का वेग चलायमान हो जाता है, जिस प्रकार कर-पीडित होकर जनपद के नगरों में घूमने वाले का मन चलायमान हो जाता है, तथा जिस प्रकार जिनवर के जन्म के समय सुरपति का आसन चलायमान हुआ था, ठीक उसी प्रकार फणिपति धरणेन्द्र का आसन भी कम्पायमान हो उठा। ।। 133।।

8/2

धरणेन्द्र शीघ्र ही उपसर्ग-स्थल पर पहुँचता है—

वस्तु-छन्द— आसन को कम्पित होते देखकर उरगराज (धरणेन्द्र देव) ने भी अपने उत्कृष्ट अवधिज्ञान से तत्क्षण ही पूर्व जन्म का समस्त बैर-संबंध जान लिया। शरत्कालीन मेघ रहित चमकते हुए पूर्णचन्द्र के समान वह धरणेन्द्र बोला— जिसके प्रसाद से मैंने अति दुर्लभ प्रभुत्व वाला यह पद पाया है, उसी परमेश्वर के ऊपर आज अनेक प्रकार के घोर उपसर्ग हो रहे हैं। (छ)

पोमावइ परिवरियउ जावहिँ फणिवइ चलिउ खुहिय महि तावहिँ।।
टलटलियइँ धरणीरुह सिहरइँ मेइणीए लइयइ महविहरइँ।।
कडयडंत पडिवडिय महीरुह गय जल सरय पणय सरसीरुह।।
अवरोप्परु तरुवर संघट्टइँ भय-भरियइँ हरिण-गण पणट्ठइँ।।
10 दिण्ण झंप गिरिसिहरहो सीहहिँ मुक्क विसाणलु दुट्ठु दुजीहहिँ।।
खडहडियइँ देउल धवलहरइँ झलझलियइँ तोरिणि मयरहरइँ।।
वणकरिवरहिँ विमुक्कइँ दाणइँ रुलुघुलियइँ सूवरसंताणइँ।।
किलिकिलियइँ साहामयणियरइँ थरहरियइँ पट्टण-पुर-णयरइँ।।
सवणोवरि विणिवेसिय णियकर समणे चमक्किय खयरासुरणर।।
15 इय खोहंतु खोणि पायालहो णाय-कण्ण वरगीयरवालहो।।

घत्ता— संपत्तउ दुरसणराउ तहिँ विसहंतुवसवग्गु जिणिंदु जहिँ।
फणमणियर उज्जोविय धरणि जंपंतउ पोमावइ रमणि।। 134।।

8/3

Dharaṇendra Deva erects a shelter with his seven hoods to protect Pārśwa from the Demon's disturbances.

वत्थु-छन्द— अज्जु जायउ सहलु महु जम्मु।
संपत्तु जं एत्थु हउं सिरिणिवास जिण-पासणाहहो
उवसग्गणिरसणकएण मयण राय सारंगवाहहो।।

पद्मावती सहित वह फणिपति (धरणेन्द्र) जब चला तब पृथ्वी काँप उठी। पर्वतों के शिखर टलटलाने लगे। मेदिनी (भूमि) ने महाविहार किया अर्थात् पृथिवी चंचल हो उठी। वृक्ष कड़कड़ करते हुए गिरने लगे। सरोवरों का जल सूख गया और शरद्कालीन कमल झुक गये। विशाल वृक्ष परस्पर में टकराने लगे। भयाक्रान्त होने के कारण हरिणगण नष्ट (अदृश्य) हो गये। सिंह गिरि-शिखरों से कूदने लगे (झाँप देने लगे) दुष्ट द्विजिह्व—सर्प विष-अग्नि छोड़ने लगे। देवालयों के धवल-गृह हड़हड़ाने लगे। नदी, तालाब झलझलाने लगे (लहरें लेने लगे)। वन के करिवरों ने मदजल छोड़ दिया, शूकर-समूह इधर-उधर भटकने लगे। शाखा मृग-समूह (बानर गण) किलकिलाने लगे (अशांत हो उठे) पट्टण, पुर एवं नगर थरथराने लगे। कानों के ऊपर अपने-अपने हाथ रखकर खचर, असुर एवं नर अपने मन में चौंक उठे। नाग-कन्याओं के उत्तम गीतों ने पाताल और पृथ्वी-मण्डल को भी क्षुब्ध कर दिया।

घत्ता— वह द्विरसनराज (नागेन्द्र) उस स्थल पर पहुँचा, जहाँ जिनेन्द्र उपसर्ग सह रहे थे। वहाँ वह अपनी फणावलि की मणि-किरणों से पृथ्वी को प्रकाशयुक्त करता हुआ अपनी रमणी (पत्नी) पद्मावती से बोला—।। 134।।

8/3

धरणेन्द्र ने पार्श्व-प्रभु के ऊपर अपने सात फणों का मण्डप तान दिया—

वस्तु-छन्द— हे देवि, आज मेरा जन्म सफल हुआ, जो मैं वहाँ पहुँच सका, जहाँ कि श्री के निवास (स्वरूप) जिनेन्द्र पार्श्वनाथ उपस्थित हैं। मदनराज रूपी मृग के लिये सिंह के समान उन परमेश्वर (पार्श्व) के उपसर्ग को दूर करने वाला मैं उनके निर्मल चरण-कमल युगल को प्रणाम करता हूँ। तत्पश्चात् उसने पार्श्व

पणवेवि पयपंकय जुवलु परिसंठियमलेहिँ
पुणु णिम्मिउ कोमलु विमलु विउलासणु कमलेहिँ।। छ।।

तहिँ णिरुवमि जिणणाहु णिवेसिवि
महुरक्खर वयणिहिँ थुइ भासिवि।।
उच्छंगुप्परि चलण चडाविवि
वइरि मणोरह सिरि विहडाविवि।।
विप्फुरंत मणि किरण समिल्लउ
सलबलंत बहु रसणालिल्लउ।।
सत्तफणा मंडपु पविरइयउ
विमलभालपट्टुप्परि धरियउ।।
रक्खंतउ तणु जिणहो फणीसुरु
सुमरइ पोमावइ-रमणीसरु।।
वम्माएवि सुह-गब्भसंभूए
तियरणेण परिरक्खियभूए।।
अहिकुले उप्पण्णहो कंपंतहो
कण्णजाउ जं दिण्णु मरंतहो।।
मज्झु विणासिय असुरेँ आसिहो
गलकंदलि णिवडिय जमपासिहो।।
तेण पइउ फणिहुँ रमालउ
णवसिरीससेलिंधसुमालउ।।
तहो उवयारहो जो रिणु जायउ
महिअम्ले संव्वयणहँ विक्खायउ।।
तेणाकरिसिउ एत्थु परायउ
अज्जु णिवारमि वइरि वरायउ।।
दरिसमि भत्ति तिलोय-दिणिंदहो
हयसेणंगय पास जिणिंदहो।।

घत्ता— जं-जं आयासहो जलु पडइ फणमंडबे लग्गेवि उप्पडइ।
तं जाइ णिरत्थउ जिणहो कह संढहो तरुणियणकडक्खहो जह।। 135।।

प्रभु के लिये विपुल दलों से विराजित कमलों के द्वारा एक कोमल, विमल और विशाल आसन का निर्माण कर दिया। (छ)

उस निरुपम आसन पर जिन-नाथ को विराजमान कर मधुर अक्षरवाली स्तुति के वचनों को पढ़कर, उनके चरणों को अपनी गोदी पर चढ़ाया तथा इस प्रकार बैरी की मनोरथश्री को विघटित कर दिया। पुनः उसने विस्फुरित मणि की किरणों से झिलमिलाता हुआ, सल-बल करती हुई अनेक जीभों की लीला वाले सातफणों का एक मण्डप बनाया, फिर उसे अपने विमल भाल के ऊपर धारण किया। इस प्रकार पद्मावती का वह पति फणीश्वर जिनेन्द्र के शरीर की रक्षा करता हुआ उन (पार्श्व) का इस प्रकार स्मरण करने लगा–

ये वामा देवी के गर्भ से सम्भूत हैं। त्रिकरण (मन, वचन, काय) से सभी भूतों (प्राणियों) की रक्षा करने वाले हैं (अर्थात् रत्नत्रय से समस्त जीवों का उपकार करने वाले हैं) हम दोनों ही सर्प-कुल में उत्पन्न हुए थे। इन्हीं ने तड़प-तड़प कर मरते समय हमारे कान में जाप-मंत्र दिया था।

मुझे मारने वाला भी यही असुर हुआ है। इसी ने पूर्वजन्म में मेरे गले पर यम की पाश रूपी कुल्हाड़ी चलाई थी। इसके मारने से, लक्ष्मी के स्थान स्वरूप नवीन ताजे शिरीष-पुष्प की शोभा वाला मैं फणीन्द्र हुआ हूँ। अतः इन (पार्श्व) के उपकार का जो ऋण हमारे ऊपर है, वह (ऋण) महीतल में सर्वत्र विख्यात है। उसी ऋण से खिंचा हुआ मैं यहाँ आ पहुँचा हूँ। आज मैं उस बेचारे बैरी के बड़प्पन को धुन देता हूँ। हयसेन के अंगज पार्श्व-जिनेन्द्र, जो कि त्रिलोक के लिये सूर्य के समान हैं, मैं उनके प्रति अपनी भक्ति की महिमा को दिखला देता हूँ।

घत्ता— उस समय आकाश से जैसे-जैसे जल वर्षा होती थी, वह जल फणमण्डल में लगकर उचट जाता था। वह (जल) जिनेन्द्र के ऊपर उसी प्रकार निरर्थक हो जाता था, जिस प्रकार किसी नपुंसक के सम्मुख तरुणी-जनों के कटाक्ष निरर्थक हो जाते हैं।। 135।।

8/4

The Demon angrily strikes heavily on his rival Dharaṇendra with the devine missile (Vajra-Prahāra).

वत्थु-छन्द— एत्थु अवसरि असुरराओ वि।
दिप्पंतु फणिमणिगणेण णायराउ पेक्खेवि कुद्धउ।
विहुणंतु करयलु जुयलु हरि व हरिणदंसणे विरुद्धउ।।
जंपंतउ खरयर-वयणु भो-भो दुरसण णाह।
मइँ सहुँ जुत्तु ण कलहु तुह णाइणिविंद सणाह।। छ।।

महारिउ दुट्ठु चिराणउ सुट्ठु।।
मा रक्खहि बेरि इमं अवहेरि।।
समंदिरि जाहि फणीसे म थाहि।।
ण जंपिउ मज्झु कुणेहि दुसज्झु।।
जईह दुजीह सुदीह दुरीह।।
णिवायमि तासु जगत्तय तासु।।
महापविदंडु जलंतउ चंडु।।
तुहारए सीसे फणामणिभीसे।।
किमेत्थु मइल्लु बहुत्तु छइल्लु।।
पयंपइ कोवि समत्थु सुरोवि।।
णिवारिवि मज्झु ण सक्कइ तुज्झु।।

8/4

कमठासुर द्वारा धरणेन्द्र पर ही बज्र-प्रहार कर दिया गया—

वस्तु-छंद— इसी अवसर पर वह असुरराज-कमठ भी फणामंडल पर स्थित मणि-समूह के कारण चमकने वाले नाग-राज को देखकर उसी प्रकार अत्यन्त क्रुद्ध हो उठा, जिस प्रकार हरिण को देखते ही हरि (सिंह) क्रुद्ध हो उठता है। करतल-युगल को पीटता हुआ वह असुरराज चीखते-चिल्लाते हुए कर्कश वचनों से बोला— हे द्विरसन नाथ, नागिनी वृन्द सहित होते हुए तुम्हें मेरे साथ इस प्रकार कलह करना उचित नहीं। ।। छ।।

(वह पुनः बोला) यह (सभी का) महान् शत्रु है, चिर काल का एकदम अनयी (अन्यायी) है, इस बैरी की रक्षा मत करो। इसकी अवगणना करो। हे फणीश, अपने भवन में लौट जाओ। यहां मत रुको। मुझसे रुकने को मत बोलो। तुम ऐसा दुस्साहस भी मत करो। हे द्विजिह्व, यदि यह चेष्टा दीर्घकालीन है, तो वह बड़ी ही दुरीहा (दुष्ट) रूप है, अतः जगतत्रय को त्रस्त करने वाले उस बैरी का मैं निपात करूँगा ही।

जलता हुआ यह प्रचण्ड महा बज्रदण्ड है, जो फण-मणि से भी भयंकर है। अतः इसें मैं तुम्हारे ही शिर पर पटक देता हूँ, इसमें मेरा बिगड़ता ही क्या है? (इसके अतिरिक्त भी) मेरे पास अनेक छल-छद्म हैं। यदि किसी देव में सामर्थ्य है, तो आकर मुझसे बोले और रोककर देख तो ले। तेरी तो कोई शक्ति ही नहीं है। पहले गिरीन्द्र के समान

वियारि विमाणु गिरिंद समाणु।।
पहिल्लउ णाय सुगोविय पाय।।
पुणो कय खेरि हणेसमि बेरि।।
भणेविणु एउ फणीसरु देउ।।
विमुक्कउ बज्जु बलंतउ सज्जु।।
जिणिंदहो जाम णिवारिउ ताम।।
भुअंगवरेण तओ असुरेण।।
विमुक्कु किवाणु सचक्क सवाणु।।
णं तेवि पढुक्क भएण विलुक्क।।

घत्ता— एत्थंतरे लहु कमठासुरेण सिरचूडामणियर भासुरेण।
फणि-फण मंडवचूरण कएण मेल्लिय णाणा गिरिवर रएण।। 136।।

8/5

The furious Demon creats more disturbances repeatedly on Dharaṇendra.

वस्तु-छन्द— तो वि ण चलइ धीरु धरणिंदु।
णिय ठाणु मेल्लिवि गिरिवासाणुराउ-वसेण वि सुअणु व।
रक्खंतु तणु जिणवरहो तेयवंतु गरलेण तवणु व।।
तहिँ अवसरि पोमावईए धरिउ सिरोवरि छत्तु।
णं जिणपासहो जयसिरिए दरिसिउ वियसिय वत्तु।। छ।।

मेरा (विशाल) विमान देखो। मैं भी पैर छिपाने वाला पहले जैसा नहीं रहा। अतः क्रोध पूर्वक बैरी को तो में मारूँगा ही।

यह कह कर उस असुर ने फणीश्वर देव पर जलता हुआ बज्रदण्ड तत्काल तैयार कर छोड़ा। जिनेन्द्र पर भी जब उसे दे मारा जब धरणेन्द्र ने उसका निवारण किया। तत्पश्चात् असुर ने कृपाण चलाया और भी चक्र सहित तथा बाण सहित अनेक शस्त्र भी चलाये। किन्तु वे भी नहीं ढुके। भय से मानों सभी छिप गये (निरर्थक हो गये)।

घत्ता— इसी बीच कमठासुर ने शिर की चूडामणि की किरणों से भास्वर फणी के फण-मण्डप को चूर्ण करने के लिये तत्काल ही अनेक प्रकार के पर्वतों को उखाड़-उखाड़ कर फेंके।। 136।।

8/5

क्रोधावेश में वह कमठ धरणेन्द्र पर भी अधिकाधिक उपसर्ग करने लगता है—

वस्तु-छन्द— तो भी वह धीर-धरणेन्द्र चलायमान नहीं हुआ। जिस प्रकार पर्वत के निवास का अनुरागी अपने स्थान से नहीं हटता, जिस प्रकार सज्जन व्यक्ति व्यसन (कष्ट) आने पर भी अपने स्थान से नहीं हटता, ठीक उसी प्रकार वह धरणेन्द्र भी अपने स्थान से न हटा और उसने अपने विष की तपन से उन तेजस्वी पार्श्व के शरीर की सुरक्षा की। उसी अवसर पर पद्मावती ने भी अपने सिर के ऊपर एक छत्र धारण किया, मानों पार्श्व जिनेन्द्र की विजयलक्ष्मी ने ही अपना विकसित मुख दिखलाया हो। (छ)

जह-जह जिणवरु णिम्मलमइणा परियरियउ पोमावइ पइणा।।
तह-तह दुद्दंसणु कमठासुरु करइ महाउवसग्गु सुभासुरु।।
विउणु तिउणु चउगुणु पंचगुण्णउ छग्गुणु सत्तउणउ अट्ठउणउ।।
हेलए धूलि-वालि-जल-जलणहिँ लहु मेल्लियहि वइरि णिद्दलणहिँ।।
10 गिरि णिवडंत णिहालिवि भावण वेंतर लेंति तासु असुहावण।।
समणे चमक्कहि गह-तारायण बेबहि वेलंधर रुइ-भायण।।
जइवि सयल तासइ कमठासुरु सुरणरवर मेल्लंतु महासरु।।
तो वि ण चलइ चित्तु फणिरायहो अहणिसु आराहिय जिणरायहो।।
विप्फुरंत फण-भीसण-कायहो अगणिय कुलिसाणल जलवायहो।।
15 फण-मंडववारिय रिउघायहो णाणा णाइणिविंद सहायहो।।

घत्ता— जं-जं मेल्लइ पहरणु तुरिउ असुरेसु गयणि अमरिस-भरिउ।
तं-तं विलयहो लहु जाइ कह णिद्धणहो मणोरह हियए जह।। 137।।

8/6

In such disturbing conditions also Pārśwa attains the ultimate knowledge (Kewalajñāna).

वत्थु-छन्द— एम दूसहु घोरु उवसग्गु।
गय पास पासहो जिणहो णिम्मलेक्कचित्तहो सहंतहो।

जैसे-जैसे निर्मलमति के पति (धरणेन्द्र) ने जिनवर का रक्षण किया, वैसे ही वैसे दुर्दर्शन (देखने में भयंकर) वह भास्वर कमठासुर भी एक के बाद एक महा उपसर्ग करने लगा। उसने अपने शत्रु का दलन करने हेतु तत्काल ही द्विगुणी, त्रिगुणी, चतुर्गुणी, पंचगुणी, छहगुणी, सातगुणी, अठगुणी और नवगुणी लीलाओं से धूलि-का बबण्डर, जल और अग्नि को छोड़कर महा उपसर्ग किये। पर्वत को गिरते हुए देखकर भवनवासी एवं व्यंतर देवों ने कमठासुर के उस कार्य को असुहावना कहकर निन्दा की। ग्रह-तारागण अपने मन में आश्चर्यचकित हो उठे। कान्ति के भाजन वेलंधर कुमार भी काँपने लगे।

यद्यपि यह कमठासुर सभी को त्रास दे रहा था, सुर एवं नरवर सभी महास्वर (हाहाकार) कर रहे थे, तो भी अहर्निश जिनराज की आराधना करने वाले उस फणिराज का चित्त थोड़ा भी चलायमान न हुआ। जिस फणिराज की काया भीषण फणों से चमक रही थी, तथा उस कमठासुर के अगणित बज्र, अग्नि, जल तथा पवन के (असह्य) घात सह रहे थे, नाना नागनियों की सहायता से वह अपने फणमंडल से उस रिपु के दुर्दम घातों (चोटों) का निवारण कर रहा था।

घत्ता— क्रोधावेश में आकर वह असुरेश-कमठ वेग पूर्वक जैसे-जैसे आकाश से शस्त्र छोड़ रहा था, वे सभी तत्काल ही उसी प्रकार विलीन होते जा रहे थे, जिस प्रकार कि निर्धन पुरुष के हृदय स्थित मनोरथ देखते-देखते विगलित हो जाते हैं।। 137।।

8/6

विभिन्न उपसर्गों के मध्य भी पार्श्व को केवलज्ञान उत्पन्न हो जाता है—

वस्तु-छन्द— इस प्रकार पार्श्व प्रभु उन असह्य उपसर्गों को निर्मल एकाग्रचित्त पूर्वक सहते रहे। उसी समय क्षुब्ध हुए वे सभी देवगण उनके पास पहुँचे। उस समय वे (प्रभु) बारहवें गुणस्थान में स्थित रहकर स्थिरमन

वारहमि गुणठाणे ठिएउ सुक्कज्झाणु थिरमण धरंतहो।।
घायंतहो अइ घणघोरघण घाइ-चउक्क करिंदु।
उप्पण्णउं केवलु विमलु खोहिय सयल सुरिंदु।। छ।।

तक्खणे झत्ति चइत्ति पवित्तए कसण चउत्थिहि फग्गुण चित्तए।।
छुडु केवलसिरि परिरंभिउ जिणु ता णियमणे चिंतइ आउलमणु।।
कमठासुरु परिगलिय महाबलु विरइय विविह विरूव महाछलु।।
जो जय गुरु गुणमणि सायरु णिरुवम सासय सिवसुहसायरु।।
जं पेक्खेविणु तरुणु दिवायरु अमिय सलिलु परिसवइ सिसिरयरु।।
जेण णिहउ मणसिउ सुरडामरु संताविय फणि-णर-खयरामरु।।
जासु भएण कयंतु वि कंपइ पोमावइ विणएण पयंपइ।।
वरुणु ण बोलइ वरिसंतउ जले फणिवइ कमलासणु विरयइ तले।।
जसु जम्मणे जणवय मणु हरिसइ धणवइ धणु घणधारहि वरिसइ।।
जसु भीसणु खय सुहडु ण हक्कइ वाउ सुअंधु वहंतु ण थक्कइ।।
को वि ण तिहुअणे तुडि जसु पावइ तेलोक्कु वि दासत्तणु दावइ।।
णरवर णियरु णवंतउ आवइ तासु केम उवसग्गु समावइ।।
जो केवलि तित्थयर णिराउहु णिप्परिग्गहु णिज्जिय कुसुमाउहु।।

से शुक्लध्यान को धारण किये हुए थे और उससे वे जब चार घातिया-कर्म रूपी अति घनघोर भीषण गजेन्द्रों का घात कर रहे थे, उसी समय उन्हें निर्मल केवलज्ञान उत्पन्न हो गया। (छ)

वह चैत्र मास की कृष्ण पक्ष की पवित्र चतुर्थ तिथि तथा फाल्गुनी नक्षत्र था, जब पार्श्व ने तत्काल ही अपनी कैवल्यश्री को प्रकट किया। तभी वह कमठासुर, जिसने कि विविध प्रकार के महाछल-कपट किये थे, अपने मन में अत्यन्त व्याकुल हो उठा। उसका महाबल गलित हो गया।

वह अपने मन में सोचने लगा और कहने लगा कि-जो जगत के श्रेष्ठ गुरु हैं, जो उत्तम गुण रूपी रत्नों के सागर हैं, जो निरुपम हैं, जो शाश्वत शिवसुख के सागर हैं, जिनको देखकर तरुण दिवाकर और चन्द्र अमृत-जल को छोड़ते रहते हैं, जिन्होंने फणी, मनुष्य, खचर और अमरों को सन्तप्त कर देने वाले सुरत-देवता (कामदेव) के मद को चकनाचूर कर दिया है, जिनके भय से यमराज भी काँपता रहता है। पद्मपति-विष्णु भी विनयपूर्वक बोलते हैं। जल बरसाते हुए वरुणदेव भी जिन्हें जल में डुबाते नहीं।

फणिपति ने नीचे तल में कमलासन की रचना कर दी है, जिनके जन्म के समय समस्त जनपदों का मन हर्षित हो गया था। धनपति कुबेर ने धन की (अखण्ड) धारा बरसाई थी, जिसके यश का भीषण सुभट भी क्षय नहीं कर सकता, जिनकी सुगन्ध को ढोती हुई वायु भी कभी नहीं थकती, त्रिभुवन में ऐसा कोई भी नहीं, जो जिनेन्द्र की किसी भी प्रकार की त्रुटि को पा सके। त्रैलोक्य में जिसकी दासता को सभी स्वीकार करते हैं। नरवरों के समूह जिनको आकर नमस्कार करते रहते हैं, उसे ये उपसर्ग आपत्ति का अनुभव कैसे करा सकते हैं? जो केवली हैं, अकेले हैं, तीर्थंकर (महापुरुष) हैं, निरायुध (शस्त्रहीन) हैं, निष्परिग्रही (परिग्रह मोह-मूर्च्छा रहित) है और काम को जीतने वाले हैं—

घत्ता— सो फुडु अवयरिउ परमपरु विणिवारिय जम्मण-मरण-डरु।
जो आएसइ लहु सिवणयरे चउगइ-परिगय-महदुह-खयरे।। 138।।

8/7

Surendra (the Head of the Celestial souls) arrives from Heaven near Pārśwa and furiously hits the Demon (Kamaṭha) with his Bajradanḍa (Divine Weapon).

वत्थु-छन्द— एत्थु अवसरे चलिउ हरिवीढु।
भावणहँ विंतरहँ तहँ जोइसाहँ तियसाहँ रायहँ।
दह-अट्ठ-पण सोलसहिँ भेयगयहँ सुरवण्ण कायहँ।।
मेल्लिवि सिंहासणु तुरियउ सत्त-पयइँ जाएवि।
णविउ सुरिंदहि पासु जिणु कर अंजलि विरएवि।। छ।।

भत्ति जुत्तओ पुणो महागुणो।।
आरुहेवि भासुरं करीसरं।।
धीरिमाए मंदरो पुरंदरो।।
अच्छरावली जुओ महाभुओ।।
दुंदुही रवालओ विसालओ।।
विप्फुरंत सेहरो मणोहरो।।
मेल्लमाणुवोमयं सुसोमयं।।
पेक्खमाणु तारयं सुतारयं।।
देवविंदराइओ पराइओ।।
तेत्थु धम्मवंतओ तुरंतओ।।

घत्ता— वह स्पष्ट ही परम्परा से अवतरे हैं, जन्म-मरण के डर को मिटाने वाले हैं, जो शीघ्र ही शिवनगर में जाएँगे और चतुर्गति में प्राप्त होने वाले महादुःखों का क्षय करेंगे। ।। 138।।

8/7

सुरेन्द्र पार्श्व प्रभु के समीप आता है तथा क्रोधित होकर वह कमठ पर बज्रदण्ड से प्रहार करता है—

वस्तु-छन्द— उसी अवसर पर इन्द्र का आसन कम्पित हो उठा। 10 प्रकार के भवनवासी, 8 प्रकार के व्यन्तर, 5 प्रकार के ज्योतिषी एवं 16 प्रकार के सुंदर शरीरधारी देवों के आसन कम्पायमान हो उठे। सुरेन्द्र ने तुरंत ही अपना सिंहासन छोड़कर तथा 7 पद आगे बढ़कर पार्श्व प्रभु को अंजुलिबद्ध प्रणाम किया।। छ।।

पुनः भक्तियुक्त होकर महागुणी भास्वर (शुभ्रवर्णवाले) ऐरावत करीश्वर पर आरूढ़ होकर, मन्दर (सुमेरु) के समान धीर तथा महान भुजाओं वाला तथा अपनी अप्सराओं के साथ विशाल तथा दुन्दुभि की मनमोहक ध्वनियों के साथ, स्फुरायमान मनोहर खेचरों वाला वह सुरेन्द्र सुसौम्य नभस्तल को छोड़ता हुआ, सुंदर-सुंदर ताराओं तथा ग्रह-नक्षत्रों को देखता हुआ, देववृन्द से आवृत्त एवं सुशोभित वह धर्मात्मा (सुरेन्द्र) तुरंत ही वहाँ आ पहुँचा जहाँ

जेत्थु वम्मणंदणो सुणंदणो।।
एत्थु अंतरे जलं सुविच्छलं।।
दिट्ठ बज्जपाणिणा सुवाणिणा।।
णाणिणा सुजाणियं णियाणियं।।
20 भासुरासुरारिणा सुहारिणा।।
पावबुद्धिणाकयं पउमयं।।
एरिसोवसग्गयं महोग्गयं।।
अज्जु तासु वेरिणो सुर वेरिणो।।
पाडमीह सीसए सुभीसए।।
25 बज्जदंडु दारुणं महारुणं।।

घत्ता— पवियप्पेवि एम सुरेसरिणा परिभमेवि णविय जिणेसरिणा।
छुडु बज्जदंडु मुक्कउ खयरु संतुट्ठउ ता मणि फणियरु।। 139।।

8/8

Construction of big preaching-campus (Samavaśaraṇa) its ornamental discription.

वत्थु-छन्द— तं णिएविणु बज्जु आवंतउ।
थरहरिउ असुराहिवइ गयणे लग्गु भज्जणहो भीयउ।
पइसंतु मयरहरे दहे धरणि रंधि लेविणु सजीयउ।।
जलु थलु णहयलु परिभमेवि मण्णेवि तिहुअण इट्ठु।
5 णावंतउ णियसिरकमलु पासहो सरणु पइट्ठु।। छ।।

वामादेवी का सुंदर नन्दन विराजमान था।

इसी बीच में उस मधुरभाषी ब्रजपाणि सुरेन्द्र ने सुविस्तृत जल देखा, तब उस ज्ञानी (सुरेन्द्र) ने अपने अवधिज्ञान से जान लिया कि यह महान उग्र जलोपसर्ग भी उसी पापबुद्धि सुखापहारी शत्रु भासुर कमठासुर द्वारा किया गया है। अब मैं इसी समय उस देव-शत्रु उस कमठासुर के शीर्ष पर अपना अत्यंत दारुण बज्रदण्ड का भीषण प्रहार करता हूँ।

घत्ता— इस प्रकार अपने मन में विकल्प कर उस सुरेद्र ने घूमकर सर्वप्रथम पार्श्व जिनेश्वर को नमस्कार किया। बाद में छूटते ही उस खेचर सुरेन्द्र ने अपना बज्रदण्ड उसे (कमठासुर को) मारा, जिससे वह धरणेन्द्र भी मन में अत्यन्त संतुष्ट हुआ।। 139।।

8/8

समवशरण की संरचना : आलंकारिक वर्णन—

वस्तु-छंद— तब अपनी ओर आते हुए (भीषण) बज्रदण्ड को देखकर वह असुराधिपति-कमठ थर-थर काँपने लगा और भयभीत होकर आकाश में जाकर छिप गया। वहाँ से भागकर वह समुद्र में (द्रह में) जा घुसा। वहाँ से भागकर पृथ्वीरंध्र में जा घुसा। इस प्रकार वह अपने प्राण लेकर जल, स्थल और आकाश में सभी जगह घूमा, लेकिन कहीं भी उसे शरण नहीं मिली। अतः वह "त्रिभुवन में इष्ट शरण पार्श्वप्रभु ही है," ऐसा मानकर वहीं आया और अपने शिर–कमल को झुकाकर वह पार्श्वप्रभु की शरण में आ घुसा। (छ)

तक्खणे कमठासुरु भय मुक्कउ वज्जु विवित्तसत्तु-करि ढुक्कउ।।
तिपयाहिण विहाणु विरएविणु पाणिपोम भालयले ठवेविणु।।
पणविउ पासणाहु परमेसरु सयमहेण सहुँ सुरहिँ जिणेसरु।।
समवसरणु किउ अमरवराणए धणदेवी कंतएण समाणए।।
10 वलय सरिस धूली पायारँ सलिल भरिय खाइय वित्थारँ।।
णंदण वण सरवरहिँ विसालहिँ तीर परिट्ठिय पवर मरालहिँ।।
मणिमय माणथंम वर वल्लिहिँ कुसुम-रेणु-रंजियहिँ णवल्लिहिँ।।
रयण जडिय बेइयहिँ विचित्तहिँ स सिरिहरिय तिहुअण जण-चित्तहिँ।।
बज्ज-सुवण्ण-फलिहमय सालहिँ विंतर-असुर-कप्प सुरबालहिँ।।
15 गोउर-णट्टसाल-धूवहडहिँ अट्ठोत्तर-सय-मंगलणिवडहिँ।।

घत्ता— दुगुणिय-पण पवर महाधयहिँ वसहाइ समंकिय मरुहयहिँ।
एक्केक्कउ-अट्ठोत्तर-सएण परियरियउ मणहर धयवएण।। 140।।

8/9

Construction of the preaching campus (samavaśaraṇa) having twelve sections.

वत्थु-छन्द— रयण-घडियहि जायरुक्खेहिँ।
तह तिविह वरवावियहिँ पंच वण्ण रयणहिँ समूहहिँ।
सुविचित्त सहमंडवहिँ मंदरेहिँ पसरियमऊहहिँ।।

कमठासुर तत्क्षण ही भयमुक्त हो गया। वह वज्रदण्ड भी शत्रु को बलहीन बनाकर इन्द्र के हाथ में वापिस लौट गया। विधानपूर्वक तीन प्रदक्षिणा देकर, हस्त-कमल को भाल तक पर स्थापित कर इन्द्र के साथ सभी देवों ने जिनेश्वर पार्श्वनाथ को परमेश्वर कहकर प्रणाम किया। इन्द्र की आज्ञा से धनदेवी (या वणदेवी) के पति कुबेर ने समवसरण की रचना की। उस कुबेर ने वलयसदृश गोलाकार धूली-कोट बनाया, जल से भरी चौड़ी खाई बनाई, नंदनवन और विशाल सरोवर बनाये। सरोवरों के तीर पर स्थित उत्तम हंस बनाये। पुनः उसने मणिमय मानस्तम्भ बनाया, तत्पश्चात् उत्तम पुष्पों और रेणु-रज से रंगी हुई नवीन-नवीन लताओं से विभूषित, रत्न जटित विचित्र वेदिकाएँ बनाई, जो अपनी शोभा से त्रिभुवन के जनों के चित्त का हरण कर रही थीं। पुनः उसने स्फटिक एवं सुवर्ण के कोट बनाए, जिनकी रक्षा व्यंतरवासी, भवनवासी और कल्पवासी सुंदर-सुंदर देव कर रहे थे और जहां गोपुर, नाट्यशाला, धूपघट और 108 मंगल-द्रव्य-कलश सुशोभित हो रहे थे।

घत्ता— पाँच के दूने अर्थात 10 उन्नत-उन्नत महाध्वजाएँ, जो कि वृषभादि 10 चिन्हों से अंकित थीं, वे वायु में लहरा रही थीं। मनोहर 108 ध्वजाओं से उस समवशरण को घेर दिया गया। ।। 140।।

8/9

द्वादश प्रकोष्ठों वाले समवशरण की रचना—

वस्तु छंद— वह समवशरण रत्नजटित घट, सुवर्ण-वृक्ष, तीन प्रकार की बड़ी-बड़ी वापियाँ, पंचवर्ण के रत्न-समूहों से सुविचित्र सभा-मंडप, फैलती हुई किरणों वाले मन्दर-पर्वत, लता-मंडप, क्रीड़ा-पर्वत, उत्तम

लय-मंडव कीला-कुहर वरधारा-जंतेहिँ।
5 कप्प-महीरुह तोरणहिँ छण-ससियर-कंतेहि।। छ।।

फलिह-सिलायल-बारह-कोट्ठहिँ वरगंधउडि-ठाणसिरिमंठहिँ।।
तहिँ दाढाकरालु सिंहासणु रयण किरण ककुहाणण भासणु।।
तासुप्परि णिविट्ठ परमारुहु तिहुअणवइ विरइय पूजारुहु।।
अमराहय-दुंदुहि-महडामरु पवरामर-कर-चालिय-चामरु।।
10 छत्तत्तय-लच्छी-परियरियउ णवकंकेल्लि कुरुह विप्फुरियउ।।
भामंडल-जुइ उज्जोइय णहु कुसुमवरिस कव्वुरिय पवणपहु।।
महुरक्खर-मागह-भासिल्लउ सत्त-तच्च-पवियार रसिल्लउ।।
वरचउतीसातिसयगुणालउ पंच-मुट्ठि उप्पाडियबालउ।।
पायवीढठिय धम्मरहंगउ णिज्जिय भवभडु-णिरंगउ।।
15 दूरुज्झिय कसायमयहासउ पासणाहु पासिय जमपासउ।।

घत्ता— तेवीसमु जिणवरु जणणहरु णिम्मल केवलगुणरयणहरु।
एत्थंतरे सयमहु सइँ थुणइँ जिणगुणरयणइँ तह जह मुणइँ।। 141।।

(जल-) धारायंत्र, कल्पवृक्ष तथा पूर्ण चन्द्र के समान कान्ति वाले तोरणों से सुशोभित था।। छ।।

उस कुबेर ने उसमें स्फटिक-शिला-तल वाले बारह कोठे बनाये। श्रेष्ठ सुंदर गंधकुटी नामक एक स्थान बनाया, वहाँ दाढों से कराल लगने वाले सिंह सहित एक पीठासन बनाया, जो अपने रत्नों की किरणों से दिशाओं के मुख को भास्वर कर रहा था। उस सिंहासन पर पूजा योग्य परम अरिहन्त त्रिभुवनपति भगवान पार्श्व प्रभु विराजे। उस समय देवतागण महाशब्दवाले दुन्दुभि-वाद्य बजा रहे थे। इन्द्रगण अपने हाथों से चमर ढुरा रहे थे। वे प्रभु छत्रत्रय की शोभा से युक्त थे। नवीन अशोक वृक्ष स्फुरायमान हो रहे थे। भामण्डल की कांति से आकाश उद्योतित हो रहा था। पुष्पवृष्टि से पवन-पथ (आकाश) चित्रलिखित जैसा हो रहा था। मधुर अक्षर वाली सरस **मागधी भाषा** में प्रभु पार्श्व की सात-तत्वों पर दिव्यध्वनि खिर रही थी। (आगम-शास्त्र में इन्हें ही अष्ट-प्रातिहार्य कहा गया है)।

वे पार्श्व प्रभु उत्तम चौतीस अतिशयों के गुणालय थे। उन्होंने पंचमुष्टि से बालों का लोंच किया। उनके चरणपीठ में धर्मचक्र स्थित था। उन्होंने संसार का भट माने जाने वाले शरीर रहित कामदेव को जीत लिया था। कषाय-मद जनित हास्य का उन्होंने दूर से ही त्यागकर दिया। इस प्रकार उन पार्श्व प्रभु ने यम की पाश को सदा-सदा के लिये तोड़ डाला।

घत्ता— इस प्रकार भव-दुखों को नष्ट करने वाले वे तेवीसवें जिनवर (पार्श्वप्रभु) जब निर्मल केवलज्ञान गुण रूपी रत्न के गृह के समान हो गये, तभी इन्द्र ने गुणरत्नों युक्त उनकी, जिस-जिस रूप में वह उन्हें जानता था, उनकी स्तुति की।। 141।।

8/10

Surendra supplicates Pārśwa Jina.

वत्थु-छन्द— जयहि सामिय जीवगणसरण।
संसाररइ परिहरण करण-करडि-करडयण-दाहण।
गयवाह सिवसुहकरण दुह भवतरंगिणि णाह तारण।।
जय खरयर तव-तविय-तणु महगिव्वाण पहाण।
जणमण संसय सयहरण केवल किरण णिहाण।। छ।।

जय सुरमउड किरणलालिय पय — जय परिपालिय पंचमहव्वय।।
जय सीलामल-सलिल-सरोवर — जयदीहरभुअजुअ खामोयर।।
जय-जय पंचायार-पयासण — जय सग्गापवग्ग सुहभासण।।
जय पंचत्थिकाय पवियारण — जय माणावणिहर पवियारण।।
जय पंचेंदिय दुरय-मयाहिव — जय भवियण कमलवण-दिणाहिव।।
जय छज्जीव-णिकाय-परिरक्खण — जय वयअइयरागम रक्खण।।
जय परिभमिर समण विणिवारण — जय लोहावणीयवण-वारण।।
जय-जय सत्तभंगि-वित्थारण — जय संसार-दुक्ख-णित्थारण।।
जय मायावल्लिणिल्लूरण — जय भव्वयण मणासापूरण।।
जय कम्मट्ठ-गंठि-मुसुमूरण — जय-जय मोहमहा भडचूरण।।

8/10

सुरेन्द्र द्वारा पार्श्व-जिन की स्तुति—

वस्तु-छंद— जीवगण को शरण देने वाले हे स्वामिन्, आप जयवन्त रहे। हे स्वामिन्, आप ही संसार के राग को मिटाने वाले हो, इन्द्रिय रूपी हाथी के गण्डस्थल को विदारने वाले हो, वाधारहित शिवसुख के करने वाले हो, हे नाथ, आप ही संसार रूपी समुद्र से तारने वाले हो, उग्रतर तप से भव-शरीर को तपानें वाले हो तथा जन-मन के शत-शत संशयों को मिटाने वाले केवलज्ञान रूपी किरणों के निधान हो। (छ)

हे स्वामिन्, देवों के मुकुटों से निकली किरणों से सुशोभित पद वाले आपकी जय हो। पाँच महाव्रतों को पालने वाले हे देव, आपकी जय हो। शील रूपी निर्मल जल के लिये सरोवर के समान हे देव, आपकी जय हो। दीर्घ भुजा तथा कृशोदर वाले हे नाथ, आपकी जय हो। पंचाचार के प्रकाशक हे देव, आपकी जय हो, जय हो। स्वर्गापवर्ग के सुख के भाषक (प्रकाशक) हे नाथ, आपकी जय हो। पंचास्तिकाय का विचार प्रगट करने वाले हे देव, आपकी जय हो। मनरूपी पर्वत के विदारने वाले हे प्रभु, आपकी जय हो। पंचेन्द्रियरूपी गजों के लिये सिंह के समान हे नाथ, आपकी जय हो। भव्यजनरूपी कमलवनों को विकसित करने के लिये सूर्य के समान हे नाथ, आपकी जय हो। षट्कायिक जीवों के रक्षक हे देव, आपकी जय हो। व्रतों के अतिचार तथा व्रत आदि के उपदेश से आगम की रक्षा करने वाले हे देव, आपकी जय हो। भव-भ्रमण को नष्ट करने वाले हे महाश्रमण, आपकी जय हो, लोहा, मिट्टी, वृक्ष, जल आदि को बिना पूछे ही लेने से रोकने वाले हे देव, आपकी जय हो। सप्तभंगी-न्याय सिद्धान्त का विस्तार करने वाले, हे देव आपकी जय हो। संसार-दुखों से पार करने वाले हे देव, आपकी जय हो। माया (छल) रूपी लता का छेदन करने वाले हे देव, आपकी जय हो। भव्यजनों के मन की अभिलाषा पूर्ण करने वाले हे देव, आपकी जय हो। आठ कर्मों की गांठों के खोलने वाले हे देव, आपकी जय हो। मोह रूपी महाभट को चूर-चूर करने वाले हे देव, आपकी जय हो, जय हो।

घत्ता— जय विणिवारिय चउगइगमण जय कलमराल लीलागमण।
जय कोह दवाणलउवसमण जय जिणवरपास महासवण।। 142।।

8/11

King Swayambhũ, the ruler of Hastināgapura renounces the world.

वत्थु-छन्द— पुणु वि भत्तीए जिणु ससत्तीए।
अइपयड महुरक्खरहिँ सुरवराण आणंदु दिंतउ।
फेडंतु चिरविहियमलु तियसराउ जम्मफलु लिंतउ।।
फुडु दरिसंतउ तियसवइ णियमुहकमलु पहिट्ठु।
उवविट्ठउ जिणवरपुरउ णिहिल सुहासि वरिट्ठु।।

एत्थंतरे केणवि णरणाहहो उप्पाइय वइरीयण दाहहो।।
हत्थिणायउर पालणसीलहो कामिणियण मणमणरुहलीलहो।।
णिय परियण पच्चक्ख सयंभुहे कुलतिलयहो णामेण सयंभुहे।।
पुरउ पयंपिउ सविणयवाणिए हिमयर किरण सरिसगुणखाणिए।।
देव देउ दुरियारि विमद्दणु पय पयरुह पाडिय सक्कंदणु।।
पासणाहु पासंड पणासणु विसहरवइ विरइय कमलासणु।।

घत्ता— चारों गतियों के गमन का निवारण करने वाले हे देव, आपकी जय हो। कलहंस के समान मधुर लीलायुत गमन करने वाले हे देव, आपकी जय हो। क्रोधाग्नि का उपशम करने वाले हे देव, आपकी जय हो। हे महाश्रमण जिनवर पार्श्वनाथ, आपकी जय हो। ।142।।

8/11

हस्तिनागपुर नरेश स्वयम्भू राजा को वैराग्य उत्पन्न हो जाता है—

वस्तु-छन्द— इस प्रकार जिनेन्द्र की यथा-शक्ति भक्ति-स्तुति कर तथा अति प्रकट अर्थ वाले मधुराक्षरों से स्तवन कर सुरवरों को आनंद देता हुआ, चिर विहित कर्ममल को काटता हुआ, इन्द्रपद के जन्म का फल लेता हुआ, त्रिदशराज वह इन्द्र पुनः अपने हर्षित मुखकमल को स्पष्ट रूप में दिखलाता हुआ समस्त देवों में प्रधान वरिष्ठ उन जिनेन्द्र (पार्श्व) के सन्मुख एक कोठे (समवशरण के निर्धारित प्रकोष्ठ) में जा बैठा। (छ)

इसी बीच बैरीजनों के मन में दाह उत्पन्न करने वाला, शील का पालन करने वाला, कामिनी-जनों के मन में काम उत्पन्न करने वाला, अपने परिजनों के लिये हस्तिनागपुर राज्य का प्रत्यक्ष ही स्वयम्भू प्रतिपालक, अपनी कुल-परम्परा के लिये तिलक स्वरूप, स्वयम्भू नामक राजा पार्श्वप्रभु के सम्मुख आया और हिमकर की शीतल किरणों के समान गुणों की खानि वाले उन पार्श्वप्रभु से अत्यन्त विनय पूर्वक बोला— हे देवाधिदेव, आप पापों का मर्दन करने वाले हैं, आपके चरण-कमलों में इन्द्र भी (अपना शीर्ष) झुकाता है। हे पार्श्वनाथ, आप पाखण्डों का विनाश करने वाले हो, धरणेन्द्र फणीश्वर ने आपके लिये कमलासन बनाया है, केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी आपके द्वारा प्रसाधित

केवललच्छि पसाहिउ वट्टइ हरिसेँ भवियण हियउ विसट्टइ।।
समवसरणु सक्काणइ विहियउ धणए सुरवर णियरिं महियउ।।
तं णिसुणेविणु कहिमि ण मायउ परियणेण परियरिउ समायउ।।
15 तहिँ-जहिँ वियरिय पासु जिणेसरु गउ सयंभु णामेण महीसरु।।

घत्ता— पेक्खेवि जिणु अमयासण-सहिउ तिहुअण-जण-बोहण-रइरहिओ।
जायउ वइराउ णराहिवहो सपयाव-णिहय-दिवसाहिवहो।। 143।।

8/12

King Swayambhū accepts asceticism before Pārśwa.

वत्थु-छन्द— णवेवि पासहो पयपंकयइँ।
करजुअलु भालयलि धरि थुणिवि थोत्त सयसहसलक्खहिँ।
पुंणु-पुणु वि जय-जय रवेण विविह देस-भासेहिँ दुलक्खहिँ।।
झत्ति सयंभुणराहिवेण पडिगाहिय जिणदिक्ख।
5 कर-कुवलय-फलइव विमलु पुणु परियाणिय सिक्ख।। छ।।

सो पहिलउ गणहरु संभूअउ सयलामल-गुण-भायण-भूयउ।।
पासजिणेसर-वाणि-धुरंधरु कलगलरवणिज्जिय णवकंधरु।।
वरकुमारि तहो दुहिय पहावइ जो जिणधम्में समणु पहावइ।।

है, जो कि भव्यजनों के हृदय को हर्ष से भर देती है। शक्र (सौधर्मेन्द्र) की आज्ञा से इस समवशरण की रचना की गई है, कुबेर ने उसे ऐसा बनाया है जो कि स्वर्गपुरी से भी महान् है।

आपके समवशरण को आया हुआ सुनकर यह स्वयम्भू नाम का राजा (अर्थात् मैं) कहीं भी नहीं रुका और अपने परिजनों के परिवार सहित यहाँ आ गया हूँ, जहाँ कि आप (पार्श्व-जिनेश्वर) विराजमान हैं।

घत्ता— त्रिभुवन के जीवों को प्रतिबोध देने वाले, राग-द्वेष रहित उन प्रभु पार्श्व के दर्शन करते ही अपने प्रताप से दिवसाधिपति सूर्य को भी नीचा दिखाने वाले उस नराधिप स्वयम्भू को तत्काल वैराग्य उत्पन्न हो गया। ।। 143।।

8/12

राजा स्वयम्भू स्वयं ही पार्श्व से दीक्षा ग्रहण कर लेता है—

वस्तु-छन्द— श्री पार्श्व प्रभु के चरण-कमलों में नमस्कार कर, कर-युगलों को अपने मस्तिष्क पर रखकर, शत-सहस्र (लाखों) बार स्तुति-स्तोत्र का पाठकर पुनः पुनः जय-जय शब्दों से दो लाख बार विविध देश्यभाषाओं में स्तुति कर हस्तकमल पर रखे हुए फल के समान निर्मल समस्त शिक्षाओं को जानकर उस नराधिप स्वयम्भू ने तत्काल ही दीक्षा देने हेतु पार्श्व प्रभु से प्रार्थना की—

संपूर्ण निर्मल गुणों का भाजन वही स्वयम्भू पार्श्व का प्रथम गणधर हुआ, पार्श्व-जिनेश्वर की वाणी का वही धुरंधर (धारक) बना। उसने अपनी वाणी की मधुरता से नवीन मेघों के शब्दों को भी जीत लिया था। उसकी प्रिय पुत्री प्रभावती भी कुमारी थी, जो जिनधर्म में दीक्षित होकर श्रमणी प्रभावती बन गई। जो (आगे चलकर) सकल

सा सयलज्जिय संघहो सामिणि जाय पढम भवियण उवसामिणि।।
जिणवरदाहिण-दिसि ठिय गणहर खयरासुरसुरणरहर-मणहर।।
पुणु कप्पामर वरकामिणियणु पुणु परिहरिय रायविरइय गणु।।
पुणु जोइस-विंतर-भावणतिय अणुकमेण णिय-णिय णिलयहिँ थिय।।
पुणु भावण-विंतर-जोइस-सुर एय वि अणुकमेण ठिय भासुर।।
पुणु सामरु कप्पामरराणउ पुणु णरवरु णर-णियर पहाणउ।।
पुणु तिरियहिँ परियरिउ मयाहिउ खरयर-कररुह मुहहणियाहिउ।।

घत्ता— णट्टलमणहरण हरहिँ सक्खरहिँ पवरसिरिहरहिँ।
सग्गु वि ण सम्मत्तणु जसु लहइ तहो जिणसरणहो को गुण कहइ।। 144।।

Colophon

इयसिरि पासचरित्ते रइयं कइ-सिरिहरेण गुणभरियं। अणुमण्णियं मणोज्जं णट्टल-णामेण भव्वेण।। छ।।
केवलकिरणेक्कदिवायरस्स तित्थयर देव पासस्स। समवाइसरणकहणे अट्ठम संधी परिसमत्तो।। छ।। संधि 8।।

Blessings to Naṭṭala Sāhu, the inspirer and guardian

नय-विनय-विवेक-त्याग-भोगानुकम्पा। प्रशमयमयशं शीलता सत्कलानाथः।।
गति-रति-सुमतीनां चाधिवासो त्रयोऽसौ। बुध-सदसि न सो नट्टिलो कीर्त्यतेकैः।। छ।।

आर्यिका-संघ की स्वामिनी एवं प्रथम श्रेणी की भव्यजनों को शांति देने वाली बन गई। जिनेन्द्र की दक्षिण-दिशा में असुर, सुर और नरों के मन को हरने वाले गणधर बैठे। फिर कल्पवासी देवों की कामिनी-देवियाँ बैठी। फिर राग-त्यागी विरक्त मनुष्यगण बैठे। फिर अनुक्रम से ज्योतिषी देवी, व्यंतर देवी एवं भवनवासी देवियाँ अपने-अपने कोठों में बैठीं। फिर भवनवासी, व्यंतरवासी, ज्योतिषी देव और असुर अपने-अपने अनुक्रम से प्रकोष्ठों में बैठे। फिर देवों सहित कल्पवासी राजा इन्द्र बैठा। फिर नरवर प्रधान मनुष्यों के स्वामी बैठे। फिर तिर्यंच-परिवार सहित अपने तीक्ष्ण नखों एवं मुखों से शत्रु को नष्ट करने वाले सिंह बैठे। एक कोने में आर्यिकाएँ (स्त्रियाँ) भी बैठीं।

घत्ता— नट्टल के मन को हरनेवाले जिस (पार्श्वचरित) ने साक्षर-प्रवर श्रीधरों को भी न केवल सम्यक्त्व प्राप्त कराकर यशस्वी बनाया, अपितु, उन्हें स्वर्ग भी प्राप्त कराया है। उन (पार्श्व) जिनवर की शरण के गुणों का वर्णन कौन कर सकता है? यह बुध श्रीधर भी उनके गुणों का वर्णन करने में असमर्थ है। ।। 144।।

पुष्पिका

इस प्रकार गुणभरित यह मनोज्ञ श्री पार्श्वनाथ चरित श्रीधर बुध के द्वारा रचित है। इसका अनुमोदन नट्टल नाम के भव्य साहू ने किया है।

केवलज्ञानरूपी सूर्य की एक अद्वितीय किरण वाले तीर्थकर पार्श्वदेव के समवसरण संबंधी कथन में यह अष्टम सन्धि समाप्त हुई।। संधि।। ।। 8।।

प्रेरक एवं आश्रयदाता नट्टल साहू के लिये आशीर्वाद

नय-विनय-विवेक-त्याग-भोग-अनुकम्पा, प्रशमयम (धवल-) यश, शील तथा सत्कलाओं का जो नाथ है और गति, रति एवं विविध सुमतियाँ इन तीनों के लिये जो अधिवास के समान है, जो सभाओं में बुधजनों का आदर-सम्मान करता रहता है, उस (साहू-) **नट्टल** का कितने-कितने सज्जनों ने कीर्तिगान नहीं किया है?

णउमी संधी

9/1

Description of the Universe (LokāKāśa).

घत्ता— एत्थंतरे पुच्छिउ गणणाहँ तित्थंकरु।
कर-कमल-जोडिवि भवियण-पाव-खयंकरु।। छ।।

तिहुअण केण पयारेँ संठिउ
तहिँ अवसरि णिग्गय झुणि पासहो
वज्जंरति तिहुअण दुवि भेयहँ
वियलिउ-लेउ अणंतु अणोवमु
तासु मज्झे तिहुअणु परिणिवसइ
ण किउ ण धरिउ ण केणवि रक्खिउ
तिसय-तियाला रज्जु पमाणउ
घणु तणु उवहि समीरण धरियउ
अहउउच्छेदण णणु जाणिज्जइ
हेट्ठिमु सत्त रज्जु परिमाणउ

आयण्ण पवट्टमि उक्कंठिउ।।
अमिओवम वियडुल्लय पासहो।।
णिम्मल-केवलणाण वि णयणहँ।।
पढमु गयणु गय-रूउ मणोरमु।।
तंपि तिविहु तिहुअणवइ भासइ।।
ण विणासिउ णाणेण णिरक्खिउ।।
णिविडु घणायारेण समाणउ।।
णिरवसेसु छद्दव्वहिँ भरियउ।।
चउदह रज्जु पमाणु गणिज्जइ।
पलहत्थिय सराव संठाणउ।।

9/1

लोकाकाश-वर्णन—

घत्ता— इसी बीच में (स्वयम्भू–) गणधर ने अपने कर-कमलों को जोड़कर भव्यजनों के पापों के नाशक तीर्थंकर पार्श्व से पूछा। (छ)

हे पार्श्व प्रभु, मैं इस बात को सुनने के लिए उत्कण्ठित हूँ कि ये तीनों लोक किस प्रकार स्थित हैं? (इस प्रश्न के पूछे जाने पर) संसार के विकट जाल से मुक्त तीर्थंकर पार्श्व की उसी समय उल्लसित करने वाली अमृतोपम दिव्यध्वनि निर्गत हुई। उन्होंने कहा–

निर्मल केवलज्ञान रूपी नेत्र वालों ने इस त्रिभुवन को दो भेद वाला कहा है— प्रथम मनोरम लोकाकाश है जो विगलित लेप (निर्लेप) अनन्त अनुपम, रूपरहित एवं मनोरम है। उसके मध्य में तीन लोकों का वास है, ऐसा त्रिभुवनपति ने कहा है। वह भी तीन प्रकार का कहा गया है। उन्हें न किसी ने बनाया है और न किसी ने धारण ही किया है। वह निरालम्ब है।

यह लोक तीन सौ तैतालिस रज्जु प्रमाण कहा गया है, जो कि निविड घनाकार के समान है। इसके ऊपर ही ऊपर क्रमशः तनुवातवलय, फिर घनवातवलय और नीचे घनोदधिवातवलय है। वह इन तीनों वातवलयों के वृत्त से घिरा हुआ है। समस्त लोकाकाश छह द्रव्यों से परिपूर्ण है। उसका कोई उच्छेद नहीं कर सकता तथा वह किसी से रक्षित भी नहीं है। उसका प्रमाण 14 रज्जु है।

अधोलोक का प्रमाण सात रज्जु है और आकार उलटे किए गये सकोरे के समान है। मध्य भाग एक रज्जु प्रमाण है, जिसका आकार झल्लरि के समान है।

मज्झिमु पुणु झल्लरि सारिच्छउ एक्कु रज्जु परिमाणउ णिच्छउ।।
उवरिमु मुखपयारँ भासिउ रज्जुअ पंच पमाणु पयासिउ।।
15 एक्कु रज्जु अक्खिय णिव्वाणहो विवरीयायवत्तद्ध संठाणहो।।

घत्ता— तहो लक्खिउ तक्खहिँ पंचाहिय चालीसहिँ।
वित्थरु महणाणेँ महजोयणहिँ रिसीसहिँ।। 145।।

9/2
Divisions and description of Hell (Naraka).

तिरिय लोय मज्झट्ठिउ सुरगिरि सहइ सया दरिसिय कंचणसिरि।।
महजोयण सय-सहस पमाणउ णीसेसहँ धरिणीहर राणउ।।
तासु मज्झि जिण-णाणेँ पयडिउ एक्क-सहासु अहोगइ णिवडिउ।।
तहो तले सत्त णरय थिय भीसण णारय-णियर विमुक्क सुणीसण।।
5 पढमु रयणपहु पुणु सक्करपहु तिज्जउ जाणिज्जइ बालुप्पहु।।
तुरियउ पावबहुलु पंकप्पहु पंचमु धूमाउलु धूमप्पहु।।
छट्ठउ दुक्ख-णिहाणु तमप्पहु सत्तमु भणिउ तमाइँ तमप्पहु।।

उसके ऊपर मुख्य प्राकार कहा गया है, जो स्पष्ट ही पाँच रज्जु प्रमाण है।

उससे निर्वाण स्थल एक रज्जु प्रमाण कहा गया है, जिसका आकार आवर्त्त का विपरीत अर्ध माना गया है। उर्ध्व लोक मृदंगाकार है और उसका परिमाण पाँच रज्जु है।

घत्ता— उसका विस्तार पैंतालिस लाख योजन कहा गया है। यहाँ विस्तार परिणाम महायोजनों से जाना जाता है। ऐसा ऋषीश्वरों ने अपने महाज्ञान से जानकर कहा है। ।। 145।।

9/2
नरक-वर्णन—

तिर्यक् लोक के मध्य में सुमेरु पर्वत स्थित है, जो सदैव सुवर्ण की शोभा को दिखलाता हुआ सुशोभित होता है। वह एक लाख महायोजन प्रमाण है और समस्त पर्वतों का राजा है। उसका अधोभाग एक सहस्र योजन है, जो जिनेन्द्र के ज्ञान में प्रकट है।

उसके नीचे सात भीषण नरक स्थित हैं। वहाँ नारकियों के 'मारो-मारो' आदि कुत्तों के समान भोंकने वाले बुरे-बुरे शब्द ही सुनाई पड़ते हैं। उनके नाम प्रथम रत्नप्रभा, दूसरा शर्कराप्रभा तथा तीसरा नरक बालुकाप्रभा के नाम से जानना चाहिए। चौथा पाप-बहुल पंकप्रभा, पाँचवाँ धूम से आकुल धूमप्रभा, छठा दुःखों का निधान तमप्रभा और सातवाँ घोरान्धकार से व्याप्त नरक तमस्तमप्रभा नाम का कहा गया है।

रयण-पुरस्सर जाम चउत्थउ तिव्वु दाहु तणु दहण समत्थउ।।
पंचमे णरइ खराय व सीयइँ सेसहि वि हि भासिय अइसीयइँ।।
एयहँ सत्तहँ जो पढमिल्लउ सो भणियइ ति-भाय गुणिल्लउ।।
पढम भाउ खर-पुहविह देवँ तित्थयरेण सयल सुर-सेवँ।।
परिसंखाइउ सोलह सहसहिँ जहिँ णव-विह भावणसुर णिवसहिँ।।

घत्ता— चउरासी सहसहिँ वीयउ-भाउ पमाणिउ।
तहिँ असुरकुमारहँ कुलु कीलहिँ जिण जाणिउ।। 146।।

9/3

Divisions and various conditions of Hellish souls described.

तइय भाउ हणु-हणु परिसद्दँ किंपि ण सुण्णइ विहिय विमद्दँ।।
जइ णारइयहिँ संगरु करिवउ असिय-सहस जोयण परिसंखिउ।।
पढम णरइ तेरह पत्थारहँ णाणाविह बहु-दुह-वित्थारइँ।।
वीयए एयारह तिज्जय पुणु णव अक्खिय तुरियए सत्त जि सुणु।।
पंचमे पंच तिण्णि छट्टउए मुणि सत्तमे एक्क जि भणइ महामुणि।।
सव्वइँ मिलियइँ होंति णवाहिय फुडु चालीस जिणेसरे साहिय।।
लक्खइ तीस विलह पहिलारए वीयए पंच-वीस णारए।।
तइयइ पण्णारह दह तुरियइँ पंचमि तिण्णि महादुह भरियइँ।।

प्रथम रत्नप्रभा नरक से लेकर चौथे पंकप्रभा नरक तक शरीर के जलाने में समर्थ तीव्र दाह ही दाह व्याप्त है। पाँचवे नरक में तीव्र गर्मी और वैसी ही ठंडक् भी व्याप्त है। शेष दो नरकों में अति शीत व्याप्त है।

उक्त सातों नरकों में से प्रथम जो रत्नप्रभा है, गुणज्ञों ने उसके तीन भाग कहे हैं। प्रथम भाग खरपृथिवी है, ऐसा सकल देवों द्वारा पूजनीय तीर्थकरों ने कहा है। यह खरभाग सोलह हजार योजन प्रमाण का है, जहाँ नौ प्रकार के भवनवासी देव निवास करते हैं।

घत्ता— दूसरा भाग चौरासी हजार योजन प्रमाण है। वहाँ असुरकुमार देवों का कुल क्रीडा करता हुआ निवास करता है, ऐसा जिनेन्द्र जानते हैं।। 146।।

9/3

नरक-वर्णन (जारी)—

—उस प्रथम नरक का तृतीय भाग 'मारो मारो' के शब्दों से ऐसा परिपूर्ण है कि वहाँ परस्पर की पीड़ा-कराह के कारण कुछ भी सुनाई नहीं पड़ता। जहाँ के नारकी जीव आपस में युद्ध ही करना चाहते हैं। उसका प्रमाण अस्सी हजार योजन है।

प्रथम नरक में तेरह प्रस्तार हैं, जिनमें नाना प्रकार के अनेक दुःखों का विस्तार है। दूसरे में ग्यारह पुनः तीसरे में नौ कहे गये हैं और भी सुनो। चौथे में सात प्रस्तार हैं, ऐसा महामुनियों ने कहा है। जिनेन्द्र द्वारा कथित ये सब कुल मिलाकर नौ अधिक चालीस (उनचास) प्रस्तार हैं। प्रथम नरक में तीस लाख बिल हैं। दूसरे नरक में पच्चीस लाख, तीसरे में पंद्रह लाख और चौथे में दस लाख बिल हैं। महादुःखों से भरे पांचवें नरक में तीन लाख, छठे में पांच कम एक लाख तथा अति दुष्ट सातवें नरक में केवल पांच ही बिल हैं जिनमें दुःख ही दुःख दिखाई पड़ते हैं,

एक्कु अत्थि पंचूणउ छट्ठए पंच जे बिल सत्तमि अइ-दुट्ठए।।
सयल मिलिय चउरासी लक्खइँ होंति विलहँ दरिसिय बहुदुक्खइँ।।

घत्ता— पढमए णारहयहँ देह पमाणु-पयासियउ।
धणु सत्त-ति-हत्थइँ-छंगुल जिणवर भासियउ।। 147।।

9/4

Descriptions of the age of inhabitants in Hell.

एउ वि विउणु दुइज्जइ जाणिउ तंपि दूणु तिज्जइ वक्खाणिउ।।
तं तिज्जए तं दूण चउत्थए तंपि दूणु पंचमए महत्थए।।
जं पंचमो तं दूणउ छट्ठए तंपि दुण्णु सत्तमए महिट्ठए।।
पढमए आउ एक्कु सायरु पुणु वीयए तिण्णि सत्त तिज्जए पुणु।।
तुरियइँ दह पंचमि सत्तारह छट्ठए मुणि दुगुणिए एयारह।।
तह तिगुणिय एयारह सत्तमि अलिउल-कज्जल-सरिस महत्तमि।।
एउ परमाउस भासिउ देव्वहिँ जिणवरेहिँ आयण्णहि एव्वहिँ।।
पढमए अहमु वि आउ पउत्तउ दह-सहसहिँ वरिसेहिँ विहत्तउ।।
वीयए एक्कु जलहि {जि-जाणिज्जहि} तिज्जए तिणि म भंति करिज्जहि
तुरियए सत्त समीरिय पंचमि दह छट्ठए सत्तरह सत्तमि।।

घत्ता— वावीस समुद्दहँ दुहु सहंति तहिँ णारया।
पंचविहु णिरारिउ संढ महारण महिँ रया।। 148।।

ऐसे सब कुल मिलाकर सातों नरकों में चौरासी लाख बिल हैं।

घत्ता— प्रथम नरक में नारकियों के शरीर का प्रमाण सात धनुष तीन हाथ छः अंगुल है, ऐसा जिन ने कहा है।।147।।

9/4

नारकियों की आयु का वर्णन—

प्रथम नरक के शरीर का जो प्रमाण है, वही दुगुणा करने पर दूसरे नरक का जानो। इसी प्रकार तीसरे में दूसरे का दुगुणा, चौथे में तीसरे का दुगुणा, पाँचवें में चौथे का दुगुणा, छठे में पाँचवें का दुगुणा और सबसे बड़े सातवें में नरक में छठे का दुगुणा प्रमाण है।

प्रथम नरक में आयु का प्रमाण एक सागर (सागरोपम), दूसरे में तीन सागर, तीसरे में सात सागर, चौथे में दस हजार सागर, पांचवें में सत्रह सागर, छठे में ग्यारह से दुगुणे अर्थात बाईस सागर और भ्रमर अथवा काजल के समान छोर अंधकार से व्याप्त सातवें नरक में ग्यारह से तीन गुणा अर्थात तैंतीस सागर हैं। यह उत्कृष्ट आयु है, ऐसा जिनेन्द्र देवों ने कहा है। अब आगे पुनः सुनो-प्रथम नरक में (जघन्य) आयु दस हजार वर्ष की है। दूसरे में एक सागर, (की जानना चाहिए) तीसरे में तीन सागर की होती है, इसमें भ्रांति न करें, चौथे में सात सागर, पांचवें में दस सागर एवं छठे में सत्रह सागर की जघन्य आयु कही गई है।

घत्ता— सातवें में बाईस सागर जघन्य आयु है। नरकों में रहते हुए नारकी लोग उक्त कथित आयु पर्यन्त कष्ट भोगते रहते हैं। प्रथम नारकी लोग नपुंसक देह वाले होते हैं तथा वे सदा महायुद्ध में ही रत रहते हैं और पाँच प्रकार के दुःखों को सहन करते रहते हैं। ।। 148।।

9/5

Fascinating description of different facets of Hellish life.

पढम णरय जे णारय णिवसहिँ अवहिणाणु तहो जिणवर भासहिँ।।
जोयणेक्क चिर-वइरिउ पेक्खेवि रयणु रयंति वेरत्तु समक्खेवि।।
अद्धकोस ऊणउ वीयहे पुणु तिण्णि कोस तिज्जइ तुरियए सुणु।।
सडद्धइँ विण्णि कोस बे पंचमे छट्ठे मुणहि विदड्ढ जि सत्तमे।।
एक्के जे कोसु विहंगे जाणहिँ अवरोप्परु संगर सिरि माणहि।।
सरसिय णिवडंति पिहिल्लए वीयए पुणु मज्जार दुहिल्लए।।
तिज्जए विहय भुअंग चउत्थए पंचमे पंचाणण तिय छट्ठए।।
सत्तमि मणुअ मयर उपज्जहिँ पुव्वज्जिउ भुंजहि असमज्जहिँ।।
सत्तम णरय-धराणेमेल्लेप्पिणु जो आवइ बहु दुक्खु सहेप्पिणु।।
सो होएवि तिरिउ पुणु नारउ पुणु पावइ मणुअत्तु गुणालउ।।
छट्ठिहे आयउ लहइ णरत्तणु पर पावइ णा किंपि चरित्तणु।।
चराइ चरणु पंचमियहे णिग्गउ पर तहिँ भवे ण लहइ अपवग्गउ।।
जाइ मोक्खु जो तुरियहे आवइ परमो तित्थयरत्तु ण पावइ।।
तीयहे वीयहे पढमहे णिराइउ णिम्मल केवलणाण विराइउ।।

घत्ता— भव्वेयरु वज्जो वि को वि होइ तित्थंकरु।
पर ण हरि ण पडिहरि ण रहंगालंकिय करु।। 149।।

9/5

नारकियों का बहुआयामी रोचक वर्णन—

प्रथम नरक में जो नारकी जीव रहते हैं, उनके अवधिज्ञान के क्षेत्र का प्रमाण जिनवरों ने इस प्रकार कहा है— प्रथम नारकी जीव एक योजन की दूरी से अपने चिरकालीन शत्रु को देखकर पूर्वकालीन बैर का स्मरण कर सकते हैं। दूसरे नरक में अढाई कोस, तृतीय में तीन कोस, चौथे में अढ़ाई कोस, पाँचवें में दो कोस, छठे में डेढ़ कोस और सातवें में एक कोस है। नारकी जीव अपने विभंग-ज्ञान से इतने क्षेत्र तक जान लेते हैं और परस्पर युद्ध में रत रहते हैं।

नरकों की गति-अगति किस प्रकार होती है इसे सुनो— सरीसृप (पेट के बल दौड़ने वाले जीव) मरकर प्रथम नरक में जन्म लेते हैं। दुष्ट-बुद्धि मार्जार दूसरे में, पक्षी तीसरे में, साँप चौथे में, सिंह पाँचवें में, स्त्री छठे में, मनुष्य तथा मगरमच्छ मरकर सातवें नरक में जन्म लेते हैं और वहाँ वे पूर्व जन्म के पापों का फल भोगते हैं।

अनेक दुःखों को सहन करके सातवीं नरक-धारा से निकला जीव पहले निर्भय होकर तिर्यंच होता है पुनः नारकी होता है। पुनः मरकर वह गुणी सीधा मनुष्य जन्म पाता है। छठवें नरक में निकलकर वह नारकी जीव मनुष्य होता है पर वह चरित्र नहीं ले पाता। पाँचवीं भूमि से निकला हुआ नारकी जीव चरित्र ले पाता है किंतु उसी भव से मुक्ति नहीं ले पाता। चौथे से निकला जीव मुक्त तो हो जाता है परंतु वह तीर्थंकर नहीं हो पाता। तीसरी, दूसरी एवं पहली नरकधारा से निकला जीव निर्मल केवल ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

घत्ता— भव्येतरों को छोड़कर कोई भी मनुष्य तीर्थंकर हो सकता है। किंतु वह हरि (नारायण) या प्रतिहरि (प्रतिनारायण) और चक्रवर्ती-पद को प्राप्त नहीं करता। ।। 149।।

9/6

Description of types and Heavenly abode of celestial souls (Bhavanavāsī Devas) and peripatetic celestial souls (Vyantara Devas).

सुरगिरि-तलि भोएहिँ ण मुच्चहिँ भावण-सुरवर दहविह वुच्चइँ।।
ताहँ वि पढम कुमरे तासुर णायकुमार सिरोमणि भासुर।।
हेमकुमार कुमारेँ तोवहि दिक्कुमार गुण-रयण-महोवहि।।
थणियकुमार कुमारताणिल विज्जकुमार कुमारेँ ताणल।।
5 दीवकुमार महामहिहर थिर भवणहँ संख ताहँ भणियइँ किर।।
कोडिउ सत्त तिलोए पसिद्धउ बाहत्तरि लक्खेहिँ समिद्धउ।।
तावंतिउ जिणहरहँ जिणेसहँ गय मल केवलणाण दिणेसहँ।।
तिरिलोए विंतर-सुर णिवसहिँ रज्जुअ परिमाणए सुहु विलसहिँ।।
अट्ठ पयार पढम तहिँ किण्णर किंपुरिसोरय गंधव्वामर।।
10 जक्ख-रक्ख पर-पक्ख निरुंभण भूय-पिसाय महारि-णिसुंभण।।
ए पहाण अवर वि वेलंधर पण्णय सिद्ध अणेय धुरंधर।।
के वि वसहिँ कंदर-दर-विवरहिँ कुलगिरि-सुरगिरि-सिरि धवल-हरहिँ।।
के वि गयण-सरि-सर-सयरहरहिँ के वि कणय-तोरण वं महरहिँ।।
के वि दीवि णंदण-वण सीमहिँ के वि णयर-पट्टण-पुर-गामिहिँ।।

15 घत्ता— के वि जलणिहि तीरहिँ के वि वर-पंडुसिलहिँ।
के वि चेइय-सिहरेहिँ के वि महाकुहर-विलहिँ।। 150।।

9/6

भवनवासी एवं व्यन्तर देवों के नाम तथा उनके निवास-स्थल—

सुमेरु पर्वत के नीचे दस प्रकार के भवनवासी देव रहते हैं। वे भोगों से मुक्त नहीं होते। ये देव दस प्रकार के कहे गये हैं– उसमें से प्रथम– 1) असुरकुमार, 2) मणियों से भास्वर मस्तक वाले नागकुमार, 3) हेमकुमार,, 4) उदधिकुमार, 5) गुण रत्नों के सागर दिक्कुमार, 6) स्तनित कुमार, 7) वायु कुमार, 8) विद्युत्कुमार, 9) अग्नि कुमार और 10) महापर्वत के समान स्थिर द्वीपकुमार।

भवनवासियों के तीन लोक में प्रसिद्ध समृद्ध भवनों की संख्या सात कोटि बहत्तर लाख है और जो निर्मल केवलज्ञान रूपी सूर्यश्रीयुक्त जिनेन्द्र के बिम्बों से विराजित हैं।

एक रज्जु प्रमाण वाले तिर्यक् लोक में व्यन्तर देवों का निवास है, जहाँ वे सुख विलास पूर्वक रहते हैं।

वे आठ प्रकार के कहे गये हैं— 1) किन्नर, 2) किंपुरुष, 3) उरग, 4) गन्धर्व देव, 5) यक्ष, 6) पर पक्ष को रोकने वाले राक्षस, 7) भूत और 8) महाशत्रुओं का नाश करने वाले पिशाच। ये आठ व्यन्तर देव तो प्रधान हैं और बेलंधर, पन्नग, सिद्ध आदि अनेक धुरंधर देव भी होते हैं। कोई-कोई व्यंतर देव तो कितनी ही कन्दराओं में, दरों में, विवरों में, और कितने ही व्यन्तरदेव कुलाचलों पर, मेरु पर्वत के उज्ज्वल शिखरों पर और श्रीयुक्त धवलगृहों में रहते हैं और कितने ही गगन, नदी, सरोवर, समुद्र में और कितने ही महाहर्म्य, स्वर्ण-तोरणों में, कितने ही द्वीपों, नन्दनवन की सीमाओं, तथा नगर, पट्टन, पुर एवं ग्रामों में निवास करते हैं।

घत्ता— कितने ही सागर के तीर पर और कितने ही उत्तम देव पाण्डुक शिला पर, चैत्यों के शिखरों पर और महापर्वतों के बिलों में निवास करते हैं। ।। 150।।

9/7

Description of the relative distance of the residences of steller celestial souls (Jyotiṣī Devas).

विंतर-भवणहँ संख ण दीसइ जहिँ-तहिँ अम्हारिसु किं सीसइ।।
महि मुएवि भासिउ जिणदत्तहिँ णवइ सहिय जोयण सय-सत्तहिँ।।
तारायणु तहो उवरि दिवायरु दह जोयणहिँ हेहिय कुमुयायरु।।
तासुवि उवरि मलिय कमलायरु दह जोयणहिँ असीहिँ णिसायरु।।
पुणु चउ जोयणेहिँ णक्खत्तइँ पवर पसूणाइव विक्खित्तइँ।।
पुणु चउ जोयणेहिँ बुह-मंडलु णिय किरणुज्जोविय णहमंडलु।।
पुणु तिहि सुक्कविहप्पिइँ तिहिँ पुणु अंगारउ तिहि-तिहि रवि-सुउ पुणु।।
राहु-विमाणु वहइ सुपमाणहो तलि-हिमयर अहि-मयर-विमाणहो।।
पंच भेय जोइसिय समक्खिय जह जिण-केवलणाण णिरिक्खिय।।
एव्वहिँ सुणु सोलह कप्पामर अच्छरयणकरचालियचामर।।
णव गेवज्जण बाणुद्दिस उत्तरवर पुणु पवरामर पंचाणुत्तर।।
अमर महीहर-उवरिम ठाणए सुरवर कीला-सोक्ख णिहाणए।।
रिउ-विमाणु णामेण भणिज्जइ मोक्ख-सिला-पमाणु जाणिज्जइ।।

घत्ता— तासुप्परि सुहयर सोहम्मीसाणक्खइ।।
बे कप्पह पुणरवि सणंकुमार माहिंदइ।। 151।।

9/7

ज्योतिषीदेवों के निवास-स्थलों की पारस्परिक दूरी—

व्यन्तरों एवं भवनवासियों की संख्या दिखलाई नहीं देती। वे जहाँ-तहाँ हम लोगों में मध्य में और पर्वतों या मंदिर शिखरों पर निवास करते हैं ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

इस समतल भूमि के सात सौ नब्बे योजन प्रमाण भाग को छोड़कर उसके ऊपर तारागण निवास करते हैं। उनसे दस योजन ऊपर जाकर कुमुदों को विकसित तथा संकोचने वाले सूर्य के विमान हैं। उनसे भी दस योजन ऊपर कमलाकरों को मुद्रित करने वाले समस्त निशाकरों को निवास स्थान है।

उनसे भी चार योजन ऊपर नक्षत्रों के विमान हैं, जो उत्तम फूलों के समान बिखरे हुए हैं। उनसे चार योजन ऊपर जाकर अपनी किरणों से गगन को उद्योतित करने वाले बुध-मण्डल के विमान हैं। उनके तीन योजन ऊपर शुक्र के विमान, फिर तीन योजन ऊपर बृहस्पति के, फिर तीन योजन ऊपर मंगल के। उनसे तीन योजन ऊपर शनि के विमान हैं। आगम प्रमाण से ज्ञात चन्द्र और सूर्य के विमानों के नीचे राहु के विमान हैं। जैसा जिनेन्द्र ने अपने केवल ज्ञान से देखा है, उसी प्रकार मैंने भी पाँच प्रकार के ज्योतिषी देवों का वर्णन किया है।

देवांगनाओं के कर-कमलों द्वारा चालित सेवित चामरों वाले सोलह प्रकार के कल्पवासी देव, नौ ग्रैवैयक, नौ अनुदिश विमान, पुनः उत्तम देवों वाले पंच अनुत्तर विमानों का वर्णन भी सुनो, जो इस प्रकार है— उत्तम देवों की क्रीड़ा और सुख के निधान-भूत मेरु पर्वत के ऊपर सुप्रसिद्ध ऋजु-विमान कहा गया है। उसे मोक्ष-शिला के प्रमाण जितना जानना चाहिए।

घत्ता— उसके ऊपर सुखकारक सौधर्म ईशान-नाम का कल्प है। उनके ऊपर दूसरा सानत्कुमार और माहेन्द्र नाम का कल्प है। ।। 151।।

9/8

The layout of Heavens— description of sixteen Heavens situated one pair above the another.

उअरि बंभ-बंभोत्तर मणहर पुणु लंतव-कविट्ठ सजिणहर।।
पुणु वि सुक्क-महसुक्क सुहायर पुणु सयार-सहसार गुणायर।।
उप्परेण पुणु आणय-पाणय पुणु आरण-अच्चुय सुह-माणय।।
पुणु वि पढम मज्झिमउ आरमि पुणु तिविह पयारें गेवज्जाय सुणु।।
णव विह उअरि अणुत्तर बुज्झइ पर-परियण मोहेण म मुज्झहि।।
अच्चि-अच्चि मालिणि वि विक्खए बेरा-बेरोयण सोमक्खए।।
सोमरुउ अक्कउ फलिहक्खउ आइव्वाहु णवमु हउ दुक्खउ।।
पुणु विजयंतु जयंतु सयाहिउ अवरु वि वइजयंतु अवराइउ।।
मज्झि परिट्ठिउ चारु सुहंकरु पुणु सव्वत्थसिद्धि खेमंकरु।।
तासुप्परि सिवलोउ कहिज्जइ जो जिणवर मणहरहि महिज्जइ।।

घत्ता— सोहम्मि विमाणहँ होंति लक्ख बत्तीसहँ।
ईसाण समीरिया लक्खइ अट्ठाबीसहँ।। 152।।

9/8
स्वर्ग-कल्पों की संरचना—

उनके ऊपर ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर ये दो मनोहर स्वर्ग कल्प हैं। उनके ऊपर जिन चैत्यालयों से युक्त लांतव एवं कापिष्ठ दो स्वर्ग कल्प हैं। उनके ऊपर सुखों की खान शुक्र एवं महाशुक्र ये दो स्वर्ग कल्प हैं। उनके ऊपर गुणों की खान शतार एवं सहस्रार ये दो स्वर्ग कल्प हैं।

उनके ऊपर आनत ओर प्राणत ये दो स्वर्ग कल्प हैं, फिर सुखों के मानक, आरण और अच्युत ये स्वर्ग कल्प हैं।

पुनः उनके ऊपर प्रथम (अद्य) मध्यम ओर उपरिम (उर्ध्व) तीन प्रकार के ग्रैवेयक हैं एवं उनके भी ऊपर नव प्रकार के अनुद्दिश विमान हैं। ऐसा जानकर घर-परिजनों से मोह मत कर। अर्चि, अर्चिमालिनी, वइरा एवं वैरोचना ये पूर्व दिशा में स्थित हैं और सोमा, सोमरूपा, अर्क और स्फटिक ये प्रकीर्णक विमान तथा मध्य में आदिव्य नामक इन्द्रक विमान है।

अनुद्दिश विमानों के ऊपर चारों दिशाओं में 1) विजय 2) वैजयन्त 3) जयन्त और 4) अपराजित, ये चार विमान हैं। इन चारों के मध्य में मनोहर सुखकारी, कल्याणकारी सर्वार्थसिद्धि-विमान है। उसके ऊपर शिवलोक कहा गया है, जो जिनवर और गणधरों द्वारा महिमा-मण्डित है।

घत्ता— सौधर्म स्वर्ग में बत्तीस लाख विमान हैं, जबकि ईशान-स्वर्ग में अट्ठाईस लाख विमान कहे गये हैं। ।। 152।।

9/9

The number of the celestial chariots or aeroplanes (vimānas) in different heavens.

सणकुमारें बारहसय-सहसइँ माहिंदइँ पुणु वसु सय सहसइँ।।
मुणिहिँ बंभू-बंभुत्तरु सग्गइँ सय-सहसइँ चत्तारि अभग्गहिँ।।
अद्धलक्खु लंतव-काविट्ठहँ अच्छर-चरणंभोरुह-घिट्ठहँ।।
सुक्क-महासुक्कहिँ विण लक्खिय दुगुणिय वीस सहास समक्खिय।।
5 छट्ठि सयसहँ सयार-सहसारहिँ विप्फुरंत रयणावलि सारहि।।
आणय-पाणय आरण-अच्चुअ सत्तसएहिँ साहिय ण सुहच्चुअ।।
तिगुणिय सत्तत्तीस पढमिल्लए गेवज्जए बहु सोक्ख समिल्लए।।
सत्तोत्तरु सउ होइ दुइज्जए एक्काणवइ परिट्ठिय तिज्जए।।
णव जि अणुदिसेहिँ सुर विलसहिँ पंचोत्तरहिँ पंचं परिणिवसहिँ।।
10 सव्वहिँ मिलिय होंति तेवीसइँ सत्ताणवह सहास विभीसइँ।।

घत्ता— चउरासी लक्खइँ एत्थु म भंति करेज्जहु।
जो पुच्छइ भवियण संसउ तासु हरेज्जउ।। 153।।

9/9

विविध स्वर्गों के देव-विमानों की संख्या—

सानत्कुमार स्वर्ग में बारह लाख, माहेन्द्र स्वर्ग में आठ लाख, अखण्ड ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर स्वर्गों में चार लाख विमान जानो। अप्सराओं के चरण कमलों से धृष्ट, लान्तव एवं कापिष्ठ स्वर्गों में अर्धलक्ष (पचास हजार), अखण्ड शुक्र, महाशुक्र स्वर्गों में चालीस हजार विमान कहे गये हैं।

स्फुरायमान रत्नावलि से शोभित सतार एवं सहस्रार स्वर्गों में छः हजार विमान कहे गये हैं। स्फुरायमान रत्नावली से शोभित सतार एवं सहस्रार स्वर्गों में छः हजार, सुखकारी आनत, प्राणत तथा आरण और अच्युत स्वर्गों में कुछ अधिक सात-सात सौ विमान कहे गये हैं।

अनेक सुखों से युक्त प्रथम ग्रैवेयक में सैंतीस से तीन गुणें अर्थात् एक सौ ग्यारह विमान, दूसरे मध्यक ग्रैवेयक में एक सौ सात और तृतीय उर्ध्व ग्रैवेयक में इक्यानवे विमान बताए गये हैं। नौ अनुदिशों में नौ तथा पाँच पंचोत्तरों में पाँच ही विमान रहते हैं।

घत्ता— प्रथम स्वर्ग से लेकर पंचोत्तर विमानों तक सब कुल मिलाकर चौरासी लाख सत्तानवे हजार तेईस विमानों में देवगण विलास करते हुए निवास करते हैं। इसमें किसी भी प्रकार से समझने में भ्रांति मत करो, और जो भव्यजन पूछे, उनका भी संशय दूर करो। ।। 153।।

9/10

The life of different heavenly lords (Devas), planets (Grahas) and constellations (Nakśatras).

एत्तियाइँ मणिमय जिणगेहइँ फुल्ल-पयर-परिभमिय दुरेहइँ।।
एक्कु मयरहर असुरकुमारहँ आउ ति-पल्लइ णायकुमारहँ।।
सड्ढउ बेण्णि सुवण्णकुमारहँ तहय बेण्णि पुणु दीवकुमारहँ।।
होइ दिवड्ढ-दिवड्ढु जि सेसहँ णयण-सुहावण उत्तमवेसहँ।।
5 विंतराण एक्कु वि पल्लोवम उत्तमाउ पयडियउ मणोरमु।।
दह-सहास वरिसइँ सामण्णँ जिणवरु मुएवि ण जाणिउ अण्णँ।।
चंदहो एक्कु पल्लु सुपसिद्धउ वरिसहँ सय-सहसेहिँ समिद्धउ।।
दह-सय वरिस अहिउ दिणदीवहो सय वरिस ण समग्गलु सुक्कहो।।
किंचूणउ सुरगुरुहे समक्खिउ सेस गहहँ पल्लद्धु ण रक्खिउ।।
10 पल्लहो-पाउ समीरिउ-देवँ तारायणहो तिलोय सुसेवँ।।
पल्लहो अट्ठम भाउ वहण्णँ भासिउ तित्थयरेण विसण्णँ।।

घत्ता— सोहम्मीसाणहँ बि हि सग्गहँ बे-सायर।
उप्परि बि हि सत्त वासइ सुहायर।। 154।।

9/10

देवों और ग्रहों-नक्षत्रों का आयु-प्रमाण—

वहाँ पर समस्त जिन मंदिर मणि-जटित बने हुए हैं। उनके उद्यानों में पुष्प-पराग पर भ्रमर परिभ्रमण करते रहते हैं। असुरकुमारों की उत्कृष्ट आयु एक सागरोपम है। नाग कुमारों की तीन पल्योपम, सुपर्ण कुमारों की अढ़ाई पल्योपम, द्वीपकुमारों की दो पल्योपम और नेत्रों के लिए प्रिय उत्तम वेश वाले शेष कुमार देवों की डेढ़ पल्योपम प्रमाण है।

व्यंतर देवों की मनोरम उत्कृष्ट आयु एक पल्योपम तथा जघन्य आयुष्क दस हजार वर्ष का है। जिनेन्द्र को छोड़कर यह (तथ्य) अन्य कोई नहीं जानता।

कला-समृद्ध चन्द्रमा की उत्कृष्ट आयु एक लाख वर्ष सहित एक पल्योपम, दिन-दीपक (सूरज) की एक हजार वर्ष अधिक एक पल्य की है। शुक्र की एक सौ वर्ष अधिक एक पल्य की है।

बृहस्पति की कुछ कम एक पल्य है। शेष बुध, मंगल, शनिश्चर का आयुष्क आधा पल्योपम है। वायुदेव की आयु चौथाई पल्य बतलाई है। त्रिलोक पूजित तारागणों की आयु एक पल्य का आठवाँ प्रमाण है, ऐसा तीर्थंकर ने कहा है।

घत्ता— वैमानिक देवों की आयु इस प्रकार है। सौधर्म और ईशान स्वर्गों में दो सागरोपम (कुछ अधिक), सानत्कुमार और माहेन्द्र स्वर्गों में सात सागरोपम (कुछ अधिक) आयु है। ।। 154।।

9/11

The age and height of the celestial lords (Vaimānika Devas), and their limits.

बि हि दह बि हि चउदह भवियण सुणु बि हि सोलह बि हि अट्ठारह पुणु।।
पुणु बि हि दुगुणिय-दह व णिज्जसु बि हि बाबीस म ममत्ति करेज्जसु।।
पुणु एक्केकुक्कउ उअरि चडेज्जसु ताम जाम तेतीस गणेज्जसु।।
केवलणाणिहिँ सोक्ख समिल्लहिँ दोविहु आउ समीरिउ पल्लहिँ।।
असुरहँ तणुच्चत्तु पयासिउ पंचवीस धणु जिणहिँ समासिउ।।
दह वाणासण विंतरदेवहँ सत्तसरायण जोइस-देवहँ।।
सत्त हत्थ सोहम्मीसाणहँ अच्छरयण सेविय गिव्वाणहँ।।
अदु-अदु उप्परि अट्टइ पव्वेलिउ सुहु अहिउ पयट्टइ।।
जे सव्वत्थसिद्धि तियसाहिब एक्कु हत्थु तहो मणहि जिणाहिव।।
बारह जोयणेहिँ उप्परि ठिउ सिवपउ जहिँ सिद्धयणु परिट्ठिउ।।
तहिँ मयसर बे हत्थ णिक्किट्ठेँ जाणेज्जहु अवरु वि उक्किट्ठें।।
पंचसयाइँ सरासइँ वुत्तई अंतर परिमाणाइँ बहुत्तइँ।।

घत्ता— दो कप्प पहिल्लहिँ जे वसंति तियसेसरा।
पढमावणि णरयहो ते णियंति जुइणेसरा।। 155।।

9/11

वैमानिक देवों की आयु एवं ऊँचाई का प्रमाण—

हे भव्यजनो, अब आगे भी सुनो— अगले दो (ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर) देवलोकों में दस, फिर अगले दो में चौदह, फिर क्रमशः दो-दो में सोलह, अठारह (दसका दुगुना) बीस एवं बाईस सागरोपम का आयुष्य माना है। इसमें ममत्व कभी नहीं करना चाहिए। अंतिम देवलोक में ज्योतिषियों की उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर की बतलाई है।

पुनः एक-एक करके वहाँ तक ऊपर बढ़ते जाना चाहिए जब तक कि 33 की गणना न आ जाय।

केवलज्ञानियों के अनुसार वायुकुमार जाति के देवों का सुखकारी आयुष्य दो पल्योपम होता है।

असुरों के शरीर की ऊँचाई पच्चीस धनुष प्रमाण जिनेन्द्र ने बतलाई है। व्यन्तर देवों की ऊँचाई दस धनुष, ज्योतिषी देवों की ऊँचाई सात धनुष, अप्सराओं द्वारा सेवित वैमानिक देवों में सौधर्म और ईशानवासी देवों की सात हाथ और सर्वार्थसिद्धि देवताओं की ऊँचाई एक हाथ मानी गई है। स्वर्गों में ऊपर जैसे-जैसे आगे बढ़ते जाते हैं, वैसे ही वैसे अधिकाधिक सुखों की वृद्धि होती जाती है।

सर्वार्थसिद्धि-विमान से बारह योजन ऊपर जाने से सिद्धशिला अर्थात् मोक्ष स्थल है जहाँ पर सिद्धों का निवास है। सिद्धों की ऊँचाई उत्कृष्ट पाँच सौ धनुष प्रमाण कही गई है, कम से कम ऊँचाई एक धनुष दो हाथ प्रमाण जानना चाहिए, इनमें बहुत प्रकार के अंतर होते हैं।

घत्ता— पहले दो स्वर्गों में रहने वाले देव अपने अवधिज्ञान से नीचे के प्रथम नरक तक को देख-जान सकते हैं। ।। 155।।

9/12

The range of sight of different celestial Lords and other description.

पुणु उप्परिम अग्ग जुअलामर विज्जी णरयभूमि चल-चामर।।
पुणु चउसग्गि सुराहिव जाणहिँ तिज्जी णरयभूमि वक्खाणहिँ।।
उप्परि सग्गामर राणा णरय चउत्थावणि गुण जाणा।।
पुणु चउसग्ग सुराहिव पेक्खहिँ णरयहो पंचमभूमि समक्खहिँ।।
5 छट्ठी-महि गेवज्ज णिवासिय सत्तमि महि अणुदिसु अमयासिय।।
तिजयणाडि पंचोत्तर बुज्झहिँ अवहिणाण णयणेण सभुज्झहिँ।।
एउ अहोगइ-णाणु सुरिंदहँ णिहिलहँ णविय जियारिजिणंदहँ।।
उद्धु णाणु सविमाण पमाणउ सव्वसुरिंदहँ सव्व समाणउ।।
जो तउ विरयंतउ सेवइ वणु मणसिय विसय-कसाय णिहयमणु।।
10 सो जायइ भावण भवणासुरु अह वित्तरु तणु भूसणु भासुरु।।
जे तावस वणि ठिय सिउ झायहिँ सुट्ठु भाव ते जोइसि जायहिँ।।
जे विरयहिँ उत्तम सावय-वउ ते पावहिँ अच्चुअ-सुरवर-पउ।।
उप्परि जंति ण समणु मुएविणु भव्वेयर जिण-लिंगु धरेविणु।।
जिणवर तव-ताविय गेवज्जहिँ मंद-कसाय-सवण उप्पज्जहिँ।।

15 घत्ता— जे भव्व सुहासय रयणत्तयहर मुणिवर।
अणुदिस पंचोत्तर मज्झे होंति ते सुरवर।। 156।।

9/12

विविध प्रकार के देवों की दृष्टि का प्रसार कहाँ-कहाँ तक? तथा अन्य वर्णन—

दो देवलोकों के बाद चँवर ढुराने वाले अगले चार देवलोकों के निवासी देवता गण दूसरे नरक तक, उसके बाद चार देवलोकों वाले देव तीसरे नरक तक जानते हैं। उसके बाद चार देवलोकों वाले देव चौथे नरक तक जानते हैं ऐसा गुणज्ञों ने जाना है। पुनः पांचवें नरक तक अगले चार स्वर्ग वाले सुराधिप देखते हैं। ग्रैवेयकवासी छठे और सातवें नरक तक, पाँच अनुदिश एवं अनुत्तर विमानवासी देव तिजयणाडि तक अपने अवधिज्ञान रूपी नेत्रों से देखते हैं। जितारि जिनेन्द्र को नमस्कार कर वे सुरेन्द्र अधोगति वालों को अपने अवधिज्ञान से जानते हैं। परंतु सभी देव ऊर्ध्वगति में अपने-अपने विमान की ध्वजा तक ही देख पाते हैं। सभी देवों का अवधि ज्ञान एक समान है।

जो विषय-कषाय पर विजय पाते हैं, मन का दमन करते हैं वन में जाकर तपस्या करते हैं, वे अपने भावों के अनुसार सुंदर भास्वर वेश वाले भवनवासी अथवा व्यन्तर देव होते हैं और जो वन में बैठकर केवल मोक्ष का ध्यान करते हैं, वे शुभ भावों के कारण ज्योतिषी देव होते हैं।

जो उत्तम श्रावक व्रत का पालन करते हैं वे अच्युत स्वर्ग का पद पाते हैं। (उत्तम) श्रमण को छोड़कर भव्येतर उसके आगे नहीं जा सकता। जिन-वेष धारण कर कठोर तपस्या करने वाला श्रमण ग्रैवेयक-स्वर्ग में उत्पन्न होता है।

घत्ता— हे भव्य, शुभाशय वाले जो रत्नत्रयधारी मुनिवर हैं, वे अनुदिश तथा पंचोत्तर विमानों में उत्तम देव होते हैं। ।। 156।।

9/13

Description of middle universe which contains innumerable continents (Dwīpas), mountains and regions including several geographical units.

जंबूदीउ सयल दीवाहिउ तिरिय लोए जिणणाहेँ साहिउ।।
महजोयण सय-सहस पमाणउँ तासु मज्झि सुरगिरि गिरिराणउ।।
भरहखेत्तु तहो दाहिणि संठिउ जहिँ जणवउ णिवसइ उक्कंठिउ।।
ते विहत्तु अद्धउ वेयड्ढेँ सीमाराम-गाम-णयरहें।।
5 गंगा-सिंधु पहाणइ खंडिउ पविरेहइ छक्खंडहिँ मंडिउ।।
पंचखंड तेत्थु वि दुप्पेच्छहँ परिवसंति धम्मुज्झिय मेच्छहँ।।
अज्जखंडु एक्कग्गि सुपसिद्धउ घर-पुर-पट्टण-णयर समिद्धउ।।
उत्तरेण तहो गिरि-हिमवंतउ सलिल-भरिय-गहीर-दह वंतउ।।
हइमवंतु पुणु खेत्तु रवण्णउँ भोय-भूमि जुअलहिँ परिपुण्णउँ।।
10 पुणु वि महाहिमवंतु महीहरु कीलंतिहि सुर-तियहिँ मणोहरु।।

घत्ता— पुणु तहो उत्तरदिसि भोयभूमि परिणिवसइ।
णामेण पसिद्धी हरि-विदेह सुरि हरिसइ।। 157।।

9/13

मध्यलोक वर्णन : द्वीप, पर्वत एवं क्षेत्र आदि एवं अन्य भौगोलिक इकाइयों का वर्णन—

इस तिर्यक् लोक में जंबूद्वीप समस्त द्वीपों का शिरोमणि राजा है, ऐसा जिननाथ ने कहा है। वह एक लाख महायोजन प्रमाण वाला है। उसके मध्य में पर्वतों का राजा सुरगिरि (सुमेरु पर्वत) है।

उस (सुमेरु) की दक्षिण दिशा में भरतक्षेत्र स्थित है, जहाँ जनपद के सभी लोग (देशवासी) उत्कंठित (प्रसन्न) रहा करते हैं।

उस (भरतक्षेत्र) के बीचों-बीच सीमावर्त्ती उद्यानों वाले गाँवों एवं नगरों से युक्त विजयार्द्ध पर्वत है। इस कारण भरतक्षेत्र दो भागों में विभक्त हो गया है। फिर गंगा एवं सिंधु नाम की दो प्रधान महानदियों से विभक्त होकर वह भरत क्षेत्र छह खंडों वाला होकर सुशोभित रहता है। उसमें भी दुष्प्रेक्ष्य एवं धर्म के त्यागी म्लेच्छों के पाँच खंड हैं। घर, पुर, पट्टन एवं नगरों से समृद्ध एक अग्रगण्य आर्य-खंड प्रसिद्ध है। उस भरतक्षेत्र की उत्तर-दिशा में हिमवान पर्वत है, जिस पर जल से भरा एक गंभीर पद्म द्रह है।

उसके आगे रमणीय हैमवंत क्षेत्र है, जो युगला-युगलियों से परिपूर्ण भोग-भूमि है। उसके आगे महाहिमवान् पर्वत है, जो क्रीड़ा करती हुई देवांगनाओं के कारण मनोहर है।

घत्ता— इसकी उत्तर-दिशा में भोगभूमि के समान हरि और विदेह नाम से प्रसिद्ध क्षेत्र हैं, जहाँ देव गण हर्ष पूर्वक निवास करते हैं।। 157।।

9/14

Description of mountains like Niṣadha etc. and Kṣetras (regions) like Bharata etc.

पुणु कणयमउ णिसहु धरणीहरु उयउ करइ जसु सिहरि तमीहरु।।
भोयभूमि तिज्जी सुर-कुरुवर जहिँ चिंतियउ दिंति सुरतरुवर।।
सुरगिरि दाहिण-दिसि एउ जारिसु उत्तरेण परियाणहिँ तारिसु।।
उत्तरकुरु-सुरकरु-गुणधारिणी दहविह सुरतरुभरु मणहारिणी।।
5 पुणु णीलइरि-महागिरि सुंदरु किण्णर-सुर परिपूरियदरु।।
रम्मय भोयभूमि पुणु सोहण जहिँ चारणमुणि करहिँ पवोहण।।
पुणु रुप्पहरि महागुण जुत्तउ सेय भुवंगमु णावइ सुत्तउ।।
पुणु हइरण्णवंत सुहकारिणी भोयभूमि उज्जु व अवियारिणी।।
पुणु गिरि-सिहरि तरुगीढहो माणत्थंभु णं मेइणि वीढहो।।
10 पुणु अइरावतखेत्तु विसुद्धउ छक्खंडहिँ मंडियउ पसिद्धउ।।
भरहेरावय दोह वि वरिसहँ जिणकल्लाण विहिण जण हरिसहँ।।
छब्भेयहँ दोइवि अवसप्पिणि वहइ सया तह पुणु उवसप्पिणि।।

घत्ता— आयमहँ जिणहँ विहि मिलियहँ काल-चक्कु फुडु लक्खिउ।
बलु-आउ-सरीरहो माणु समाणु स भक्खिउ।। 158।।

9/14

निषध आदि पर्वतों एवं भरत आदि क्षेत्रों का वर्णन—

उसके आगे कनकमय पर्वत है, जिसके शिखर पर सूर्य का उदय होता है। उसके आगे तीसरी देवकुरु नाम की भोग-भूमि है, जिसमें कल्पवृक्ष मनचाहे फल देते रहते हैं। ये सब सुमेरु की दक्षिण दिशा में है। जैसी रचना दक्षिण दिशा की बतलाई गई है, वैसी ही उत्तर दिशा की है। उसे उत्तरकुरु कहते हैं।

देवकुरु के समान उत्तरकुरु गुणों वाली भूमि है, जो दस प्रकार के कल्पवृक्षों से मनोहारिणी है। उसके आगे नीलगिरि नाम का सुंदर महापर्वत है, जो किन्नर देवों से भरी कंदराओं वाला है। उसके आगे सुशोभित रम्यक भोग-भूमि है, जहाँ चरण मुनि जाकर प्रबोध (उपदेश) करते हैं। उसके आगे महागुण युक्त रुक्मि पर्वत है, जो ऐसा लगता है, मानों सोता हुआ धवल सर्प ही हो। फिर सुखकारिणी भोग-भूमि है, जिसका नाम हैरण्यवत् है और जो ऋजु और अविकारिणी है। उसके आगे पर्वतों और वृक्षों से व्याप्त शिखरी महापर्वत है। वह ऐसा प्रतीत होता है मानों पृथ्वी के आसन का मान-स्तम्भ ही हो।

उसके आगे ऐरावत क्षेत्र है, जो विशुद्ध छः खंडों से मण्डित और प्रसिद्ध है। भरत एवं ऐरावत दोनों ही क्षेत्रों में जिनेन्द्र के पंचकल्याणकों द्वारा जनता हर्षित रहती है। इन दोनों ही क्षेत्रों में छः काल भेदों वाली अवसर्पिणी तथा वैसी ही उत्सर्पिणी क्रम-क्रम से सदा प्रवर्तती रहती है।

घत्ता— आगमों के अनुसार इन दोनों के मिलने से एक (पूर्ण) काल चक्र होता है, ऐसा प्रभु ने स्पष्ट देखा है। इनमें मनुष्यों के बल, आयु और शरीर का मान क्रम से घटता और बढ़ता रहता है। दोनों का प्रमाण समान होता है। ।। 158।।

9/15

Description of Poorva-Videha Kṡetra (region).

पुव्व-विदेह वसइ गिरिरायहो पुव्व दिसहिँ कंचणमय कायहो।।
तहो अवरेण ण केण वि दूसिय अवर-विदेह विदेह-विहूसिय।।
एक्केक्कहि दुगुणि-वसु वरिसइँ धण-कण-विहवहिँ बेण्णि वि सरिसइँ।।
ताइँ वि अंतरियइँ गिरि-सरियहिँ मसि-सम कसगुज्जल जल-भरियहिँ।।
दोहवि आउच्चत्तु सरीरहो सत्ति-तेउ सरिसउ गिरि-धारहो।।
दोहवि चतुरउ-काल पवट्टइ जिणमुह-णिग्गउ धम्मु ण घट्टइ।।
दोहवि चक्कालंकिय-करयल परिपालिय छक्खंडवि महियल।।
उप्पज्जहिँ हलहर-णारायण समर परायण पडिणारायण।।
दोहवि धम्मक्खाणु पउंजहिँ भवियण-मण-गय संसउ भंजहिँ।।
सव्वकाल जिणवर तित्थंकर विहरइँ महियलि पाव-खयंकरु।।

घत्ता— दोहवि परमाउसु पुव्व-कोडि णर-णियरहँ।
सय-पंच-धण्णुण्णय रूवं हाणिय खयरहँ।। 159।।

9/15

पूर्व-विदेह क्षेत्र का वर्णन—

कंचन (सुवर्ण) काय वाले गिरिराज (सुमेरु) की पूर्व दिशा में पूर्व विदेह क्षेत्र है। उसी की अवर (पश्चिम) दिशा में अपर-विदेह क्षेत्र है। ये दोनों क्षेत्र किसी भी प्रकार से दूषित नहीं है तथा विदेह से भूषित है। एक-एक विदेह में सोलह-सोलह क्षेत्र हैं, जो धन-धान्य और वैभव में समान है।

ये सोलह क्षेत्र पर्वतों और नदियों से अंतरित हैं, जिनमें मसी के समान काला तथा कांस्य के समान सफेद जल भरा हुआ है। दोनों ही गिरि-धारक क्षेत्रों में आयु, शरीर की ऊँचाई, शक्ति और तेज समान है।

दोनों क्षेत्रों में चतुर्थ काल प्रवर्तित होता रहता है और वहां निरंतर ही जिनेन्द्र भाषित धर्म का प्रचार होता रहता है, जो कभी भी नहीं घटता।

दोनों ही क्षेत्रों में छः खंड पृथ्वी के प्रति पालक, चक्र से अलंकृत हाथ वाले चक्रवर्त्ती, बलदेव, नारायण तथा समर-परायण प्रतिनारायण ये शलाका पुरुष उत्पन्न होते रहते हैं। दोनों ही क्षेत्रों में जिनवर तीर्थंकर सदाकाल धर्मोपदेश करते हुए जीवों के पापों का क्षय करते और भव्यजनों के मन के संशय का नाश करते हुए पृथ्वी पर विहार करते हैं।

घत्ता— दोनों ही क्षेत्रों में खेचरों के रूप का तिरस्कार करने वाले सुंदर मनुष्यों की उत्कृष्ट आयु एक कोटि पूर्व वर्षों की तथा शरीर की ऊँचाई पाँच सौ धनुष प्रमाण है। ।। 159।।

9/16

Description of six Lakes situated on the top of six mountains.

जे पुव्वुत्त महाकुल गिरिवर सरह णिहय परिणिवडिय हरिवर।।
ताहँ सिरोवरि गहिर महादह थिय सुरसीमंतिणि कीलावह।।
ताहँ मज्झि पेम्मिण मणहारिणि जोयण पमाण संठिय सिरधारिणि।।
णिवसहिँ सुरतिय तहिँ णामंतरे महमहंत रय-णियर णिरंतरे।।
णिग्गय ताहँ विहि खेयर रइ सुर-सरिआइँ करेहि महाणइ।।
गिरि-सिहरहो पुव्वावर-मग्गहिँ बहहिँ सया जल-लहरि-समग्गहिँ।।
जंबूदीवहो दूणएँ जलणिहि दिसि-विदिसिहिँ धारिय वडवासिहिँ।।
बिण्णि लक्ख जंपियउ जिणेसहिँ भवियण-मण-सिरि सरिस-दिणेसहिँ।।
जंवूदीवहो बाहिरि सोहइ मणिमय वेइय जा मणु मोहइ।।
बित्थरेण बारह-जोयण पिय भज्ज-मण मोहिय विंतर-तिय।।
उप्परि पुणु चत्तारि णिरिक्खिय अट्ठ जि उच्चत्तणेण समक्खिय।।
मणिमय बेण्णि कोसट्ठिय महियलि उप्परि वज्ज-रयणिमय णहयलि।।
उहय-दिसहिँ उववेइय मंडिय पंचसय धणुह अखंडिय।।
देवरण्ण ताहे मज्झि णिरंतर रयणरइय वरगिह वसइँ विंतर।

घत्ता— चउवारहिँ सोहहिँ मणि-कणयमय कवाडहिँ।
कीलागय सुरवर परपिहंति उग्घाडहि।। 160।।

9/16

छह कुलाचलों पर स्थित छह महाह्रदों का वर्णन—

जहां शरभों (अष्टापदों) द्वारा निहत (क्षत-विक्षत) श्रेष्ठ सिंहों के शव बिखरे पड़े थे, ऐसे पूर्वोक्त हिमवान् आदि छह महा कुलाचलों के शिखरों पर गंभीर छह महाद्रह स्थित हैं, जो देवांगनाओं की क्रीड़ा के स्थल हैं। उनके ठीक बीचोंबीच प्रेमीजनों के मन का हरण करने वाला सुंदर तथा सिर पर धारण करने योग्य एक योजन प्रमाण पदम पुष्प है। महकते हुए प्रचुर पराग से व्याप्त जिस पदम के मध्य में देवांगनाएँ निवास करती हैं वहाँ की सुर-सरिताओं के तट पर खेचरगण रति-क्रीड़ाएँ करते रहते हैं। उन कुलाचलों के शिखरों के पूर्व एवं पश्चिम मार्ग से निकली हुई गंगा आदि महानदियाँ अपनी जल-लहरों से परिपूर्ण सदैव प्रवाहमान रहा करती है।

लवण समुद्र, जिसमें कि दिशा-विदिशाओं में बड़वानल विद्यमान है, वह जंबूद्वीप से दुगुणा है। भव्यजनों के चित्त रूपी कमल को विकसित करने वाले सूर्य के समान जिनेन्द्र देव ने उसे दो-दो लाख योजन का कहा है।

जंबूद्वीप के बाहर मणिमयी वेदियाँ सुशोभित हैं, जो मन को मोह लेती हैं। उनका विस्तार 12 योजन का है, उनकी सुंदरता व्यन्तर देवों की देवियों के मन को मोहित करने वाली है। ऊपरी भाग चार योजन का देखा गया है और ऊँचाई आठ योजन की कही गई है। वे मणिमयी वेदियाँ धरती में दो कोस प्रमाण स्थित हैं और ऊपर आकाश में बज्ररत्नमयी है। दोनों दिशाओं में जो पाँच-पाँच सौ धनुष प्रमाण की अखंडित उपवेदिकाएँ शोभित हैं उनके मध्य में सघन अरण्य है, जिनमें रत्नों के बने उत्तम भवन हैं, उनमें व्यंतर देव निवास करते हैं।

घत्ता— वे भवन मणि और कनकमय किवाड़ वाले चौबारों से शोभायमान हैं और जो देव क्रीड़ाओं के लिये वहाँ आते हैं, वे ही उन बंद किवाड़ों को खोलते हैं।। 160।।

9/17

The description of Dhātakī Khañda continent (Dwīpa) and Kālodadhi ocean (Samudra) and others.

धाइइखंड-दीउ तहो दूणउ ।
लवण-समुद्दहो किंपि ण ऊणउ ।।
चारिलक्ख जोयण परियाणिउ
भवियण-पुरउ मुणिंदहँ माणिउ ।।
बिण्णि मेरु पुव्वावरदिसि बहि
कणयवण्ण खेयर कीलहिँ तहि ।।
एक्केक्कहो सुरगिरिहें विचित्तइँ
चउतीस जि रयणेयरगिरि खेत्तइँ ।।
चउदइ णइ छव्विह कुल गिरिवर
भोयभूमि तह सोमरतरुवर ।।
जंबूदीवे जाइ किर णामइँ
णाइ तेत्थु सव्वत्थ सणामइँ ।।
बहु पयार सरि-गिरि तह खेत्तहँ
जिणवयणुग्गय धम्म पवित्तहँ ।।
पढम-दीवि जो गिरि-णइ माणेँ
सावि तेत्थु मुणि खेत्त पमाणेँ ।।
तहो दूणउ कालोवहि णामेँ
जलणिहि जंपिउ णिज्जय कामेँ ।।
अट्ठ लक्ख करि-मयर-भयंकर
कीलंतिहु सुरंतियहँ सुहंकरु ।।
तहो परेण पुणु दीउ सुणिज्जइ
पुक्खरद्धु णामेण भणिज्जइ ।।
केवलणाणिहि सा वि मुणिज्जइ
सोलह लक्ख पमाणु गणिज्जइँ ।।

घत्ता— णहयलु लंघिवि तहो मज्झिम भाउ सरेविणु ।
थिउ मणुसोत्तर-गिरि वलयायारु धरेविणु ।। 161 ।।

9/17

धातकीखंड द्वीप एवं कालोदधि समुद्र आदि का वर्णन—

धातकीखंड द्वीप उस लवण समुद्र की अपेक्षा से दुगुणा है, वह उससे किसी भी प्रकार कम नहीं। अर्थात् धातकी खण्ड द्वीप चार लाख योजन प्रमाण वाला जानो, भव्य जनों के आगे मुनींद्र जनों ने ऐसा ही कहा है। उस धातकी खंड द्वीप की पूर्व-पश्चिम दिशाओं के बाहर दो सुमेरु पर्वत संबंधी कनकवर्ण वाले चौंतीस-चौंतीस विचित्र गिरि-क्षेत्र हैं जहाँ जा-जाकर खेचरगण क्रीड़ाएँ किया करते हैं। इसी प्रकार चौदह नदियों, छह कुलाचल और कल्पवृक्षों सहित भोग-भूमियाँ तथा जिनेन्द्र के मुख से भाषित धर्म के प्रचार से पवित्र अनेक प्रकार की नदियों, पर्वतों और क्षेत्रों के नाम जंबूद्वीप वाले ही हैं। प्रथम जंबूद्वीप में जो क्षेत्र रचना गिरि, सरि, आदि नाम कहे गये हैं, वही सब क्षेत्रादि प्रमाण से धातकी खंड में भी जानो।

धातकी द्वीप से दुगुणा कालोदधि समुद्र है, ऐसा कामविजयी प्रभु ने कहा है। वह आठ लाख योजन का है और उसका जल हस्ती एवं मगरों से भयंकर तथा क्रीड़ा करने वाली देवांगनाओं के लिए सुखकारी है।

उसके आगे तीसरा द्वीप भी सुना गया है, जिसका नाम पुष्करार्द्ध कहा गया है। गणना में वह सोलह योजन प्रमाण वाला है, ऐसा केवलज्ञानियों ने मनन किया है।

घत्ता— उसके ठीक मध्य भाग में मानुषोत्तर पर्वत स्थित है, ऐसा स्मरण करो। वह गगनतल को लाँघकर बलयाकार रूप धारण किए हुए है।। 161 ।।

9/18

Description of two and a half continents (Arahāi Dwīpa) contaning many rivers oceans, regions and mountains.

पुक्खरद्धु सो तेण पवुच्चइ पुणु गणहरहो जिणेसर सुव्वइ।।
तेत्थु वि बिण्णि सुरालय मणहर धगधगंत रयणेहिँ स जिणहर।।
तेत्तिय सरि कुल-कुहरालंकिय दुगुणि सत्तरह खेतंकिय।।
अड्ढाइय दीवहिँ तियसायल पंच परिट्ठिय विउल सिलायल।।
सत्तरि सउ खेत्तहे खेयरहँ तेत्तिय वरवेयड्ढ महीहरहँ।।
सत्तरि सर वहंति गंगाइय सारस कलहंसाइँ विराइय।।
चउदह सहसहिँ सहु एक्केक्की कुलगिरि मुएवि महोवहि ढुक्की।।
तीस कुलायल सुरतरु मंडिय भोयभूमि तह तीस अखंडिय।।
देवारण्ण संति बहु-विह तहिँ सग्गु मुएविणु सुरकीलहिँ जहिँ।।
भूआरण्ण वि भूअ मणोहर णं गरुह रमणीहिँ वओहर।।
लवण-काल जलणिहि बहु जीवहँ बे वि मज्झि अड्ढाइ दीवहँ।।
एत्तिउ तिरिय-लोउ एउ अक्खिउ जारिसु केवलणाणेँ लक्खिउ।।
वलय सरिसु अण्णाणेँ अलक्खइँ पंचाहिय चालीस जि लक्खइँ।।

घत्ता— अड्ढाई दीवहँ दो जलणिहिहु जिणिंदेँ।
भासिउ परमाणउँ पयणय चंद-दिणिंदेँ।। 162।।

9/18

अढाई द्वीप, नदियों तथा पर्वतों, क्षेत्रों एवं समुद्रों का वर्णन—

इसीलिए उसे पुष्करार्द्ध द्वीप कहते हैं। जिनेश्वर ने गणधरदेव (स्वयम्भू) से कहा कि सुनो— उस (पुष्करार्द्ध) द्वीप में भी मनोहर धधकते रत्नों से जड़ित जिनेन्द्र के मंदिरों से मंडित दो सुमेरु पर्वत है। धातकी खंड के समान वहां भी उतनी ही नदियां गुफागृहों से अलंकृत कुलाचल और सत्रह से द्विगुणित अर्थात् चौंतीस क्षेत्र आदि हैं।

अढ़ाई द्वीपों में पाँच सुमेरु पर्वत है, जिनमें विपुल सिलातल स्थित हैं। एक सौ सत्तर क्षेत्रों में विद्याधरों के निवास स्थान और उतने ही उत्तम वैताढ्य पर्वत हैं। उनमें सारस, कलहंस आदि से शोभित सत्तर गंगा आदि नदियाँ बहती रहती हैं। एक-एक नदी की चौदह-चौदह हजार सहायक नदियाँ हैं, जो कुलाचलों से निकलती हैं और महासमुद्र में जा ढुँकती है। तीस कुलाचल हैं, जो कल्पवृक्षों से मंडित हैं। वहाँ कुल अखंडित तीस भोग-भूमियाँ हैं। उनमें अनेक प्रकार के देवारण्य हैं, जिनमें देवगण स्वर्गों को छोड़कर क्रीड़ाएँ किया करते हैं। भूतों से मनोहर भूतारण्य वाले अढ़ाई द्वीपों में लवणोद एवं कालोद नाम के दो समुद्र हैं। ऐसा जिनेन्द्र ने अपने केवलज्ञान से लक्षित किया है और कहा है कि अज्ञानियों द्वारा अलक्षित वे वलयाकार पैंतालीस लाख योजन परिमाण हैं।

घत्ता— जिनके चरणों में चन्द्रमा एवं सूर्य नमस्कार करते रहते हैं ऐसे जिनेन्द्र देव ने अढाई द्वीप एवं दो समुद्र बतलाए हैं। ।। 162।।

9/19

Description of wanderings (Gatis) and limitations (sīmā) of human beings and the number of suns, moons, planets and constellations in different continents.

माणुसोत्तराद्धि जाम माणुसा वयंति ताम।।
तं मुएवि उप्परंति जक्ख-रक्ख देव जंति।।
अंत वारि-रासि जाम कीलमाण धत्ति ताम।।
दीव-सायराण संख को करेइ ण असंख।।
5 सा त एक्क रज्जु अंते दो ससीण दीव अंते।।
जंवूदीव मज्झ एसु चित्तहारि सुपएसु।।
चारिलोय सायरम्मि भूरिहारउ हरम्मि।।
वारहो रुणेभुंसडि वायइ विसाल संडि।।
सत्त-चक्क काल-अद्धि दोदह-चक्क पुक्खरद्धि।।
10 एम दूण-दूण ताम अंतिम समुद्दु ताम।।
सड्ढ दोण्णि दीव जाम वासरेस चंद ताम।।
भो णिरंतरं भमंति वोम पंगणं कमंति।।
सेस दीव सायरेसु कीलिया सुरामरेसु।।
सव्व संति अंतरिक्ख चंद सुज्ज राहु रिक्ख।।
15 णिच्चलंग घंट जेम लंबमाण वोमि तेम।।

घत्ता— एव्वहिँ पुण णिच्चलुविरएवि मणु सुणि गणहर।
अविणस्सर जेत्तिय तिरियलोएत्थिय जिणहर।। 163।।

9/19

मनुष्यों की गमन-सीमा आदि का वर्णन तथा विभिन्न द्वीपों एवं समुद्रों में सूर्यों एवं चन्द्रमाओं की संख्या एवं उनकी गति—

दो सागरों से युक्त मानुषोत्तर-पर्वत पर्यन्त ही मनुष्यगण जा सकते हैं। उनको लाँघकर ऊपर-ऊपर तो यक्ष, राक्षस या देव ही जाते हैं। वे अंतिम स्वयंभू रमण समुद्र पर्यन्त क्रीड़ा करते हुए ठहरते हैं। संख्या का ज्ञाता ऐसा कौन है, जो द्वीपों एवं सागरों की संख्या (गणना) कर सके। वे असंख्यात है और एक रज्जु पर्यन्त क्षेत्र हैं।

जंबूद्वीप का मध्यप्रदेश, जो कि चित्त को हरण करने वाला सुप्रदेश है, बहुत से जल-जंतुओं के समूहों से रम्य लवण समुद्र के चार-चार चांद सूरज हैं। बड़े-बड़े पदम खंड वाले धातकीखंड द्वीप में बारह-बारह चाँद सूरज हैं। कालोदधि में अट्ठाईस, पुष्करार्द्ध द्वीप में अड़तालीस चाँद-सूरज हैं। इसके आगे के द्वीप-समुद्रों में अन्तिम स्वयम्भूरमण समुद्र पर्यन्त क्रमशः दुगुने-दुगुने चाँद-सूरज हैं। हे गणधर, वहाँ चंद्र, सूर्य निरंतर भ्रमण किया करते हैं और आकाश के प्रांगण में चलते हैं। शेष द्वीप-सागरों में, जिनमें कि असुर और देव क्रीड़ाएँ किया करते हैं, चाँद, सूर्य, राहू, नक्षत्र आदि सभी अंतरिक्ष में निश्चलांग एवं घंटा के समान आकाश में लटकते हुए स्थित हैं।

घत्ता— (जिनवर ने आगे कहा)—हे गणधर, अब मन निश्चल करके तिर्यग्लोक में स्थित जितने भी अविनश्वर (अकृत्रिम) चैत्यालय हैं, उनकी संख्या को भी सुनो।। 163।।

9/20

The number of natural (Akritrima) Jain Temples, an interesting description.

असिय सुरायलेसु जिण-मंदिर गयदंते सुवीस सिरि णंदिर।।
तीस कुलायलेसु सुर-संथुअ पुणु असीइ वक्खार गिरीसुअ।।
खेयर गिरिवरेसु सगरूसउ कुरुदुमेसु दह विहुणिय भव-भउ।।
कुंडलेसु चत्तारि समक्खिय रुजगवरेसु चयारि णिरिक्खिय।।
मण्णसोत्तर-गिरीसु चत्तारि जि इसुगारेसु तहा चत्तारि जि।।
णंदीसर गिरीसु वावण्णइँ विविह रयण णिम्मियइँ रवण्णइँ।।
सव्वइँ मिलियइँ अट्ठावण्णइँ चारि सयइँ हय तिहुअण दुण्णइँ।।
तिरिय लोए पत्तियइँ जिणेसहँ मंदिराइ उवसम समणीसहँ।।
तेल्लोक्कहे वि जिणिंदह गेहइँ धवलत्तण जिय सारय-मेहइँ।।
सव्वइँ अट्ठकोडि छप्पण्णइँ लक्खहँ सत्ताणवइँ सहासइँ।।
चारिसयइँ अवर वि एयासिय जिणहर संख जिणिंदेँ भासिय।।

घत्ता— णिसुणेवि जिंणदहो धम्म-सवण णर देवहिँ।
आणंदिय चित्तहिँ जिणवर पय-सेवहिँ।। 164।।

9/20

अकृत्रिम जिन-मंदिरों की संख्या एवं उनका रोचक वर्णन—

पाँच सुमेरु पर्वतों पर अस्सी अकृत्रिम जिनमंदिर हैं। गजदन्त (पर्वत) पर शोभा से प्रतिष्ठित उनकी संख्या बीस है। कुलाचलों पर देवों द्वारा संस्तुत तीस जिन मंदिर हैं। फिर वक्षार पर्वतों पर अस्सी है। खेचर-पर्वतों पर सात है। कुरुभूमि के वृक्षों पर संसार के भय के नाशक वे दस जिन-मंदिर हैं।

कुंडलगिरी पर चार जिन-मंदिर कहे गए हैं। रुचक पर्वत पर चार, मानुषोत्तर पर्वत पर चार, इषुकार पर्वत पर चार और नन्दीश्वर पर्वत पर बावन जिनालय है, जो अनेक रत्नों से बने हुए और रमणीय हैं। ये सब मिलकर संख्या में चार सौ अट्ठावन होते हैं, जो त्रिभुवन के पापों का नाश करने वाले है।

इस प्रकार तिर्यक् लोक में उपशम से श्रमणों के स्वामी जिनेश के अकृत्रिम मंदिर कहे गये है। अपने धवलपने के कारण वे शरद के मेघों को जीतने वाले, जिनेन्द्र गृहों की कुल संख्या मिलाकर आठ करोड़ छप्पन लाख सत्तावन हजार चार सौ इक्यासी है, ऐसा जिनेन्द्र ने कहा है।

घत्ता— इस प्रकार जिनेन्द्र के मुख से धर्म को सुनकर मनुष्य और देव आनन्द चित्त हो गए और भगवान जिनेन्द्र के चरणों की सेवा में तत्पर होते हुए उन्होंने– ।। 164।।

9/21

The Demon-king (Kamaṭha) ultimately repents for his misdeeds and accepts asceticism.

केवलणाण पुज्ज विरएविणु थोत्त सहासइ उच्चरेविणु।।
कियउ गमण णिय-मंदिरि जावेहि भत्ति भार पणविय सिरु तावेहि।।
उट्ठिउ कमठासुरु विलवंतउ हाहाकार सिरेण णवंतउ।।
हा मइँ दुट्ठि किंपि ण जाणिउ महियए पासणाहु अवमाणिउ।।
5 हउँ पाविट्ठ देउ दुह-णासणु हउँ णिग्घिणु जिणु तिहुअण सासणु।।
मइँ जाएव्वउ णरय णिवासए जिणवरेण सिवपुर वर सासए।।
ए जाणेवि जिणवरु विण्णत्तउ दुविह तवाणल सिहि संतत्तउ।।
ज उवसग्गु देव मइँ विहियउ तुह दुल्लहु दंसणु णिम्महियउ।।
तं परमेसरु मज्झु खमेज्जहि दय करिजहिँ अप्पणु तहिँ णिज्जहिँ।।
10 इय भणेवि छुडु णिम्मल चित्तेँ पडिगाहिउ सम्मत्तु पवित्तेँ।।
पाव गंढिता तक्खणि णियलिय जा उवसग्ग विहाणे सुवलिय।।
जिणवर-सासणि थिउ णीसंकिउ दंसण रयणाहरणालंकिउ।।

घत्ता— पुणु-पुणु णट्टलु तय सिरिहर पय वंदइ।
भत्तिए कमठासुरु भविय चित्तु आणंदइ।। 165।।

9/21

कमठासुर अपने पापों का प्रायश्चित करता है और जिन-दीक्षा ले लेता है—

—केवलज्ञान की पूजा की तथा सहस्रों स्तोत्रों का उच्चार (पाठ-स्तुति) किया। पुनः भक्तिभाव से विधिपूर्वक सिर झुकाकर नमस्कार किया और जब उन्होंने अपने-अपने भवनों की ओर प्रस्थान किया, तभी वह कमठासुर हाहाकार करता हुआ सिर झुकाए विलाप करता हुआ उठा और बोला— हाय, हाय, दुष्टमति मैंने कुछ भी न समझा और पार्श्वनाथ को मैंने अपमानित किया। मैं पापिष्ठ हूँ और पार्श्व देव दुख-नाशक हैं। मैं निर्दयी हूँ और वे पार्श्व-जिन त्रिभुवन के शासक हैं। मुझे तो नरक निवास के लिये जाना है और जिनवर पार्श्व को शाश्वत शिवपुर (मोक्ष) को जाना है।

यह जानकर विविध तपानल की शिखा से संतप्त उन जिनवर पार्श्व से उसने विनती की कि दुर्लभ-दर्शन वाले हे देव, मैंने आप पर जो भी उपसर्ग किये हैं, और कष्ट पहुँचाए हैं उनके लिए हे परमेश्वर, मुझ पर दया कीजिये, मुझे क्षमा कर दीजिये तथा आप जिस मार्ग में हैं, मुझे भी उसी में लगा दीजिए।

यह कहकर उसने जो उपसर्ग किये थे उन पापों का प्रायश्चित किया। अपना चित्त पवित्र एवं निर्मल किया और तत्काल ही सम्यक्त्व व्रत धारण कर लिया। इस प्रकार वह कमठासुर निःशंकभाव से सम्यदर्शन रूपी रत्नाभरण से अलंकृत होकर जिनवर के शासन में स्थित हो गया।

घत्ता— इस प्रकार उस कमठासुर ने साहू नट्टल (इस ग्रंथ-लेखन के लिये आश्रयदाता) तथा ग्रंथ के लेखक कवि विबुध श्रीधर के समान ही भव्यजनों के चित्त को आनन्दित करने वाली, पार्श्व प्रभु के श्री चरणों में भक्ति पूर्वक वन्दना की।। 165।।

Colophon

इय सिरि-पासचरित्तं रइयं बुह-सिरिहरेण गुण-भरियं।
अणुमण्णियं मणुज्जं णट्टल-णामेण भव्वेण।। छ।।
सुर-णारय-तिरियाणं तिहुअण-ठाणरूप-थिति कित्तणए।
कमठासुर-उवसमणं णवमी संधी परिसमत्तो।। संधि।। 9।।

Blessings to Naṭṭala Sāhu, the inspirer and guardian

यस्य रूपं विलोक्यऽऽशु जगाम सुहृदां ब्रजः।
केकीब जीमूतं सः जीयात् नट्टलश्चिरम्।।

पुष्पिका

इस प्रकार बुध श्रीधर द्वारा गुणों से भरपूर इस मनोज्ञ पार्श्वचरित का प्रणयन किया गया, जिसका भव्य नट्टल साहू ने अनुमोदन किया।

तीनों लोकों के समान-स्थिति रूप तथा देवों, नारकियों, मनुष्यों एवं तिर्यंचों द्वारा स्तुत त्रिभुवनपति पार्श्व पर कमठासुर द्वारा किये गये उपसर्गों के शमन का वर्णन करने वाली यह नौवीं सन्धि समाप्त हुई।

आश्रयदाता के लिये आशीर्वाद

—जिसके रूप-सौन्दर्य एवं सत्कार्यों को देखकर समस्त सुहृद केकी तथा जीमूत के समान तत्काल ही एकत्र हो गये, ऐसा साहू नट्टल चिरकाल तक जीवित रहे।

दुहमी संधी

10/1

The devotees pray Lord Pārśwa on the pious occasion of his wandring (Vihāra) for preaching purposes. Pārśwa reaches Nandana-vanà situated in the out side of the town of Kuśasthala.

घत्ता— जण सुहयरु सररुहयरु दयपोमिणिं पोमायरु।
परमेसरु जयणेसरु सयल भविय पोमायरु।। छ।।

हयसेण सरीरउ रय-विहीणु पय-पंकय णविय महा महीणु।।
वज्जिय बज्झब्तंरपसंगु चउतीसातिसयसिरीपसंगु।।
5 दुत्तरसंसारसमुद्दसेउ तियसिंद-विंद सयविहिय सेउ।।
तेवीसमु जिणवरु अरुह देउ तित्थयरु वित्थरिय जसु णिदेउ।।
लोयहो उब्भासिय तिजयभेउ दुव्वार मारवाणहिँ अभेउ।।
चउविहकसाय-विसि वइणतेउ णवतरणि-किरण-संकास-तेउ।।
विज्जाहर विज्जिय चामरोहु विणिवारिय असुहर मण-विरोहु।।
10 परिहरिय सपरियण लच्छि मोहु केवल-किरणावलि हय-तमोहु।।
विहरंतउ धरणीयलि विसाले सरि सरवरतीरए सारसाले।।
मेल्लंतउ पुर-णयरायराइँ अणवरउ णरेसर मायराइँ।।

घत्ता— सावरहिउ णिय परहिउ पत्तु कुसत्थल णंदणे।
पियसद्दहिँ अइभद्दहिँ मयरद्धय सिरिणंदणे।। 166।।

10/1

भक्त जनों द्वारा पार्श्व की स्तुति एवं पार्श्व-विहार : वे कुशस्थल नगर के बाहर स्थित नन्दन-वन में पहुँचते हैं—

घत्ता— (कवि-वन्दना–) समस्त जनों के लिये सुखप्रदान करने वाले, काम-विराधक, दयारूपी पद्मिनी के लिये पद्माकर (सरोवर) के समान, जगत् को प्रकाशित करने के लिये सूर्य के समान, सकल भव्यजनों के लिये मोक्षरूपी लक्ष्मी प्रदान करने वाले हे परमेश्वर, आपकी जय हो। (छ)

हयसेन के पुत्र श्री पार्श्वप्रभु रज अर्थात् घातिया कर्मों से विहीन, सम्राटों द्वारा नमस्कृत चरण-कमल वाले, बाह्य-आभ्यन्तर परिग्रह से वर्जित, चौंतीस अतिशयरूपी लक्ष्मी से युक्त, दुस्तर संसार रूपी समुद्र को पार करने के लिये सेतु समान, सैकड़ों त्रिदशेन्द्रों द्वारा सेवित, तेईसवें तीर्थंकर अरिहन्त जिनवर देव, तीर्थ के प्रवर्तक, विस्तृत यश वाले, तीनों लोकों के भेद को उद्भाषित करने वाले, काम के दुर्वार-वाणों से अभेद्य, चतुर्विध कषायरूपी सर्पों के लिये गरुड़ के समान, नवीन सूर्य की किरणों के समान तेज पुंज वाले, विद्याधरों द्वारा जिन पर चामर-समूह ढुराये जाते हैं, जिन्होंने असुरपति मेघमाली के बैर का निवारण किया है, प्राणियों के मन का विरोध मिटाने वाले, परिजनों और लक्ष्मी के मोह के त्यागी, केवलज्ञान की किरणावलि (प्रकाश) से तमोघ (अज्ञानान्धकार-समूह) को नाश करने वाले वे पार्श्वदेव सारसों द्वारा सुशोभित नदी, सरोवरों के तीर पार करते हुए पुर, नगर एवं आकरों को छोड़ते हुये, सज्जन पुरुषों से परिपूर्ण, नरेश्वरों द्वारा पोषित इस विशाल धरणीतल पर विहार करने लगे।

घत्ता— शाप (दुर्भावना) रहित, स्व-पर का हित करने वाले वे पार्श्व प्रभु विहार करते हुए कुशस्थल नगर के अतिभद्र (श्रेष्ठ) पिक (कोकिल) के शब्दों से काम-लक्ष्मी को आनंदित करने वाले नंदनवन में जा पहुँचे।। 166।।

10/2

The forest-guard informs King Ravikīrti, the ruler regarding the arrival of Lord Pārśwa in the Royal garden (Nandan-Vana).

जय-जय तिहुअण-सामियरवेण चउविह सुरविरइय उच्छवेण।।
देवागमु जाणेवि जिणवरासु णिम्मल केवल-कामिणि वरासु।।
विण्णत्तउ वणिवालेँ तुरंतु रविकित्ति णराहिउ विप्फुरंतु।।
णिव पुण्ण करेहि सया पसण्णु सिंहासण-सिहरोवरि णिसण्णु।।
5 सुणु सावहाणु मणु करिवि देव जसु पय-जुइ णिवडहिँ खयर-देव।।
णहयले दुंदुहि वज्जइ रवालु छत्तत्तउ जसु उप्परि विसालु।।
जसु दिव्वाभास तिहुण पयास जसु भामंडल-सिरि भासियासि।।
जसु सिंहासणु मणिकिरण-हासु जसु पुप्फविट्ठि णिवडइ णहासु।।
जसु उवरि सहइ कंकेल्लिरुक्खु जसु चमराणिलु अवहरइ दुक्खु।।
10 सो पासणाहु जिणु णंदणंते तुह तणए अज्जु णहयर रणंते।।

घत्ता— संपत्तउ तम चत्तउ जो तेल्लोउ णियच्छइ।
जसु भत्तउ अणुरत्तउ जणु आणु पडिच्छइ।। 167।।

10/2

वनपाल द्वारा राजा रविकीर्ति के लिये नन्दन-वन में पार्श्व के समवशरण के आगमन की सूचना—

अपनी ध्वनि से उपदेश देने वाले तथा चतुर्विध देवों द्वारा रचाये गये उत्सवों के मध्य जय-जयकार कर निर्मल कैवल्य रूपी कामिनी के वर स्वरूप त्रिभुवन पति पार्श्व स्वामी के समवशरण का आगमन जानकर उस नन्दनवन उद्यान के वनपाल ने स्फुरायमान होकर तुरन्त ही नराधिप रविकीर्ति के पास जाकर विनती की कि हे नृप, पुण्य कीजिए, सदा प्रसन्न रहिए, उच्चतम सिंहासन पर विराजमान रहिए।

हे देव, मन को सावधान कर सुनिए, जिनके चरणों की कान्ति में खचर देव झुकते हैं, (1) नभस्तल में सुन्दर दुन्दुभि-बाजे बजाते हैं, (प्रथम प्रातिहार्य) (2) जिनके ऊपर विशाल छत्र शोभित हो रहे हैं, (3) जिनकी दिव्य-ध्वनि, त्रिभुवन को प्रकाशित करने वाली है, (4) सब दिशाओं को प्रतिभासित करने वाली जिनकी भामण्डल-लक्ष्मी है, (5) मणि की किरणों से भासमान जिनका सिंहासन है, (6) आकाश से जिनके ऊपर पुष्पवृष्टि होती रहती है, (7) जिनके ऊपर अशोक वृक्ष सुशोभित हो रहा है, (8) जिनके ऊपर ढुरने वाले चामरों की वायु दुःखों को दूर करती है, ऐसे आठ प्रातिहार्यों से विभूषित प्रभु पार्श्वनाथ नंदनवन के भीतर पधारे हैं।

हे नृप, आज आपके इस नन्दन-वन में देवों के द्वारा नभ में जय-जय ध्वनि करने के कारण अपूर्व-शोभा हो रही है।

घत्ता— अज्ञानान्धकार से रहित तथा तीनों लोकों को देखने-जानने वाले उन पार्श्व प्रभु के भक्त (अनुरागी) मनुष्य गण शीघ्र ही उनकी आज्ञा को स्वीकार करते हैं।। 167।।

10/3

Pārśwa's preachings on Srāvaka-Dharma (House-holders' code of conduct).

रविकित्ति राउ तहो सुणेवि वत्त सिंहासणु मेल्लिवि पयइँ सत्त।।
जाएवि जोडेवि करयलइँ बेवि पणविउ भालयलु परिठवेवि।।
वम्मादेविहु गब्भुब्भवासु णिज्जिय पंचत्त जराभवासु।।
उट्ठेविणु पुणु साहणसमेउ गउ तहिँ जहिँ णिवसइ देव देउ।।
5 गय झत्ति पहावइ जणणियाए सहु समवसरणि सुहजणणियाए।।
णरणाहेँ पणविवि थुइ करिवि तमु हरिवि सकोट्ठइँ वइसरिवि।।
जिण पुच्छिउ सावय-धम्म-भेउ तं सुणिवि भणइ तित्थयरु देउ।।
सुणि भणमि गिहत्थओ तणउ धम्मु सग्गापवग्ग पविइण्ण सम्मु।।
संकाइ सयल दोसइँ मुएवि मिच्छत्तभाउ तह परिहरेवि।।
10 सम्मत्तरयणभूसण धरेवि ससियर-समु तियरणु थिरु करेवि।।

घत्ता— णिद्दूसणु सरदूसणु मणिकरिंदु संदाणइ।
णिरवेक्खउ जयलक्खउ जो सयरायरु जाणइ।। 168।।

10/3

पार्श्व-प्रभु का श्रावक-धर्म पर प्रवचन—

रविकीर्ति राजा ने वनपाल की जब यह सूचना सुनी, तब वह अपना सिंहासन छोड़ कर, सात पैड आगे बढ़कर दोनों करतल जोड़ कर तथा उन्हें अपने भालतल पर स्थापित कर उन्हें (परोक्ष–) प्रणाम किया।

श्री वामादेवी के गर्भ से उत्पन्न मृत्यु, जन्म और जरा को जीतने वाले उन प्रभु को दूर से ही नमस्कार किया। पुनः साधन (परिकर) सहित, उठकर वह वहाँ गया, जहाँ देवाधिदेव विराजमान थे। पुन शीघ्र ही प्रभावती भी सुख की जननी अपनी माता के साथ समवशरण में गई। नरनाथ ने पार्श्व प्रभु को प्रणामकर उनकी स्तुति की और मिथ्यात्व रूपी अन्धकार को दूर कर वह अपने कोठे में जा बैठा। बैठकर उसने जिनेन्द्र से **श्रावक धर्म** का भेद पूछा–

राजा रविकीर्ति के प्रश्न को सुन कर तीर्थदेव ने कहा— सुनो, मैं गृहस्थ सम्बन्धी उस धर्म को कहता हूँ जो स्वर्ग-अपवर्ग को देने वाला है। शंकादि सकल (25) दोषों को छोड़कर तथा मिथ्यात्वभाव का परिहार कर सम्यक्त्व रूपी रत्नाभूषण को धारण कर पुनः चन्द्रसमान तीनों करणों (मन, वचन, काय) को स्थिर करना चाहिए।

घत्ता— —जो निर्दोष (दोष रहित) सरदूषण (स्मर को दूर भगाने वाले) मन रूपी करीन्द्र को (गज) बाँधने वाले, निरपेक्ष (इस लोक तथा परलोक की आकांक्षा रहित), विजय लक्षण वाले, (रागद्वेष को जीतने के कारण जय शब्द से जाने जाने वाले), तथा चराचर सबको जानने वाले हैं—।। 168।।

10/4
Preachings on House-Holders' code of conduct.

केवल-लच्छी परिरंभुयासु तिगुणिय छद्दोस विवज्जियासु।।
अरिहंतहो तहो पयपंकयाइँ पणविज्जहिँ णिरु णिप्पंकयाइँ।।
जह-जायलिंग लच्छीहरासु थिरभाव णिहय धरणीहरासु।।
तिक्काल पवंदिय जिणवरासु परिहरिय परिग्गह मुणि वरासु।।
5 आएसु पडिच्छिज्जइ जवेण गुणरयण थुणिज्जहि कलरवेण।।
विरइज्जइ रइगयहिँ सधम्मे णिक्खत्तिय चिरकय असुह कम्मे।।
णिग्गंथहो परणिट्ठाणु होइ एरिसु वज्जरइ जिणिंदु जोइ।।
एरिसउ होइ लक्खणु णिरुत्तु सम्मत्तहो जिणवइणा पउत्तु।।
सम्मत्त पहावें सुरयणाहँ संदोहें णिम्मल यरमणाहँ।।
10 पुज्जिज्जइ णरु तिहुअणे विमोक्खु पुणु जाइ संजणिय परम सोक्खु।।

घत्ता— गुणजुत्तहो सम्मत्तहो विवरीए मिच्छत्तं।
भवसायरि असुहायरि पाडिज्जइ अक्खत्तं।। 169।।

10/4
श्रावक-धर्म पर प्रवचन (जारी)—

–जो केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी का आलिंगन करने वाले हैं, जो अठारह प्रकार के दोषों से रहित हैं, उन्हें **अरिहंतदेव** कहते हैं। उनके निष्पंक (कर्ममल रहित) चरण-कमलों को निष्कम्प-रीति से प्रणाम करो।

यथाजातलिंग (नग्न-दिगम्बरी वेष) रूप लक्ष्मी (शोभा) के धारक, स्थिरभावों द्वारा कर्म रूपी पर्वतों को जीतने वाले, जिनवर की त्रिकाल वंदना करने वाले, परिग्रह के त्यागी, **मुनिवरों (गुरु)** को प्रणाम कर शीघ्र ही उनसे आदेश की प्रतीक्षा कर मधुर शब्दों से उन गुणरत्न गुरु की स्तुति करना चाहिए।

राग का त्याग करना चाहिए, पुराने अशुभ कर्मों को काटने वाले, स्वधर्म (निश्चय-आत्म धर्म) को प्राप्त निर्ग्रन्थों को, जिन्हें जिनेन्द्र देव ने योगी भी कहा है, के प्रति परिनिष्ठा (श्रद्धान) रखना चाहिए, जिनपति ने इसे ही **सम्यक्त्व** का लक्षण कहा है।

सम्यक्त्व के प्रभाव से ही निर्मलतर मनवाला वह श्रावक देवगणों द्वारा भी पूजा जाता है। त्रिभुवन में ऐसा श्रावक मानव मोक्ष को प्राप्त करता है और वहाँ परम सुख को उत्पन्न करता है।

घत्ता— गुण-युक्त सम्यक्त्व का विपरीत श्रद्धान करना ही **मिथ्यात्व** है, जो कि भवसागर के दुःखों का आकर है। वह उसमें बेरोक-टोक पटक दिया जाता है।। 169।।

10/5

Preachings on Srāvaka-Dharma continues. Non-violance is the best precept.

एउ मुणेवि जिणागम परम-धम्मु कुरु महिवइ णिरसहि असुह-कम्मु।।
दयमूलु जासु पयणिय सुहासु णिम्मूलुम्मूलिय भव-दुमासु।।
दयसहिउ थोडो वि धम्मु जो करइ तासु परिसहलु जम्मु।।
उद्दिसिवि देउ जइ जीवघाउ किज्जइ तहवि संभवइ पाउ।।
5 किं विसमीसिउ गुडु-गसिउ वप्प णिहडइ ण पाण परणिय वियप्प।।
एउ मुणेवि विउज्झिवि हिंसभाउ कुरु सदउ धम्मु अइ साणुराउ।।
करुणए बिणु णियमु वि मूलु जाइ कहिबिणु मूलेण महीरुहु थाइ।।
सम्मत्तु पढमु मणे थिरु करेवि मुणिणाह वयणु विहि अणुसरेवि।।
वज्जियइ दूरि महु-मज्जु-मंसु णिव्वाण-सोक्ख संपत्ति भंसु।।
10 तह भक्खणि पंचुंबरफलाहँ बहुजीव जोणि अइसंकुलाहँ।।

घत्ता— कय तावइँ बहु पावइँ वसणइँ सत्तेँ वि उज्झहि।
घरवासहो जमपासहो मा मोहेण विमुज्झहि।। 170।।

10/5

(श्रावक-धर्म-प्रवचन जारी-) अहिंसा ही परमधर्म है—

हे महीपति, यही परमधर्म जिनागम से जानकर (मनन पूर्वक) अपने आचरण में लाओ, अशुभ कर्म नष्ट करो, जिस **परमधर्म का मूल दया** है, जो परमधर्म सुख की अभिलाषा पूर्ण करने वाला है, जो संसार वृक्ष को जड़ से उखाड़ने वाला है, दयासहित जो भी इस परमधर्म को थोड़ा सा भी पालन करते हैं, उनका जन्म सभी प्रकार से (परि) सफल है।

देव को उद्देश्य बनाकर यदि जीव घात किया जाता है, तो उससे भी पाप होता है। विषमिश्रित गुड़ यदि खाया जाय, तो पापों में परिणत विकल्पसहित क्या वह प्राणों की हत्या नहीं करता? यह मानकर हिंस्य-भाव को छोड़कर अत्यन्त अनुराग पूर्वक दया-धर्म करो।

करुणा के बिना मूल नियम भी चला जाता (नष्ट हो जाता) है। मूल के बिना क्या वृक्ष स्थिर रह सकता है? सर्व प्रथम मन में **सम्यक्त्व** को स्थिर करो।

मुनिनाथ के वचनों की विधि का अनुसरण कर, **मधु, मद्य एवं माँस का दूर से ही त्याग करो** क्योंकि ये तीनों मकार गीर्वाण (स्वर्ग-देव) सुख की सम्पत्ति का भ्रंश कर डालते हैं। इसी प्रकार **पांच उदुम्बर फलों** का भक्षण भी महापाप है। क्योंकि ये पाँचों फल जीवों से प्रचुर मात्रा में भरे हुए रहते हैं। (अतः उनका त्याग भी आवश्यक है।)

घत्ता— सन्तापकारी, विविध पापकारी **सप्त-व्यसनों** को भी छोड़ो। यह गृहवास यमदेव का पाश है। अतः इसके मोह से भी मोहित मत रहो।। 170।।

10/6

Preachings continued. Discourse on five Aṇuvratas (i.g. five vows— primary abstenation from the five sins) and on three Guṇavratas (Multiplicative vows) described.

सहुँ सायहिँ भुंजि म कंदरासि तह तरु-कुसुमइँ रिउ कंठ-पासि।।
दिढ-दिट्ठि-मुट्ठि संधाणु वाणु विरस वि म मारहि जीव जाणु।।
बेइंदियादि परिहरहिँ तेम संभवइ पाउ ण मणावि जेम।।
बोल्लियइ सुहंकरु तेम सच्चु दूसियइ जिणहो णउ जेम तच्चु।।
5 परदव्वु णिरिक्खिवि णियमणेण चिंतिज्जइ तिणु जह भवियणेण।।
परतिय पेक्खेवि परमत्थु जाण मेल्लंति माय-बहिणी-समाण।।
परमाणउ धण-कण-कंचणहँ घर-दासि-दास-वसणासणाहँ।।
विरयहि संकोडेवि लोभाउ भवियण पयडहिँ णिम्मल-सहाउ।।
एयइँ पंचाणुव्वयइँ जेम णिसुणज्जहि णिव गुणवयइँ तेम।।
10 दिस-देसाणत्थहँ विरइ भव्व विरयंति समणे परिहरिय गव्व।।

घत्ता— सुहभोयहँ उवभोयहँ किज्जइ संख णरेसर।
एव्वहिँ पुणु णिहुअउ सुणु सिक्खावय कुलणेसर।। 171।।

10/6

पाँच अणुव्रतों एवं तीन गुणव्रतों का वर्णन (श्रावक-धर्म-प्रवचन जारी)—

शाक के साथ कंदमूल राशि को मत खाओ तथा वृक्षों के पुष्पों को, जो कि अपने लिये रिपु के समान (अनिष्ट) है, उन्हें अपने कण्ठ का पाश मत बनाओ। दृढ़ दृष्टि, मुष्टि एवं बाण-संधान, विरस को भी जीव मानकर मत मारो। उसी प्रकार द्वीन्द्रियादि जीवों को भी मत मारो जिससे कि थोड़ा सा भी पाप लगे। (यही (1) **अहिंसाणुव्रत** है)।

जो शुभ करने वाले हों ऐसे सत्य वचन बोलो, जिससे जिनेन्द्र का तत्व दूषित न हो। (यही (2) **सत्याणुव्रत** है)। पर-द्रव्य-धन को देखकर अपने मन में उसे तृण के समान समझो, (क्योंकि भव्यजन तृण को नहीं ग्रहण करते।) (यही (3) **अचौर्याणुव्रत** है) परस्त्री को देखकर परमार्थ से उसे माता, बहिन, और पुत्री के समान जानकर छोड़ो। (यही (4) **ब्रह्मचर्याणुव्रत** है।)

धन, कण, कंचन, घर, दासी, दास, वसन, (वस्त्र) आपण, आदि परिग्रह का तथा लोभ-भाव का संकोच कर ही प्रमाण करो। (यही (5) **परिग्रह-परिमाणाणुव्रत** है)। भव्यजन इसी प्रकार अपना निर्मल स्वभाव प्रगट करें।

हे राजन्, जैसे आपने ये पाँच अणुव्रत सुनें, उसी प्रकार अब गुणव्रतों को भी सुनो। हे भव्यजन, दिशा, देश एवं अनर्थ का त्याग करो। ये **गुणव्रत** कहलाते हैं। अपने मन से गर्व का त्याग करो। मैं व्रती श्रमण बन गया, ऐसा मान-अहंकार छोड़ो।

घत्ता— हे नरेश्वर, शुभ भोगों एवं उपभोगों की संख्या का प्रमाण करो। अब आगे हे कुल-सूर्य, एकाग्र मन से शिक्षाव्रतों को सुनो।। 171।।

10/7

Preachings continued. — Four Shikṣāvratas (Disciplinary vows)

सव्वहो खमामि असुहरगणासु मज्झु वि खमंतु णिम्मलमणासु।।
एउ भणेवि मुएवि कम्मइँ जिणासु थुइ विरइज्जइ जिय-सरकणासु।।
एक्कहि दिणि सुद्ध तियरणेण णिरु तिण्णिवार रंजिय मणेण।।
अट्ठमि-चउदिसि सिवसुह णिवासु किज्जइ उववासु महाणिवासु।।
5 जाएवि जिणमंदिरे जिणवराइँ पुज्जेविणु पणविवि मुणिवराइँ।।
वज्जिवि संकाइ असेस दोस अवरेवि विभाव संजणिय सोस।।
घरदारपत्त पत्तहो णरेण आहारदाणु दिज्जइ भरेण।।
अत्थमिय दिवायरे कित्तिकंद विरइज्जइ भोयणु णउ णरिंद।।
विणिवारिउ दिणि मेहुणहु कम्मु अणवरउ रइय जर-मरण-जम्मु।।
10 अवसाणे विवज्जिवि सव्व संगु सल्लेहण किज्जइ सुह-पसंगु।।

घत्ता— आराहण सिवसुह साहण चउविह आराहिज्जइ।
णियचित्तेँ सुपवित्तेँ पाण-चाउ पुणु किज्जइ।। 172।।

10/7

चार शिक्षाव्रत (श्रावक-धर्म-प्रवचन जारी)—

मैं सभी जीवधारियों के दोषों को क्षमा करता हूँ। सभी जीव निर्मल मन से मुझे भी क्षमा करें, ऐसा कहकर क्रिया-कर्मों को छोड़कर, स्मर के वाणों को जीतने वाले जिनेन्द्र की स्तुति करना चाहिए और शुद्ध त्रिकरण पूर्वक प्रतिदिन प्रसन्नधर्मानुरागी मन से तीन बार ध्यान करना चाहिए। (यह **सामायिक** नाम का प्रथम शिक्षाव्रत है।)

अष्टमी-चतुर्दशी ये दोनों ही पर्व शिव-सुख के महानिवास स्थल हैं। इन दोनों पर्वों में महा गुणों के निवासभूत उपवास करना चाहिए। जिनमंदिर में जाकर जिनवरों की पूजाकर, मुनिवरों को प्रणाम कर, शंका आदि संपूर्ण दोषों को त्यागकर, शोष (दुःख) को उत्पन्न करने वाले विकारभाव (विविध विभावों) को छोड़कर उपवास करना चाहिए। (यह **प्रोषधोपवास** नाम का द्वितीय शिक्षाव्रत है।)

घर के द्वार पर आए सत्पात्रों को अपनी शक्तिभर आहार आदि दान देना चाहिए। सूर्य के अस्त होने पर हे कीर्तिकंद नरेन्द्र। भोजन नहीं करना चाहिए। (यह **अतिथि–) संविभाग** नाम का तृतीय शिक्षाव्रत है।

दिन में मैथुन-कर्म का त्याग करो क्योंकि वह (मैथुनकर्म) जरा, मरण एवं जन्म की रचना करता है। (यह भी रात्रि-भोजन-त्याग में सम्मिलित है)। अवसान अर्थात् आयु के अन्त में समस्त परिग्रहों का त्यागकर सुख की प्रसंग-भूत सल्लेखना (समाधिमरण) धारण करना चाहिए। (यह **सल्लेखना** नाम का चौथा शिक्षाव्रत है)।

घत्ता— शिव-सुख का साधन ही आराधना है। वह आराधना चार प्रकार की है। मन को पवित्र तथा स्थिर करके प्राण-त्याग करना चाहिए। (यह **संन्यास-समाधिमरण** व्रत है)।। 172।।

10/8

Lord Pārśwa arrives in Śauripura town.

इय णिसुणेविणु सावय-वयाइँ पयणिय सासय सिवसंपयाइँ।।
रविकित्ति णरिंदेँ णविवि देउ सम्मत्तु लइउ जिय-मयरकेउ।।
पडिवण्णइ बारह विह वयाइँ विणिवारिय संसारावयाइँ।।
तहिँ अवसरि चंदब्भ-पहावईए रविकित्ति तणूअ पहावईए।।
पणवेप्पिणु पयपरमेसरासु सोसिय संसार-सरोवरासु।।
संठिय थिर-मण संगहिवि दिक्ख अज्जिय समीवे परिमुणिवि सिक्ख।।
पालंति सयल णिम्मलवयाइँ अवणेवि सत्त वि मणगय भयाइँ।।
जिय मयणसेणु हयसेण-पुत्तु विहरंतउ चउविह संघ-जुत्तु।।
चउविह विसाल घण घाइचत्तु सउरीपुरवरे जिणणाहु पत्तु।।
तहिँ वसइ पहंजणु पुहविपालु असिवर णिल्लूरिय रिउ-कवालु।।

घत्ता— जणवयणहो हयमयणहो अरुहागमु जाणेविणु।
लहु णिग्गउ णं दिग्गउ हरिस-लच्छि माणेविणु।। 173।।

10/8

पार्श्व-प्रभु शौरीपुर नगर में प्रवेश करते हैं—

इस प्रकार श्रावक-व्रतों को सुनकर राजा रविकीर्ति ने कामदेव को जीतने वाले प्रभु को नमस्कार कर सम्यक्त्व ग्रहण किया। उसने शाश्वत शिव-संपदा के देने वाले तथा संसार की आपदाओं को दूर करने वाले उन द्वादशविध श्रावक-व्रतों को धारण किया।

उसी अवसर पर चंद्रमा के समान कान्तिवाली रविकीर्ति की पुत्री प्रभावती ने संसार रूपी सरोवर को सुखा देने वाले परमेश्वर के चरणों में प्रणाम कर एक आर्यिका के समीप स्थिर मन से दीक्षा ग्रहण की और (आगमों की) शिक्षा ग्रहण करने लगी।

उसने वहाँ सकलव्रतों का निर्मल रीति से पालन कर मन में बैठे हुए सातों प्रकार के भयों को दूर किया। मदन की सेना को जीतने वाले, हयसेन के पुत्र पार्श्वप्रभु ने चतुर्विध संघ सहित वहाँ से विहार किया और चलते-चलते चतुर्विध-संघ सहित तथा विशाल घन-घातिया कर्मों से रहित वे जिननाथ **शौरीपुर** पहुँचे। उस समय शौरीपुर में असिवर से रिपुजनों के कपालों को काट डालने वाला राजा प्रभंजन का राज्य था।

घत्ता— जनता के कथन से मदन को नष्ट करने वाले अर्हन्त का आगमन जानकर वह राजा उसी प्रकार शीघ्र ही निकला, मानों हर्ष रूपी लक्ष्मी को मानकर दिग्गज ही घर से निकला हो।। 173।।

10/9

King Prabhañjana comes to the Preaching-Hall (Samavaśarana) to listen religious discourses.

सामंत-मंति परियरिउ जंतु ससिकंत कित्ति कामिणिहिँ कंतु।।
संपत्तु पहंजणु णिवइ तेत्थु णिवसइ जिणु पासु संसरणु जेत्थु।।
पणवेविणु थुइ पारद्ध जाम चउदेवणिकाय सुणंति ताम।।
जय-जय परमेसर वीयराय माणिय केवल-सररुहपराय।।
5 जयभुवण-भवण-उद्धरण-खंभ परिहरिय णिहिल आरंभ-डंभ।।
जय भुअण भमिर मणभमर-रुंभ जय तिजयणाह मणसिय णिसुंभ।।
जय भीमभवोवहि तरणपोय णिरसिय संसारुप्पति सोय।।
जय मह-मिच्छत्त-तमोह-सूर सविणय पणविय भवियासपूर।।
जय देव दिण्ण दुंदुहि-रवाल सइँ उप्पाडिय सिर-कुडिलबाल।।
10 जय धम्म मग्ग भासण-पवीण अइतिव्व-दुविह तव-ताव-झीण।।

घत्ता— जिणपासहो गयपासहो थुइ विरएवि पहंजणु।
उवविट्ठउ जणदिट्ठउ णियकोट्ठए गुणि-रंजणु।। 174।।

10/9

शौरीपुर के राजा प्रभंजन का धर्म-श्रवण हेतु समवशरण में प्रवेश—

सामंतों एवं मंत्रियों से घिरा हुआ तथा चन्द्रमा की कान्ति के समान कीर्ति नाम की कामिनी का वह पति राजा प्रभंजन चलकर वहाँ पहुँचा जहाँ पार्श्वप्रभु का समवसरण विराजमान था। उसने प्रणाम करके जब अपनी स्तुति (निम्न प्रकार से) प्रारम्भ की, तब चारों निकायों के देव उस स्तुति का श्रवण करने लगे—

—हे परमेश्वर, हे वीतराग आपकी जय हो, जय हो। हे केवलज्ञान रूपी कमल-पराग से विभूषित, हे भुवनरूपी महल के आधार स्तम्भ के समान तथा समस्त आरम्भ एवं परिग्रहों के आडम्बरों का त्याग करने वाले हे देव, आपकी जय हो। संसार में घूमने वाले मन रूपी भ्रमर को रोकने वाले हे देव, आपकी जय हो। मनसिज-काम के मन्थन करने वाले हे त्रिजगन्नाथ, आपकी जय हो। भयंकर संसार रूपी समुद्र से पार होने के लिये जहाज के समान हे देव, आपकी जय हो।

संसार की उत्पत्ति के स्रोत को नष्ट करने वाले हे देव, आपकी जय हो। मिथ्यात्व रूपी घने अंधकार-समूह को नाश करने के लिये सूर्य के समान हे देव, आपकी जय हो। विनयसहित प्रणाम करने वाले भव्यों की आशा को पूर्ण करने वाले हे देव, आपकी जय हो। देवों द्वारा बजाई गई दुन्दुभि-वाद्य की मनोहर ध्वनि से युक्त हे देव, आपकी जय हो। शिर के कुटिल केशों को स्वयं उपाड़ने वाले हे देव, आपकी जय हो। धर्म-मार्ग के उपदेश देने में कुशल हे देव, आपकी जय हो, अति तीव्र द्विविध तपों की ताप से क्षीण कृश देहवाले हे देव, आपकी जय हो।

घत्ता— जिनका संसार रूपी पाश नष्ट हो गया है, ऐसे पार्श्व-जिन की स्तुति करने के बाद उस राजा प्रभंजन को लोगों ने गुणियों को प्रसन्न करने वाले अपने प्रकोष्ठ में बैठते हुए देखा।। 174।।

10/10

The King inquisitively asks questions on different elements. (Tattwas, i.g. living beings, non-living etc.)

एत्थंतरि पुच्छिउ अरुहणाहु वज्जरइ विणिज्जिय मयण-दाहु।।
दोविह हवंति असुहर सकोह संसारिय सिद्ध पसिद्ध बोह।।
णिक्किट्ठ-दुट्ठ-कम्मट्ठ-मुक्क ते भणिय सिद्ध जे सिद्धि-ढुक्क।।
संसारिय पुणु दुविहा हवंति बहु दुक्ख-भरिय चउगइ भवंति।।
5 थावर जंगम भेएण जाणि णिम्मल-बुद्धिए मणि-भंति माणि।।
एइदियाइँ थावराइँ थंति बे-इंदिय पउ जंगम चलंति।।
ते पुणु दुविह जाणिय जिणेण सयलवि अभव्व भव्वत्तणेण।।
सिज्झंति होंति जे जीव भव्व सिज्झंति कयावि ण पुणु अभव्व।।
संसारिय असुहर बहुविहेसु जोणीसु भमति महादुहेसु।।
10 जिह णडु अण्णण्ण पविहिय पजोउ णवरस-पओय विभंविय लोउ।।

घत्ता— तिह लिंतइँ मिल्लंतइँ पुग्गलाइँ जीव वि णिरु।।
संसारए णीसारए असुहकम्म पेरिय चिरु।। 175।।

10/10

राजा प्रभंजन जीवादि-तत्त्वों की जानकारी हेतु पार्श्व से प्रश्न पूछता है—

इसी बीच उस राजा प्रभंजन ने उन अरिहन्तनाथ से जिज्ञासावश जीवादि-तत्त्वों सम्बन्धी प्रश्न पूछा— तब काम की दाह को जीतने वाले वे प्रभु बोले— असुहर (प्राणी) दो प्रकार के हैं— (1) क्रोध सहित **संसारी जीव** और (2) प्रसिद्ध बोधपूर्ण सिद्ध अर्थात् **पूर्ण ज्ञानी जीव**।

निकृष्ट दुष्ट अष्टकर्मों से मुक्त सिद्धि में जो प्रविष्ट हैं, उन्हें सिद्ध जीव कहते हैं, और जो विविध दुःखों से व्याप्त चारों गतियों में भटकते फिरते हैं उन्हें संसारी जीव कहते हैं। वे भी दो प्रकार के हैं— **स्थावर** और **जंगम** (त्रस) रूप भेद से जानना चाहिए। निर्मल बुद्धि से जानकर मन की भ्रान्ति को मिटाओ। एकेन्द्रिय (स्पर्शन वाले) स्थावर जीव हैं। दोइंद्रियादि जो पैरों (पउ) से चलते है, सो जंगम जानों।

जिनेन्द्र ने वे सब भी दो प्रकार के बताये हैं। सभी संसारी जीव अभव्य एवं भव्य रूप से दो प्रकार के हैं। जो सिद्धपने को प्राप्त होते है, वे **भव्यजीव** है, जो कभी सिद्ध नहीं होंगे, उन्हें **अभव्य** जानों।

संसारी-प्राणी महादुःखों से भरी अनेक प्रकार की योनियों में उसी प्रकार भ्रमण करते है, जिस प्रकार अन्य-अन्य प्रयोगों से प्रेरित नट नवरसों के प्रबोध से लोकों को आश्चर्य में डालता है।

घत्ता— यह जीव भी निश्चित रूप से इस निस्सार संसार में अनादिकाल से पुद्गलादि अशुभ कर्मों से प्रेरित होकर अनेक लोकों को ग्रहण करता और छोड़ता रहता है।। 175।।

10/11

Lord Pārśwa gives an account of pain and sorrows of wanderings (taking birth) in 84 Lacs yonies (different kinds of lives).

तिलमित्तु णत्थि तं भू-पएसु सुण्णउ जि किंपि जंपइ जिणेसु।।
जहिँ विविह-वाहि-संदोह-भीउ कालेण ण णट्ठुप्पण्णु जीउ।।
णिच्चेयर मरु-महि-सिहि-जलाहँ मुणि सत्त-सत्त लक्खइँ जि ताहँ।।
पुणु चारि-चारि लक्खइँ सुराहँ तिरियहँ णारइयहँ भासुराहँ।।
5 दो-दो लक्खइँ वियलिंदियाहँ दहलक्खइँ वणप्फइ काइयाहँ।।
चउदह लक्खं मणुअहँ हवंति केवल-लोयण जिणवर चवंति।।
चउरासी लक्खइँ जोणि जाणि सव्वइँ मिलियइँ जहिँ रमइ पाणि।।
आयहिँ भमंतु णिय कम्मणीउ विहियावय विसयासत्तु जीउ।।
ण रमइ अरुहागम भणिय धम्मि लग्गइ णिंदिय-जण-विहिय-कम्मि।।
10 अह तहो ण दोसु णिय कम्म भुत्तु अवणेइ जिणेसर तणउ सुत्तु।।

घत्ता— णउ विंदइ जिणु णिंदइ अणयवित्ति पविहावइ।
वंदिणअहँ सुरमणुअहँ भोउ कासु णउ भावइ।। 176।।

10/11

पार्श्व-प्रभु द्वारा 84 लाख योनियों का वर्णन—

जिनेश पार्श्व प्रभु ने बताया कि इस जगत में तिल मात्र भी ऐसा कोई प्रदेश शून्य नहीं है, जहाँ विविध प्रकार की व्याधियों से भयभीत होकर यह जीव अपने आयु-कर्म के समाप्त होने पर मरा अथवा उत्पन्न हुआ हो।

नित्य-निगोद, इतर-निगोद, वायुकाय, पृथ्वीकाय, अग्निकाय और जलकाय, इनकी 7-7 लाख योनियाँ हैं (इस प्रकार इन षट्कायिक जीवों की 6X7=42 लाख), देवों की 4-4 लाख योनियाँ, इसी प्रकार तिर्यंचों की 4 लाख, एवं नारकियों की 4 लाख, (कुल 4+4+4=12 लाख)। दो इंद्रियों की 2 लाख, तीन इंद्रियों की 2 लाख, एवं चार इंद्रियों की 2 लाख, ऐसे विकलत्रयों की कुल 2+2+2=6 लाख तथा प्रत्येक वनस्पति-कायिकों की 10 लाख योनियाँ, मनुष्यों की 14 लाख योनियाँ, इस प्रकार 84 लाख योनियाँ जिनवर देव ने अपने केवलज्ञान से देख कर कहीं है। ये सभी मिलाकर चौरासी लाख जीव-योनियाँ[1] जानो।

इन सभी योनियों में प्राणी रमते हैं। अपने-अपने कर्मों से प्रेरित होकर यह जीव अपनी आपदाओं और विषयों में आसक्त होकर इन योनियों में भटकता रहता है। जो अरिहन्तों द्वारा कथित आगमों में कहे गये धर्म में नहीं रमते और निन्दित (हिंसक, एकान्ती) जनों द्वारा विहित कर्मों लगे रहते हैं, वे ही इन योनियों में जन्म लेते हैं अथवा यह जीव का दोष नहीं है, यह तो निज कर्मों का ही भोग होता है, जिसे जिनेश्वर-कथित आगम-सूत्र ही हटा सकता है।

घत्ता— जो जिनेन्द्र को नहीं जानता, उनकी निन्दा करता रहता है तथा अन्यायवृत्ति को बढ़ाता रहता है, और भोगों में आसक्त बना रहता है। भला बन्दीजनों द्वारा नमस्कृत देवों एवं मनुष्यों के लिये प्राप्त भोग किसे अच्छे नहीं लगते?।। 176।।

---

1. मातृ-पक्ष के परमाणु, जहाँ पर जीवों की उत्पत्ति होती है, ऐसे आधारभूत परमाणुओं को योनि कहते हैं।

10/12

The effect of following the religious path.

भोउ वि लब्भइ जिण-देसिएण धम्मेण जीव संभीसिएण।
जं रूब रयणु जण-णयणहारि पइवय गुणधारिणि सुहय-णारि।।
बाहु-बलु रयण-मयहरु-विहूइ वरवाहणु-उत्तम-कुल-पसूइ।।
सुसहोयर-सुअ-माया-पियाइँ सुहियण-सयणासण-तणुहियाइँ।।
एयायवत्त-महिलच्छि-जुत्त सिय-चल-चामर-पयडिय-पहुत्त।।
देवंगवत्थ-भोयण-विवित्त णाडय-जण विरइय विविह-चित्त।।
तं सव्वु वि जिण-धम्मेण होइ किं बिणु बीएँ कणु लहइ कोइ।।
किं बहुणा बिहलँ जंपिएण पुणु-पुणु वि सचित्ति वियप्पिएण।।
गयराय भणिय धम्मेण वप्प सविणय माणुसहो विमुक्क दप्प।।
हरि-हलहरु-चक्कि-जिणेसराहँ भोयाइँ होंति णिज्जिय-सराहँ।।

घत्ता— जो धम्मेँ कय सम्मेँ विणु भोयइँ मणि वंछइ।
सो सलिलइँ हय-कलिलइँ जलहरेण बिणु इच्छइ।। 177।।

10/12

धर्म-पालन के फल—

हे जीव, उत्तम भोग भी जिनोपदिष्ट दया-धर्म से तथा पापों से डरने वालों को ही प्राप्त होते हैं। पतिव्रता, गुणधारिणी, सुखदात्री तथा लोगों के चित्त का अपहरण करने वाली रूप-रत्न से युक्त नारी, बाहुबल, रत्नमय-भवन, विभूतियाँ, उत्तमवाहन, उत्तमकुल में जन्म, उत्तम सहोदर भाई, पुत्र, माता-पिता, सुधीजन, उत्तम सुखद शयनासन, शरीर के हितकारक, पृथिवी रूपी लक्ष्मी पर एकछत्र शासन, श्वेत चंचल-चामरों से प्रकटित प्रभुत्व, देवोपम अंग-प्रत्यंग, उत्तम वस्त्र, विविध प्रकार के भोजन, विविध प्रकार के चित्र-विचित्र, लोगों द्वारा किये जाने वाले मनोरंजक नाटक आदि ये सभी जैनधर्म के प्रभाव से ही प्राप्त होते हैं।

क्या कोई बिना बीज-वपन के ही धान्य उत्पन्न कर सकता है? व्यर्थ में अधिक कहने से क्या लाभ? अपने मन में बार-बार विकल्प करने से भी क्या लाभ?

हे निरभिमानी, गत राग-वीतराग द्वारा कथित धर्म के प्रभाव से ही विनयशील मनुष्य हरि, हलधर, चक्री, तथा कामविजेता जिनेश्वर आदि के भोग प्राप्त करते हैं।

घत्ता— जो पुरुष समताभाव उत्पन्न करने वाले धर्म के बिना ही मनवांछित भोगों को चाहता है, वह पुरुष मेघों के बिना ही पंकरहित निर्मल जल प्राप्त करने की कामना करता है।। 177।।

10/13

The preachings on renunciation.

धम्मोवरि कीरइ स-मइ तेण बिणु धम्में होइ न सोक्खु जेण।।
गेहंतरि थिरु थाहरइ दव्वु तंबोलु-विहूसणु-वसणु सव्वु।।
सुहि-सयण-पियर गच्छंति ताम दुम्मण रोवंत मसाणु जाम।।
इक्कु जि परदिण्ण परत्त सम्मु णिव्वूढ सहेज्जउ होइ धम्मु।।
5 धम्मु जि पिय पियरइँ धम्मु-मित्तु धम्मु जि सुरतरु वरु धम्मु वित्तु।।
संझारायं पिव बंधु लोउ सुरराय-चाप-संकास-भोउ।।
सरयामलघण समु जीवियव्वु तणं लग्गोसा वि दुव्व दव्वु।।
संपा-समाण घर-दासि-दास छाया विलासणिह तणुरुहासु।।
कंडूवमु पविहिय दुक्खु कामु गिरि सरि पवाह समु करण जामु।।
10 फेणु व जोव्वणु सुइणं व देहु घण जल बुव्वुव सण्णिहु सणेहु।।

घत्ता— इय बुज्झिवि संकुज्झिवि झत्ति स-मइ जिणसासणे।
विरएवि वारेवि कुपहि जंति तिमिरासणि।। 178।।

10/13

वैराग्य का उपदेश—

इस कारण धर्म के ऊपर अपनी बुद्धि लगाइये क्योंकि धर्म के बिना सुख प्राप्त नहीं हो सकता। द्रव्य तो घर के भीतर ही स्थिर रहता है तथा ताम्बूल-सेवन, विभूषण, व्यसन आदि सभी दुर्व्यसनों में रति उत्पन्न कर कर्मों का बन्ध ही कराते हैं। वे परलोक में साथ नहीं जा सकते।

मित्रगण, स्वजन, माता-पिता भी मृत्यु के समय दुःखीमन होकर रोते-कलपते हुए केवल श्मशान तक ही जाकर लौट आते हैं। (वे परलोक में साथ-साथ नहीं जा सकते) परलोक में तो केवल सम्यक्त्व धर्म ही साथ देता है। अतः उसे ही विवेकपूर्वक सहेजना चाहिए।

धर्म ही प्रिय माता-पिता है, वही प्रिय मित्र है, वही कल्पवृक्ष है तथा वही श्रेष्ठ वित्त है। निकट बन्धुजन सन्ध्याकालीन राग के समान, भोगों को इन्द्रधनुष के समान, जीवन शरदकालीन मेघ के समान क्षणभंगुर द्रव्य दूब में लगे हुए ओसबिन्दु के समान, घर, दासी-दास आदि के सुख बिजली की क्षणिक् चमक के समान, पुत्र, शरीर आदि के विलास चंचल छाया के समान, दुखकारक काम-विषय खुजली के समान, इन्द्रिय-समूह पर्वत से निकली हुई नदी-प्रवाह के समान, यौवन फेन (झाग) के समान, देह स्वप्न के समान तथा मित्रों का स्नेह जल के बुलबुले के समान है।

घत्ता— यह जानकर शंका छोड़कर अनित्य-भोगों से हटकर शीघ्र ही अज्ञान के नाशक जिन-शासन में अपनी बुद्धि लगाइये और अपने को कुमार्ग में जाने से बचाइये।। 178।।

10/14

Getting human life is rare.

बालेण वि विरइज्जइ सुधम्मु णयमग्ग-पवीणँ अइ अगम्मु।।
किं बालहो पवहइ जमु ण झत्ति बहु-विविह-वाहि-पयडिवि ससत्ति।।
अण्णेसु अत्थि कम्मंतरेसु परिवाडियम्मि णउ दुत्तरेसु।।
च्छिद्दिक्क गवेसणु करइ तेम अहणिसु जमराउ-कुमाराउ जेम।।
5 परिवडिउ जीउ रोगावईसु पणरह-पमाय-तरु संतईसु।।
पंचत्त वग्घ भक्खिज्जमाणु उव्वरइ कियंतउ कालु जाणु।।
मा अज्ज-कल्लि चिंतहु मणेण जिणभणिउ धम्मु किज्जइ खणेण।।
णिग्घिण्णु णिराणुकंपउ करालु खयसिहिव सव्वु णिड्डहइ कालु।।
जुअसमिला[1] संजोएण जीउ पावइ णरत्तु णिय कम्मणीउ।।
10 परकुमइ पयासइ धम्मि लग्गु ण मुणइ कयावि मणि मुक्ख मग्गु।।

घत्ता— तणु मित्तउ चिम्मित्तउ जीउ अणिहणु अणाइउ।
जिह कत्तउ तिह भोत्तउ सइँ अमुत्तु गुण-राइउ।। 179।।

10/14

मनुष्य-जन्म की दुर्लभता—

सत्य धर्म का पालन तो बालकों के द्वारा भी किया जाना चाहिए, यद्यपि वह (धर्म) नय-मार्ग में प्रवीण लोगों के लिये भी अति अगम्य है। यमराज विविध प्रकार की व्याधियों में अपनी शक्ति प्रकट कर क्या बालक को शीघ्र ही नहीं पकड़ लेता?

अन्य दुस्तर कर्मान्तरों की परिपाटियों में कोई क्रम नहीं है। यमराजकुमार अहर्निश छिद्रान्वेषण ही करता रहता है। पन्द्रह प्रमाद रूपी वृक्षों की संततियों में रोग आदि आपत्तियों में फँसा हुआ यह जीव मृत्यु रूपी व्याघ्र द्वारा खाया जाता है, ऐसा जानों कि उससे वह कितने समय तक बचा रह सकता है?

अतः आज या कल का अपने मन में विचार किये बिना तत्काल ही जिन-भाषित धर्म का पालन कीजिये। काल अर्थात् यमराज तो निर्घृण्य, अनुकम्पा रहित एवं कराल है, और प्रलयकालीन अग्नि के समान वह सभी को जला डालता है। यह जीव अपने कर्मों से प्रेरित होकर जुअसमिला[1] संयोग से ही कठिनाई पूर्वक दुर्लभ नर-भव प्राप्त कर पाता है। दुर्लभ नरजन्म प्राप्त करके ही यह जीव कुमति द्वारा प्रकाशित मिथ्या धर्म में लगा रहता है और अपने मन में कभी भी मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न नहीं करता।

घत्ता— यह जीव अपने शरीर प्रमाण है, चैतन्य मात्र है, अनिधन (अनन्त) एवं अनादि है। जैसा कर्त्ता है वैसा ही भोक्ता है और स्वयं अमूर्त गुण से सुशोभित है।। 179।।

---

1. यह एक हरियाणवी कहावत है — जिस प्रकार समुद्र में एक किनारे बैलगाड़ी का जुआ डाला जाय और दूसरे किनारे पर सामला अर्थात् सैल। फिर समुद्री तरंगों से धक्का खाते-खाते उस जुए के छिद्र में समिला का अपने आप पिरोया जाना एक दुर्लभ संयोग ही माना जायेगा। उसी प्रकार विविध योनियों में भटकते हुए उत्तम नरभव प्राप्त कर लेना भी दुर्लभ संयोग ही माना जाता है।

10/15

Bad consequences of wrong belief, knowledge and conduct.

महमोहोदय कम्महो वसेण तह पुणु लोइय धम्महो रसेण।।
कहियंतु वि जिणवर तणउ धम्मु पडिवज्जइ जीउ ण दिण्ण सम्मु।।
जिह वण्ण-रूअ-भेयइँ ण णेइ जच्चंधु वि कहियाइ वि ण णेइ।।
तिह मिच्छंधउ जिणणाह धम्मु तियरणहिँ समज्जइ असुह कम्मु।।
जिह रयणभूमि पत्तो वि कोवि णरु ण मुणइ रयण-विसेसु तोवि।।
तिहँ कम्मभूमि पत्तो वि संतु मिल्लइ जिणवर-उवएसु जंतु।।
कहियंतु वि वर उवएस-मग्गु णाणा पयार हेउहिँ समग्गु।।
भव्वेयर हियइ ण ठाइ केम णव-णलिणी-दल जलबिंदु जेम।।
उइए वि णाणकिरणहिँ समिद्धि जिणवर दिणयरि जण-मण-समिद्धि।।
किं वप्प दूर भवियारबिंदु वियसइ भमंत पावालिबिंदु।।

घत्ता— चउवग्गहँ सुसमग्गहँ मज्झि जेण पावेज्जउ।
जं तं पइँ धरणीवइ परणिमित्तु जाणेव्वउ।। 180।।

10/15

मिथ्यात्व की तीव्रता—

महामोहनीय कर्मोदय के वश से तथा लौकिक धर्मों के रस के अनुरागी होने के कारण जिनवर कथित धर्म के कहे जाने पर भी यह जीव सम्यक्त्व धर्म को स्वीकार नहीं कर पाता।

जिस प्रकार जन्मान्ध व्यक्ति वर्ण एवं रूप के भेद नहीं जान पाता, बताये जाने पर भी वह उस उपदेश को नहीं मानता। उसी प्रकार मिथ्यात्व से अन्धा पुरुष जिननाथ कथित धर्म को न तो स्वयं ही जानता है और न वह उपदेश से ही मानता है। इस कारण वह त्रिकरण-कृत, कारित एवं अनुमोदना से अशुभ कर्मों का उपार्जन करता रहता है।

जिस प्रकार रत्नगर्भा-भूमि में पहुँचा हुआ कोई (सामान्य) व्यक्ति रत्न-विशेष को नहीं समझ पाता, वैसे ही कर्मभूमि में प्राप्त होकर भी प्राणी जिनवर कथित उपदेश को (समझ नहीं पाने के कारण) छोड़ देता है। जिस प्रकार कमलिनी के नवीन पत्ते पर जल-बिन्दु नहीं ठहरता, उसी प्रकार भव्येतर-अभव्य के हृदय में भी नाना प्रकार के हेतुओं द्वारा सम्पुष्ट समग्र उत्तम उपदेश का मार्ग भी स्थिर नहीं हो पाता।

ज्ञान-किरणों से समृद्ध मनुष्यों के मन में तेज उत्पन्न करने वाले जिनवर रूपी दिनकर के उदित होने पर भी हे भद्र, जिस पर पाप रूपी भौंरे मंडराते रहते हैं, ऐसा दूर स्थित भव्य कमल भी कैसे विकसित हो सकता है?

घत्ता— हे धरणीपति, मैं तुम्हें अब उन चार समग्र वर्गों (द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव) के विषय में बतलाता हूँ, जिनके द्वारा उपदेश प्राप्त किया जा सकता है, किन्तु इसे भी तुम पर-निमित्त मात्र जानो।। 180।।

10/16

Preachings regarding self restraint.

तह विहु मुणिणाहँ धम्म सवण णियमेण करेवी पाव-समण।।
अणुकंपा विरयंतँ जणाहँ भवभमण दुक्ख-दुक्खिय मणाहँ।।
जिह णयण-विहीणहँ वण्ण-भेउ जिम बाहिरहँ णिप्फलु होइ गेउ।।
तिह जाणि धम्म-कह णिट्ठुराइँ मोहोदय कम्म गरुअहँ णराहँ।।
णामेण धम्मु सामण्णु भव्व सयलागमेसु परिचत्त गव्व।।
आगममेएणाचरणु भिण्णु बुद्धिए किउ आयरिएहिँ चिण्णु।।
जिह लोय कणय-मणि-थी णराहँ सयणासण-हरि-करि-तरुवराहँ।।
तिह जाणि धम्मु धम्महँ महंतु अंतरु वज्जरइ महामहंतु।।
जो जारिसु विरयइ धम्मु-कम्मु सो तारिसु भुंजइ वप्प सम्मु।।
पर पवियारिवि दिढ-कम्म-पासु पायइ ण जीउ सिव-णयर-वासु।।

घत्ता— णिरसिय भय असुहरदय संजमु जहि भाविज्जइ।
मुणि-णिंदिय-पंचिंदिय णिग्गहु जहि विरइज्जइ।। 181।।

10/16

संयम-धर्म के ग्रहण करने का उपदेश—

हे राजन्, मुनिनाथ द्वारा पापों का शमन करने वाले धर्म का श्रवण नियम से करना चाहिए और संसार के परिभ्रमण के दुखों से पीड़ित मन वाले मनुष्यों पर अनुकम्पा करना चाहिए।

जिस प्रकार अन्धे व्यक्ति के लिये नाटक का भेद और बहिरे व्यक्ति के लिये गीत-संगीत निष्फल होते हैं, ठीक उसी प्रकार निष्ठुर मोहान्ध और कर्मों से भारी मनुष्यों के लिये धर्मकथा भी निष्फल ही होती है, ऐसा जानो।

गर्व के त्यागी हे भव्य, यद्यपि समस्त आगमों में श्रामण्य धर्म शब्द सामान्य है किन्तु आगम-भेद से उसके आचरण भिन्न-भिन्न हैं। वह विवेक-बुद्धि कृत है और आचार्यों ने उन्हें चीन्हा-पहिचाना है।

जिस प्रकार लोक में कनक (स्वर्ण) मणि, स्त्री, मनुष्य, शयन, आसन, घोड़े, हाथी और वृक्षों में अन्तर है, उसी प्रकार धर्म-धर्म में भी महान् अन्तर कहा गया है।

अतः हे भव्य, जो जैसा धर्म-कर्म करता है, वह वैसा ही सुख भी भोगता है। किन्तु दृढ़ कर्मपाश को काटकर वह जीव शिवनगर (मोक्ष) का वास प्राप्त नहीं कर सकता।

घत्ता— अतः हे भव्य, भय को निरस्त कर, समस्त प्राणियों पर दया कर, जैसे भी हो, संयम का पालन कर और मुनियों द्वारा निन्दित पाँचों इन्द्रियों का निग्रह कर।। 181।।

10/17

Preachings regarding asceticism.

जहिँ पंच-समिदि-गुत्तीउ-तिण्णि पालिज्जहिँ मुंचहिँ दोसु दुण्णि।।
विसएसु ण किज्जइ जित्थु राउ णियमिज्जइ जहिँ णियमेहिँ भाउ।।
जहिँ भोउ ण सुमरिज्जइ कयावि जहिँ विणयवित्ति कीरइ सयावि।।
जहिँ णियतणु ताविज्जइ तवेहिँ जहिँ जिणु थुणियइ जय-जय रवेहिँ।।
5 जहिँ णाहिमाणु माया विरोहु जहिँ कोहु ण लोहु ण पाणिदोहु।।
जहिँ णाहंकारु ण गंथ-संगु जहिँ णउ पेसुण्णु ण सीलभंगु।।
जहिँ तियरणेहिँ णउ जीव घाउ किज्जइ ण च विज्जइ अलिउ-वाउ।।
जहिँ सइँ घिप्पइ णदत्तदाणु जहँ णारीयणु माया-समाणु।।
जहिँ मण-वय-कायहिँ घत्थ-वाहि कामिज्जइ कम्मक्खउ समाहि।।
10 जहिँ छट्ठट्ठम दस वारसेहिँ जहिच्छ आहरहिँ दूरुज्झिय रसेहिँ।।
सोसिज्जइ भंगुरु णियसरीरु तिरयण-भूसण भूसियउ धीरु।।
जहिँ उवसम-सिरि-रंजियउ चित्तु जहिँ सरिसउ दीसउ सत्तु-मित्तु।।

घत्ता— जहिँ पविमलु सुह केवलु उप्पज्जइ वरसोक्खहो।
दुक्खक्खउ कम्मक्खउ सो जि धम्मु पहु मोक्खहो।। 182।।

10/17

श्रामण्य-धर्म—

(और भी कि–) जहाँ पाँच समितियाँ एवं तीन गुप्तियाँ पाली जाती हैं, जहाँ दो दोष-(राग-द्वेष) छोड़े जाते हैं, जहाँ विषयों के प्रति राग नहीं किया जाता, जहाँ नियमों द्वारा भावों को बाँधा जाता है, जहाँ (अतीतकालीन–) भोगों का कभी भी स्मरण नही किया जाता, जहाँ सदैव ही विनयवृत्ति की जाती है, जहाँ निरन्तर ही अपने शरीर को तपों द्वारा तपाया जाता है, जहाँ जय-जयकारों द्वारा जिनवर की स्तुति की जाती है, जहाँ न तो अभिमान है, न माया और न विरोध ही, जहाँ क्रोध, लोभ एवं प्राणि-द्रोह नहीं है, जहाँ न तो अहंकार है और न किसी प्रकार का संग-परिग्रह, जहाँ न तो पैशुन्य (चुगल खोरी) है और न शील का भंग।

जहाँ त्रिकरण (मन, वचन, काय, अथवा कृत, कारित एवं अनुमोदना) से किसी भी जीव का घात नहीं, किया जाता, जहाँ असत्य वचन नहीं बोला जाता, जहाँ बिना दी हुई कोई वस्तु ग्रहण नहीं की जाती, जहाँ नारी को माता को समान माना जाता है, जहाँ मन, वचन एवं काय से भव-व्याधि (अथवा परिग्रह की वृत्ति) को ध्वस्त किया जाता है, जहाँ कर्म-क्षय एवं सुसमाधि की कामना की जाती है, जहाँ छठे, आठवें, दसवें एवं बारहवें तथा यथेच्छ आहारों से अथवा रस-त्याग से अपने क्षण-भंगुर शरीर का शोषण किया जाता हो, जहाँ धीर-जन त्रिरत्नों रूपी भूषण से भूषित रहता है, जहाँ उपशम रूपी लक्ष्मी से चित्त रंजित रहता है, जहाँ शत्रु एवं मित्र समान दिखाई देते हैं—

घत्ता— जिससे भव-दुखों का क्षय एवं कर्म क्षय के कारण शुभ केवलज्ञान उत्पन्न होता है, वही उत्तम सुख देने वाला मोक्ष का पथ-धर्म है।। 182।।

10/18

Necessity of right belief in rare human life.

जइविहु विरयहु तीरइ ण धम्मु तो वि सद्दंसणु कीरइ सुरम्मु।।
जिण भणिउ एउ इक्कु वि मुहुत्तु जो करइ धम्मु विणएण जुत्तु।।
सो विहु ण भमइ चिरु भवसमुद्दि अइ दुक्ख लक्ख जलयर रउद्दि।।
किं पुणु तवसिरि-रामा रवंतु सद्दंसण-णाण-चरित्तवंतु।।
अइरेण जीउ णिहणइ ण कम्मु वसुविहु वारिय णिव्वाण सम्मु।।
जिह अइरावउ करि वारणेसु जिह कुवलय-बंधउ गहयणेसु।।
जिह विणया तणुरुहु णहयरेसु जह छक्खंडाहिउ णरवरेसु।।
जिह अमरमहीहरु महिहरेसु जह जिय रइवइ जिणु सुरवरेसु।।
जिह हरियंदण तरु महिरुहेसु जिह गयमल सयदलु जलरुहेसु।।
जिह णिम्मलयर रयणेसु वज्जु तिह सारउ मणुअत्तणु मणोज्जु।।

घत्ता— जिह अवियल णिय करयल गलिउ रयणु पुणु दुल्लहु।
असुहायरे भवसायरे तिह णरजम्मु वि बल्लहु।। 183।।

10/18

दुर्लभ मनुष्य-जन्म में श्रद्धान करना आवश्यक—

भले ही सुरम्य धर्म का पालन शक्य न हो, फिर भी उसमें श्रद्धान तो अवश्य ही करना चाहिए। जो व्यक्ति विनयशील रहकर जिनभाषित धर्म का एक मूहूर्त मात्र भी पालन करता है उसे अतिशय दुखरूपी लाखों जलचरों से रौद्र भव-सागर में चिरकाल तक नहीं भटकना पड़ता।

जो तपश्री रूपी सुन्दर रमणी के साथ रमण करता है और जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यग्चारित्र रूप रत्नत्रय से युक्त है, वह जीव क्या निर्वाण-सुख के अवरोधक अष्ट-विध कर्मों का तत्काल क्षय नहीं करेगा?

जिस प्रकार करिवरों में ऐरावत, ग्रहों में कुवलय-बन्धु (=चन्द्रमा), नभचर-पक्षियों में विनयापुत्र-गरुड़ (विणयातणुरुह) नरवरों में चक्रवर्ती, महीधरों (पर्वतों) में अमर महीधर (सुमेरु पर्वत) देवों में कामविजेता जिनेन्द्र, महीरुहों (वृक्षों) में हरिचन्दन (कल्पवृक्ष), कमल-पुष्पों में मल रहित शतदल कमल, निर्मलतर रत्नों में वज्ररत्न (हीरा) सारभूत माने जाते हैं, उसी प्रकार हे मनोज्ञ, चारों गतियों में यह मनुष्य-जन्म सारभूत है।

घत्ता— जिस प्रकार अपने अविचल हाथों से समुद्र में गिरे हुए रत्न को पाना दुर्लभ है, उसी प्रकार अशुभ-कर्मों की रवानि भवसागर में यह प्रशस्त मनुष्य-जन्म प्राप्त करना भी दुर्लभ है।। 183।।

10/19

King Prabhañjana accepts asceticism.

पत्तेवि णरत्तणि दुल्लहु होइ कम्मावणि जम्मणु भणइ जोइ।।
पत्तेवि कम्मभूमीए जम्मि अज्जउलु होइ दुल्लहु णरम्मि।।
लद्धेवि अज्जउलि जिणु चवेइ णीरोयत्तणु दुल्लहु हवेइ।।
णीरोयत्तणे लद्धेवि धम्मि मइ रमइ ण जिणमुह णिग्गयम्मि।।
5 जइ करइ धम्मु दियकम्मरुक्खु तह विहु परिपालिणि होइ दुक्खु।।
जिह बिरला चंदण कप्परुक्खु हय दाह णिवारिय चित्तअक्खु।।
तिह विरला महियलि भवियणाहँ जिणधम्मकरण उच्छुअ मणाहँ।।
जिह सरि-सरि कुमुअहँ होइ जम्मु किं तह सयवत्त होहणि उप्पम्मु।।
सयवत्तसरिसु जिणणाह धम्मु कुमुअ समु इयरु कयमरण जम्मु।।
10 जे अरुहमग्गि लग्गंति जीव ते होंति मोक्ख-णयरम्मि दीव।।
जे इयरमग्गु सेवंति दीण ते भवि भमंति दुह सयह खीण।।
जिण-वयणु पहंजणु सुणिवि सव्वु दिक्खहे ठिउ मेल्लिवि रज्ज-दव्वु।।

घत्ता— उट्ठेविणु पणवेविणु पासहु णट्टल तुल्लउ।
णय-विणयहिँ सतियरणहिँ सिरिहर सरिस मुहुल्लउ।। 184।।

10/19

प्रभंजन राजा का दीक्षा लेना—

योगियों का कथन है कि— दुर्लभ नरजन्म प्राप्त कर लेने पर भी, कर्मभूमि-क्षेत्र में उसे जन्म प्राप्त होना दुर्लभ है। कर्मभूमि में जन्म प्राप्त कर लेने पर भी आर्यकुल पाना दुर्लभ है। जिनेन्द्र कहते हैं, कि आर्यकुल में जन्म प्राप्त कर लेने पर भी निरोग शरीर पाना दुर्लभ है। निरोग शरीर प्राप्त कर लेने पर भी जिनमुख-निर्गत धर्म में मति का रमण होना दुर्लभ है। यदि कर्मरूपी वृक्ष को खण्डित करने वाला धर्म धारण भी कर ले, तो भी उसके परिपालन में कष्ट होता है।

जिस प्रकार दाह को मिटाने वाले तथा हृदय तथा नेत्रों को शीतलता प्रदान करने वाले चन्दन वृक्ष एवं कल्पवृक्ष बिरले ही होते हैं, उसी प्रकार जिनभाषित धर्म के करने में उत्सुक मन वाले भव्यजन इस पृथिवीतल पर बिरले ही होते हैं। जिस प्रकार हर सामान्य सरोवर में कुमुदों की उत्पत्ति होती है, क्या उनमें अनुपम शतदल कमल-समूह भी आसानी से उत्पन्न हो सकता है?

जिननाथ द्वारा भाषित धर्म शतदल-कमल के सदृश होता है जब कि जन्म, जरा एवं मरण को देने वाले इतर धर्म सामान्य कुमुद के समान होते हैं, जो जीव अरिहन्तों के मार्ग में लगते हैं, वे मोक्षरूपी नगर में दीपक के समान होते हैं। जो बेचारे अन्य मार्ग का सेवन करते हैं, वे जीव सैकड़ों दुःखों से क्षीण होते हुए संसार में भटकते रहते हैं।

राजा प्रभंजन ने जब जिनेन्द्र का यह समस्त उपदेश सुना, तो वह अपना राज्य-भार छोड़कर दीक्षा लेने हेतु उन प्रभु के सम्मुख जा बैठा—

घत्ता— उस राजा प्रभंजन ने उठकर अत्यन्त विनयपूर्वक साहू नट्टल के समान तथा विबुध श्रीधर (कवि) के समान ही पार्श्वप्रभु को नमस्कार किया। उसका मुखकमल खिल उठा। विनम्रतापूर्वक नतमस्तक होकर त्रिकरणशुद्धि पूर्वक उस राजा ने मुनि-दीक्षा धारण कर ली।। 184।।

Colophon

इय सिरिपासचरित्तं रइयं बुहसिरिहरेण गुणभरियं।
अणुमण्णियं मणुज्जं णट्टल णामेण भव्वेण।। छ।।

रविकित्ति पबोहणए पुहवीस पहंजणस्स गुणणिहिणो।
जिणदिक्खागिण्हणए दहमी संधि परिसम्मत्तो।। छ।। संधि 10।। छ।।

Blessings to Sāhu Naṭṭala, the inspirer and guardian

यस्याऽशेष गुणाकरस्य कविभिर्काव्यैर्यशस्तन्यते,
स्त्रीणां सन्ततिभिर्गजेन्द्रगतिभिर्सङ्गस्सदा काम्यते।
धर्मिष्ठैरुपजीव्यते च वचनं जाङ्गश्रियामुच्यते,
स श्रीमानिह नट्टलः क्षितितले जीयाच्चिरं धर्मधीः।

पुष्पिका

इस प्रकार गुण-भरित, मनोज्ञ एवं नट्टल साहू द्वारा अनुमोदित इस पार्श्वचरित की रचना बुध श्रीधर ने की है। पृथिवीश रविकीर्ति एवं गुण-निधान राजा प्रभंजन के लिये प्रबोधित करने तथा उनके द्वारा मुनि-दीक्षा ग्रहण करने सम्बन्धी यह दसवीं सन्धि समाप्त हुई।

आश्रयदाता नट्टल साहू के लिये आशीर्वाद

समस्त गुणों के आकर-स्वरूप जिस नट्टल साहू की यशश्री कवियों के काव्यों में सुशोभित है, मन्दगज गामिनी युवतियाँ निरन्तर ही जिसका सान्निध्य प्राप्त करने के लिये लालायित रहा करती हैं, जिसका सुन्दर रूप, मधुर-वाणी एवं अंग-प्रत्यंगों की श्री धर्मिष्ठों द्वारा प्रशंसित है, ऐसा धर्म-धुरन्धर, धीर-वीर वह श्रीमान् नट्टल साहू इस पृथिवी-मण्डल पर चिरकाल तक जीवित रहे।

एयारहवीं संधी

11/1

Lord Pārśwa arrives at Vāṇārasī town.

घत्ता— भवियण कमलायरु गुणरयणायरु वियसाविवि जिणदिणयरु।
वाणारसि णयरिहिँ पीणिय-खयरिहिँ गयउ पासु केवलधरु।। छ।।

णंदणवणे आवासियउ जाम हयसेणहो वणवालेण ताम।।
वज्जरिउ पासु आइयउ देव जसु पयहिँ पडहिँ चउविह वि देव।।
तं सुणिवि वयणु उट्ठिउ तुरंतु णियतणुरुह सररुहु संमुहु सरंतु।।
हरिसंसु जलोल्लिय वयण-पोमु गंजोल्लिय मणु उद्धसिय रोमु।।
जंपंतु सपरियणु जाहु तेत्थु णिवसइ सामरु तित्थयरु जेत्थु।।
च्छुडु परियणेण सहुँ पुहविपालु हयसेणु पत्तु जय-जय रवालु।।
ता तुरिय समागय वम्मदेवि णिय सुय समीउ भिंगारु लेवि।।
गय पास-पास जिण दंसणेण पुव्वुत्त-कम्म विद्धंसणेण।।
बिण्णिवि आणंदिय णियमणेण बिण्णिवि सलहिय तं सुरवरेण।।
तित्थयरु तणुरुहु होइ जाहँ के होंति महीयलि तुल्ल ताहँ।।

घत्ता— जिणपय पणवेप्पिणु मणि भावेप्पिणु थोत्तु करिवि णियकोट्ठइ।
उवविट्ठउ तुट्ठउ विहुणिय दुट्ठउ णिउ हयसेणु विसिट्ठइ।। 185।।

11/1

पार्श्व प्रभु विहार करते-करते वाणारसी पहुँचते हैं—

घत्ता— गुणों के सागर, केवलज्ञान के धारी तथा भव्यजन रूपी कमलों को विकसित करने के लिए सूर्य के समान, वे जिनेन्द्र पार्श्व प्रभु, विहार करते-करते विद्याधरों को सन्तृप्त करने वाली वाणारसी नगरी में पहुँचे।। छ।।

वहाँ जाकर जब वे वहाँ के नन्दन-वन में ठहरे, तभी वनपाल ने राजा हयसेन से निवेदन किया कि हे देव, पार्श्वप्रभु यहाँ पधारे हैं, जिनके चरणों में चारों प्रकार के देव अपने मस्तक झुकाते हैं।

वनपाल का निवेदन सुनकर राजा तुरंत ही उठा, कामदेव के समान अपने पुत्र (पार्श्व) के मुख-कमल का स्मरण करने लगा। उस समय उसका (राजा का) मुखकमल हर्षाश्रुओं के जल से भींगा जा रहा था, शरीर रोमांचित हो रहा था, और हर्षातिरेक से उसका कण्ठ अवरुद्ध हो रहा था। बोलते-बोलते परिजनों सहित वह राजा उस ओर चला, जहाँ देवों सहित तीर्थंकर देव विराजे हुए थे।

परिजनों सहित राजा हयसेन जय-जयकार की सुन्दर ध्वनि करता हुआ शीघ्र ही उनके सम्मुख जा पहुँचा। तभी माता वामादेवी भी तुरन्त ही अपने लाड़ले पुत्र के समीप भृंगार लेकर पहुँची। उन्हें उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानों जिनेन्द्र पार्श्व के दर्शन से पूर्व-संचित कर्मों के विध्वंस होने के कारण संसार का पाश ही नष्ट हो रहा हो। माता-पिता दोनों ही निज मन से आनन्दित हो उठे। सुरेश्वर ने उन दोनों की प्रशंसा की और कहा कि, जिन माता-पिता के तीर्थंकर जैसे पुत्र हों, महीतल में उनके तुल्य (सौभाग्यशाली–) और कौन हो सकता है?

घत्ता— राजा हयसेन जिनेन्द्र-पदों को प्रणाम कर मन में उनके गुणों का ध्यान कर स्तोत्र-विनती पढ़कर सन्तुष्ट हुआ। अपने समस्त दुष्ट-शत्रुओं को नष्ट कर देने वाला वह (पिता) राजा हयसेन अपने (लिये निर्धारित) कक्ष में जाकर बैठ गया।। 185।।

11/2

King Hayasena, the father of Lord Pārśwa asks inquisitive questions to which he replies.

करकमल-जुअलु जोडिवि णरिंदु पुच्छइ वज्जरइ णमिय सुरिंदु।।
जिणु जणिय सिद्धि णिद्धूअकम्मु संसारि णिवइ णरजम्मु रम्मु।।
तं पावेवि जो साहइ ण मुक्खु तहो जम्मि-जम्मि तुट्टइ ण दुक्खु।।
तहो साहणत्थु णिग्गंथ-मग्गु सद्दंसण-णाण-चरण-समग्गु।।
5 इउ मुणिवि णराहिव लेहि दिक्ख जिणणाह तणिय परियाणि सिक्ख।।
जिणदिक्ख मुएविणु णत्थि अण्णु परलोयहो साहणे गलियमण्णु।।
इय कहइ जिणेसरु णिवहो जाम चउसुरणिकाउ संपत्तु ताम।।
इत्थंतरे पत्तउ णायराउ विणयेण चवंतु विसुद्धकाउ।।
जय देव-देव कमठासुरेण उवसग्गु कियउ कज्जेण केण।।
10 तं सुणिवि पयंपइ पावणासु देवाहिदेउ तित्थयरु पासु।।

घत्ता— दह-सय-फणि-फणिवइ फुडु थिरु सुणियइ इत्थु जि जंबूदीवए।
णाणाविह महिहरि महितीरिणि हरि दो ससि-दिणयर दीवए।। 186।।

11/2

राजा हयसेन द्वारा पार्श्वप्रभु से जिज्ञासा भरे प्रश्न एवं उनके उत्तर–

राजा हयसेन ने अपने हस्त रूपी कमल-युगल जोड़कर जब (जिज्ञासा भरा–) प्रश्न पूछा, तब सुरेन्द्र द्वारा नमस्कृत तथा कर्मों का क्षय कर सिद्धिप्राप्त उन जिनेन्द्र पार्श्व ने उत्तर देते हुए कहा— "हे नृपति, संसार में नर-जन्म ही रम्य (एवं श्रेष्ठ) है। उसे पाकर जो मोक्ष की सिद्धि नहीं करता, जन्म-जन्मान्तरों में भी उसके दुख नहीं टूटते।

उस मोक्ष को साधने के लिये सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यग्चारित्र से समग्र (पूर्ण रूप से) एक निर्ग्रन्थ (साधु)-मार्ग ही है, यह मानकर हे नराधिप, दीक्षा ले लो तथा जिननाथ की शिक्षाओं को समझ लो। जिन-दीक्षा को छोड़कर अन्य कोई शोक-नाशक तथा परलोक सुधारक-उपाय नहीं है।"

जिनेश्वर ने उस नृप के लिये जब यह कहा, तभी वहाँ चतुर्निकाय देव उपस्थित हो गये। इसी बीच विशुद्धकाय नागराज (धरणेन्द्र) भी वहाँ आ गया और उसने विनयपूर्वक पूछा— हे देव, हे देव, आपकी जय हो, (आप यह बतलाइये कि–) कमठासुर ने किस कारण से आंप पर उपसर्ग किये थे। उसका प्रश्न सुनकर पाप-नाशक देवाधिदेव तीर्थंकर पार्श्व ने उत्तर में कहा–

घत्ता— सहस्र फणों के धारी हे फणिपति-नागराज, स्थिर चित्त होकर स्पष्ट सुनो— जिसमें दो सूर्य, दो चन्द्रमा रूपी दीपक हैं, जो नाना प्रकार के पर्वतों तथा महानदियों का स्थल है, ऐसा जम्बू नाम का एक (जम्बू) द्वीप है।। 186।।

11/3

The pomp and grandour of Jambudwīpa and Bharata Kṣetra including Suramya Country.

तहो मज्झि अत्थि कंचणगिरिंदु जिण-ण्हवणु करइ जसु सिरि सुरिंदु।।
तहो दाहिण भारहवरिसु अत्थि जहिँ वणि भमंति सच्छंद हत्थि।।
तहिँ सग्गसमाणु सुरम्मु देसु णिवसइ अहंगु पवरप्पवेसु।।
जहिँ पामरेहिँ पुंडिच्छु दंडु खंडिज्जहिँ मुणिहिँ व मयणकंडु।।
जहिँ सहइ सालि बहुफलभरेण णय-सविणय जणया इव भरेण।।
जहिँ रायहंस कीलहिँ सरेसु चंचुए विसुलिंत स सिरिहरेसु।।
जहिँ सिउ चरंतु गोहणु वणेसु हंसोहु व सहइ णहंगणेसु।।
जहिँ पुण्णालि व सरि पिव-समीउ सच्छंदु जंति परिहरिवि दीउ।।
जहिँ जणरंजण णंदणवणाइँ उक्कोविय मयरद्वय कणाइँ।।
जहिँ पहिय णिम्महिय महिय मिल्लि पेक्खेविणु पसरियदक्खवेल्लि।।
आलुंचिवि तहे दक्खहे फलाइँ आसाएवि चोचुब्भव-जलाइँ।।

घत्ता— णंदण तरु फुल्लहँ अइरपफुल्लहँ सत्थरेसु वियलियसम।
सोवंति सइत्तइँ पसरियगत्तइँ भोयभूमि मणुओवम।। 187।।

11/3

जम्बूद्वीप एवं भरत-क्षेत्र तथा सुरम्य-देश की समृद्धि का मनोहारी वर्णन—

उसी जम्बूद्वीप के मध्य में सुमेरु पर्वत स्थित है, जिसके शिखर पर सुरेन्द्र जिनेन्द्र का न्हवन किया करता है।

उसकी दक्षिण दिशा में भारतवर्ष नामका एक क्षेत्र है, जहाँ के गहन वनों में हाथियों के झुण्ड स्वच्छन्द रूप से विचरते रहते हैं।

उसी भारतवर्ष में स्वर्ग के समान एक सुरम्य नामका देश है, जो अभंग तथा उत्तम प्रदेशों वाला है, जहाँ पामरजनों (समृद्ध कृषक गणों) द्वारा पौंडा (इक्षु) दण्डों की खेती काटी जाती है, जो इस प्रकार प्रतीत होती है, मानों मुनिवरों द्वारा कामदेव के वाणों को ही खण्डित किया जा रहा हो। जहाँ शालि-धान्य के खेत फलों एवं फलियों के भार से झुके हुए उसी प्रकार सुशोभित रहते हैं, जिस प्रकार कि नय-नीति से विनीत पुत्र से पिता।

जहाँ श्रीगृहों (लक्ष्मीगृहों) के समान सरोवरों में अपनी-अपनी चोंचों में कमलनाल के विसकन्दों को दबाए हुए राजहंस क्रीड़ाएँ किया करते हैं, जहाँ के वन्य-चारागाहों में धवल-गोधन चरता रहता है। वह उसी प्रकार सुशोभित रहता है जैसे नभांगन में हंस-समूह सुशोभित होता है।

जहाँ पुंश्चलियाँ (अभिसारिकाएँ) दीपक छोड़कर स्वच्छन्द रूप से (छिप-छिपकर) अपने प्रेमियों से मिलने के लिये उसी प्रकार जाती रहती हैं, जिस प्रकार नदियाँ समुद्र की ओर भागती हैं। जहाँ प्रजाजनों के मनोरंजन के लिये सघन नन्दनवन हैं, जो कि मकरध्वज (कामदेव) के वाणों को उत्तेजित करते रहते हैं। जहाँ पथिक जन निर्मथित मही (मट्ठे) को छोड़कर वहीं पर पसरी हुई द्राक्षा-लता को देखकर उसमें से द्राक्षाफलों को चुन-चुन कर खाते रहते हैं तथा डाभ (नारियल) से उत्पन्न जल को पी-पीकर प्यास बुझाकर सन्तुष्ट रहते हैं।

घत्ता— और अतिशय रूप से प्रफुल्लित नन्दन वन के वृक्षों के पुष्पों द्वारा निर्मित विस्तरों पर अपनी प्रेमिकाओं के साथ शरीर फैलाकर सोते रहते हैं और ऐसे प्रतीत होते हैं, मानों वे भोगभूमि के श्रेष्ठ मनुष्य ही हों।। 187।।

11/4

The figurative description of Podanpurī town.

तहिँ वसइ सुर-खयर-णरणाह मणहारि णामेण सिरि पोयणउरु रमहारि।।
जहिँ कोवि ण कयावि अहिलसइ परणारि जहिँ चोर ण मुसंति पहवंति जहिँ णारि।।
जहिँ मुणिहुँ दाणाइँ अणवरउ दीवंति जहिँ महिस-सारंगच्छेलइँ ण दीयंति।।
जहिँ पवर तूराण-रावा समुट्ठंति जहिँ रयण-संजडिय जिणहर ण णिट्ठंति।।
5 जहिँ कणय-कलसाइँ घर-सिहरि सोहंति जहिँ धयवडाडोउ रवि-रइँ रोहंति।।
जहिँ चंद-रविकंत-मणि तिमिरु णासंति जहिँ मत्त विरसंत वारण विहासंति।।
जहिँ विविह देसागया-लोय दीसंति जहिँ तुरय तुंगंग हिंसंति-सीसंति।।
जहिँ भविय जिण-पाय-पंकय समच्चंति जहिँ पंगणे-पंगणे णारि णच्चंति।।
जहिँ चारणाणेयमुणिणाहविंदाइँ संबोहियासेस भवियारविंदाइँ।।
10 विरयंति धम्मोवएसं गहीराइँ वाणीए सिसिरत्तणिज्जिय समीराइँ।।

घत्ता— जहिँ सासपसाहिय असमरसाहिय जणवय-णयण-सुहावण।
बहुविह वेसायण सुरकप्पायण बहु वाणिय णाणावण।। 188।।

11/4

पोदनपुरी नगरी की समृद्धि का वर्णन—

उसी देश में लक्ष्मी के घर के समान तथा देवों, खेचरों तथा नरनाथों के मन का हरण करने वाली पोदनपुरी नामकी सुन्दर नगरी है। जहाँ कोई भी परनारी को प्राप्त करने की अभिलाषा तक नहीं करता, जहाँ चोर चोरियाँ नहीं करते, जहाँ शत्रु गण अप्रभावी सिद्ध होते हैं, जहाँ मुनिवरों को अनवरत दानादि दिये जाते रहते हैं, जहाँ भैंसे, सारंग (मृग) और बकरे आदि की बलि नहीं दी जाती, जहाँ निरन्तर ही तूर-वाद्यों की मधुर ध्वनि उठती रहती है, जहाँ रत्न-जड़ित जिन-मन्दिरों का निर्माण कभी रुकता नहीं, जहाँ के गृह-शिखर स्वर्ण-कलशों से सुशोभित रहते हैं और ध्वजा-पताकाएँ रवि-किरणों को अवरुद्ध करती रहती हैं, जहाँ चन्द्रकान्त एवं सूर्यकान्त मणि अन्धकार को नष्ट करते रहते हैं और जहाँ चिंघाड़ते हुए मदोन्मत्त हाथी सुशोभित रहते हैं।

जिस नगरी में विविध प्रकार के देशों के लोग आते-जाते दिखाई देते रहते हैं, जहाँ उत्तुंग घोड़े हींसते हिनहिनाते तथा फुरकते रहते हैं, जहाँ भविक-जन जिनेन्द्र के चरण-कमलों की पूजा-अर्चना करते रहते हैं, जहाँ घरों के आंगनों में नारियाँ नृत्य करती रहती हैं, जहाँ भव्य-कमलों को सम्बोधित करने वाले चारण आदि अनेक मुनिवरों के समूह अपनी शिशिरता से पवन को जीतने वाली गम्भीर वाणी द्वारा निरन्तर धर्मोपदेश करते रहते हैं।

घत्ता— जहाँ विविध प्रकार के शस्य-धान्यों से प्रसाधित, असाधारण रसों के धनी, जनपद के लोगों के नेत्रों को अत्यन्त सुहावनी लगने वाली सुरांगनाओं के समान वेश्याजनों से युक्त और नाना प्रकार की देवोपम वनियों (व्यापारियों) की विविध प्रकार की दुकानें हैं।। 188।।

11/5

Vivid description of King Aravinda, the ruler of Podanapurī.

तहिँ णरवइ णामेणारविंदु णिवसइ मुहपह-णिहयारविंदु।।
सोसिय दुग्गत्तण णीर-विंदु णाविय धरणीसर वीर-विंदु।।
विणिवारिय वइरीयण वराहु तिरयणहिँ वि परिहरियावराहु।।
दुण्णाय णिहिल रयणियर राहु तणु-जुइ णिज्जिय पंचसर राहु।।
परियाणिव णिव पंचंगमंतु[1] उत्तुंग-तुरंग-मयंग-वंतु।।
णाएण णिहालिय सव्व पाणि णवरत्तुप्पलदलभव्व पाणि।।
सारय ससंक-रुइ कंतिवंतु बहु भोय समिद्धु ति-सत्तिवंतु।।
गुरुयण-कम-कमल-महाविणीउ णिहयंतरंग रिउ दुव्विणीउ।।
परिसंकोइय पर-बल णिवासु चंडीसहास सम जसणिवासु।।
रमणीय रमणि-मणहरण मारु चिंतामणिव्व वंदियण मारु।।

घत्ता— घंघल णित्थारणु गुणवित्थारणु जण-अणुरायहो कारणु।
सत्थत्थ-वियारणु कुणय-णिवारणु हणइ रोसु णिक्कारणु।। 189।।

11/5

पोदनपुरी के राजा अरविन्द का वर्णन—

उस पोदनापुरी में अरविन्द नामक राजा, जो कि अपने मुख की आभा से कमलों की शोभा को भी निष्प्रभ करता था, निवास करता था तथा उसने दुर्गति (कर देने वाली दरिद्रता) रूपी जल की बूँद-बूँद को भी सुखा दिया था, जिसने धरणी के सभी वीरों को अपने चरणों में झुकने के लिये बाध्य कर दिया था, बैरी रूपी वराहों – शूकरों को जिसने मार गिराया था और जो त्रिकरणों द्वारा समस्त अपराधों को दूर करने वाला, अन्याय रूपी पूर्णचन्द्र के लिये राहु के समान, अपने शरीर की कान्ति से कामदेव रूपी राहु को भी जीत लेने वाला था।

वह राजा पंचांग-मन्त्र[1] का ज्ञाता, उत्तुंग घोड़े एवं हाथियों का स्वामी तथा समस्त प्राणियों को न्याय दृष्टि से देखने वाला था। जिसके हस्त-युगल नवीन रक्तकमल के दल के समान भव्य थे, जो शरदकालीन चन्द्रमा की कान्ति के समान सुन्दर आभा वाला था तथा जो अनेकविध भोगों से समृद्ध, त्रि-शक्तियों का स्वामी, गुरुजनों के चरण कमलों में महा विनीत, अन्तरंग शत्रुओं तथा दुर्विनीतों का नाशक, शत्रुजनों के मित्र-राजाओं की आशाओं को सिकोड़ने वाला महादेव के हास्य के समान यश का निवास स्थल, सुन्दर रमणियों के मन को हरण करने के लिये कामदेव के समान तथा बन्दीजनों की दरिद्रता को दूर करने के लिये जो चिन्तामणि-रत्न के समान था।

घत्ता— और, जो व्यसनों (अथवा दरिद्रता के दुख) को मिटाने वाला, गुणों का विस्तारक, लोगों की प्रसन्नता का कारण, प्रशस्त शास्त्रों के अर्थ का विचारक, कुनीतियों का निवारक और अकारण ही क्रोध का त्यागी था।।18॥

---

1. सोमदेव सूरिकृत नीतिवाक्यामृत के अनुसार **पंचांग-मन्त्र** निम्न प्रकार हैं–
   कर्मणामारम्भोपायः पुरुष द्रव्य सम्पद् देशकाल विभागः।
   विनिपात प्रतीकारः कार्यसिद्धिरिति पञ्चाङ्गो मन्त्रः।। 10/25
   अर्थात् कार्यारम्भोपाय, पुरुष तथा द्रव्य-सम्पत्ति, देश-काल का विभाग, विघ्न-प्रतिकार और कार्यसिद्धि ये पंचांग-मन्त्र कहलाते हैं।

11/6

Lucid discription of Prabhāwatī, the chief queen (Paṭṭarānī) of King Aravinda.

तहो तणिय पहावइ पवर भज्ज हिय-इच्छिय-णिच्छिय धम्म-कज्ज।।
सुह-सील पयासिय परमणेह आजम्मि लग्ग सोहग्ग-गेह।।
णिय पइवय वर गुण-रयण-खाणि हिय-मिय-पिय-परहुअ महुर-वाणि।।
कलहंसिणीव बेपक्ख धवल सारंगिव णयणावंग चवल।।
5 रइरस-जल-वाहिणि णिहय-दाह चिंतिय पर णं सुरसाहिसाह।।
सरसइ व सुहासिय सय-णिहाण ससिकंति व सुहयर सण्णिहाण।।
करपल्लव जिय कंकिल्लिवत्त सुपसाएँ पीणिय सयलवत्त।।
सरयब्भसिरि व णिम्मल सरीर कुलधरणीहर संत इव धीर।।
वर सीहिणीव मज्झम्मि खीण उद्दाम-काम-कीलापवीण।।
10 जण णयणहारि लावण्ण थत्ति णं विहि दरिसिय विण्णाण सत्ति।।

घत्ता— तहो अत्थि पुरोहिउ वरउवरोहिउ विस्सभूइ णामेण जि।
जिणधम्मासत्तउ मुणिपय भत्तउ जणजणहो पिउ तेण जि।। 190।।

11/6

राजा अरविन्द की पट्टरानी प्रभावती का वर्णन—

उस राजा अरविन्द की पट्टरानी का नाम प्रभावती था, जो हृदय से इच्छित धार्मिक कार्यों का निश्चय करने वाली, शुभशीला, परमस्नेह का प्रकाशन करने वाली तथा जन्म से ही सौभाग्य-लक्ष्मी की निवास-स्थली थी। जो पतिव्रता थी और श्रेष्ठ गुण रूपी रत्नों की खानि थी। वह हित-मित एवं प्रिय तथा मधुर-वाणी के लिये कोयल के समान थी। कलहंसिनी के समान उसके दोनों पक्ष (नैहर एवं ससुराल) धवल (निष्कलंक एवं प्रतिष्ठित) थे। उसके नयनांग कटाक्ष मृगी के समान चंचल थे। रति-रस रूपी विशाल नदी से कामदाह का शमन करने वाली थी, उत्तम चिन्तनशीला थी मानों स्वरस की अभिशाखा ही हो (अर्थात् आत्मचिन्तन करने वाली थी) सरस्वती के समान वह सैकड़ों सुभाषितों की निधान थी। वह चन्द्रकान्ति के समान सुखों की पिटारी थी।

उसने अपने कर-पल्लवों से कंकेल्ली (अशोक) के पत्तों की शोभा को भी जीत लिया था, अपनी प्रफुल्लतारूपी प्रसाद से सभी के मुख को वह प्रभुदित करने वाली थी। शरद्कालीन मेघ के समान जिसका शरीर अत्यन्त निर्मल था, जो कुलाचलों एवं सन्तों के समान धीर-गम्भीर थी, उत्तम सिंहनी की कटि के समान जिसका मध्य भाग अत्यन्त कृश था, जो उत्कृष्ट काम-क्रीड़ा में प्रवीण थी, जनता के नेत्रों को लुभाने वाले लावण्य-की जो ऐसी थाती (धरोहर) थी मानों ब्रह्मा ने जिसके निर्माण में अपनी वैज्ञानिक शक्ति ही प्रदर्शित कर दी हो।

घत्ता— उस राजा का उत्तम सुशिक्षित विश्वभूति नाम का पुरोहित था, जो जिन-धर्मासक्त तथा मुनिपदों का भक्त था और जो अपने गुणों के कारण सर्वत्र प्रतिष्ठित एवं जन-जन का प्रिय था।। 190।।

11/7

An account of kingdom's priest (Rāja-Purohita) Viswabhūti and his family.

तहो घरिणि अणुंधरि धरिय सील पिय वयणेँ जिय कलयंठि-लील।।
तहो भुंजंतहँ रइ-सोक्खु णिच्चु वर हाव-भाव विब्भम-णिमिच्चु।।
उप्पण्ण बेण्णि तणुरुह गुणाल आराहिय सिरिहर पय-मुणाल।।
पभणिउ पहिलउ कमठाहिहाणु बीयउ मरुभूइ सिरि-णिहाणु।।
पहिलउ परिणाविउ वरुणकंत बीयउ वि वसुंधरि सोमकंत।।
बिण्णवि लीलएँ अच्छंति जाम जणणहो जाइउ बइराउ तेम।।
लक्खिवि भंगुरु संसार-सुक्खु णिरुवमु सुहयर केवलउ मुक्खु।।
इय जाणिवि मिल्लवि गेहवास पसरूअहं भूअहं कंठपासु।।
संगहिय जिणिंदहो तणिय दिक्ख तक्खणे ओलक्खिय सयल-सिक्ख।।
तहो विरह भरिय-घरु-परिहरेवि थिय झत्ति अणुंधरि दिक्ख लेवि।।

घत्ता— इत्थंतरे राएँ पयणिय राएँ णिसुअवत्त जण-वयणहो।
जिह गयउ पुरोहिउ उवसम-सोहिउ जिण-पवज्जहिँ णयरहो।। 191।।

11/7

राज-पुरोहित—विश्वभूति एवं उसके परिवार का वर्णन—

उस विश्वभूति पुरोहित की गृहिणी का नाम अनुन्धरी था। वह बड़ी ही शीलवती थी। वह अपनी प्रिय मधुर वाणी से कलकण्ठी (कोयल) की लीलाओं को भी जीतने वाली थी। नित्य ही उत्तम हाव-भाव विभ्रम-विलासों से भरपूर रति-सुख को भोगते हुए उन दोनों के दो गुणवान् पुत्र उत्पन्न हुए, जो श्रीधर (विष्णु) के चरण-कमलों के आराधक थे।

प्रथम पुत्र कमठ के नाम से प्रसिद्ध हुआ तथा श्रीनिधान द्वितीय पुत्र मरुभूति के नाम से प्रसिद्ध हुआ। प्रथम पुत्र कमठ वरुणकान्ता के साथ व्याहा गया, जबकि दूसरा पुत्र मरुभूति, सौम्यकान्ति वाली वसुन्धरी के साथ व्याहा गया।

जब वे दोनों पुत्र लीलाओं पूर्वक अपना जीवन-यापन कर रहे थे, तभी उनके पिता विश्वभूति को वैराग्य हो गया। उसने संसार-सुख को क्षण-भंगुर देखकर केवलज्ञान एवं मोक्ष को निरुपम सुखकारक जानकर, गृहावास का त्याग कर दिया और पशु समान भूतों (भौतिक सुखों) को कण्ठ-पाश समझकर जिनेन्द्र-दीक्षा ग्रहण कर ली।

उसने तत्काल ही समस्त आगमिक शिक्षाएँ प्राप्त कर लीं। पति के विरह से दुख भरी उसकी पत्नी अनुन्धरी भी तत्काल ही गृहत्याग कर जिन-दीक्षा में स्थित हो गईं।

घत्ता— इसी बीच अनुरागी उस राजा अरविन्द ने जनपदवासियों द्वारा जब यह वार्त्ता सुनी कि— पुरोहित-विश्वभूति उपशम (वैराग्य) भावों से शुद्ध होकर जिन-प्रव्रज्या के लिये नगर से चला गया है—।। 191।।

11/8

After the renunciation of Viśwabhūti his younger son Marubhūti is appointed next state-priest neglecting the claim of Kamatha due to his bad habits.

तं सुणिवि णरिंदेँ वुत्तु एउ — को परियाणइँ अरिहंतु देउ।।
अवरु वि असार-संसार-भेउ — तं मुइवि णरुत्तमु भूमि-देउ।।
सकियत्थउ मण्णमि सो जि एक्कु — जेँ जिय मयरद्धउ धीरु एक्कु।।
इय संसिवि आवाहिय तणूअ — णरणाहेँ तहो दियकुल पसूअ।।
5 अवलोइवि पढमेयरु विसिट्ठु — सत्थत्थवियक्खणु जण-विसिट्ठु।।
सुहि सज्जणवल्लहु हणिय दुट्ठु — उवरोहिय पइ परिठविउ सुट्ठु।।
कमठो वि विवज्जिउ गुण-विमुक्क — तिय-लंपडु पहु-आएस चुक्क।।
गउ मंदिरु णिव-सम्माण-हीणु — कलुसिय-मणु पायड-णरु व दीणु।।
गिहकम्मु करंतहो कालु जाम — तहो जाइ णिवइ संचलिउ ताम।।
10 रणजत्तहे णिय भाविणि थवेवि — मरुभूइ वि गउ भायरु चवेवि।।

घत्ता— इत्थंतरि भायरु तहो अगुणायरु णामेँ कमठु पसिद्धउ।
जो सो सुपरिक्खिवि बहुअ णिरक्खिवि कंपइ कामेँ विद्धउ।। 192।।

11/8

गुणज्ञ मरुभूति राजपुरोहित का पद प्राप्त करता है—

—तब (विश्वभूति की दीक्षा सम्बन्धी–) वृतान्त को सुनकर राजा अरविन्द ने कहा—"अरिहन्त देव को कौन जानता है और, असार-संसार का भेद कौन जानता है? मैं तो यही मानता हूँ कि एक मात्र वही भूमिदेव (ब्राह्मण विश्वभूति) कृतार्थ हुआ है, जिस धीर-वीर ने मकरध्वज (कामदेव) पर विजय प्राप्त की है।"

इस प्रकार उसकी प्रशंसा कर उस नरनाथ (अरविन्द) ने द्विजकुल में उत्पन्न उसके दोनों पुत्रों की बुलवाया और उनमें से प्रथमेतर अर्थात् मरुभूति को परीक्षण में विशिष्ट पाया। उसने शास्त्रार्थ में विचक्षण, जनविशिष्ट तथा सुधी-सज्जनों का बल्लभ और दुष्टों के संहारक मरुभूति के लिये विधिपूर्वक पुरोहित-पद पर प्रतिष्ठित कर दिया।

राजा ने कमठ की उपेक्षा कर दी क्योंकि वह गुणहीन था। साथ ही स्त्री-लम्पट तथा प्रभु की आज्ञा में भूल-चूक करने वाला था। राजा द्वारा सम्मानहीन (अपमानित), कलुषित मन से प्राकृत नर (साधारण मनुष्य) के समान दीन-हीन होकर वह अपने घर लौट आया। जब वह गृहकार्यों को करता हुआ समय व्यतीत कर रहा था, तभी राजा अरविन्द ने रणयात्रा के लिये प्रस्थान किया। मरुभूति भी अपने भाई कमठ को कहकर तथा अपनी पत्नी को घर में अकेली ही छोड़कर रण-यात्रा में चला गया।

घत्ता— इसी बीच, दुर्गुणों की खानि स्वरूप उसका कमठ नाम से जो प्रसिद्ध भाई था, वह अपनी उस अनुज-वधू को देखकर बार-बार उसकी ओर ताक-झाँक कर कामबिद्ध हो गया और काँपने लगा।। 192।।

11/9

Love affair of Kamaṭha with Vasundharī, younger brothers' wife.

जिह-जिह मंदिरि मरुभूइ भज्ज विहलंघल चल्लइ मुक्क-लज्ज।।
तिह-तिह तहे तणु कमठु वि वलेइ मणझिंदुअ अइ उल्लाव लेइ।।
जिह-जिह दरिसइ सुपओहराइँ लहु भायर-घरिणि मणोहरराइँ।।
तिह-तिह तहो मणु विद्दवइ केम घय-कुंभु जलण-संगेण जेम।।
5 जिह-जिह सा कुडिल-कडक्ख देइ तिह-तिह कमठु वि अइमुच्छ लेइ।।
बिण्णिवि जायइँ कामालसाइँ मयणाणल-तावि‍य-माणसाइँ।।
बिण्णिवि णयणालोयणु करंति वीससहिँ स-मणि जण-भउ धरंति।।
आलाउ दिंति रइ वित्थरंति अवरुप्परु घायहिँ उत्थरंति।।
बिण्णिवि णिहुअउ विहसंति संति अवसरु पाविवि इक्कंति थंति।।
10 रइ-सलिल-पवाहँ मयणदाहु उल्हावहि विरइवि एक्क गाहु।।

घत्ता— जिह-जिह बहु-भावहिँ णियय-सहावहिँ कीलहिँ अइ अणुरत्तहिँ।
तिह-तिह सुघडेप्पिणु पुणु विहणेप्पिणु णिवडहिँ णिसुढिय गत्तहिँ।। 193।।

11/9

अनुज-वधु—वसुन्धरी के साथ कमठ का प्रेम-व्यापार—

मरुभूति की भार्या वसुन्धरी जैसे-जैसे अपने घर में विह्वल, व्याकुल और निर्लज्ज होकर चलती-फिरती थी, वैसे ही वैसे उसे देखकर उस कमठ का शरीर भी काम-ज्वाला के कारण जलता रहता था और उसका मन झिन्दुक के समान खड़बड़ाता रहता था। जैसे-जैसे लघु भ्राता की वह गृहिणी अपने मनोहर सुपुष्ट पयोधरों को दिखाती थी, वैसे ही वैसे उस कर्मठ का मन किस प्रकार द्रवित होता था? ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार कि घृत-कुम्भ अग्नि के संयोग से पिघलने लगता है। जैसे-जैसे वह वसुन्धरी अपने कुटिल कटाक्ष उसे मारती थी, जैसे ही तैसे वह कमठ भी अतिशय रूप से मूर्च्छित होने लगता था।

वे दोनों ही कामासक्त एवं आलसी हो गये और भड़की हुई कामज्वाला से (निरन्तर-) सन्तप्त-चित्त रहने लगे। वे दोनों ही एक दूसरे को कनखियों से देखते थे और एक-दूसरे पर अपने-अपने मन में विश्वास करने लगे थे, किन्तु लोगों के भय से डरते भी रहते थे। प्रेमालाप करते हुए वे प्रेमराग का विस्तार करने लगे और परस्पर में शरीरों की टकराहट करते हुए वे टकराहटों से कामप्रेरित होने लगे। दोनों ही एकान्त में हँसते-मुस्कुराते रहते और अवसर पाकर वे एक होकर ठहरे रहते। इस प्रकार वे दोनों रति रूपी जल-प्रवाह से मदन की दाह को शान्त करते और प्रगाढ़ प्रेमी बनकर वे उल्लसित रहने लगे।

घत्ता— जैसे-जैसे वे अनेक प्रकार के भावावेशों से, स्वाभाविक हाव-भाव से, प्रगाढ़ रूप से रागोन्मत्त होकर काम-क्रीड़ाएँ करते थे, वैसे-वैसे ही एकाकार होकर फिर बिलग हो जाते थे, फिर श्रान्त-काय होकर विस्तर में ही गिर पड़ते थे।। 193।।

11/10

Hearing about the immoral relations of his wife with Kamaṭha, Marubhūti plunges into deep grief and sorrow.

जा चंद मुहुल्लिए कमठु बहुल्लिए सहु रमइ।
णिम्मल कुलवंतहँ उवसमवंतहँ पहु कमइ।।
ता साहिवि मेइणि धण-कण दाइणि आइयउ।
मयमत्त-मयंगइँ तुंग तुरंगइँ राइयउ।।
अरविंदु णरेसरु सुरभेरीसरु णियणयरे।
जसरासि विहूसिउ बइरिअ दूसिउ बहु खयरे।।
मरुभूइवि आवेवि कमठहो पणवेवि भायरहो।
आलिंगिवि अंगउ पुणु तुट्ठंगउ णियघरहो।।
तहिँ जाइवि कंतहँ ससियरकंतहे मुहकमलं।
पेक्खेविणु हरिसउ पणउ पदरिसिउ अइविमलं।।
जं घणु अरविंदेँ जिय रिउ बिदेँ अल्लविउ।
तं तेण सिणेहेँ तहे रसणेहेँ अल्लविउ।।
पणविउ भाउज्जहं पुणु जणपुज्जहे बहु विणएँ।
ताए वि अहिणंदिउ सो जणवंदिउ अइपणएँ।।
पुणु पुरउ सरेविणु पाणि धरेविणु देवरहो।
पिययम विलसिउ जिह वज्जरियउ तिह दियवरहो।।

11/10

रणविजेता मरुभूति घर लौट आता है और अपनी भाभी से अपनी पत्नी वसुन्धरी के काले कारनामे सुनकर दुखी हो जाता है—

जब चन्द्रवदनी अनुज-वधु –वसुन्धरी के साथ वह कमठ रमण-भोग कर रहा था और अपनी निर्दोष कुल-परम्परा और प्रतिष्ठा को नष्ट कर रहा था, तभी धन-धान्य प्रदान करने वाली पृथिवी को जीत कर, मदोन्मत्त हाथियों एवं उन्नत जाति के घोड़ों से सुशोभित यशोराशि से विभूषित, बैरियों को दूषित कर, दुन्दुभि-वाद्यों के निनाद के साथ खेचरों से व्याप्त वह राजा अरविन्द अपने नगर लौटा। राज-पुरोहित मरुभूति भी रणक्षेत्र से लौटकर अपने भाई कमठ के पास गया और प्रणाम कर उनका आलिंगन किया।

तत्पश्चात् सन्तुष्टांग वह अपने घर गया। वहाँ जाकर वह चन्द्रकिरण के समान सुन्दर अपनी कान्ता वसुन्धरी का मुख-कमल देखकर अत्यन्त हर्षित हुआ और उसके प्रति अपना अतिशय निर्मल प्रेम प्रदर्शित किया। उसने राजा अरविन्द के द्वारा शत्रुओं से जीता हुआ जो धन भेंट स्वरूप प्राप्त किया था, वह भी उसने उसे स्नेहपूर्वक अपनी पत्नी को भेंट कर दिया। उसके बाद उस मरुभूति ने जन पूज्य अपनी भौजाई को अत्यन्त विनम्रता पूर्वक प्रणाम किया। भौजाई ने भी जनवन्दित उस मरुभूति का अत्यन्त अनुरागपूर्वक अभिनंदन किया। पुनः आगे बढ़कर अपने उस द्विजवर देवर (मरुभूति) का हाथ पकड़कर अपने प्रियतम कमठ का वसुन्धरी के साथ हुए विलास-विभ्रमों सम्बन्धी समस्त वृत्तांत सुना दिया।

घत्ता— तं सुणिवि चमक्किउ णिय-मणि संकिउ तक्खणेण तणु कंपियउ।
विहुणंतेँ णियसिरु चिंतंतेँ चिरु कण्ण-जुअलु सइँ झंपियउ।। 194।।

11/11

After hearing the highly objectionable misdeeds of Kamaṭha, King Arvinda becomes furious and exiles him from the Kingdom.

पुणु भणिय भाय-भाविणि दिएण जाणिज्जइ लग्गउ इंगिएण।।
करि मउणु म जंपइ पुरउ कासु तारिसु किउ वयणु सुणेवि तासु।।
अण्णहिँ दिणि दर विहसंतियाइँ पत्थाउ लहेवि कमठहो पियाइँ।।
मरुभूइ भणिउ भो चत्तबुद्धि महु वयणेँ तुज्झु ण चित्तसुद्धि।।
5 जइ जाइ पेक्खु ता सइँ जि मुक्खु विट्ठउ सिंचिय अण्णाय रुक्खु।।
भाउज्जहे वयणे णियइ जाम सहुँ भायरेण पियदिट्ठु ताम।।
कोहाणल,जालालिंगियंगु गउ रायगेहु णं खयपयंगु।।
जंपंतउ भायर तणउ वित्तु तं सुणिवि णिवहो परिखुहिय चित्तु।।
जाणमि जेण जि अण्णाय-रासि तेण जे मइँ सो परिहरिउ आसि।।
10 इउ भणिवि णिवेणाढत्त मिच्च दुप्पिच्छ-दच्छ-दिढ्यर णिभिच्च।।

घत्ता— तेहिँ जि जाएविणु हक्क करेविणु कमठु बद्धु पच्चारिउ।
खर उवरि चडाविवि लोयहँ दाविवि णिय-णयरहो णीसारिउ।। 195।।

घत्ता— भौजाई द्वारा वृत्तांत सुनकर मरुभूति चौंक उठा। मन ही मन में वह शंकित हो उठा, उसका सारा शरीर काँप उठा। अपना सिर धुनते हुए बहुत देर तक विचार करते हुए उसने अपने दोनों कान ढँक लिये।। 194।।

11/11

दुष्चरित्र कमठ को राजा अरविन्द निर्वासित कर देता है—

पुनः मरुभूति द्विज ने अपनी भौजाई से कहा कि तुम्हारे आकार रूप इंगित चेष्टा आदि के संकेत से यद्यपि मैंने सब कुछ जान लिया है तथापि मौन धारण करो तथा यह वृत्तांत किसी के सामने मत कहना। देवर के ऐसे वचन सुनकर उसने वैसा ही किया।

अन्य किसी एक दिन कुछ-कुछ हँसते हुए कमठ की वह प्रियतमा (वरुणा) मरुभूति के पास एक प्रस्ताव लेकर आई और उससे बोली— हे मूर्खराज, मेरे कथन पर यदि तुझे पूर्ण विश्वास न हो तो तू स्वयं जाकर अपनी आँखों से देख ले, तुझे स्वयं ही विश्वास हो जायगा कि अन्याय रूपी वृक्ष विष्ठा के द्वारा सींचा जा रहा है।

अपनी भौजाई (वरुणा) के कथन से जब उसने भाई कमठ के साथ अपनी प्रियतमा वसुन्धरी को देखा तो वह उसका तन-वदन क्रोधानल से झुलसने लगा। प्रलयकालीन चण्ड सूर्य के समान मरुभूति तुरन्त ही राजमहल गया। वहाँ उसने अपनी भाई कमठ की करतूतें बतलाईं। उन्हें सुनकर राजा अरविन्द का चित्त भी क्षुब्ध हो उठा। उसने कहा कि अन्याय की राशि के समान उस कमठ को मैं पहले से ही जानता था इसीलिये मैंने उसका परिहार कर उसे पुरोहित पद प्रदान नहीं किया था। फिर उसने दुष्प्रेक्ष्य, दक्ष, साहसी और निर्भीक भृत्यों को (उस कमठ के घर-) उसे पकड़कर लाने हेतु भेजा—

घत्ता— उन आज्ञाकारी भृत्यों ने भी कमठ के घर जाकर उसे ललकार कर बुलाया, उसकी भर्त्सना की और बाँध लिया। तत्पश्चात् उसे गधे के ऊपर चढ़ाकर लोगों को दिखाकर उसे नगर के बाहर निकाल दिया।। 195।।

11/12

An ideal example of affection between the two brothers.

अहिमाणिउ गउ घरु परिहरेवि लहु भायर-चरिउ स मणि धरेवि।।
कम्मट्ठु दुक्ख-संतत्तु जाम मरुभूइ वि थिउ णियगेहि ताम।।
इक्कहिँ दिणि सिरि विलसंतएण सुमरिउ भायरु उवसंतएण।।
पवराणुंधरिहे थणंधएण अणुएण पढमु णेहंधएण।।
5 वलि किउ हउँ णिग्घिणु पावकम्मु भायरु वि णिक्कालिउ हणिवि धम्मु।।
का गइ पावेसमि इय भणेवि रोवंतेँ जणविंभउ जणेवि।।
विण्णत्तउ णरवइ तक्खणेण णेहुब्भव दुक्खाउल मणेण।।
मइँ मुक्खेँ भायरु घरहो देव तइयहँ णिक्कालिउ भुवण सेव।।
एव्वहिँ जइ विरयहि महु पसाउ आणमि ता णरवइ पढमु भाउ।।
10 तं सुणिवि णिसिद्धउ णरवरेण माणिह स-सत्तु सकरुण सरेण।।

घत्ता— राएण णिसिद्धु वि अवगुण बिद्धु वि गउ मरुभूइ सिणेहेँ।
भायरहो गवेसउ अमुणिय देसउ घरु मिल्लिवि हय कोहेँ।। 196।।

11/12

भ्रातृ-स्नेह का आदर्श उदाहरण—

वह अभिमानी कमठ अपने छोटे भाई मरुभूति की करतूतों को अपने मन में धारण किये हुए दुख से सन्तप्त होता हुआ जब घर छोड़कर निकल गया तब वह मरुभूति भी दुखीमन से अपने घर में ही स्थिर रहने लगा।

अन्य किसी एक दिन भोगेश्वर्यों का विलास करते हुए जब उसका मन कुछ शान्त हुआ तब उसे अपने भाई (कमठ) का स्मरण आया और विचार करने लगा कि प्रवर पण्डिता अनुन्धरी के प्रथम पुत्र कमठ के स्नेह में अन्धे रहने वाले मुझ जैसे अनुज ने यह क्या कर डाला, धर्म का हनन कर अपने भाई कमठ का निर्वासन करा दिया? मैं सचमुच ही निर्घृण्य एवं पाप कर्मी हूँ। अब आगे मेरी क्या दुर्गति होगी? यह कहकर वह रोने लगा। लोग भी उसे देखकर विस्मित हो उठे।

स्नेह से उत्पन्न तथा दुख से आकुल-व्याकुल मन वाले उस मरुभूति ने तत्काल ही जाकर राजा से विनती की और कहा— हे भुवन-सेव्य देव, मुझ मूर्ख ने रण-क्षेत्र से लौटते ही अपने भाई को घर से निकलवा दिया था। अब हे नरपति, आप मुझ पर ऐसी कृपा कीजिए, जिससे कि मैं अपने ज्येष्ठ भ्राता को वापिस घर ले आऊँ। मरुभूति का कथन सुनकर राजा ने करुणा भरे स्वर से निषिद्ध करते हुए कहा कि अपने उस शत्रु को वापिस मत लाओ।

घत्ता— राजा द्वारा निषिद्ध किये जाने पर भी, कमठ के अवगुणों से बिद्ध (जख्मी) होने पर भी अपने भाई से स्नेहाबिद्ध होने के कारण अपने क्रोध का त्याग कर उसके देश का अता-पता ज्ञात न होने पर भी वह उसकी खोज में निकल पड़ा।। 196।।

11/13

Marubhūti accidentally meets his brother-kamaṭha on the bank of river Indus.

पुच्छंतेँ जणु-जणु दिय-सुएण हिंडंते महि कमठाणुएण।।
सिंधू-सरि-तीरइँ रयविलित्तु कोहाणल जालावलि पलित्तु।।
जड-जूड-धारि-संसारभीरु पंचग्गहिँ तावंतउ सरीरु।।
दिट्ठउ जिट्ठउ भायरु थवंतु मणु दुप्परिणामहँ तउ तवंतु।।
5 पणवेवि भणिउ हउँ भाय धिट्ठु ण मुणमि णिल्लक्खणु भाउ जेट्ठु।।
जं कोहु करिवि णिक्कालिओसि दुक्खग्गिजाल-पज्जालिओसि।।
जं अज्जु मज्झु लहु खमहि भाय दय करिवि किण्ण महु देहि वाय।।
इय भणिवि णविय दामोयरेण पुणु-पुणु अणुएण सहोयरेण।।
बिण्णविवि खमाविउ कमठु जाम उट्ठिउ रुहिरारुण-णयणु ताम।।
10 ताडंतउ सिरु सिलपहरणेण मरुभूइ मुक्क जीवेँ खणेण।।

घत्ता— उप्पण्णु महावणि सल्लइतरु घणि असणिघोसु णामेँ करि।
वरुणा वि मरेप्पिणु दुहु वि सहेप्पिणु करिणि जाय तहो मणहरि।। 197।।

11/13

सिन्धु नदी के तट पर मरुभूति की कमठ से अचानक ही भेंट—

कमठ की खोज में तत्पर वह द्विजपुत्र-मरुभूति मार्ग में जो भी मिलता, उससे कमठ के विषय में पूछता हुआ पृथिवी पर भटकता हुआ सिन्धु नदी के किनारे पहुँचा। वहाँ उसने रजोलिप्त (भस्म लगाए हुए) क्रोध रूपी अग्नि की ज्वाला में प्रदीप्त, जटा-जूट धारी, संसार से भयभीत, पंचाग्नि में शरीर को तपाते हुए तथा अनेक दुष्परिणामों से तप को तपते हुए अपने ज्येष्ठ भाई कमठ को वहाँ खड़ा हुआ देखा।

मरुभूति ने उसे प्रणाम कर कहा— मैं आपका वही धृष्ट, एवं निर्लक्षण भाई हूँ, जिसने अपने जेठे भाई को क्रोधित होकर घर से निकलवा दिया था और दुखरूपी अग्नि-ज्वाला में जला डाला है। अतः हे भाई, दया कर आज मुझे क्षमा कर दीजिए। किन्तु आप मुझसे बोल क्यों नहीं रहे हैं?

इस प्रकार दामोदर (श्रीकृष्ण) को प्रणाम करने वाले विष्णु-भक्त उस सहोदर छोटे भाई ने बारम्बार विनती कर जब उस कमठ से क्षमायाचना की, तभी उस दुष्ट कमठ के नेत्रों में खून उतर आया। वह क्रोधावेश में उठा और उसने मरुभूति के सिर में एक शिला उठाकर इतने जोर से प्रहार किया कि मरुभूति के तत्काल ही प्राण-पखेरु उड़ गये।

घत्ता— वह मरुभूति मरकर सल्लकी-वृक्षों वाले सघन महावन में अशनिघोष नामक हाथी के रूप में उत्पन्न हुआ। उधर, कमठ की पत्नी वरुणा भी मरकर अनेक दुखों को सहन करती हुई उसी अशनिघोष हाथी की मनोहरी हथिनी के रूप में उत्पन्न हुई।। 197।।

11/14

After his death, Kamaṭha takes new birth as a terrific Kukkuta-sarpa (a kind of very poisonous snake)

तो इत्थंतरे दुक्ख णिरंतरे।।
अहिकुल जायउ जणि विक्खायउ।।
कमठु मरेप्पिणु तउ विरएप्पिणु।।
इच्छिय परिहरु आसीविसहरु।।
दूसह दप्पो कुक्कड सप्पो।।
जाय पुराहिउ हय पडिराहिउ।।
पय परिपालइ णाउ णिहालइ।।
ता इक्कहि दिणि सइ उग्गइ दिणि।।
दिक्खवि मणहरु सारय जलहरु।।
लेविणु कागणि जुइ णिज्जिय मणि।।
जा असमाणउ तहो अणुमाणउ।।
लिहइ सहत्थेँ पगुणिय सत्थेँ।।
ताम पणट्ठउ मेह ण दिट्ठउ।।
तारिसु पिक्खिवि मणि उवलक्खिवि।।
चिंतइ णरवरु जिह गउ जलहरु।।
तिह जाएसमि णउ थाएसमि।।
हउँमि णिरुत्तउ तक्खणि वुत्तउ।।
सइँ णिय परियणु सेवारय मणु।।
मज्झु सरीरउ गिरिवर धीरउ।।
अहिसिंचेविणु जिणु अंचेविणु।।

11/14

कमठ मरकर विषैले कुक्कुट-सर्प की योनि प्राप्त करता है—

तब इसी बीच (परस्त्री लम्पट के रूप में) लोगों में विख्यात वह कमठ बाल-तप करके मरा और दुखों से परिपूर्ण सर्प-कुल में दुःसह दर्प वाला **कुक्कुट-सर्प** नाम का आशी-विषधर हुआ।

और इधर, पुरवासियों का हित करने वाला तथा शत्रुओं का संहार करने वाला वह राजा अरविन्द प्रजा-पालन में तत्पर था, तथा न्याय-पूर्वक उसकी देखभाल कर रहा था। तभी एक दिन सूर्य के उदय होते समय उसने शरद्कालीन मनोहारी मेघ को स्वयं देखा और अपनी द्युति से मणि को भी जीत लेने वाली कागणी (तूलिका) लेकर जब कला-प्रवीण वह उसके उस असाधारण सौन्दर्य रूप को अपने अनुमान से अपने हाथों द्वारा रेखांकित करने बैठा, तभी वह मेघ नष्ट हो गया। वह उसे दिखाई नहीं दिया।

उसे देखकर अपने मन में उपलक्षित कर वह नरवर चिन्तन करने लगा कि जिस प्रकार वह जलधर देखते-देखते ही अदृश्य हो गया है, वैसे ही मैं भी इस संसार से चला जाऊँगा, यहाँ स्थिर होकर नहीं रह सकूँगा। अतः उसने तत्काल ही अपनी सेवा में रत परिजनों को बुलाकर कहा कि मुझे वैराग्य हो रहा है। अतः तुम लोग पर्वत के समान धीर-वीर मेरे पुत्र का जिनेन्द्र की पूजा कर राज्याभिषेक करके उसे—

घत्ता— दिव्ववर देविणु तूर हणेविणु सिंहासणि वइसारहु।
हउँ जामि तओ वणु परिउज्झिय जणु मेरउ कज्जु मणोरहु।। 198।।

11/15

Description of previous births of King Aravinda.
The different pains and troubles of four forms of existence of life (Gatis)

इय चल्लंतहो धरणीसरासु विद्धंसिय मयरद्धय-सरासु।।
संजायउ तक्खणि अवणिहाणु णिय तेओहामिय तरुण-भाणु।।
कालत्तउ णिरु जाणियइ जेम णिय पुव्व-जम्मु जाणियउ तेम।।
उप्पणउ जइयहँ णरयवासि णारइय दिण्ण दुह सयसहासि।।
5 तइयहँ जं वि सहिउ तिव्वु दुक्खु तं जइ परमक्खइ मुणि मुमुक्खु।।
तत्थहो णिग्गउ कम्महो वसेण तिरियत्तणु पत्तउ सरहसेण।।
तत्थवि दुक्खहँ लक्खइँ सहेवि अवरुप्परु खरणहरहिँ वहेवि।।
कहविहु मणुअत्तण-गइ पवण्णु तहिँ मोहमहण्णवि णिरु णिमण्णु।।
मे घरु मे परियणु मे जणेरु मे भायरु मे सुहि सुह-जणेरु।।
10 मे मे पभणंते तहिमिँ वप्प विसहिय दुहसय अणप्प।।

घत्ता— मणुअत्तु मुएविणु सुरु होएविणु अइयहु हउँ उप्पण्णउ।
तइयहुँ पच्चक्खेँ माणस-दुक्खेँ अणवरउ जि अदण्णउ।। 199।।

घत्ता— दिव्य वस्त्र प्रदान कर, तूर्यादि वाद्यों को बजाकर, राज्यसिंहासन पर प्रतिष्ठित कर, मेरा मनोरथ पूर्ण करो, *जिससे कि मैं समस्त परिजनों का मोह-त्यागकर तपस्या हेतु वन में जा सकूँ।। 198।।*

11/15

राजा अरविन्द के पूर्वभव : चतुर्गति-दुख-वर्णन—

इस प्रकार दीक्षा के लिये उत्सुक मकरध्वज-कामदेव के वाणों का विध्वंसक वह राजा अरविन्द जब वन की ओर चलने लगा, तभी उसे तत्क्षण ही अपने तेज से तरुण-सूर्य को भी निस्तेज कर देने वाला अवधिज्ञान उत्पन्न हो गया। इस ज्ञान के द्वारा उसने तीनों कालों (वर्तमान, भूत, भविष्य) को जान लिया, साथ ही उसने अपने ज्ञान-बल द्वारा अपने पूर्वजन्मों को भी जान लिया। उसने जाना कि जब मैं नरक में उत्पन्न हुआ था, उस समय नारकियों द्वारा मुझे सैकड़ों हजारों प्रकार के भीषण कष्ट दिये गये थे। उस समय मैंने जो-जो असह्य दुख सहे थे, उनका वर्णन केवल यति, मुमुक्षु या मुनि ही कर सकते हैं।

कर्मवशात् वहाँ से निकल कर हर्षित होकर तिर्यंचगति को प्राप्त की। तब परस्पर में प्रखर-नखों द्वारा वध कर-कराकर वहाँ भी लाखों प्रकार के दुख सहे। जिस किसी प्रकार मैंने जब मनुष्यगति प्राप्त की, तो उसमें भी मैं निश्चय ही मोह रूपी महासमुद्र में निमग्न हो गया। यह मेरा घर है, ये मेरे परिजन हैं, ये मेरे माता-पिता हैं, ये मेरे भाई हैं, और ये सुखोत्पादक मेरे मित्रगण हैं। इस प्रकार मेरा-मेरा कहते हुए बाप रे बाप उस मनुष्य गति में भी मैंने अगणित दुस्सह दुख सहे।

घत्ता— मनुष्य-पर्याय छोड़कर देवगति प्राप्त कर जब मैं वहाँ उत्पन्न हुआ, तभी से प्रत्यक्ष ही मानसिक क्लेशों से अनवरत आकुल-व्याकुल बना रहा।। 199।।

11/16

King Aravinda renounced the world, accepts asceticism and does severe penance in Sallakī-Forest.

इय णीसेसहो णिय परियणासु णिय णाह-विओयाउल-मणासु।।
भासिवि णियपुत्तहो विउल-भालि बंधेवि पट्टु मणिगण पहालि।।
पुच्छेविणु परियणु णिरवसेसु पुणु णिय णयरहो णिग्गउ णरेसु।।
णंदणवणे पियवयणइँ चवेवि पिहियासव मुणि चरणइँ णवेवि।।
5 पडिगाहिवि दइगंबरिय दिक्ख ओलक्खिवि सयलागमहँ सिक्ख।।
विसहंतउ भीम-परीसहाइँ णिरसंतउ मयण-सिलीमुहाइँ।।
पालंतउ पंचमहव्वयाइँ लावंतउ भवियण सुव्वयाइँ।।
संचंतउ सिसियर तिरियणाइँ भावंतउ बारह-भावणाइँ।।
पालंतु सील बोहंतु भव्व जरु-तिणुव णियंतउ सयल-दव्व।।
10 दुद्दम पंचिंदिय णिज्जिणंतु सावयहँ धम्मु दोविहु भणंतु।।
विरयंतउ छावासय विहाणु अरविंदु भडारउ गुण-णिहाणु।।
विहरंतु पत्तु सल्लइ वणंति खयरइँ सुहु तरुपंतिहि जणंति।।

घत्ता— तहिँ जा थिउ मुणिवरु झाइय जिणवरु तणु विसग्गु विरएप्पिणु।
तित्थु जि आवासिउ जणहिँ समासिउ सत्थवाहि आवेप्पिणु।। 200।।

11/16

राजा अरविन्द मुनि-दीक्षा लेकर सल्लकी-वन में कठोर तपस्या करने लगता है—

तत्पश्चात् अपने स्वामी के वियोग से आकुल-व्याकुल चित्त वाले अपने परिजनों को समझा-बुझाकर तथा अपने पुत्र के विशाल-भाल पर मणियों की प्रभा से दीप्त पट्ट बाँधकर समस्त परिजनों से पूछकर वह राजा अरविन्द अपने नगर से निकला और नन्दनवन में प्रियवचन बोलकर पिहिताश्रव-मुनि के चरणों में प्रणाम कर उनसे दैगम्बरी-दीक्षा ले ली और समस्त आगम-शास्त्रों की शिक्षा ग्रहण कर ली।

तीक्ष्ण परीषहों को सहता हुआ, काम-वाणों का निरसन करता हुआ, पंच-महाव्रतों का पालन करता हुआ, भव्यजनों को सुव्रतों में लगाता हुआ, चन्द्रकिरणों के समान रत्नत्रय का संचय करता हुआ, बारह भावनाओं को भाता हुआ, शीलव्रतों का पालन करता हुआ, भव्यजनों को प्रवोधित करता हुआ, समस्त द्रव्यादि सम्पत्तियों को जीर्ण-शीर्ण तृणवत् देखता हुआ, दुर्दम पंचेन्द्रियों को जीतता हुआ, श्रावकों के लिये दो प्रकार के धर्मों का प्रवचन करता हुआ, षडावश्यक क्रियाओं के विधान को करता हुआ गुणनिधान वह अरविन्द-भट्टारक विहार करता हुआ वृक्षों की पंक्तियों से पक्षियों को सुख-संतोष देने वाले सल्लकी-वन में जा पहुँचा।

घत्ता— जब वे अरविन्द-भट्टारक जिनेन्द्र का ध्यान करते हुए कायोत्सर्ग धारण किये हुये थे, तभी वहाँ अनेक लोगों के साथ एक सार्थवाह आया और उसने सदल-बल वहीं पर पड़ाव डाल दिया।। 200।।

11/17

Mahāsārthawāha Samudradatta the leader of the caravan of traders comes to ascetic Aravinda with his companions to attend his religious discourses.

समुद्दत्त-वाणिओ असेस लोय जाणिओ।।
णिएवि तं मुणीसरं समो हरो विणीसरं।।
तओ गओ तुरंतओ महंत भत्ति-जुत्तओ।।
मुणिंद पाइ लग्गओ गिरिंदि णाइ दिग्गओ।।
5 भवंतएण साहुणा पलंब थोर बाहुणा।।
विइण्ण धम्म-विद्धिया विसुद्धि सिद्ध-सिद्धिया।।
पसंसिऊण चारुणा वयद्ध रोर दारुणा।।
असेस लोयणाहिणा बहुत्त सत्थ-वाहिणा।।
गहीर धीर वाणिणां समुद्दत्त-वाणिणा।।
10 मुणिंदु धम्मु पुच्छिओ लवेइ सोइ इच्छिओ।।
भवंबुरासि तारओ चउग्गइ णिवारओ।।
महागिरिंद धीरओ सकंति धत्थ हीरओ।।

घत्ता— बुज्झिज्जहिँ भव्वेँ उज्झियगव्वेँ फलदाणु जि दयारओ।
विहि पत्तु पयत्तेँ पंचगवत्तेँ परिविहुणिय मायारओ।। 201।।

11/17

महासार्थवाह-समुद्रदत्त सदल-बल अरविन्द मुनीन्द्र से धर्म-प्रवचन सुनता है—

समस्त लोकों में प्रसिद्ध उस सार्थवाह समुद्रदत्त नाम के वणिक् ने कायोत्सर्ग-मुद्रा में समताधारी उन मुनीश्वर अरविन्द-भट्टारक को मौन धारण किये हुए जब देखा, तो अत्यन्त भक्तिभाव से भरकर तुरन्त वह उनके पास गया, उनके चरणों में इस प्रकार आ लगा, मानों दिग्गज ही गिरीन्द्र के पास आ गया हो। भव-भवान्तरों के नाशक, कायोत्सर्ग-मुद्रा के कारण आजानबाहु, इन मुनीन्द्र ने उस सार्थवाह को विशुद्ध-सिद्धि की साधक "धर्मवृद्धि" रूप आशीर्वाद प्रदान किया।

अपने उदार दान से पण्डित जनों की बढ़ती हुई दारुण दरिद्रता को दूर करने वाले, गम्भीर धीर वाणी वाले अनेक सार्थवाहों के समूह से युक्त उस लोक प्रधान समुद्रदत्त वणिक् ने उनकी विनम्र प्रशंसा-स्तुति कर, उनसे धर्म के विषय में जानने की इच्छा व्यक्त की। तब भव-समुद्र के तारक, चतुर्गतियों के निवारक, गिरिराज-सुमेरु के समान धीर और अपनी कान्ति से हीरे की कान्ति को भी निस्तेज करने वाले उन मुनिराज ने इच्छित धर्म-विषय पर अपने प्रवचन में कहा–

घत्ता— गर्व का उच्छेद कर दयारत भव्यजनों को इन पाँच बातों की जानकारी होना चाहिये— (1) दान का स्वरूप, (2) दान का फल, (3) दयारत धर्म, (4) दान की विधि, एवं, (5) दान के पात्र। ये पाँचों बातें प्रयत्न पूर्वक जानना चाहिये क्योंकि वे माया रूपी रज को नष्ट करने वाली हैं।। 201।।

11/18
The seven qualities of a donar.

खमवंतउ भत्तिउ तुट्ठिवंतु विण्णाणि अलोलुअ सत्तिवंतु।।
सद्धावंतउ इय सत्त भेउ दायारु भणइ तित्थयरु देउ।।
जो कोउ न विरयइ सहुँ जणेहिँ खमवंतउ भासिउ सो जिणेहिँ।।
जो मुणि सेवायरु देइ दाणु तं भत्तिवंतु णिय चित्ति जाणु।।
5 जसु चित्ति तुट्ठि दिंतहो हवेइ तं तुट्ठिवंतु जिणवर लवेइ।।
जो दव्वु-खित्तु-वरकालु-भाउ चिंतइ विण्णाणि सो णरु अपाउ।।
जो किंपि ण कामइ तियरणेहिँ सो भणिउ अलोलुउ णरु जिणेहिँ।।
जो दव्व-विहीणु वि देइ दाणु तं सत्तवंतु मुणि हय-णियाणु।।
मुणिवरहँ दाणु दिंति णरेण हियइच्छिउ फलु लब्भइ भरेण।।
10 जसु एरिस सद्धा मणि हवेइ तं सद्धावंतउ जिणु चवेइ।।

घत्ता— इय सयल गुणंकिउ णरु णीसंकिउ हवइ पवरु दायारउ।
गुणहीणु जहण्णउ अइ अपसण्णउ मज्झिमु विविह पयारउ।। 202।।

11/18
दातार के सात गुण—

क्षमावान्, भक्तिवान्, तुष्टिवान्, विज्ञानी, अलोलुपी, शक्तिवान् एवं श्रद्धावान् दातार के ये सात भेद तीर्थंकर देव ने कहे हैं।

जो लोगों के प्रति क्रोध नहीं करता, उसे जिनेन्द्र ने **क्षमावान्** कहा है। मुनिसेवा में तत्पर रहता हुआ जो उन्हें दान देता है, वह **भक्तिवान्** है, ऐसा अपने मन में समझो। जिसके चित्त में दान देते समय सन्तुष्टि हो, उसे जिनवरों द्वारा **तुष्टिवान्** कहा गया है। जो द्रव्य, क्षेत्र, काल एवं भाव को जानता है (चिन्तन करता है), वह निष्पाप मनुष्य **विज्ञानी** कहलाता है।

जो मन वचन एवं काय से कुछ भी प्राप्त करने की इच्छा नहीं करता उसे जिनेन्द्र ने **अलोलुपी** नर कहा है। जो स्वयं द्रव्यविहीन होने पर भी दान देता है, उसे निदान रहित मुनियों ने **शक्तिवान्** कहा है। जो व्यक्ति मुनिवरों के लिये दान देता है, वह अवश्य ही मनवांछित फल को प्राप्त करता है, इस प्रकार की श्रद्धा जिसके मन में होती है, उसे जिनेन्द्र ने **श्रद्धावान्** कहा है।

घत्ता— उक्त समस्त प्रकार के गुणों से जो अलंकृत होता है, और निशंक होकर दान करता है वह उत्तम कोटि का दातार होता है। जो इन गुणों से हीन तथा अप्रसन्न रहकर दान देता है वह जघन्य कोटि का दातार है। किन्तु मध्यम कोटि का दातार विविध प्रकार का कहा गया है।। 202।।

11/19
Characteristics of donars.

विणयाहरणालंकिउ दयालु विहुणिय मिच्छत्त पउर पयालु।।
धीरउ दूरुज्झिय रायदोसु भवियण माणस संजणिय तोसु।।
भासिउ वयणहिँ मह मुणिवराहँ रइँ विरयइँ सासणि जिणवराहँ।।
धम्मिउ सम-माणसु महुर-वाणि सम्मत्त-विहूसिउ भव्वपाणि।।
णिरहंकारउ दायारु होइ णिज्जिय-कसाउ वज्जरइ जोइ।।
जो पीडिवि ताडिवि करेवि कोउ दूसेवि णिब्भच्छेवि करेवि सोउ।।
पुणु देइ दाणु जिणवरेहिँ सिट्ठु सो होइ ण दायारउ विसिट्ठु।।
भय भरियउ कंपइ देहु जेण गुणवंतु पत्तु णासियइ जेण।।
संपज्जइ बहु आरंभु जेण हम्मंति णिरंतर जीव जेण।।
सग्गापवग्गु कामंतएहिँ इय दाणु ण दिज्जइ संतएहि।।

घत्ता— महि मंदिर लोहइँ विहिय विरोहइँ गो-महिसी-तिल-हेमइँ।
इय दाणु ण दिज्जहिँ वप्प ण लिज्जहिँ उवरोहेण ण केमइँ।। 203।।

11/19
दातारों के लक्षण—

जो विनय रूपी आभरण से अलंकृत हो, दयालु हो, मिथ्यात्व का नाशक हो, प्रचुरता के साथ मुनियों की पद-सेवा करता हो, धीर हो, दूर से राग-द्वेष छोड़ देने वाला हो, भव्य जनों के मानस में सन्तोष उत्पन्न करने वाला हो, अपनी वाणी से मुनिवरों की प्रशंसा करने वाला हो, जिनवरों के शासन के प्रति अनुरागी हो, धर्मात्मा हो, समचित्त हो, मधुर-भाषी हो, सम्यग्दर्शन से विभूषित हो, भव्यप्राणी हो, निरहंकारी हो, उसे कषाय-विजयी योगीजनों ने **दातार** कहा है।

(इनके विपरीत–) जो पीड़ा देता हो, जो ताडन करता हो, क्रोध करता हो, जो दूसरों को दोष लगाता हो, जो दूसरों को भर्त्सना करता रहता हो, और जो शोकाकुल रहकर दान देता हो, वह विशिष्ट अथवा अच्छे दातार की कोटि में नहीं आता, ऐसा जिनवरों ने कहा है।

जिससे भयभीत होकर देह काँपने लगे, जिससे गुणवान् पात्र का नाश हो, जिससे अनेक प्रकार के आरम्भ करना पड़ें, जिससे जीवों का निरन्तर घात हो, स्वर्गापवर्ग की कामना करने वाले सन्त दातारों द्वारा ऐसा दान न दिया जाय।

घत्ता— महीदान, भवनदान एवं लौहदान ये दान विरोध-भाव उत्पन्न करने वाले हैं। गोदान, महिषीदान, तिलदान, एवं स्वर्णदान बाप रे बाप, इन दानों को न तो देना चाहिए और किसी के द्वारा अनुरोध किये जाने पर भी किसी से न लेना ही चाहिए।। 203।।

11/20

Features of bad and good charity.

तिल-घय-रुप्पय कंचणहँ धेणु जे दिंति दियहँ संजणिय रेणु।।
ते सूणागारहँ अइ णिकिट्ठ तिहुअण-वइणा णाणेण दिट्ठ।।
संकंति गहण वारेसु दाणु जे देंति मूढ संजणिय माणु।।
ते छिंदेवि वर सम्मत्त-रुक्खु कय दुक्खु ववहिँ मिच्छत्त-रुक्खु।।
5 जे दिंति कण्ण भव-दुक्खरासि ते कह तरंति भव-वारि-रासि।।
जे देंति स-पियरहँ तित्ति-हेउ बहुविह दाणहँ अमुणंति भेउ।।
ते दड्ढरुक्ख सिंचहि वराय पल्लव-णिमित्तु उल्लसिय काय।।
जे लिंति देंति आमिसु गसंति ते णरय-वासि तिण्णिवि वसंति।।
इय बहुविह दाणइँ परिहरेवि दिज्जइ सुदाणु जिणु मणि धरेवि।।
10 जेणंगिवग्गु पीणियइँ सव्वु पाविज्जइ सुहगइ सो सुदव्वु।।
हम्मइँ ण पत्तु जसु होइ जेम उवसामिज्जइ परु अप्पु जेम।।

घत्ता— सो दाणु पसंसिउ गुणहिँ विहूसिउ सग्गमोक्ख सुहयारउ।
अभयाहारोसहु सत्थु अदोसहु णरयदुक्ख-णिवारउ।। 204।।

11/20

अधमदान एवं उत्तमदान की विशेषताएँ—

जो ब्राह्मणों के लिये रेणु (पाप-रज) कारक तिल, घृत तथा रजत एवं स्वर्ण निर्मित गायों का दान देते हैं, वे खटीक अथवा कसाइयों आदि से भी निकृष्ट हैं (अर्थात् ऐसे दान प्रशस्त नहीं है), ऐसा त्रिभुवन-पति ने अपने दिव्य ज्ञान से देखा-जाना है। संक्रान्ति के दिनों तथा ग्रहण के दिनों और अन्य दिनों के अवसर पर जो मूढ़ व्यक्ति अहंकार बढ़ाने वाले दान देते हैं, वे मानों सम्यक्त्व रूपी वृक्ष को काटकर दुखकारक मिथ्यात्व रूपी वृक्ष को ही रोपते हैं। भवों की दुखराशि-रूप जो कन्या का दान देते हैं, वे भव-भव रूपी जलराशि को कैसे पार कर सकेंगे?

जो दान के रहस्य को नहीं जानते और अपने पितरों की तृप्ति के निमित्त दान देते हैं, वे बेचारे उल्लसित काय होकर पल्लवों के निमित्त मानों दग्ध-वृक्षों को ही सींखते हैं। जो माँस को लेते-देते अथवा खाते हैं, वे तीनों ही (अर्थात् देने, लेने एवं खाने वाले) नरकवास के भागी बनते हैं। इसी प्रकार अन्य अनिष्ट दानों का दान नहीं करना चाहिए और जिनेन्द्र को मन में धारण कर प्रशस्त वस्तु ही दान में देना चाहिए जिससे सभी प्राणिवर्ग सन्तुष्ट हों, जिससे शुभगति मिले, जो पात्रों का घात न कर सके और जिससे सुयश मिले तथा जिससे दाता एवं पात्र दोनों को शान्ति प्राप्त हो सके।

घत्ता— वही दान प्रशंसित होता है, गुणों से विभूषित होता है, और स्वर्ग तथा मोक्ष के सुखों को देने वाला होता है। अभयदान, आहारदान, औषधिदान एवं शास्त्रदान ये चारों दान निर्दोष हैं तथा नरक के दुखों का निवारण करने वाले हैं।। 204।।

11/21

The importance of the charity of pious food (Āhāradāna), useful medicines (Auṣadhidāna) and protection to frightened (Abhayadāna).

धम्मत्थ-काम-मुक्खहँ वि सारु जीवेव्वउ सव्व जणाहँ चारु।।
विणु जीविएण णाणाविहाइँ को अणुहवेवि इंदिय-सुहाइँ।।
जँ दिण्णउ जीवहुँ जीवियव्वु तँ दिण्णउ मणचिंतियउ सव्वु।।
णाभयदाणहो महि अण्णु दाणु गयणहो ण अण्णु णिम्मलु वियाणु।।
5 तेण जि दिज्जइ अणुकंपदाणु सुहयरु परिरक्खिय पाणि पाणु।।
आहारेँ बिणु जीविउ ण ठाइ हिम-हय-कमलवणु व तणु ण भाइ।।
आहारेँ सिरि-मइ-गइ हवेइ रइ कंति कित्ति सुइ जिणु चवेइ।।
आहार-दाणु पविइण्णु जेण महियलि भणु किं किं ण दिण्णु तेण।।
आहारेँ कीरइ धम्मु जेण दिज्जइ मुणीहुँ आहारु तेण।।
10 तउ करेवि ण सक्कइ चिरु सरोउ मुणि जेण तेण किज्जइ विरोउ।।
फासुअ ओसह वर दाणु देवि भत्तिए सिरेण मुणिपय णवेवि।।
बिणु देहेँ धम्मु ण होइ जेम धम्मेँ बिणु सोक्खु ण होइ तेम।।

घत्ता— इय स-मणि मुणेप्पिणु विणउ करेविणु भविय-सरोय दिणिंदहं।
अणवरउ स-सत्तिए दिज्जइ भत्तिए ओसहदाणु मुणिंदहं।। 205।।

11/21

अभयदान, आहारदान एवं औषधिदान का महत्त्व—

धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष रूप चार प्रकार के पुरुषार्थ ही जीवितव्य के सार हैं, जो सभीजनों के लिये चारु सुन्दर लगते हैं। जीवितव्य के बिना नाना प्रकार के इन्द्रिय-सुखों का कौन अनुभव कर सकता है? अतः जिन्होंने जीवों को जीवन-दान दिया, उन्होंने मनचिन्तित सभी कुछ दे दिया। पृथिवी पर **अभयदान** से बढ़कर अन्य कोई दान नहीं। जिस प्रकार कोई भी द्रव्य आकाश से विशाल एवं निर्मल नहीं है, उसी प्रकार प्राणियों के प्राणों की सुरक्षा भी महान् सुखकारी एवं उत्तम जानो। इस कारण सभी को अनुकम्पा-दान देना चाहिए।

आहार के बिना जीवन-प्राण नहीं ठहर सकता। उसके बिना यह शरीर हिम-तुषार से आहत कमल-वन के समान सुशोभित नहीं होता। आहार से ही श्री, मति एवं गति होती है और रति, कान्ति, कीर्ति और सुख होता है, ऐसा जिनेन्द्र ने कहा है। जिसने भी आहारदान दिया है, कहो कि पृथिवी तल पर उसने क्या-क्या दान नहीं किया अर्थात् सब कुछ दिया। क्योंकि आहार से ही धर्म किया जाता है। अतः मुनिवरों को **आहार-दान** दिया जाना चाहिए।

रोगी-मुनि चिरकाल तक तपस्या नहीं कर सकता, अतः जैसे भी हो उसे निरोगी बनाना चाहिए। उसके चरणों में भक्ति-पूर्वक सिर नवाकर उसे अनुकूल प्राशुक **औषधिदान** देना चाहिए क्योंकि जिस प्रकार देह के बिना धर्म नहीं हो सकता, उसी प्रकार धर्म के बिना सुख नहीं मिल सकता।

घत्ता— इस प्रकार अपने मन में जानकर अनुनय-विनय करके भव्य रूपी कमलों के लिये सूर्य के समान मुनिवरों के लिये अपनी शक्ति एवं भक्ति पूर्वक निरन्तर ही औषधिदान देना चाहिए।। 205।।

11/22

The importance of the charity of religious books (Śāstradāna) including imparting moral-teachings and kinds of donees and their chief characteristics—

(1) Good donees or Uttama Pātras. (are called as Ascetics)
(2) Layman with vows (are called as Madhyama Pātras)
(3) Laymen with right belief but not with vows (are called as Jaghanya Pātras)
These three with right belief are called supātras or right donees (Supātras)

जणियइ विवेउ णिहणियइ मोहु पयडियइ-धम्मु वज्जियइ दोहु।।
रक्खिज्जइ संजमु विहयपाउ वारियइ जेण संजाउ राउ।।
तं सत्थु लिहावेवि मुणिवराहँ विणएँ दिज्जइ जिय रइ-सराहँ।।
इम चउ-पयारु भासियउ दाणु एव्वहिँ पुणु पत्त कुपत्त जाणु।।
5 पत्तु वि ति-भेउ वज्जरइ जोइ उत्तिमु मज्झिमु णिक्किट्ठु होइ।।
उत्तमु हवेइ उत्तमगुणेहिँ मज्झिमु जायइ मज्झिमु गुणेहिँ।।
संभवइ जहण्ण गुणहिँ जहण्णु उत्तिमु तह मज्झि मुणिंदु णण्णु।।
मज्झिमु विरयाविरयउ जहण्णु सद्दंसण धारउ धरणि धण्णु।।
जो विरयइ मूलुत्तरगुणाइँ जो आणंदइ भवियण-मणाइँ।।
10 जो कोह-लोह-मय-माण चत्तु जो वीयराय जिण-पाय-भत्तु।।

घत्ता— जो तवसिरि-मंडिउ गुण-अवरुंडिउ मणसिएण ण हणिज्जइ।
जो ति-रयण-सहियउ वत्थ-विरहियउ उत्तमु पत्तु भणिज्जइ।। 206।।

11/22

शास्त्रदान का महत्त्व एवं उत्तम पात्रादि भेद-वर्णन—

जिनागम शास्त्रों का पठन-पाठन कर जीवन में विवेक को उत्पन्न करना चाहिए, मोहभाव को नष्ट करना चाहिए, धर्मभाव को प्रकट करना चाहिए, द्रोह छोड़ना चाहिए, पापों का त्याग कर संयम की रक्षा करना चाहिए, जिनसे राग उत्पन्न होता हो, ऐसे साधनों का त्याग करना चाहिए और शास्त्रों को लिखवाकर काम पर विजय प्राप्त करने वाले मुनिवरों को अत्यन्त विनय पूर्वक दान करना चाहिए। इस प्रकार चार प्रकार के दानों का कथन किया। अब आगे पात्र-कुपात्र का भी भेद जानना चाहिए—

योगियों ने पात्रों के तीन भेद बताए हैं— उत्तम, मध्यम एवं निकृष्ट अथवा जघन्य।

उत्तम गुणों से उत्तम कोटि का पात्र होता है, मध्यम गुणों से मध्यमकोटि का एवं निकृष्ट अथवा जघन्य गुणों से जघन्य कोटि का पात्र होता है।

इन पात्रों में से **मुनीन्द्र** उत्तम पात्र होते हैं, अन्य नहीं। **विरताविरत (प्रतिमाधारी)** श्रावक मध्यमपात्र होते हैं और **सम्यग्दर्शन का धारी** जघन्य पात्र होता है। ये ही पात्र इस धरणी में धन्य हैं।

जो मूल-गुणों तथा उत्तर-गुणों का पालन करते हैं, अपने उपदेशों से भव्यजीवों के मन को आनन्दित करते हैं, जो क्रोध, लोभ, मद एवं मान का त्याग करते हैं, जो वीतरागी जिनेन्द्रप्रभु के चरणों के भक्त हैं—

घत्ता— जो तपश्री से मण्डित हैं, गुणों से परिपूर्ण हैं, जो काम से पीड़ित नहीं हैं, जो रत्नत्रय से युक्त हैं, वस्त्ररहित-नग्न हैं, उन्हें ही उत्तम कोटि का पात्र कहा जाता है।। 206।।

11/23

Eleven stages from House-holder to asceticism. Characteristics of Madhyama and Jaghanya Pātras.

जो ससियर-सम सद्दंसणिल्लु परिहरिय परिग्गहु वय-समिल्लु।।
सामाइय विरयण चित्त-वित्ति सच्चेयण भोयण कय णिवित्ति।।
उज्झिय असेस तिय भोय भाउ तियरणहिँ विवज्जिय दिण-विवाउ।।
मंदीकय सयलिंदिय पवित्ति ण करइ आरंभहो तणिय वित्ति।।
5 वय-संयम-सील-सउच्च धारि उववास विहाणहिँ पावहारि।।
ण करइ अणुमइ सावज्ज-कम्मि उद्दिट्ठासणु ण गिण्हइँ सहम्मि।।
सो मज्झिमु पत्तु भणिउ जिणेहिँ जो भूसिउ अणुवय-भूसणेहिँ।।
वच्छल्ल-पहावण करण-चित्तु सद्दंसण वर सलिलेण सित्तु।।
जर-जम्म-मरण-दुक्खोह-भीरु करुणाहरणालंकिउ सरीरु।।
10 अहणिसु णिंदण-गरहण-पवीणु जिण-तच्च-वियारणु वयहिँ हीणु।।
एरिसु दरिसिय वियसंत वत्तु जंपिउ जिणवरहिँ जहण्णु पत्तु।।

घत्ता— जो कु-समयवासिउ वण-विणिवासिउ चरइ चरणु अइदुच्चरु।
पिय-पुत्त परम्मुहु संजम-सम्मुहु सील-सहिउ गय-मच्छरु।। 207।।

11/23

ग्यारह प्रतिमाएँ एवं मध्यम एवं जघन्य पात्रों के लक्षण—

(1) जो चन्द्रकिरण समान निर्मल सम्यग्दर्शन युक्त है, (2) जो परिग्रहत्याग आदि व्रतों का धारी है, (3) जिसकी चित्त वृत्ति नित्य प्रति सामायिक करने की है, (4) जिसने सचेतन भोजन से निवृत्ति ले ली है, (5) जिसने स्त्रियों के समस्त प्रकार के भोग-भावों को छोड़ दिया है, (6) जो मन, वचन काय रूप त्रिकरणों से दिवा-मैथुन का त्यागी है, (7) जिसने अपनी समस्त इन्द्रियों की प्रवृत्ति को मन्द कर दिया है, (8) आरम्भ से होने वाली वृत्ति (आजीविका) नहीं करता, (9) जो व्रत, संयम, शील एवं शौचधर्म का धारी होकर उपवास-क्रिया से पापों को नष्ट करता है, (10) जो सावद्य-कर्मों के लिये अपनी अनुमति नहीं देता, और (11) अपने घर में जो उद्दिष्ट भोजन ग्रहण नहीं करता। इस प्रकार इन ग्यारह प्रतिमाओं का पालन करने वाला अणुव्रतों रूपी आभूषणों से जो विभूषित है, जिनेन्द्र ने उसे **मध्यम कोटि का पात्र** कहा है।

वात्सल्य एवं प्रभावना करने में जिसका चित्त लगा रहता है, जो सम्यग्दर्शन रूपी उत्तम जल से सिक्त है, जो जन्म, जरा एवं मरण रूप दुख-समूहों से डरता है, जो करुणा के आभरण से अलंकृत शरीर वाला है, अहर्निश निन्दा-गर्हा में प्रवीण है, जिनेन्द्र कथित तत्वों का विचार करता रहता है, किन्तु व्रत-पालन में हीन रहता है और जिसका मुख सदा विकसित दिखाई देता है, वह नर-नारी जिनवरों द्वारा **जघन्य पात्र** कहा गया है—

घत्ता— जो कुसमय में भी वासना से युक्त हे, जो वनवासी है, अति दुश्चर-चरित्र का आचरण करता है, प्रिया-पुत्र के मोह से परांगमुख है, संयम के सम्मुख तथा शील युक्त है और मत्सर रहित है—।। 207।।

11/24

Characteristics of Kupātras (Those who are with proper external conduct but without right-belief) And Apātra or unworthy donees (deficient donees) or those who have neither proper external conduct nor real right belief. Their is no merit in giving them any anything.

णिज्जिय सविसाय कसायविंदु णिद्दारिय पंचेंदिय-करिंदु।।
सो भणिउ कुपत्तु मुणीसरेहिँ विद्धंसिय मयरद्धयसरेहिँ।।
जो सयल जीव दय-रहिउ चित्तु जंपइ असच्चु अवहरइ वित्तु।।
पर-रमणि रमइ जाणइ ण कज्जु बहु दोस परिग्गहु पियइ मज्जु।।
5 किमि-कुल-संकुलु पलु गसइ मूढु सढु परियणु पंजर मज्झिछूढु।।
मय-मोह-कसाय-विसाय-सत्तु गुण-वय-सम-संजम-सील-चत्तु।।
एरिसु अपत्तु जाणेवि मणेण सम्मत्तालंकिय भवियणेण।।
पवियारेवि बहुविह पत्त-भेउ गुण्णदोसहँ भायणु गुण-णिकेउ।।
पडिगाहेवि परिवज्जे वि णिंदु तहो भत्तिए सइँ दिज्जइँ अणिंदु।।
10 णिय सत्तिए पवर आहारदाणु सिवपय णिमित्तु उज्झिवि णियाणु।।

घत्ता— गेहंगणि आइउ मुणि गयरायउ धरिउ उत्तरासंगेँ।
ठा ठाहे भणेप्पिणु णरेण णवेप्पिणु लिज्जइ भत्ति पसग्गेँ।। 208।।

11/24

पात्र-भेद—जघन्य पात्र, कुपात्र एवं अपात्र—

—और जिसने विषाद-पूर्वक अर्थात् कठोर साधनापूर्वक कषायों को जीत लिया है, और जिसने पंचेन्द्रिय रूपी करीन्द्र को विदीर्ण कर डाला है, वह जघन्य पात्र है। मुनीश्वरों ने उसे कुपात्र कहा है।

जो कामवाणों से विध्वंसित है, जिसका चित्त सभी जीवों के प्रति दया रहित है, जो असत्य बोलता है, परधन का अपहरण करता है, परस्त्री के साथ रमण करता है, कर्त्तव्य-कार्य नहीं जानता, अनेक दोषों को ग्रहण करता रहता है और जो मद्य पीता रहता है। जो मूढ कृमि-कुल से भरे हुए मांस का भक्षण करता है, जो मूर्ख अपने परिजन रूपी पिंजड़े में बँधा है, मद, मोह, कषाय एवं विषयों में आसक्त है तथा जो गुणव्रत, समता, संयम और शील रहित है, उसे सम्यक्त्व से अलंकृत भव्यजन अपने मन से ही अपात्र जानें।

इस प्रकार गुण-दोषों के भाजन पात्रों के विविध प्रकारों पर विचार करके किसी गुणों के निकेत मुनीन्द्र के लिये निन्दा आदि छोड़कर अपनी शक्ति एवं भक्तिपूर्वक शिव-पद प्राप्ति के निमित्त निदान की भावना से दूर रहकर अनिन्द्य आहारदान देना चाहिए।

घत्ता— श्रावकगण (स्वच्छ–) धोती धारण कर अपने घर के आंगन में पधारे हुए वीतरागी मुनि के लिये "ठा-ठाहि" अर्थात् पधारिये-पधारिये कहकर उन्हें सिर झुकाकार, (प्रणाम कर) भक्ति-पूर्वक अपने घर के आहार-कक्ष के भीतर ले आना चाहिए—।। 208।।

11/25

The right persons (ascetics). The process of providing food to ascetics (Uttama Pātra) and the effect of different types of charity.

उत्तम पएसि विट्ठरि मुणिंदु वइसारिवि भविय कमल दिणिंदु।।
धोविज्जहिँ तहो पय णिम्मलेण सइँ विणउ पयासंते जलेण।।
वसुविहु विरइवि पुज्जाविहाणु पच्छइ चउविहु आहारदाणु।।
दिज्जइ फासुअ अप्पणु णिमित्तु जं विरइउ तं सिवपय-णिमित्तु।।
5 इय विहिणा मुणिहुँ विइण्णु दाणु तुच्छु वि णिच्छउ जायइ महाणु।।
भयहीणु अभयदाणेण होइ जसवंतु चिराउसु भणइ जोइ।।
आहारहो दाणेँ भोयवंतु बल-विहव-रूव-सिरि तेयवंतु।।
ओसह-दाणेँ णीरोउ-देहु सुयदाणेँ केवलणाण-गेहु।।
ति-पयारहो पत्तहो तिविहु भोउ कुच्छिय-पत्तहो दिण्णउ कुभोउ।।
10 पविइण्ण-अपत्तहो जाइ सुण्णु चउविहु वि दाणु जिह रण्णि रुण्णु।।
इय भणेवि मउणु विरएवि मुणिंदु जा संठिउ परिवंदिय जिणिंदु।।
ता कर मउलेवि पणविय सिरेण जंपिउ समुद्दत्ते थिरेण।।

घत्ता— तुह वयणेँ सामिय सिवपय-गामिय स-सावय-वय पालेसमि।
णट्टलु वण वेसमि जिण भावेसमि तव सिरिहर गुण-लेसमि।। 209।।

11/25

उत्तम पात्र - मुनिराज के लिये आहारदान देने की विधि एवं उसका तथा अन्य दानों के फल—

—भव्य कमलों के विकास के लिये सूर्य के समान उन मुनीन्द्र को उत्तम स्थान में एक आसन पर बैठाकर उनके प्रति विनय प्रदर्शित करते हुए उनके चरणों को निर्मल जल से पखारे (धोए)। फिर अष्ट द्रव्यों से पूजा-विधान कर बाद में शिवपद प्राप्ति की आकांक्षा से चार प्रकार का वही प्रासुक अचेतन आहारदान दे, जो अपने निमित्त बनाया गया हो। इस विधि से मुनीन्द्र के लिये दिया गया तुच्छ अर्थात् थोड़ा सा भी दान निश्चय ही महान् हो जाता है।

अभयदान से जीव निर्भय होता है, यशस्वी बनता है एवं चिरायुष्य होता है, ऐसा योगीगण कहते हैं। आहार दान देने से यह जीवन भोगवान् तथा बल-वैभव सम्पन्न रूप श्री लक्ष्मी युक्त एवं तेजस्वी बनता है। औषधिदान देने से दाता की देह निरोग होती है तथा श्रुतदान से कैवल्यधाम की प्राप्ति होती है।

तीनों प्रकार के पात्रों को दान देने से तीन प्रकार के भोग प्राप्त होते हैं। कुपात्र को दान देने से कुभोगों की कष्ट-कर प्राप्ति होती है। अपात्र को चतुर्विध-दान देना तो उसी प्रकार व्यर्थ होता है, जिस प्रकार अरण्य में रुदन करना।

इस प्रकार प्रवचन कर जिनेन्द्र की वन्दना कर जब मुनीन्द्र मौन धारण कर ध्यानस्थित हो गये तब स्थिर मन वाले उस (सार्थवाह) समुद्रदत्त ने अपने दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम कर उनसे कहा—

घत्ता— हे स्वामिन्, हे शिवपदगामिन्, मैं श्रावक-व्रतों का पालन करूँगा, नट्टल साहू के समान रहूँगा, जिनेन्द्र की तप-श्री की आराधना करूँगा और कवि श्रीधर की तरह गुण-ग्रहण करूँगा।। 209।।

Colophon

इय पास-चरित्तं रइयं बुह सिरिहरेण गुण-भरियं।
अणुमण्णियं मणोज्जं णट्टल णामेण भव्वेण।। छ।।

दायार-दाण-विहि पत्त फल सुसंबद्ध धम्म-कह-बंधो।
चिर-जम्म-समीरणए एयारहमो संधी परिच्छेओ सम्मत्तो।। संधि 11।। छ।।

Blessings to Naṭṭala Sāhu, the inspirer and guardian

नित्यं यः शरदभ्र-शुभ्र-यशसां स्थानं विवेक-स्फुरद्,
रत्नानां निधिरुज्ज्वलोत्तम-धिया धामश्रियामाश्रयः।
सौभाग्यस्य गृह शुभस्य सदनं धैर्यस्य सन्मन्दिरम्,
स श्रीमानिह साधु नट्टल इति क्षोणीतले जीवितात्।।

पुष्पिका

इस प्रकार गुणभरित, मनोज्ञ एवं नट्टल साहू द्वारा अनुमोदित इस पार्श्वचरित की रचना बुध श्रीधर ने की है।। छ।।

इसप्रकार दातार, दान, दान-विधि, पात्र-प्रकार, दान-फल से सुसम्बद्ध धर्मकथा का बन्ध, तथा पूर्वजन्म के स्मरण का वर्णन करने वाला ग्यारहवाँ सन्धि-परिच्छेद समाप्त हुआ। (सन्धि 11)

आश्रयदाता नट्टल साहू के लिये आशीर्वाद

जो शरदभ्र के समान नित्य ही धवल-यश वाला है, जो स्फुरायमान विवेक का निवास-स्थल है, श्रेण्य विद्वानों के लिए जो उत्तम रत्नों की निधि के समान है, जो लक्ष्मी के आश्रय-स्थल के समान है, जो सौभाग्य का गृह है, कल्याणकों के लिए जो शुभ्र-भवन स्वरूप है, जो धैर्य का सुन्दर मन्दिर है, ऐसा साधु-चरित वाला **नट्टल साहू** इस पृथिवी-मण्डल पर सदैव जीवित बना रहे।

बारहवीं संधी

12/1

Aśanighoṣa the royal elephant listens with rept attention about its previous life from the great ascetic Aravinda.

घत्ता— इत्थंतरि करिवरु चूरिय-तरुवरु असणिघोसु गज्जंतउ।
कमलहिँ सरु खंडिवि सत्थु विहंडिवि जहिँ मुणि तहिँ संपत्तउ।। छ।।

णिएऊण तं मत्तमायंगणाहं गिरिंदुव्व विद्धत्थकुंभीसणाहं।।
मुणिंदो थिओ माणसे संभरंतो जिणाणं गुणा मच्चुणो भीहरंतो।।
णिउब्भो थिरो अट्टरुद्दं चयंतो स-बाहू पलंवेवि णासा-णियंतो।।
थिओ धम्मझाणेण णिग्गंथणाहो हयाणंगु जा ता करिंदो घणाहो।।
पलोएवि णिग्गंथ देहस्स तेयं विचिंतेइ चित्ते मयंगो अमेयं।।
पुरा आसि एसो मुणीणं वरिट्ठो इमं कित्थु दिट्ठो गुणेहिं गरिट्ठो।।
मणे एम जा चिंतए हत्थि णाहो पयंपइ ता झत्ति णिग्गंथ-साहो।।
अहो भो गयाहीस हं भुत्त-राओ णिओ पोयणाहीसु संदिण्ण-चाओ।।
जयं जाणिऊणं अणिच्चं अणिंदो हुओ भव्व लोयणाणंदो मुणिंदो।।
तुमं बंभणो विस्सभूइस्स पुत्तो असेसिंदु-संकास चित्तेण जुत्तो।।

घत्ता— मरुभूइ पसिद्धउ लच्छि-समिद्धउ होंतउ महु उवरोहिय।
तुह तरुणि हरंतेँ अणउ करेंतेँ तुहु कमठेण विरोहिउ।। 210।।

12/1

गजराज अशनिघोष मुनीन्द्र-अरविन्द से एकाग्रभावपूर्वक अपना पूर्वभव सुनता है—

इसी बीच वह **गज-प्रवर अशनिघोष**, वृक्षों को चूर-चूर करता हुआ, गर्जना करता हुआ, सरोवरों के कमलों को (अथवा कमल-सरोवरों को) खण्डित करता हुआ तथा सार्थवाहों के संघ को विघटित करता हुआ वहाँ आ पहुँचा, जहाँ **मुनीन्द्र अरविन्द** विराजमान थे।। छ।।

पर्वतराज के समान गजों के गण्डस्थलों को विध्वस्त करने वाले उस मत्तमातंग को देखकर, मृत्यु के भय को न लाते हुए जिनेन्द्र के गुणों का मन ही मन स्मरण करते हुए वे मुनीन्द्र, गिरीन्द्र के समान वहीं स्थिर हो गये।

काम-विजेता वे निर्ग्रन्थ नाथ मुनीन्द्र कायोत्सर्ग-मुद्रा में होकर दोनों भुजाएँ लटकाए हुए, नासाग्र पर दृष्टि *लगाये, आर्त्त-रौद्र ध्यान का परित्याग करके ज्यों ही धर्मध्यान में स्थित हुए, त्यों ही मेघ के समान श्याम वर्ण वाला वह करीन्द्र, काम-विनाशक उन मुनीन्द्र के अपरिमेय-तेज को देखकर अपने मन में विचार करने लगा— मुनियों में* वरिष्ठ एवं गुणों से गरिष्ठ इन मुनीन्द्र को मैंने पहिले कभी कहीं देखा था।

जब वह गजराज अपने मन में यह विचार कर ही रहा था कि तत्काल की उन निर्ग्रन्थ साधु ने उससे कहा— अरे हे गजाधीश, मैं पोदनपुराधीश राजा अरविन्द हूँ। अपना राज्यभोग करने के बाद मैंने उसका त्याग कर दिया है, जग की अनित्यता जानकर मैंने भव्य लोगों को आनन्दित कर देने वाला अनिन्द्य मुनि-पद धारण कर लिया है। तुम ब्राह्मण हो, **विश्वभूति** के पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान निर्मल चित्त वाले—

घत्ता— लक्ष्मी से समृद्ध **मरुभूति** नाम से प्रसिद्ध मेरे राज-पुरोहित थे। तुम्हारी तरुणी भार्या का अपहरण कर तुम्हारे भाई **कमठ** ने अन्याय पूर्वक तुम्हारा वध कर दिया था—।। 210।।

12/2

Being enlightened by the preachings of the great saint, the elephant accepts vows (Vratas) from him.

मरिऊण अट्टेण झाणेण खुद्धेण।।
जाओसि गयराउ उत्तुंग गिरि-काउ।।
भो-भो गयाहीस करिजूहयंभीस।।
चइऊण मिच्छत्तु लहु लेहि सम्मत्तु।।
जेणेत्थु पावाइँ कयदेह-तावाइँ।।
हणिऊण कय-सुक्खु पावेहि लहु मुक्खु।।
तं सुणेवि तो तेण करि असणिघोसेण।।
मिल्लिवि कुभावाइँ संजणिय पावाइँ।।
मुणि-पयइँ णवियाइँ णियहियइँ थुवियाइँ।।
संगहिय-सुवयाइँ वज्जियइ कुमयाइँ।।
तउ करइ करि जाम सम्मेयगिरि ताम।।
गउ मत्तगयगामि अरविंदु मुणि सामि।।
तहिँ सयल जिणवरहँ तवलच्छि तियवरहँ।।
णिव्वाण ठाणाइँ वंदेवि समणाइँ।।
सुह-झाणु धरिऊण कम्मारि हणिऊण।।

घत्ता— उप्पाइय केवलु अवियलु तव-बलु दरिसेवि पयणिय सोक्खहो।
अरविंदु भडारउ मयण-वियारउ संपत्तउ पउ मुक्खहो।। 211।।

12/2

अरविन्द मुनीन्द्र के उपदेश से प्रभावित होकर वह गजराज-अशनिघोष व्रत ग्रहण कर लेता है—

(मुनीन्द्र ने कहा–) तुम क्षुद्र आर्तध्यान के कारण मरकर उत्तुंग गिरि के समान कायवाले तथा गजयूथ को अभय (संरक्षण) देने वाले गजराज हुए हो। हे गजाधीश, अब तुम मिथ्यात्व को छोड़कर शीघ्र ही सम्यक् व्रत धारण करो जिससे कि इस जन्म में देह को सन्ताप देने वाले पापकर्मों को नष्ट कर सुख देने वाले मोक्ष को प्राप्त कर सको।

गजराज अशनिघोष ने मुनीन्द्र के उस प्रवचन को सुनकर पापास्रव करने वाली, दूसरों को मारने वाली कुभावनाओं का त्यागकर मुनि-चरणों में प्रणाम किया, हृदय से उनकी स्तुति की और (मिथ्यामतों के श्रद्धान—) कुमतों को छोड़कर सुव्रतों को धारण किया और जब तपस्या करने लगा, तभी मत्तगज-गमन वाले **मुनीन्द्र अरविन्द सम्मेदशिखर** जा पहुँचे।

वहाँ तपोलक्ष्मी रूपी नारी के वर के समान समस्त जिनवरों के निर्वाण-स्थलों की शान्त मनपूर्वक वन्दना कर, शुभ (शुक्ल) ध्यान धारण कर कर्म-शत्रुओं को नष्ट कर—

घत्ता— मदन का विदारण करने वाले वे **अरविन्द-भट्टारक** अपना तपोबल प्रकट करके, अविचल, अविकल (परिपूर्ण) केवलज्ञान को उत्पन्न कर सुखकारक मोक्ष के पद को प्राप्त हुए।। 211।।

12/3

The elephant observes its vows very strictly for continuous four years.

एत्तहे करिवरु पणविय मुणिवरु।।
महइ ण सरवरु दलइ ण तरुवरु।।
अणुवय पालइ करिणि ण लालइ।।
जीव ण रोसइ अणुदिणु सोसइ।।
उववासहिँ तणु खंचेइ णियमणु।।
विसये हिंतउ पाउ करंतउ।।
मयगल सत्थेँ चूरिय पंथेँ।।
चलइ गयाहिउ जूह-पसाहिउ।।
पर-डोहिय-जलु पिवइ गलियमलु।।
मणि सुमरइ जिणु तोडिय भवरिणु।।
गसइ गयालसु णिम्मल-माणसु।।
मंदउ विहरइ परहो ण पहरइ।।
एण पयारेँ णिज्जिय मारेँ।।
तरु पल्लव घणि खयराउल वणि।।
तहो अच्छंतहो मणि इच्छंतहो।।
जिणवर सासणु पाव-पणासणु।।

घत्ता— वय-विहि पालंतहो तमु गालंतहो उप्पाइय मणि हरिसइँ।
मुणि-पय-झायंतहो धम्मु रयंतहो गय चयारि तहो वरिसइँ।। 212।।

12/3

गजराज अशनिघोष लगातार चार वर्षों तक कठोर व्रताचरण करता रहता है—

(अरविन्द भट्टारक के सम्मेदगिरि की ओर विहार कर जाने के बाद-) वह करिवर **अशनिघोष** उन मुनीन्द्र को (परोक्ष रूप से) नमस्कार करते हुए, सरोवरों का मन्थन छोड़कर, तरुवरों का दलन करना छोड़कर तथा अणुव्रतों का पालन करते हुए हथिनियों से लाड-दुलार करने से दूर रहते हुए, जीवों पर रोष न करते हुए प्रतिदिन उपवास से अपने शरीर को कृश करने लगा।

पापास्रव करने वाले अपने मन को विषय-वासना से खींचता हुआ, गजयूथ से अलंकृत वह गजराज हाथियों द्वारा दलित मार्ग से चलता, दूसरों के द्वारा मथित निर्मल जल को पीता रहा और संसार के ऋण को तोड़ता हुआ, मन में जिनेन्द्र का स्मरण करता हुआ, निर्मल चित्त वाला वह अशनिघोष लालसा रहित होकर भोजन करता हुआ, मन्द-मन्द विचरण करता हुआ, दूसरे किसी पर प्रहार भी नहीं करता था।

इस प्रकार काम-वासना को जीतता हुआ वह तरु-पल्लवों से सघन एवं पक्षियों से व्याप्त वन में पाप-प्रणाशक जिनवर के शासन की कामना करता हुआ—

घत्ता— व्रत-विधि का पालन करता हुआ, पापरूपी अन्धकार को गलाता हुआ, अपने मन में हर्ष उत्पन्न करता हुआ, मुनीन्द्र-चरणों का ध्यान करता हुआ, धर्म में रुचि रखता रहा और इसी प्रकार उसके चार वर्ष व्यतीत हो गये।। 212।।

12/4

The Kukkuṭa snake (Sarpa), elephant's enemy of previous life bites him bitterly.

इक्कहि दिणि गउ पाणिय-णिमित्तु सरवरि वयखीणु पियास-घित्तु।।
जूहाहिउ णामेँ असणिघोसु करिणिए सहुँ णव-वारिहरघोसु।।
पल्लट्टइ पाणिउ पिएवि जाम चिक्कण चिक्खिल्लि चहुट्टु ताम।।
णीसरेवि ण सक्कइ सरहो केम मक्खियउलु णिवडिउ सिंभि जेम।।
5 तहिँ अवसरि करि सुमिरइ सचित्ति परमिट्ठि पाय-पंकय पवित्ति।।
बारह-अणुपेहउ खीणदेहु परिहरिय करिणि रइ-बद्ध-णेहु।।
एक्कु जि महु अप्पउ णाणवंतु सासउ सद्दंसण-लच्छिवंतु।।
सेसा बाहिर भावा हवंति संजोयहु लक्खण मुणि चवंति।।
महु तणहु कोवि णउ हउँ ण कासु जिण-धम्मु मुएप्पिणु सुहपयासु।।
10 इम असणिघोसु करि सरइ जाम दिट्ठउ कुक्कड-सप्पेण ताम।।

घत्ता— चिर-बइरु-सरेप्पिणु रोसु-करेप्पिणु कुंभत्थलि वइसेप्पिणु।
दसणग्गपहारहि अइ अणिवारहि दट्ठउ सिरु-विहुणेप्पिणु।। 213।।

12/4

पूर्व-जन्म का शत्रु--कुक्कुट-सर्प उस गजराज को डँस लेता है—

अन्य किसी एक दिन व्रत से क्षीण हुआ, नवीन मेघ के समान घोष अर्थात् गर्जना करता हुआ, हथिनियों के साथ यूथाधिप वह गजराज **अशनिघोष** प्यास से व्याकुल होकर पानी पीने के निमित्त सरोवर में गया। जब वह पानी पीकर लौट रहा था, तभी वह चिकने कीचड़ में फँस गया और वह सरोवर से उसी प्रकार नहीं निकल सका, जिस प्रकार कि चिकने कफ में फँसा हुआ मक्खियों का समूह चिपक कर नहीं निकल पाता।

उस दुखद अवसर पर वह गजराज अपने चित्त में परमेष्ठी के पवित्र चरण-कमलों का स्मरण करने लगा। क्षीण देह वाले उस गजराज ने अपनी हथिनी के प्रति प्रेम-राग को छोड़ दिया और बारह-अनुप्रेक्षाओं का ध्यान करता हुआ विचार करने लगा, कि मेरा आत्मा अकेला है, ज्ञानवान् है, शाश्वत है और सम्यग्दर्शन रूपी लक्ष्मी से समृद्ध है। शेष बाह्य-भाव-पदार्थ हैं, जो संयोगवश ही मेरे लक्षण बने हुए हैं, ऐसा मुनियों का कथन है। सुख-प्रकाशक जिन-धर्म को छोड़कर मेरा कोई भी शरण नहीं है, मैं भी किसी का नहीं हूँ।

वह अशनिघोष जब इस प्रकार का स्मरण कर ही रहा था कि तभी **कुक्कुट-सर्प** ने उसे देखा—

घत्ता— और उसने पूर्व-जन्म के बैर का स्मरण कर उस पर रुष्ट होकर, वह उसके कुम्भस्थल पर बैठ गया तथा अपने अत्यन्त अनिवार दाँतों के अग्रभाग के तीखे प्रहारों से उसके शीर्ष का वेधन कर उसे डँस लिया।। 213।।

12/5

The elephant abandoning all worldly attachments, dies in austerity and takes birth as Indra in the heaven named after Sahasrāra-Deva.

तहिँ अवसरि णविय मुणीसरेण लइयउ सण्णासु करीसरेण।।
सुह-झाणेँ विरइवि पाण-चाउ सहसारकप्पि हुउ अमरराउ।।
वरुणा करिणि वि संजाय तित्थु तहो देवि महासुहु होइ जेत्थु।।
जिणवय-बलेण[1] करिवरु सुहाइँ सुरहरि भुंजइ दारिय-दुहाइँ।।
कुक्कुड-भुअंगु पावेण बद्धु जंतहि दिवसहिँ गरुडेण खद्धु।।
पंचत्तु लहेप्पिणु तक्खणेण पंचमि रउरवे जायउ कमेण।।
पंचविहु दुक्खु तहिँ सहइ भीमु अणवरउ रडंतउ विगय-सीमु।।
इत्थु जे जंबुदीवइ विसालि पडु-पडह-भेरि-झल्लरि-रवालि।।
सुरसिहरिहे सुरदिसि सरि विहत्तु परिणिवसइ पुव्व-विदेह खित्तु।।
तत्थत्थि सुकच्छउ-विजउ रम्मु सयलंगिवग्ग पविइण्ण सम्मु।।

घत्ता— तहो जो पडिबद्धउ ससिव विसुद्धउ णामेण वि खयरायलु।
सेसुव दीहंगउ फुसिय पयंगउ दरिसिय पवर सिलायलु।। 214।।

12/5

गजराज ने संन्यास धारण कर शुभ-ध्यान पूर्वक देहत्याग किया और सहस्रार-स्वर्ग में देवेन्द्र हुआ—

उस अवसर पर मुनीश्वरों को नमस्कार कर **गजराज** ने संन्यास ले लिया, शुभ-ध्यान धारण कर प्राण-त्याग किया और **सहस्रार-कल्प** (स्वर्ग) में देवेन्द्र हुआ। वरुणा नामकी वह हथिनी भी मरकर महान् सुख वाले उसी स्वर्ग में उसकी देवी हुई। इस प्रकार गजराज का वह जीव जिन-व्रतों के प्रभाव से दुखों से विहीन स्वर्ग के सुखों का भोग करने लगा।

(और इधर–) पापों से बँधा हुआ वह **कुक्कुट-सर्प** कुछ दिनों के बीतने पर गरुड द्वारा खा डाला गया और तत्काल ही मृत्यु प्राप्त कर उसने **पाँचवें सौरव नरक** में जन्म लिया, जहाँ वह निरन्तर ही असीम रडता-विलाप करता हुआ पाँच प्रकार के भयंकर दुखों को सहता रहा।

पट-पटह, भेरि एवं झल्लरी जैसे वाद्यों के मधुर संगीत वाले इस विशाल जम्बूद्वीप के मध्य में सुमेरु-पर्वत की पूर्व-दिशा में (सीता–) नदी से विभक्त पूर्व-विदेह-क्षेत्र स्थित है, जिसमें **सुकच्छ-विजय** नामका एक सुरम्य देश है, जो समस्त देहधारियों के लिये सुख प्रदान करने वाला है।

घत्ता— उस देश के बीच में पड़ा हुआ चन्द्रमा के समान खचराचल — विजयार्ध (विद्याधरों का निवास वैताढ्य) पर्वत है, जो शेषनाग के सामन दीर्घ अंग वाला, सूरज का स्पर्श करने वाला और जहाँ बड़ी-बड़ी शिलाएँ दिखाई देती हैं।। 214।।

---

1. मूल प्रति में– हलेण

12/6

King Vidyutvega accepts asceticism from the saint Samudra Sāgara.

सिरि रयणतिलउ तहिँ पुरु पहाणु णिवसइ तहिँ पहु कुल-कमल-भाणु।।
णामेण पसिद्धउ विज्जवेउ परियाणिय भव-परिभवण-भेउ।।
तहो पिययम हुअ णामेण रयण सिसु हरिण-णयणेच्छण इंदुवयण।।
तहो कीलंतहो संजाउ पुत्तु पुव्वत्त पुण्ण पयडिय पहुत्तु।।
5 सो करि मरि जो संजाउ देउ इव्वहिँ सद्दिज्जइ किरणवेउ।।
साहिय असेस विज्जासमूहु विहडाविय बइरि करिंद-जूहु।।
कीलंतउ पेक्खिवि णवजुवाणु सीमंतिणियण-मण-पंचवाणु।।
जणणेणावाहिवि भणिवि पुत्तु खेयरवइ-सिरि-विद्दवण-धुत्तु।।
लइ लेहि पुत्त तुहुँ रायलच्छि मइँ पुणु साहिवी मुक्खलच्छी।।
10 ण सुहाइ मज्झु संसारचारु महणरयहो संदरिसिय दुवारु।।

घत्ता— इय भासिउ सायरु सम रयणायरु सायरमुणि पय-वंदिवि।
पव्वज्ज समासिउ जिणगुणवासिउ विज्जवेउ अहिणंदिवि।। 215।।

12/6

राजा विद्युद्वेग समुद्र-सागर मुनि से प्रव्रज्या ग्रहण करता है—

उसी **विजयार्ध** (वैताढ्य) पर श्री **रत्नतिलकपुर** नाम का एक प्रधान पुर (नगर) है। वहाँ अपने कुल रूपी कमल के लिये सूर्य के समान तथा भव-भ्रमण के रहस्य का जानकार **विद्युद्वेग** नाम का सुप्रसिद्ध राजा निवास करता था। उसकी **रत्ना** नामकी प्रियतमा थी, जो चन्द्रवदनी तथा बाल-मृग के नेत्रों के समान नेत्रवाली थी। उन दोनों के क्रीड़ा करते-करते उनका एक पुत्र उत्पन्न हुआ।

पहले जो हाथी मरकर देव उत्पन्न हुआ था, वही इस समय पूर्वकृत अपने पुण्य-प्रभाव से प्रभुत्व को प्रकट करने वाला उन दोनों के यहाँ उक्त जो पुत्र उत्पन्न हुआ, शब्द से उसका नाम **किरणवेग** कहा गया। उसने समस्त विद्याधरों को साध लिया और बैरी रूपी समस्त करीन्द्रयूथ को नष्ट कर डाला।

उस नवयुवक को क्रीडा करता हुआ देखकर सीमन्तिनियों (कामिनियों) के मन में कामदेव के पाँचों बाण जैसे प्रविष्ट हो जाते थे।

एक दिन पिता ने उसे बुलाकर कहा — विद्याधर राजाओं की लक्ष्मी को प्राप्त करने में धूर्त- (प्रवीण) हे पुत्र, अब तुम उत्तम राज्य-लक्ष्मी को स्वीकार करो, क्योंकि मैं अब मोक्ष-लक्ष्मी की साधना करूँगा। मुझे यह संसार अब अच्छा नहीं लगता, क्योंकि वह महानरक का द्वार दिखलाने वाला है।

घत्ता— इस प्रकार आदरपूर्वक कहकर समता के सागर के समान **समुद्रसागर** नाम के मुनिराज के चरणों की वन्दना कर जिनेन्द्र के गुणों से वासित उस विद्युद्वेग ने उनका अभिवन्दन (स्तुति) कर उनसे प्रव्रज्या ग्रहण कर ली।। 215।।

12/7

After feeling the transitory nature of the worldly existence, King Kiraṇavega also accepts religious austerity.

एत्तहे तहो तणुरुहु किरणवेउ पविरयइ रज्जु जाणिय विवेउ।।
रंजिय मणु परियण-सज्जणाहँ णिद्दारइ उरु रिउ दुज्जणाहँ।।
एक्कहिँ दिणे पेक्खेवि सरयमेहु चिंतइ सचित्ति गुणरयण-गेहु।।
जा णज्जवि जर जज्जरइ देहु जा णज्जवि जम करि देइ वेहु।।
ता करउँ किंपि अप्पहो सकज्जु रविवेय सुयहो अप्पिवि सरज्जु।।
इय मणेवि णवेवि सुरगुरुहे पाय संगहिय दिक्ख णवकमलच्छाय।।
विहरइ परियाणेवि सयल-सिक्ख मुणिवरु भव्वयणहँ दिंतु दिक्ख।।
पालंतउ पंचमहव्वयाइँ विसएसु जंत पंचेंदियाइँ।।
वारंतु पंचसमदीहिँ जुत्तु वि वरइ छावासय किरिय-सुत्तु।।
दरिसंतउ ठिदि-भोयण-विहाणु तज्जंतु ण्हाणु मुणिगण पहाणु।।
मुहरुह परिणिहसणु परिहरंतु भूसयणु लोयविहि अणुसरंतु।।
मणसुद्धिए भुंजइ एयमत्तु चेलंचलेहिँ छायइ ण गत्तु।।

घत्ता— इय अट्ठावीसहिँ कायरभीसहिँ मूलगुणहिँ संजुत्तउ।
जिणहर-वंदंतउ तमु विहुणंतउ पुक्खरद्धु संपत्तउ।। 216।।

12/7

संसार की नश्वरता जानकर राजा किरणवेग भी दीक्षा ले लेता है—

इसके बाद उस राजा **विद्युद्वेग** का, विवेक का ज्ञाता-पुत्र **किरणवेग** राज्य करने लगा। उसने समस्त परिजनों एवं सज्जनों के चित्त का जहाँ रंजन किया, वहीं शत्रुओं एवं दुर्जनों के वक्षस्थल का विदारण कर डाला।

अन्य किसी एक दिन गुण रूपी रत्नों के भण्डार स्वरूप उस राजा किरणवेग ने शरद-मेघ को (बनते-बिगड़ते–) देखकर अपने मन में विचार किया कि जब तक जरा (बुढ़ापा) आकर देह को जर्जर नहीं कर देता, जब तक यमराज रूपी हाथी आकर इस देह रूपी वृक्ष को तोड़ नहीं देता, तब तक मैं क्यों न आत्म-कल्याण कर मनुष्य-भव को सार्थक (सकज्ज) कर लूँ।

यह विचार कर उसने अपने पुत्र राजकुमार **रविवेग** को सारा राज्य अर्पित कर **सुर-गुरु** (सूरीश्वर मुनीन्द्र) के नवीन कमल की कान्ति के समान श्रीचरणों में नमस्कार कर उनसे दीक्षा ग्रहण कर ली। उनसे सभी प्रकार की आगम सम्बन्धी शिक्षाएँ लेकर वे मुनिवर-किरणवेग भव्यजनों को दीक्षा देते हुए विहार करने लगे।

पाँच महाव्रतों का पालन करते हुए, विषय-वासनाओं की ओर दौड़ने वाली पंचेन्द्रियों का संयमन करते हुए, पाँच समितियों से युक्त, आगम-सूत्रों में कथित छह प्रकार की आवश्यक-क्रियाओं के अनुसार आचरण करते हुए, स्थिति-भोजन के विधान को दिखलाते हुए, स्नान-त्यागी, मुनियों के प्रधान, दाँतों के घिसने का परिहार करते हुए, भू-शयन तथा केशलोंच-विधि का अनुसरण करने लगे। वे मन की शुद्धिपूर्वक एक बार आहार ग्रहण करते थे और शरीर को वस्त्र-खंडों से कमी भी ढँकते न थे।

घत्ता— इस प्रकार कायरजनों के लिये अत्यन्त कठिन अट्ठाइस मूलगुणों से युक्त, जिनालयों की वन्दना करते हुए, अज्ञान रूपी अन्धकार का नाश करते हुए वे मुनिराज किरणवेग **पुष्करार्ध द्वीप-पर्वत** पर पहुँचे।। 216।।

12/8

A huge python or serpent (Ajagara) swallows the saint.
The python also dies in forest-conflagration (Dāvāgni).

तहिँ मेरुसिहरग्गि जिणणाहु वंदेवि णाणा-पयारेहिँ थुत्तेहिँ णंदेवि।।
थिउ काउसग्गेण ककुहंबरो जाम कमठो वि कढिण मणु संपत्तहो ताम।।
विसहेवि दूसह महाणरय दुक्खाइँ पंच-पयाराइँ सयसहसलक्खाइँ।।
अजयरु महाकाउ होऊण सो तेण मुणिणाहु संगिलिउ जोयण पमाणेण।।
5 मुणिणा वि सुमरेवि मणि पंचपरमेट्ठि किउ कालु विमलयर-झाणेण कय-तुट्ठि।।
उप्पण्णु सुरराउ अच्चुव विमाणम्मि पुव्वुत्त-पुण्णेण सुर-विहियमाणम्मि।।
अजयरु वि दवजलण-जालावली दड्ढु तम-णरइ संजाउ कमि णारओ संढु।।
तहिँ कोवि करवत्त-धाराहिँ फाडेइ णिरु कोवि खर-विरस-वयणेहिँ ताडेइ।।
असिदंड धारा-णिवाएण दारेइ दिढ-मुट्ठिए पण्ही-पहारेहिँ मारेइ।।

10 घत्ता— जंबूदुम-लंछणि दोमय-लंछणि दीवइ अवरविदेहइँ।
धण-कण-जण-पुण्णइँ णिहणिय-दुण्णइँ गंधिल विसइँ सुगेहइँ।। 217।।

12/8

दीर्घकाय अजगर मुनिराज को निगल जाता है। वह अजगर भी दावाग्नि में जलकर भस्म हो जाता है—

उस **पुष्करार्ध** के मेरु-शिखर के अग्रभाग में जिननाथ की वन्दना कर, नाना प्रकार के स्तोत्रों से अभिवन्दन कर वे दिगम्बर मुनि-**रविवेग** जब कायोत्सर्ग-मुद्रा में स्थित थे, तभी क्रूर मन वाला वह **कमठ** का जीव भी, जिसने कि पूर्वजन्म में महानरक के पाँच प्रकार के सैकड़ों हजारों-लाखों दुखों का सहा था और जो **(कमठ)** मरकर एक योजन प्रमाण महाकाय वाले **अजगर** के रूप में उत्पन्न हुआ था, वहाँ आया और उसने उन मुनिनाथ को निगल लिया। उन मुनिराज ने भी अन्त समय में अपने मन में पंच-परमेष्ठि का स्मरण कर विमलतर ध्यान किया और शान्ति-सुखपूर्वक संन्यास मरणकर पूर्वकृत पुण्य के प्रभाव से सोलहवें **अच्युत** नामक स्वर्ग-विमान में देवों द्वारा सम्मानित सुरेन्द्र के रूप में उत्पन्न हुए।

वह (कमठ का जीव–) अजगर भी दावाग्नि की ज्वाला से जलकर **तम** नामके छठवें नरक में क्रम से संढ (नपुंसक) नारकी हुआ। वहाँ उसे कोई नारकी तो करोत (आरे) की धारा से चीर-फाड़ कर देता था, तो कोई कर्कश नीरस वचनों से तर्जना करता रहता था, तो कोई नारकी उसे असि से विदारता, कोई डण्डे से मारता, तो कोई उसे दृढ़ मुट्ठी या जूतों-लातों से प्रहार कर मारता था।

घत्ता— जम्बू-वृक्ष के लांछन वाले तथा दो मृग-लांछन (अर्थात् दो चन्द्रमा) वाले **जम्बूद्वीप** के पश्चिम-विदेह में धन-धान्य एवं जनों से परिपूर्ण, अन्याय से रहित तथा सुन्दर-सुन्दर भवनों से युक्त **गन्धिल (गान्धार?)** नाम का एक देश है।। 217।।

12/9

King Vajravīra also becomes an ascetic and Prince Chakrāyudha becomes the King.

तहिँ वसइ गयणयल-लग्ग-साल णामेण पहंकरि पुरि विसाल।।
तत्थत्थि णराहिउ वज्जवीरु अरिणियर-मही णिद्दलण-सीरु।।
तहो अग्गिमहिसि चलदीहरच्छि लच्छीमइ णामेँ णाइँ लच्छि।।
जो किरणवेउ खयराहिराउ तउ विरइवि अच्चुवसग्गे जाउ।।
5 तत्थहो चएवि गुणरयण-भूउ लच्छीमइहे सो हुउ तणूउ।।
चक्कंकिय-करु लक्खणिण-सिद्धु चिर-विहिय-पुण्ण लच्छी-समिद्धु।।
णिय पुत्तु लएवि जणे रएण सुहि सुअणहु सुक्ख-जणेरएण।।
विहियउ चक्काउहु णामु तासु ण मुअइ खणिक्कु सह लच्छि जासु।।
परियाणिय णिम्मलयर-कलासु विद्दलिय सयल-महियल-खलासु।।
10 तहो विजया घरिणिए सहुँ सराहु परिगलिय सिसुत्तणि कउ विवाहु।।

घत्ता— वइराएँ लइयउ हुउ पव्वइयउ वज्जवीरु पुहवीसरु।
रायसिरि सपुत्तहो अप्पिवि धुत्तहो तणु जुइ णिहय रईसरु।। 218।।

12/9

राजा वज्रवीर अपने पुत्र चक्रायुध को राज्य-भार सौंपकर दीक्षा ले लेता है—

उस **गन्धिल-देश** में गगनतल से लगे हुए उत्तुंग साल (परकोटे) वाली **प्रभंकरी** नामकी विशाल पुरी है। वहाँ **वज्रवीर** नामका राजा राज्य करता था, जो शत्रु-समूह रूपी भूमि को विदारने के लिये हल के समान था।

उस राजा वज्रवीर की चंचल विशाल नेत्रों वाली **लक्ष्मीमती** नामकी अग्रमहिषी थी, जो ऐसी प्रतीत होती थी मानों साक्षात् लक्ष्मी ही हो।

(पूर्व-कथित–) **किरणवेग** नाम का जो विद्याधर राजा था, और जो तपस्या कर **अच्युत-स्वर्ग** में जन्मा था। उसी का जीव वहाँ से चयकर लक्ष्मीमती रानी के गुणरत्न रूप पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ। उस पुत्र का हाथ **चक्रांकित** था, विशिष्ट लक्षणों से सिद्ध था तथा पूर्वकृत पुण्य के प्रभाव से लक्ष्मी से समृद्ध था। सुधी-मित्रों एवं सज्जनों में सुख उत्पन्न करने वाले पिता राजा वज्रवीर ने अत्यन्त प्रमुदित मन से अपने उस पुत्र का लोगों की उपस्थिति में **चक्रायुध** नाम घोषित किया। लक्ष्मी तो उसका एक क्षण के लिये भी साथ नहीं छोड़ती थी।

वह राजकुमार **चक्रायुध** निर्मलतर कलाओं में शीघ्र ही निपुण हो गया और उसने (अपने पराक्रम से–) महीतल के समस्त खलजनों को दलित कर दिया था। बाल्यकाल व्यतीत हो जाने पर उसका विवाह **विजया** नामकी एक कन्या के साथ समारोह पूर्वक सम्पन्न हुआ।

घत्ता— तत्पश्चात् अपनी तन-द्युति से रतीश्वर कामदेव को निष्प्रभ करने वाले उस पृथिवीश्वर राजा वज्रवीर को वैराग्य उत्पन्न हो गया और उसने राजनीति में कुशल (धुत्त) अपने पुत्र चक्रायुध को राज्यश्री सौंप दी और प्रव्रजित हो गया।। 218।।

12/10

King Chakrāyudha also renounced the world after enthroning his son Vajrāyudha.

एत्थंतरि चक्काउहु णरिंदु पविरइय रज्जु जा णं सुरिंदु।।
ता पलिउ दिट्ठु णिय सिरि फुरंतु जंपंतउ णं णरवइ तुरंतु।।
लहु लेहि दिक्ख जा गलइ णाउ ण गिलिज्जइ झत्ति जमेण काउ।।
तहिँ अवसरि आवाहिवि सपुत्तु वज्जाउहु णामें गुण-णिउत्तु।।
अप्पिवि सलच्छि महि सयल तासु अप्पुणु पुणु उज्झिवि गेह-वासु।।
खेमंकर जिणवर पय णवेवि दिक्खंकिउ उरे तिरयणु थवेवि।।
परियाणिवि सयलागम-वियारु विणिवारिवि णियमणु गउ-वियारु।।
विहरंतउ गउ मुणि विविह विहरे भीमाडइ वण्णे जलणगिरि-सिहरे।।
तहिँ तणु विसग्गु करि थियउ जाम अयगरहो जीउ संपत्तु ताम।।
तम-णरय तिक्खु दुक्खइँ सहेवि जलणगिरिहे भिल्लत्तणु लहेवि।।

घत्ता— णामेण कुरंगउ अइणिद्दंगउ चिर रिउ मुणि पेक्खेविणु।
दिट्ठु धणुहुँ धरेप्पिणु सरु संधेप्पिणु तेण णिहउ हक्केप्पिणु।। 219।।

12/10

राजा चक्रायुध भी अपने पुत्र वज्रायुध को राज्य-पाट सौंपकर दीक्षित हो जाता है—

इसी बीच सुरेन्द्र के समान वह **चक्रायुध** नरेन्द्र जब अपना राज्य-संचालन कर रहा था, तभी उसने अपने सिर में चमकता हुआ एक सफेद बाल देखा, मानों वह राजा से कह रहा हो कि हे नरपति, जब तक आयु गलित होने लगे अथवा यमराज के द्वारा वह निगले जाने की स्थिति में आये, इसके पूर्व शीघ्र ही दीक्षा धारण कर लो।

उसी समय उस चक्रायुध ने गुणनिधान अपने पुत्र **वज्रायुध** को बुलाकर लक्ष्मी सहित पृथिवी-मण्डल का समस्त राज्य उसे सौंपकर पुनः स्वयं गृहावास छोड़कर **क्षेमंकर-जिन** के चरणों में नमस्कार कर और हृदय में रत्नत्रय की स्थापना कर दीक्षा धारण कर ली। समस्त आगम-शास्त्रों के सिद्धान्तों को जानकर, अपने मन के विकारों को समाप्त कर, विहार करते-करते वे चक्रायुध मुनि अनेक पक्षियों के आवास वाली भीमाटवी में **ज्वलन-गिरि** के शिखर पर पहुँचे। वहाँ वे कायोत्सर्ग-मुद्रा में थे, अजगर-सर्प का वह जीव भी, जो कि पूर्व में **कमठ** का जीव-अजगर हुआ था और वही तमप्रभा नाम के नरक के तीव्र दुखों को सहन करके ज्वलन-गिरि पर भील के रूप में उत्पन्न हुआ, वह भी वहाँ आ पहुँचा।

घत्ता— उस भील का नाम **कुरंग** था जो शरीर से अतिनिन्द्य था। उसने मुनिराज-चक्रायुध को देखकर उन्हें पूर्व-जन्म का रिपु जानकर अपने हाथ में दृढ़तापूर्वक धनुष को धारण कर और उससे सुदृढ़ वाण छोड़कर ललकार कर उन्हें मार डाला।। 219।।

12/11

Sureśa, the previous soul of King Chakrāyudha after his death comes into the womb of queen Prabhañkarī.

मुणि झाणेँ विरइवि पाण-चाउ मज्झिम गेवज्जि सुरेसु जाउ।।
मिच्छो वि कुरंगाहिउ मरेवि कोढेण सडिवि दुहु अणुसरेवि।।
जायउ सत्तमणरयंतरालि हणु-हणु भणंत णारय करालि।।
इह जंबूदीवइ सुह-पयासि सिरि पुव्व-विदेहइ हय-पयासि।।
5 विजयाहिहाणि वर विउलखेत्ति परिपक्क सालि सोहंत खेत्ति।।
पुरि तित्थु पहंकरि वज्जवाहु णामेण णरिंदु पलंब-बाहु।।
तहो घरिणि पहंकरि णिसि विरामि देक्खिवि ताउ सुविणइँ सधामि।।
कमलायरु सायरु सेयभाणु हरि हुअवहु वसहु सुदाम भाणु।।
भासिवि पिययमहो सुणेवि ताहँ फलु णिरुवमु अइ णिम्मलयराहँ।।
10 जा थिय घरि ता अवयरिउ गब्भि तहो तणइँ विमल सरयब्भ सुब्भि।।

घत्ता— सो सुरहँ पियारउ मयण वियारउ रूवणिहय कुसुमाउहु।
मज्झिम-गवेज्जहो अइणिरवज्जहो जो होंतउ चक्काउहु।। 220।।

12/11

पूर्वजन्म का जीव—चक्रायुध-सुरेश देव-योनि से चयकर रानी प्रभंकरी के गर्भ में आता है—

मुनिराज **चक्रायुध** ने ध्यान में रत रहकर प्राण-त्यागे और **मध्यम ग्रैवेयक** में सुरेश रूप में उत्पन्न हुए। इधर, वह म्लेच्छ **कुरंग भीलाधिपति** कोढ-रोग से सड़-गल कर दुखों को भोगता हुआ मरा और "मारो-मारो" आदि की चिल्लाहट वाले **सातवें नरक** की विकराल भूमि में उत्पन्न हुआ।

सुख-प्रकाशक इसी जम्बूद्वीप में श्री सम्पन्न पूर्व-विदेह में शुभ-प्रकाशक **विजय** नामका एक उत्तम विशाल देश है जो परिपक्व शालि-धान्य के खेतों से निरन्तर सुशोभित रहता है। वहाँ **प्रभंकरी** नाम की नगरी में प्रलम्ब-बाहु-(आजानबाहु) **बज्रवाहु** नामका राजा राज्य करता था। उसकी गृहिणी रानी **प्रभंकरी** ने अपने कक्ष में सोते समय रात्रि के अन्तिम प्रहर में आठ स्वप्न देखे— (1) कमलाकर-सरोवर, (2) सागर, (3) श्वेतभानु-चन्द्रमा, (4) सिंह, (5) निर्धूम- अग्नि, (6) वृषभ, (7) उत्तम माला, एवं, (8) सूर्य।

रानी ने वे स्वप्न अपने प्रियतम राजा बज्रबाहु को सुनाये और उनका निर्मलतम अनुपम फल सुनकर वह रानी अपने कक्ष में वापिस लौट आई। समयानुसार शरद्कालीन निर्मल शुभ्र मेघ के समान रानी के गर्भ में–

घत्ता— वह देवों का प्यारा, मदन-विदारक अपने सौन्दर्य से कुसुमायुध को मात कर देने वाला तथा पूर्वजन्म का, जो राजा चक्रायुध था तथा देह-त्याग कर, और जो निरवद्य मध्यम ग्रैवेयक में सुरेन्द्र के रूप में जन्मा था, वही वहाँ से चयकर उस प्रभंकरी रानी के गर्भ में आया।। 220।।

12/12

Once upon a time, Kanakaprabha, the Chakravarty–Emperor hears a very fascinating voice from up above in the sky (Ākāśa-vāṇi).

गब्भहो णीसरियउ सुंदरंगु पुण्णहिँ णवमासहिँ णं णिरंगु।।
कणयप्पहु तहो पिक्खिवि पिएण णिय तणुरुहासु बुहयण पिएण।।
णामु जि कणयप्पहु धरिउ तासु वइरियणहँ मणि संजाउ तासु।।
ससहरु व पवड्ढइ संगहंतु णिम्मल कलाउ तम-भरु वहंतु।।
5 कालंतरेण चक्कवइ जाउ छक्खंडावणि रायाहिराउ।।
णवणिहि चउदह-रयणाहिवासु दुव्वारवइरिकालाहिवासु।।
साहिय खयरायल उहय-सेढि मंदिर धयग्ग वोमयल लेढि।।
चउरासी लक्ख मयंगमाहँ अट्ठारहकोडि तुरंगमाहँ।।
वर गाम-खेड-दोणामुहाहँ अणवरय दिण्ण णिम्मल सुहाहँ।।
10 कव्वड-मडंब-संबाहणाहँ णयरायर पुरवर पट्टणाहँ।।
बत्तीस सहास महाभडाहँ णिद्दलिय वइरि वयणुब्भडाइँ।।
छण्णवइ सहासंतेउरासु सामिउ रणंत पयणेउरासु।।

घत्ता— इय असरिस लच्छिहिँ पवर मयच्छिहिँ चक्कवट्टि जा सोहइ।
ता हुउ मणहर-रउ परिविहु णिय-भउ जो तिजगु वि संबोहइ।। 221।।

12/12

एक दिन चक्रवर्ती-सम्राट् कनकप्रभ सुमधुर आकाशवाणी सुनता है—

नौ मास पूरे होने पर जब उस बालक ने जन्म लिया तो उसका अंग-प्रत्यंग अत्यन्त सुन्दर था, प्रतीत होता था मानों कामदेव ही हो। बुधजनों के लिये प्रिय उस बालक के पिता ने जब उसे कनक की प्रभा वाला देखा, तो शत्रुजनों के मन को संत्रस्त कर देने वाले उस बालक का नाम **कनकप्रभ** रख दिया। अज्ञानान्धकार को नष्ट करता हुआ, सम्पूर्ण निर्मल-कलाओं का संग्रह करता हुआ वह बालक वृद्धिंगत होने लगा।

कालान्तर में वह छहखण्ड भूमण्डल का राजाधिराज चक्रवर्ती बन गया। उसके निकट नौ-निधियाँ एवं चौदह रत्नों का वास रहता था, दुर्निवार शत्रुओं के लिये वह काल (नागपाश) के समान था। उसने विद्याधरों के निवास की उभय श्रेणियाँ अपने वश में कर लीं। उसके राज-भवन के अग्र-भाग में लगी ध्वजा-पताकाएँ आकाशतल को छूती रहती थीं।

उस चक्रवर्ती-सम्राट कनकप्रभ के अधिकार में 84 लाख श्रेष्ठ कोटि के हाथी, 18 करोड़ उत्तम कोटि के घोड़े, निरन्तर सुख प्रदान करने वाले उत्तम कोटि के **ग्राम, खेट, द्रोणमुख, कर्वट, मडम्ब, संवाहन, नगर, आकर, पुर,** उत्तम **पट्टन**, शत्रुओं का निर्दलन करने वाले 32 सहस्र **महाभट** तथा उतने ही वाणी में उद्भटवीर तथा चरणों में रुण-झुण-रुण-झुण करते नूपुरों वाली अन्तःपुर की रानियों की संख्या 96 सहस्र थी।

घत्ता— इस प्रकार असाधारण लक्ष्मी तथा प्रवर-कोटि की मृगनयनी रानियों से जब वह चक्रवर्ती कनकप्रभ सुशोभित था, तभी अपने मन के भय को मिटाने वाली तथा त्रिजगत् को भी संबोधित करने वाली मनोहर (आकाश-) वाणी हुई।। 221।।

12/13

Chakravarty Chakrāyudha observes vigorous penance and makes way himself to become Tīrthaṃkara.

तं णिसुणेवि पुच्छिउ मंतिवग्गु चक्काहिवेण वज्जरण लग्गु।।
णामेण जसोहर जिणवरिंदु तित्थयरु तिविह लोयहो दिणिंदु।।
उप्पण्णउ केवलणाणु तासु खर-दिणयर-किरण सहास भासु।।
तेणाहय सुरदुंदुहि रवेण वंदणहँ तियस जय-जय रवेण।।
5 तं सुणेवि सपरियणु गयउ तेत्थु समसरण सहिउ तित्थयरु जेत्थु।।
तहिँ णिसुणेवि तिल्लोकहु वियारु पुत्तहो सिरि देप्पिणु णिव्वियारु।।
अप्पुणु होएवि मुणी वणंति परिसंठिउ खयरावलि रणंति।।
तउ तवइ घोरु परिसह सहंतु णिम्मलयर सहल लच्छिए सहंतु।।
सोलहकारण सिरि अणुसरंतु बारह-अणुवेक्खउ मणि भरंतु।।
10 अज्जंतु णाम गोत्तइँ जिणासु पुव्वत्तरायहो विरयंतु णासु।।
णवकोडि विसुद्धउ असणु लिंतु विहरंतउ अभयपदाणु दिंतु।।

घत्ता— पत्तो भीसणवणे विविह कुरुह गणे तहिँ गिरिसिहरे चडेप्पिणु।
जा थिउ सुहझाणेँ पयडियणाणेँ काउसग्गु विरएविणु।। 222।।

12/13

चक्रवर्ती-चक्रायुध घोर तपस्या कर तीर्थंकर-गोत्र का बन्ध करता है—

उस मनोहर-ध्वनि को सुनकर उस चक्रवर्ती-सम्राट **चक्रायुध** ने जब अपने मन्त्री वर्ग से पूछा- तब वे कहने लगे (हे राजन्) — तीनों लोगों के लिये सूर्य के समान **यशोधर** नाम के तीर्थंकर जिनवरेन्द्र के लिये, ग्रीष्म के मध्यकालीन सूर्य की सहस्र प्रखर-किरणों के समान भासमान केवलज्ञान उत्पन्न हुआ हे। इस कारण देवगण उनकी वन्दना-भक्ति के लिये देव-दुन्दुभि वाद्यों को बजाते हुए तथा जय-जय घोष करते हुए आये हैं।

मन्त्रियों का कथन सुनकर वह चक्रायुध अपने परिजनों के साथ वहाँ पहुँचा, जहाँ समवशरण सहित वे तीर्थंकर-देव विराजमान थे। वहाँ तीनों लोकों सम्बन्धी प्रवचन सुनकर वह (संसार के प्रति) निर्विकार हो गया और पुत्र को राज्यलक्ष्मी सौंपकर स्वयं मुनि-दीक्षा लेकर उस वनान्त में ध्यानस्थ हो गया, जहाँ पक्षिगण कलरव कर रहे थे। निर्मलतर सहज लक्ष्मी (ज्ञानादि गुण-) से शोभायमान वे (मुनिराज) घोर परीषहों को सहन करते हुए कठिन तप तपने लगे, सोलहकारण भावनाओं की श्री-शोभा का अनुसरण करने लगे, बारह-भावनाओं को मन में भाने लगे। इसी दशा में उन्होंने तीर्थंकर नामक गोत्र का अर्जन कर लिया। तत्पश्चातृ पूर्वकृत रागादि पाप का नाशकर, नवकोटि विशुद्ध आहार लेते हुए, (समस्त प्राणियों को—) अभयदान देते हुए वे मुनिराज विहार करने लगे—

घत्ता— और विहार करते-करते वे विविध वृक्ष-समूह वाले एक भीषण वन में पहुँचे। वहाँ गिरि-शिखर पर चढ़कर, कायोत्सर्ग-मुद्रा धारण कर, ज्ञान को प्रकट करने वाले शुभ-ध्यान में स्थित हो गये।। 222।।

12/14

Series of births and re-births of Kuraṅga, the Head of Bhilla-community.

ता णिग्गउ भिल्ल-कुरंग-जीउ पत्तउ कणयप्पह मुणि-समीउ।।
सत्तम-णरयहो होएवि सीहु मरुहय तरुपल्लव-चवल-जीहु।।
तेणाहउ णिसियाणणणहेहिँ अहिणव ससिरेह समप्पहेहिँ।।
परमेट्ठि पाय-पंकय-भरंतु कणयप्पहु पत्तहु वइजयंतु।।
5 मुणि तणु पवियारेवि हरिणराउ गउ पंचम-णरइ रउद्द-भाउ।।
तत्थहो णीसरेवि भुअंगु जाउ गउ पुणु पंकप्पहे करेवि-पाउ।।
कालोवहि पुणु उप्पण्णु मीणु वालुप्पहे जायउ पुणु णिहीणु।।
मंजरु पुणु वीयइ णरय-मज्झि पुणु पक्खि रयणपहि अइ-दुसज्झि।।
पुणु धीवरु कोढ-विलीण-गत्तु कालंतरेण पंचत्तु पत्तु।।
10 पुणु बंभण-कुलि उप्पण्णु जाम बालेण वि पियरइँ गिलिय ताम।।

घत्ता— तो मुअउ ण जाविहिँ घरे-घरे ताविहिँ णर-णारिहिँ धिक्कारिउ।
णेहेण णिहालिउ सयलहि पालिउ (क-)मठु भणेवि हिक्कारिउ।। 223।।

12/14

भिल्लाधिपति कुरंग के जन्म-जन्मान्तरों का वर्णन—

तभी वह कुरंग, जो कि पूर्वजन्म में भिल्लाधिपति था, और जो अपने घातक पापों के कारण मरकर सातवें नरक में नारकी हुआ था, वही जीव अपना आयुष्य पूर्ण कर मरा और अब सिंहयोनि में उत्पन्न हुआ है, जिसकी कि वायु से प्रेरित वृक्ष के पत्ते के समान चंचल जीभ है, वह सिंह तप-ध्यान में स्थित उन मुनिराज कनकप्रभ के पास आया और उसने अपने द्वितीया के नवीन चन्द्रमा की रेखा के समान प्रभा से युक्त अत्यन्त तीक्ष्ण नोक वाले नखों से उन्हें आहत कर डाला। अतः वे पंच-परमेष्ठी के चरण-कमलों का स्मरण करते हुए मरे और वैजयन्त स्वर्ग में पहुँचे। वह सिंह भी मुनि-तन का विदारण करने के कारण रौद्रभाव को प्राप्त हुआ और मरकर पाँचवें नरक में उत्पन्न हुआ।

वहाँ का आयुष्य पूर्णकर वह मरा और भुजंग हुआ और वहाँ भी पापकारी कार्य कर मरा और पंक प्रभ नामके चौथे नरक में उत्पन्न हुआ। पुनः वह कालोदधि कृष्ण सागर, (Black Sea) में मीन के रूप में उत्पन्न हुआ। वहाँ से मरकर वह निरीह बालुका प्रभा नाम के तीसरे नरक में उत्पन्न हुआ। वहाँ से मरकर वह मार्जार हुआ। पुनः मरकर वह दूसरे नरक में उत्पन्न हुआ। वहाँ से भी वह मरा और पक्षी हुआ। पुनः मरकर वह अतिदुस्सह रत्नप्रभा नामके नरक में उत्पन्न हुआ। वहाँ से मरकर वह धीवर हुआ, जो कि कोढ़ से विगलित शरीर वाला था। वहाँ भी आयु पूर्ण कर वह मृत्यु को प्राप्त हुआ और ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ। वहाँ बचपन में ही उसने अपने माता-पिता को निगल लिया। अर्थात् वह बचपन में ही अनाथ हो गया।

घत्ता— जब तक वह मरा नहीं तब तक वह घर-घर में भटकता रहा और नर-नारी सभी उसे धिक्कारते रहे। फिर भी सभी ने उसे स्नेहहीन देखकर स्नेह से पाला भी और मठु-मठु (कमठ) कह-कहकर उसे हिकारत (घृणित) दृष्टि से देखा भी।। 223।।

12/15

An account of various re-births of Royal Priest—Viśwabhūtī and his sons.

अरविंद णराहिउ रज्जे णाउ जं असि विप्प-कुलि महिइ सणाउ।।
तं एव्वहिँ पुणु कम्महो वसेण विरइउ भूदेवेहिँ सहरसेण।।
विरयंतु आलि-वालहिँ समाणु पर-घर-कय-भोयणु वट्टमाणु।।
खरयर-जठराणल डज्झमाणु दुम्मणु विवणम्मणु हिंडमाणु।।
5 सुसियाणणु णिय-चिरकम्मणीउ तव-तत्त-देह तावस-समीउ।।
तहिँ लइय दिक्ख तउ करइ जाम अहि-करणे तवसिहिँ हसिउ ताम।।
एत्थंतरे अणसण-विहि करेवि जायउ असुराहिउ लहु मरेवि।।
जो वइजयंति मुणिणाहु जाउ तत्थहो चएवि सो हउँ जि आउ।।
जो कमठु सहोयरु पुव्वि आसि णीसेस-दोस-संताणरासि।।
10 म्मो एहु असुराहिउ मज्झु जेण उवसग्गु विहिउ मारण-मणेण।।

घत्ता— अरविंद णरेसहो पालिय-देसहो पढम-जम्मि जो बंभणु।
होंतउ उवरोहिउ रिउ-अविरोहिउ सयलावयहँ णिसुंभणु।। 224।।

12/15

राजपुरोहित विश्वभूति एवं उसके पुत्रों के जन्म-जन्मान्तरों का वर्णन—

पूर्व जन्म में **अरविन्द नराधिप** के राज्य में विप्र-कुल में उसका जो प्रतिष्ठित नाम था, कर्म के वश से वही नाम उसे इस जन्म में भी मिला। सभी ब्राह्मणों ने हर्षपूर्वक उसे इसी मठ **(कमठ)** के नाम से पुकारा। वह बच्चों के साथ आलि (क्रीड़ाएँ) करता रहता और घर-घर में भोजन करता हुआ रहता था किन्तु प्रचण्ड जठराग्नि से वह जलता ही रहता था।

अन्य किसी एक दिन दुर्मन, विपन्न मन से हींडता-भटकता हुआ, शुष्कमुख वाला वह दरिद्र विप्र-पुत्र, अपने शुभ-कर्मों के उदय से तपस्या से तप्त-देह वाले एक तापस के समीप पहुँचा और वहीं दीक्षा लेकर वह बाल-तप करने लगा। कठोर तप करने पर तापसों ने उसकी हँसी उड़ाई।

इसी बीच अनशन-विधि करके वह शीघ्र ही मरा और **असुराधिप** हो गया। उधर, वैजयन्त-स्वर्ग में जो मुनिनाथ का जीव सुरेन्द्र हुआ था, वह भी वहाँ से च्युत होकर अब वही मैं यहाँ उत्पन्न हुआ हूँ। समस्त दोषों के लिये भण्डार-गृह के समान जो पूर्वजन्म का उसका सहोदर भाई—कमठ था, वही मरकर अब यह असुराधिप हुआ है, जिसने मुझे जान से मार डालने के मन से मेरे ऊपर उपसर्ग किया है।

घत्ता— पूर्व जन्म-काल में मैं देश के पालक अरविन्द नरेश्वर के राज्यकाल में उनका **विश्वभूति** नामका जो ब्राह्मण-पुरोहित था, जो कि शत्रुजनों का अविरोधी तथा समस्त आपदाओं का विनाशक था और–।। 224।।

12/16

Hearing about the sorrows of re-births, Emperor Hayasena and queen Vāmādevī renounce the world and accept asceticism.

णामेण पसिद्धउ विस्सभूइ आवज्जिय णाणाविह विहूइ।।
सो मज्झु वप्पु इह एत्थु जाउ वाणारसिहिँ हयसेणु राउ।।
जा तहिँ जि कालि महु आसि माय सा वम्मदेवि महु माय जाय।।
जा कमठहो गेहिणि तित्थु कालि भाउज्ज मज्झु संपय विसालि।।
5 सा एह पहावइ पह-समिद्धि रविकित्ति णराहिव सुअ पसिद्धि।।
जा कुल-कलंक उवहसिय-संत णामेण वसुंधरि मज्झु कंत।।
सा एह भवण्णव भवण भीम णामेण सयंपह-गणिय-धीय।।
जं पुच्छिउ पइँ महु पुव्व-जम्मु कमठासुरासु दूसहु अगम्मु।।
तं सयल कहिउ तुह णायराय फण-मणियर-गण-विप्फुरिय काय।।
10 हयसेणेँ दुक्ख णिरंतराइँ आयण्णिवि पुव्व-भवंतराइँ।।
धरणीहर-पुत्तहो देवि रज्जु णियमणि चिंतिउ परलोय-कज्जु।।
संगहिय दिक्ख पणवेवि पासु तोडिय तडत्ति संसार-पासु।।

घत्ता— वम्मादेवि पुणु पणवेवि जिणु घरु पुरु परियणु दूसिवि।
थिय पयणिय सिद्धिए तिरयण-सुद्धिए तणु तव-सिरिए विहूसिवि।। 225।।

12/16

जन्म-जन्मान्तरों के दुख सुनकर राजा हयसेन एवं वामादेवी को वैराग्य हो जाता है और वे दीक्षा ले लेते हैं—

—**विश्वभूति** नाम से प्रसिद्ध वही (पूर्व जन्म का जीव) ब्राह्मण पुरोहित, जो कि इस जन्म में नाना प्रकार की विभूतियों से समृद्ध **वाणारसी** के राजा **हयसेन** हैं, वे ही मेरे पिता हैं। पूर्व जन्म में (मरुभूति-भव में) जो **अनुन्धरी** नामकी मेरी माता थी, वही मरकर अब मेरी माता **वामादेवी** हुई हैं। जो पूर्व-जन्म में **कमठ** की गृहिणी तथा मेरी जो भावज थीं, वही वहाँ से मरकर अब प्रभा एवं समृद्धि से समृद्ध **प्रभावती** के रूप में उत्पन्न हुई हैं, जो कि नराधिप **रविकीर्ति** की सुप्रसिद्ध सुता है। पूर्वजन्म में कुल-कलंकिनी तथा सज्जनों द्वारा उपहसित **वसुन्धरी** नामकी मेरी कान्ता (पत्नी) थी, वही संसार रूपी समुद्र से भयभीत यह **स्वयम्प्रभ**-गणधर की पुत्री हुई है।

इस प्रकार फणि-मणि से दीप्त देहधारी हे नागराज, तुमने जो मेरा पूर्व-जन्म एवं कमठासुर का दुःसह अगम्य पूर्व-जन्म पूछा है, वह सब मैंने तुम्हें कह सुनाया है।

जब राजा हयसेन ने निरन्तर सुखों से भरे हुए पूर्व-भवान्तर सुनें, तब उन्होंने अपने मन में परलोक सुधारने सम्बन्धी चिन्तन किया और अपने पुत्र-**धरणीधर** को राज्य-पाट सौंपकर पार्श्व प्रभु को प्रणाम कर उनके समीप ही दीक्षा ग्रहण कर ली और संसार की पाश तड़ से तोड़ डाली।

घत्ता— वह वामादेवी भी जिनेन्द्र पार्श्व को प्रणाम कर घर, नगर, पुरजन एवं परिजनों को दोष रूप समझकर त्रिकरण की शुद्धि पूर्वक सिद्धि को देने वाली तपोलक्ष्मी से शरीर को भूषित करके वहीं स्थित हो गई अर्थात् आर्यिका-पद पर प्रतिष्ठित हो गई।। 225।।

12/17

Enumeration of four-fold council (Chaturvidha Saṅgha) of Lord Pārśwa who attained ultimate goal (Nirvaṇa) from Sammedāchala (Now in Jharkhand State).

केहिंमि पुणु पंच-महव्वयाइँ केहिंमि लइयाइँ अणुव्वयाइँ।।
केहिंमि सम्मत्तु भवंतयारि केहिंमि पणविउ जिणु णिज्जियारि।।
तहो गणहर हुअ दह दुरियवारि पुव्वहर-मुणिंद सयाइँ चारि।।
सिक्खु व अट्ठारह-सयइँ जेम पण्णारह-सय अवहीस तेम।।
5 तेत्तिय केवलि विक्किरिय-जुत्त सणवइ-सहसेक्क तिगुत्ति-गुत्त।।
णवसय-मणपज्जय-हर-मुणिंद वाइंद-अट्ठसय थुअ-जिणिंद।।
अज्जयइँ सहसाइँ-अट्ठतीस सावयहँ लक्खु भासहि रिसीस।।
सावियइँ तिण्णि-लक्खइँ असंख सुर जाणिज्जहो पसु पुणु ससंख।।
विहरंतउ चउविह-संघ-जुत्तु पयडंतउ भवियहँ पुरउ सुत्तु।।
10 चउतीसातिसय सिरीणिकेउ तेवीसमु जिणु देवाहिदेउ।।
वसु-पाडिहेर-भूसिय-सरीरु णिब्भच्छिय दुज्जयमारवीरु।।
चउदेव-णिकायहिँ थुव्वमाणु मुणिवर-विंदहिँ सेविज्जमाणु।।
भवियण जणेहिँ भाविज्जमाणु किण्णर-णारिहिँ गाइज्जमाणु।।
पत्तउ सम्मेयमहागिरिंदि दरिसिय भमंत दुज्जय करिंदि।।
15 तहिँ दंड-कवाड-पयरु करेवि तिजयंतरालु पूरणु करेवि।।
दुगुणिय चउहत्तरि पयडि पासु तोडेप्पिणु झत्ति जिणिंदु पासु।।
सावण-मासहो सिय-सत्तमीहिँ ससहर-किरणालि-मणोरमीहिँ।।

12/17

पार्श्व-प्रभु के चतुर्विध-संघ की गणना एवं सम्मेदाचल (झारखण्ड-प्रान्त में स्थित)पर उनका मोक्षगमन—

वहाँ **पार्श्वप्रभु** के समीप किन्हीं ने पाँच महाव्रत धारण किये तो किन्हीं ने अणुव्रत लिये। किन्हीं ने भवों का अन्त कर देने वाले सम्यक्त्व को धारण किया, तो किन्हीं ने कर्म-शत्रु को जीतने वाले पार्श्व-जिनेन्द्र को प्रणाम किया।

उन पार्श्वप्रभु के पापों का वारण करने वाले **10 (दस) गणधर** थे। **पूर्वधारी मुनीन्द्रों** की संख्या 400, **शिक्षक** 1800, **अवधिज्ञानी** 1500, उतने ही **केवलज्ञानी** और उतने ही **विक्रिया-ऋद्धिधारी, त्रिगुप्तिगुप्त साधु** 1090, तथा **मनःपर्ययज्ञानधारी मुनीन्द्र** 900, जिनेन्द्र की स्तुति करने वाले **वादीन्द्रों** की संख्या 800, **आर्यिकाएँ** 38000 और **श्रावक** गण 1 लाख थे, ऐसा ऋषीश्वरों ने कहा है। **श्राविकाएँ** 3 लाख थी, **देवगण** असंख्य और **पशु** संख्यात थे, ऐसा जानो।

इस प्रकार चतुर्विध-संघ सहित विहार करते-करते भव्यजनों को नगर-नगर, ग्राम-ग्राम में आगम-सूत्रों के अर्थ को समझाते हुए, 34 अतिशय-रूपी लक्ष्मी के निकेत (घर) वे तेबीसवें जिनदेवाधिदेव पार्श्वप्रभु अष्ट-प्रातिहार्यों से भूषित शरीर, दुर्जेय कामवीर को नष्ट करने वाले, चतुर्निकाय देवों द्वारा स्तूयमान, मुनिवरों द्वारा सेवित, भव्यजनों द्वारा भावित, किन्नर-नारियों द्वारा किये जाने वाले स्तुति-गीतों के साथ उस महान् गिरिराज **सम्मेदाचल** पर पहुँचे, जहाँ दुर्जेय करीन्द्रगण इधर-उधर भ्रमण करते हुए देखे जाते थे।

वहाँ जाकर (योग-निरोधकर-अनगार-केवली बनकर–) दण्ड, कपाट, प्रतर समुद्घात कर उन्होंने तीनों जगत के अन्तराल को भरने वाला लोकपूर्ण केवली का समुद्घात किया। इस प्रकार चौहत्तर के दुगुने अर्थात् 148 प्रकृतियों के पाश को पार्श्व-जिनेन्द्र ने झट से तोड़ा और **श्रावण-मास** की चन्द्र-किरणों से मनोहर **शुक्ल सप्तमी** के दिन–

घत्ता— संपत्तउ मोक्खहो अविचल-सोक्खहो सुरयणेहिँ अहिणंदउ।
णट्टल-आराहिउ कइयण-साहिउ तव-सिरिहरि मुणि-वंदिउ।। 226।।

12/18

Poet's blessings for Sāhu Naṭṭala. Informations regarding composition-place and date of Pāśaṇāhacariu including poet's humble request to the intellectuals, learned authors and poets.

संसारुत्तारणु पासणाहु धरणिंद-सुरिंद-णरिंदणाहु।।
णट्टलहो देउ सुंदर-समाहि पुव्वत्त-कम्म-णित्थरणु बोहि।।
मज्झु वि पुणु पउ जो देउ णण्णु गुण-रयण-सरंतहो पास-सण्णु।।
राहव-साहुहँ सम्मत्त-लाहु संभवउ समिय संसार-डाहु।।
5 सोढल णामहो सयल वि धरित्ति धवलंति भमउ अणवरउ कित्ति।।
तिण्णिवि भाइय सम्मत्त-जुत्त जिण भणिय धम्मविहि करण-धुत्त।।
महि-मेरु-जलहि-ससि-सूर जाम सहुँ तणुरुहेहिँ णंदत्तु ताम।।
चउविह-वित्थरउ जिणिंद-संघु पर-समय खुद्दवाइहिँ दुलंघु।।
वित्थरउ सुयणु जसु भुअणि पिल्लि तुट्टउ तडत्ति संसार-वेल्लि।।
10 विक्कम-णरिंद सुपसिद्ध कालि ढिल्ली-पट्टणि धण-कण विसालि।।
सणवासी-एयारह सएहिँ परिवाडिए वरिसहँ परिगएहिँ।।

घत्ता— वे अविचल सुखदायक मोक्ष को प्राप्त हुए। उस समय देवगणों ने उनका अभिनन्दन किया (और स्तुतिवन्दन कर उनका मोक्षकल्याणक मनाया।) ऐसे ही पार्श्व प्रभु **नट्टल (साहू)** द्वारा आराधित एवं कविजनों द्वारा साधित हैं और तपश्री धारी मुनियों द्वारा तथा महाकवि **बुध श्रीधर** द्वारा वन्दित हैं।। 226।।

12/18

आश्रयदाता के प्रति कवि की कल्याण-कामना, रचना-स्थल एवं रचना-काल की सूचना एवं बुधजनों तथा लेखक-कवियों से उसकी विनम्र प्रार्थना–

संसार से पार उतारने वाले हे पार्श्वनाथ, धरणेन्द्र, सुरेन्द्र एवं नरेन्द्रों के हे नाथ, आप (इस ग्रन्थ-लेखन के लिये प्रेरक एवं आश्रयदाता–) **नट्टल साहू** को सुन्दर समाधि एवं पूर्वजन्म-कृत-कर्मों का निस्तरण (क्षय) देकर उन्हें बोधि-लाभ प्रदान करें। पुनः पार्श्व-संज्ञक प्रभु के सम्यग्ज्ञानादि-गुणरत्नों का स्मरण कराने वाला जो भी अनन्य पद हो, मुझे भी प्रदान करें।

राघव साहू के लिये संसार की दाह को शान्त करने वाले सम्यक्त्व का लाभ हो। **सोढल** नाम के साहू की कीर्ति समस्त धरित्री को धवलित करती हुई निरन्तर भ्रमण करती रहे। क्योंकि ये तीनों (नट्टल, राघव एवं सोढल) भाई सम्यक्त्व सहित जिनकथित धर्म की विधि के करने में दक्ष (धुत्त) हैं। जब तक पृथिवी है, सुमेरु-पर्वत है, समुद्र हैं, चन्द्रमा एवं सूर्य हैं, तब तक वे सभी अपनी सन्तानों के साथ नन्दित रहें। पर-समय के क्षुद्रवादियों द्वारा दुर्लंघ्य जिनेन्द्र का चतुर्विध-संघ निरन्तर विस्तृत होता रहे। सज्जनों का सुयश लोक-पर्यन्त फैले और संसार की बेल तड़ से टूट जाय।

धन-धान्य से समृद्ध विशाल इस **ढिल्ली-पट्टन** में विक्रम-नरेन्द्र के नाम से प्रसिद्ध **संवत्-काल 1189** वर्षों

कसणट्ठमीहिँ अगहणमासि रविवारि समाणिउ सिसिर-मासि।।
सिरिपासणाह-णिम्मल-चरित्तु सयलामल-गुणरयणोह-दित्तु।।
पणवीस-सयइँ गंथहो पमाणु जाणिज्जहिँ पणवीसहिँ समाणु।।

15 घत्ता— जा चंद-दिवायर महिहर-सायर ता बुहयणहिँ पढिज्जउ।
भवियहिँ भाविज्जउ गुणिहिँ थुणिज्जउ वर-लेहयहिँ लिहिज्जउ।। 227।।

Colophon

इय सिरिपासचरित्तं रइयं बुह-सिरिहरेण गुण-भरियं।
अणुमण्णिय मणुज्जं णट्टल णामेण भव्वेण।। छ।।

पुव्व-भवंतर-कहणो पासजिणिंदस्स चारु णिव्वाणो।
जिणपियर-दिक्खगहणो बारहमो संधी परिसम्मत्तो।। छ।। संधि 12।। छ।।

के क्रम से बीत जाने पर शिशिर ऋतु (शीत) में **अगहन-मास की कृष्ण-अष्टमी रविवार** के दिन इस ग्रन्थ का लेखन समाप्त हुआ। समस्त निर्दोष गुणरूपी रत्नों से दीप्त श्री पार्श्वनाथ के निर्मल-चरित सम्बन्धी इस ग्रन्थ का प्रमाण 2500 ग्रन्थाग्र है, जो (अपनी सरलता एवं सरसता के कारण सामान्य स्वाध्याय-प्रेमियों के लिये–) 25 ग्रन्थाग्र के समान लगेगा ऐसा, जानो।

घत्ता— जब तक चन्द्र है, सूर्य है, पर्वत है, समुद्र है, तब तक बुधजन इस ग्रन्थ को पढ़ते रहें, भव्यजन इसे भाते (विचारते करते) रहें, गुणीजन इसकी स्तुति-प्रशंसा करते रहें और सुबुद्ध एवं प्रबुद्ध लेखक कवि ऐसे-ऐसे अनेक पार्श्व-चरित लिखते रहें।। 227।।

पुष्पिका

बुध श्रीधर (कवि) ने गुण-भरित एवं मनोज्ञ **इस श्रीपार्श्वचरित** की रचना की है, जिसकी **साहू नट्टल** नामके भव्य सज्जन ने अनुमोदना की है।

श्री पार्श्वजिनेन्द्र के पूर्व-भवान्तरों का कथन, पार्श्वजिनेन्द्र का उत्तम निर्वाण-कल्याणक तथा जिनेन्द्र पार्श्व के माता-पिता की दीक्षा-ग्रहण सम्बन्धी बारहवीं सन्धि समाप्त हुई।

Blessings to Sāhu Naṭṭala, the inspirer

ग्रन्थ-प्रेरक साहु नट्टल-प्रशस्ति और उसे कवि का आशीर्वाद

आसीदत्रपुरा प्रसन्न वदना व्याख्या प्रदत्ता श्रुतिः।
शुश्रूषादि गुणैरलंकृतमनादेवो गुरुर्भक्तिकः।।
सर्वज्ञक्रमकंजयुग्म निरतन्यायान्वितो नित्यशः।
जेजाख्योऽखिलचन्द्ररोचिरमलः स्फूर्जद्यशो भूषितः।। 1।।

पुराकाल में इसी **ढिल्ली प्रदेश** में **जेजा** नाम के एक सुप्रसिद्ध साहू हुए, जो अत्यन्त हँसमुख, श्रुतागमों की व्याख्या कराने वाले, शुश्रूषादि गुणों से अलंकृत मनवाले, देव एवं गुरु की भक्ति करनेवाले, सर्वज्ञों के युगल-चरण-कमलों में अहर्निश निरत, न्यायमार्ग से चलने वाले और जो पूर्णमासी के चन्द्रमा की निर्मल किरणों के समान स्फुरायमान धवल-यश से विभूषित थे।। 1।।

तस्यांगजोऽजनि सुधीरिह राघवाख्यो।
ज्यायान् मन्दमतिरुज्झित सर्वदोषः।।
अग्रोतकान्वयो नभोंऽगण पार्वणेन्दुः।
श्रीमान्नेको गुणरंजित-चारु चेतः।। 2।।

उन जेजा साहू के यहाँ राघव नाम का प्रथम पुत्र हुआ, जो ख्याति-प्राप्त, सुधी-विद्वान्, कुशल, प्रतिभा-सम्पन्न एवं सप्त-व्यसनादि दोषों से रहित था। वह **अग्रोतकान्वय** (अग्रवाल-कुल) रूपी नभांगण का पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान सुशोभित था, श्रीसम्पन्न था, अनेक गुणों से रंजित तथा संवेदनशील-चित्त वाला था।। 2।।

ततोऽभवत् सोढलनामधेयः सुतो द्वितीयो द्विषतामजेयः।
धर्मार्थकामत्रितये विदग्धो जिनाधिपः प्रोक्त वृषेण मुग्धः।। 3।।

तत्पश्चात् जेजा साहू का सोढल नामका द्वितीय पुत्र उत्पन्न हुआ, जो शत्रुओं के लिये अजेय था। वह धर्म, अर्थ एवं काम इन तीनों पुरुषार्थों में विदग्ध तथा जिनाधिप-प्रणीत धर्म में मुग्ध रहने वाला था।। 3।।

पश्चाद्बभूव शशिमंडलभासमानः।
ख्यातः क्षितीश्वरजनादपि लब्धमानः।।
सद्दर्शनामृतरसायनपान-पुष्टः।
श्री नट्टलः शुभमनः क्षपितारिदुष्टः।। 4।।

उसके बाद चन्द्रमण्डल की भाँति प्रकाशवान्, जगद्विख्यात, सम्राटों तथा प्रजाजनों द्वारा सम्मानित, सम्यग्दर्शन रूपी रसायन का पान कर सम्पुष्ट, शुभचित्त वाला तथा शत्रुजनों का विनाशक, श्रीसम्पन्न नट्टल नाम का तृतीय पुत्र उत्पन्न हुआ।। 4।।

तेनेदमुत्तमधिया प्रविचिन्त्य चित्ते।
स्वप्नोपमं जगदशेषमसारभूतम्।।
श्रीपार्श्वनाथचरितं दुरितापनोदि।
मोक्षायकारितमितेन मुदं व्यलेखि।। 5।।

उसी उत्तम बुद्धि वाले साहू **नट्टल** ने अपने मन में विवेक पूर्वक विचार करके संसार की समस्त भौतिक उपलब्धियों को असार तथा स्वप्नोपम मानकर समस्त पापों को नष्ट करने वाले तथा मोक्ष के मार्ग को प्रशस्त करने वाले इस **पार्श्वनाथ-चरित** के लिखने की मुझे (महाकवि **बुध श्रीधर** के लिये) प्रेरणा दी और मैंने भी उसे अत्यन्त प्रमुदित-चित्त होकर लिखा।। 5।।

पंचाणुव्वयधरणु स सयल सुअणहँ सुहकारणु।
जिणमयपह-संचारणु विसमविसयासावारणु।।
मूढ-भाव-परिहरणु मोह-महिहर-णिद्दारणु।
पाववल्लि-णिद्दलणु असमसल्लइ ओसारणु।।
वच्छल्ल-पहावण वित्थरणु जिणमुणिपयपुज्जाकरणु।।
अहिणंदउ णट्टल साहु चिरु बिबुहयणहँ मण-धण-हरणु।। 6।।

जो पाँच अणुव्रतों का पालक है, सभी स्वजनों के लिये सुख का कारण है, जिनमत के पथ में संचरण करने वाला है, विषम विषय-कामनाओं का वारण करने वाला है, मूढ (या मूढ़ता)– भावों का परिहारक है, मोह रूपी महापर्वत का विदीर्ण करने वाला है, पापरूपी लता का निर्दलन करने वाला है, सभी प्रकार की शल्यों को दूर करने वाला है और जो वात्सल्य एवं प्रभावना-अंगों का विस्तारक तथा जिन-मुनियों के चरणों की पूजा करने वाला है, विबुध-जनों के मन रूपी धन का हरण करने वाला वह **नट्टल साहू** चिरकाल तक अभिनन्दित रहे ।। 6।।

दाणवंतु त किं दंति धरिय-तिरयण त किं सेणिउ।
रूपवंतु त किं मयणु तिजय-तावणु रइ माणिउ।।
अइ-गहीरु त किं जलहि गरुय लहरिहिँ हय सुरवहु।
अइथिरयरु त किं मेरु वप्पचयरहियउ त किं णहु।।
णउ दंति ण सेणिउ णउ मयणु ण जलहि मेरु ण पुणु ण णहु।।
सिरिवंतु साहु जेजा-तणउ जगि णट्टलु सुपसिद्धु इहु।। 7।।

- यह नट्टल साहू दानवन्त है, तो क्या वह दन्ती—हाथी है?
- त्रिरत्न युक्त है, तो क्या यह नट्टल, राजा श्रेणिक है?
- वह नट्टल अप्रतिम रूपवान् है मानों त्रिजगत् को तपाने वाला है, तो *क्या वह रतिपति—कामदेव ही है?*
- वह नट्टल अत्यन्त गम्भीर है, तो क्या वह भयानक लहरों वाला तथा सुर-वधुओं को भयभीत कर देने वाला जलधि—महासमुद्र है?
- वह नट्टल स्थिरतर है, तो क्या वह सुमेरु पर्वत है?
- बाप रे बाप, वह नट्टल प्रचय (स्थूलता)-रहित है, तो क्या वह नभ है?
- नहीं-नहीं। अरे भाई, (ऐसा क्यों पूछ (–कह) रहे हो?) न तो वह नट्टल हाथी है, न राजा श्रेणिक, न तो वह मदन है, न भयानक तरंगों वाला जलधि, न मेरु, और न नभ ही। अरे, वह तो श्रीमन्त साहू जेजा का जगप्रसिद्ध पुत्र नट्टल साहू है।। 7।।

अंग-बंग-कलिंग-गउड-केरल-कण्णाडहँ।
चोड-दविड-पंचाल-सिंधु-खस-मालव-लाडहँ।।
जट्ट-भोट्ट-णेवाल-टक्क-कुंकण-मरहट्ठहँ।

भायाणय-हरियाण-मगह-गुज्जर-सोरट्ठहँ।।
इय एवमाइ देसेसु णिरु जो जाणियइ णरिंदहिँ।
सो णट्टलु साहु ण वण्णियइ कहि सिरिहरु कइ-विंदहि।। 8।।

और जो नट्टल साहू **अंग, बंग, कलिंग, गौड, खस, भोट्ट, नेपाल** एवं **मगध** (पूर्व दिशा स्थित), **सिन्धु, मालव, लाट, टक्क, भादानक, गुज्जर,** एवं **सोरट्ठ** (पश्चिम दिशा स्थित), **पांचाल, जट्ट** एवं **हरयाणा** (उत्तर दिशा स्थित) और **केरल, कर्नाटक, चोड, द्रविड, कुंकण, मरहट्ठ,** (दक्षिण दिशा स्थित) आदि-आदि देशों के राजाओं द्वारा जाना जाता है अर्थात् वे सभी राजा नट्टल को अपने एक विश्वसनीय मित्र के समान उसका आदर करते हैं। ऐसे **नट्टल साहू** का अब आप ही बताइये कि **बुध श्रीधर** जैसे कवि उसका वर्णन कर क्यों प्रशंसा न करे?।। 8।।

दहलक्खण जिण-भणिय धम्मु धुरधरणु वियक्खणु।
लक्खण-उवलक्खिय-सरीरु परचित्तुवलक्खणु।।
सुहि सज्जण बुहयण विणीउ सीसालंकरियउ।
कोह-लोह-मायाहिमाण-भय-मय-परिरहियउ।।
गुरुदेव-पियर-पय-भत्तियरु अयरवाल-कुल-सिरितिलउ।
णंदउ सिरिणट्टलु साहु चिरु कइ सिरिहर गुणगणणिलउ।। 9।।

जिनेन्द्र द्वारा भाषित दशलक्षण धर्म की धुरा का धारक, विचक्षण, शुभ-लक्षणों से उपलक्षित शरीर वाला, परचित्त को उसकी मुख-मुद्रा देखकर ही समझ जाने वाला, सुधीजनों, सज्जनों एवं बुधजनों के लिये विनीत, शीलगुण से अलंकृत, क्रोध, लोभ, माया, अहंकार, भय, मद आदि का परित्यागी, गुरु, देव एवं माता-पिता के चरणों की भक्ति करने वाला, **अग्रवाल कुल** रूपी लक्ष्मी के सौभाग्य का सिन्दूरी-तिलक तथा कवि **बुध श्रीधर** द्वारा प्रशंसित प्रशस्त गुणगण के निलय स्वरूप वह साहू नट्टल **चिरकाल** तक नन्दित रहे।। 9।।

गहिर-घोसु-णव-जलहरुव्व सुरसेलुव धीरउ।
मलभररहियउ णहयलुव्व जलणिहि व गहीरउ।।
चिंतिययरु चिंतामणिव्व तरणिव तेइल्लउ।
माणिणि-मणहर-रइवरुव्व भव्व-मण-पियल्लउ।। 10।।

नवीन सघन जलधर के समान गम्भीर घोष करने वाला, सुमेरु के समान धीर, नभस्तल के समान मलभार से रहित, जलनिधि के समान गम्भीर, चिन्तन करने वालों के लिये चिन्तामणि रत्न के समान, सूर्य के समान तेजस्वी, मानिनियों के मान को हरण करने के लिये रतिवर कामदेव के समान, भव्यजनों के लिये प्रिय तथा–।। 10।।

गंडीउ व गुण-गुण-मंडियउ परिणिम्महिय अलक्खणु।
जो सो वण्णियइ ण केउ ण भणु णट्टलु साहु सलक्खणु।। 11।।

गाण्डीव-धनुष के धारी अर्जुन के समान गुण-गणों से मण्डित, दुष्ट शत्रुओं का परिमन्थन करने वाला तथा शुभ-लक्षण-लक्षित जो **नट्टल** साहू है, उसका जैसा (समग्र) वर्णन होना चाहिए, वैसा प्रशंसात्मक वर्णन तो कोई कर ही नहीं सकता।। 11।।

अहो जण णिच्चलु चित्तु करेवि भिसं विसएसु भमंतु धरेवि।।
खणिक्क पयंपिउ मज्झु सुणेहु कुभावइँ सव्वइँ णट्ठउ णेहु।।
इहत्थि पसिद्धउ ढिल्लिहिँ इक्कु णरुत्तमु णं अवइण्णइँ सक्कु।।
समक्खमि तुम्हहँ तासु गुणाइँ सुरासुरराय मणोहरणाइँ।।
5 ससंक-सुहा-समकित्तिहे धामु सुरायले किण्णर गाइय णामु।।
मणोहर-माणिणि-रंजण-कामु महामहिभालउ लोयहँ वामु।।
जिणेसर-पाय-सरोय-दुरेहु विसुद्ध मणोगइ जित्त सुरेहु।।
सया गुरु-भत्तु गिरिंदुव धीरु सुही-सुअहो जलहिव्व गहीरु।।
अदुज्जणु सज्जण-मज्झि मणोज्जु णरिंदहँ चित्ति पयासिय चोज्जु।।
10 महामइवंतहँ भावइ तेम सरोयणराहँ रसायणु जेम।।
सवंस-णहंगण-भासण-सूरु सबंधव-वग्ग मणिच्छिय पूरु।।
सुहोह-पयासणु धम्मुय मुत्तु वियाणिय जिणवर आयम-सुत्तु।।
दयालय वड्ढण जीवण वाहु खलाणण चंद-पयासण-राहु।।
पिया अइवल्लह वालिहे णाहु उदार चरित्तउ णट्ठलु साहु।।

घत्ता— बहुगुणगणजुत्तहो जिणपयभत्तहो जो भासइ गुणणट्ठलहो।
सो पयहिँ णहंगणु रमियवरंगणु लंघइ सिरिहर हयखलहो।। 12।।

अरे लोगो, अत्यन्त विषय-वासना के रस में डूबे हुए चित्त को एकाग्र करके क्षणभर के लिये मेरा भी कथन सुन लो। दुर्भावना से सर्वत्र ही नेह का हनन होता है।

यहाँ **ढिल्ली** में एक सुप्रसिद्ध नरोत्तम है, जिसने शक्र (इन्द्र) को भी अवगणित (अपमानित) कर दिया है। मैं आप लोगों के लिये उसके सुर, असुर एवं नरेन्द्रों के लिये मनोहर लगने वाले गुणों की (पुनः) चर्चा करना चाहता हूँ।

वह **नट्टल साहू**, जो कि शशांक-सुधा के समान धवल-कीर्ति का धाम है, स्वर्गों में किन्नर-गण जिसके नाम को गाते रहते हैं, मनोहर भामिनियों-कामिनियों के मनोरंजन के लिये कामदेव के समान, लोक में महान् महिमा का आलय, जिनेश्वर के चरणकमल के लिये भ्रमर के समान, विशुद्ध मनोगति से देवों को भी जीतने वाला, सदैव गुरु-भक्त, गिरीन्द्र के समान धीर, सुधी, सुखद, जलधि-समुद्र की भाँति गम्भीर, अदुर्जन, सज्जन, सुख-प्रकाशक, मागध जनों को जानने वाला, लोक-प्रकाशक, (अथवा मागध-जनों के प्रयासों को जानकर), समस्त सज्जनों के मध्य मनोज्ञ, नरेन्द्रों के चित्त को चमत्कृत (चोजु) करने वाला, महामतिवन्तों को पसन्द आने वाला, रुग्णों के लिये रसायन-औषधि के समान, अपने सद्वंश रूपी नभांगण को प्रतिभासित करने के लिये सूर्य के समान, समस्त बन्धु-बान्धवों की मन की अभिलाषाओं का पूरक, सुख-समूह को प्रकाशित करने के लिये साक्षात् मूर्ति के समान, जिनवर के आगम-सूत्रों का ज्ञाता, दयारूपी लता को बढ़ाने के लिये जलवाहिनी के समान, दुष्टजनों के मुखरूपी चन्द्रमा को ग्रसित करने के लिये राहु के समान था। उसकी **वालिहे** नामकी अत्यन्त प्रिय एवं उदारचरिता पत्नी है।

घत्ता— जो विविध गुण-समूह से युक्त, जिनेन्द्र-पद-भक्त तथा जो प्रशस्त-गुणों का अटल प्रशंसक था, ऐसा वह **नट्टल साहू** अपने प्रतिष्ठारूपी पदों द्वारा आकाश को लाँघनेवाला तथा दुर्जनों का विनाशक था।। 12।।

Colophon

संवत् 1577 वर्षे आषाढ सुदि 3 श्री **मूलसंघे** नंद्याम्नाये बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे श्री **कुन्दकुन्दाचार्यान्वये** भट्टारक श्री **पद्मनंदि देवा**स्तत्पट्टे भट्टारक श्री **शुभचंद्रदेवा**स्तत्पट्टे भट्टारक श्री **जिनचंद्रदेवा**स्तत्पट्टे भट्टारक श्री प्रभाचंद्रदेवास्तत्शिष्य मुनि **धर्मचंद्रस्त**दाम्नाये **खंडेलवालान्वये डिह** वास्तव्ये **पहाड्या गोत्रे** सा० ऊधा तद्भार्या लाडी तत्पुत्र साफलहू (द्वितीय) **गूजर-पलहू** भार्या **सफलादे** सा० गूजरभार्या **गुणसिरि** तत्पुत्र **पंचाइण** एतैः इदं शास्त्रं **नागपुर**मध्ये लिखाप्य मुनि **धर्मचंद्राय** दत्तम्।।

ज्ञानवान् ज्ञानदानेन निर्भयोऽभयदानतः।
अन्नदानात् सुखी नित्यं निर्व्याधिर्भेषजाद्भवेत्।।

प्रतिलिपिकार प्रशस्ति (हिन्दी अनुवाद)

संवत् 1577 वर्ष की आषाढ़ सुदी 3 श्रीमूलसंघ के नन्द्याम्नाय, बलात्कार-गण, सरस्वती-गच्छ तथा श्रीकुन्दकुन्दाचार्याम्नाय के भट्टारक श्री **पद्मनन्दी** देव, उनके पट्ट के भट्टारक श्री **शुभचन्द्र** देव, उनके पट्ट के भट्टारक श्री **जिनचन्द्र**देव, उनके पट्ट के भट्टारक श्री **प्रभाचन्द्र** देव, इनके शिष्य **मुनि धर्मचन्द्र** के अम्नाय में **खण्डेलवाल** कुल के डेह निवासी **पहाड्या गोत्र** में साहू ऊधा हुए, जिनकी धर्मपत्नी **लाडी**, उन दोनों के पुत्र साह **फलकू** तथा द्वितीय पुत्र गूजर-फलकू हुए। साह फलकू की भार्या का नाम सफलादेवी था तथा गूजरभार्या का नाम गुणश्री था। इनका पुत्र **पंचाइण** हुआ। इन सभी ने मिलकर **नागपुर** के मध्य इस **पार्श्वचरित-शास्त्र** को लिखवाकर **मुनि धर्मचन्द्र** को स्वाध्यायार्थ समर्पित किया।

ज्ञानवान् ज्ञानदान् द्वारा, निर्भीक पुरुष अभयदान द्वारा, दाता अन्नदान द्वारा तथा औषधि-दान द्वारा सरोगी को निरोगी बनाकर निरन्तर सुखी बने रहें।

आवश्यक टिप्पणियाँ

पोयणपुर-12/1/10

बुध श्रीधर के अनुसार राजा अरविन्द पोदनपुर का शासक था, जो सांसारिक दुःखों का अनुभव कर निर्ग्रन्थ मुनि बन गया था। कवि ने पोदनपुर की अवस्थिति (Location) नहीं बतलाई है।

मेहेसरचरिउ (अपभ्रंश, अप्रकाशित) के अनुसार भगवान् ऋषभदेव ने अपने राज्य का विभाजन कर अपने पुत्र बाहुबलि को पोदनपुर का राज्य दिया था।

आधुनिक भूगोल शास्त्रियों ने इसे एक पौराणिक स्थान बताया है।

डॉ. हेमचन्द्र रायचौधरी के अनुसार वह वर्तमान हैदराबाद के मंजिरा और गोदावरी नदी के संगम के दक्षिण में स्थित आधुनिक बोधन हो सकता है (Political History of Ancient India, Pages, 89, 134)। वसुदेवहिण्डी के एक उल्लेख के अनुसार यह खोज तर्कसंगत भी प्रतीत होती है।

वरुणा-11/13/11

अशनिघोष (हाथी, पूर्व-भव के मरुभूति का जीव) की पत्नी मनोहरि नाम की हथिनी तथा पूर्वजन्म के मरुभूति की पत्नी वरुणा।

सल्लइ-7/2/9, 11/13/11

जहाँ सल्लकी जाति के वृक्ष बहुलता से प्राप्त हों,वह सल्लकी-वन कहलाता है। चिकित्सकों के कथनानुसार चिन्तक साधकों की एकाग्रता में ये वृक्ष बड़े सहायक होते हैं। हाथियों के लिये इसके पत्ते सुरुचिपूर्ण होने से वे गजप्रिया तथा गजभक्षा भी कहे जाते हैं। उत्तररामचरित-नाटक (भवभूति) के तीसरे अंक में तथा पुष्पदन्तकृत णायकुमाचरिउ (7/2/5) में भी इसकी प्रशंसा की गई है।

सावयवय (श्रावकव्रत)-10/8

श्रावकों के बारह प्रकार के व्रत बतलाये गये हैं–

(1) 5 अणुव्रत — (1) अहिंसा, (2) सत्य, (3) अस्तेय, (4) ब्रह्मचर्य एवं (5) परिग्रह- परमाणुव्रत।

(2) 3 गुणव्रत — (1) दिग्व्रत, (2) देशव्रत एवं (3) अनर्थदण्ड व्रत।

(3) 4 शिक्षाव्रत — (1) सामायिक, (2) प्रोषधोपवास, (3) अतिथि-संविभाग एवं (4) सल्लेखना।

इन बारह प्रकार के व्रतों का निरतिचार पालन करनेवाला ही श्रावक (सद्गृहस्थ) माना गया है।

चक्काउहु-12/9/8

महाकवि बुध श्रीधर के अनुसार हाथ चक्रांकित होने के कारण गन्धिल-देश के राजा बज्रवीर ने अपने पुत्र का नाम चक्रायुध रखा। बाद में इस चक्रायुध ने दीक्षा ग्रहण कर ली।

भीमाडइ-वण-7/1/18, 10/12/8

(भीमाटवी-वन) अत्यन्त सघन वन, जहाँ क्रूर जानवर आदि निशंक भ्रमण करते रहते हैं। तिलोयपण्णत्ती या अन्य पा.च. ग्रन्थों में इसका उल्लेख नहीं मिलता।

जलणगिरि (ज्वलनगिरि)-12/10/8

महाकवि श्रीधर के अनुसार यह पर्वत भीमाटवी वन में था तथा उस पर अनेक प्रकार के पक्षी निवास करते थे। पार्श्वचरित (2/61) के अनुसार वह सुकच्छविजय जनपद में स्थित था।

चउविहु-बल-8/1/13, 5/4/19-अक्खोहिणि-बलु — इसके लिये पाँचवीं सन्धि के चौथे कडवक का शीर्षक देखिये।

हयसेणु (हयसेन)-1/12/1 — युवराज पार्श्व के पिता। आचार्य गुणभद्र (उत्तरपुराण 73/75) तथा महाकवि वादिराज (पार्श्वचरित 9/65) ने उन्हें हयसेन न कहकर विश्वसेन कहा है। समवायांग सूत्र (247) में आससेन का उल्लेख मिलता है, जो कि अश्वसेन का रूपान्तर है। बुध श्रीधर ने इन्हें हयसेन कहा है।

वम्मदेवी (वामादेवी)-1/12/13 — पार्श्व की माता-वामादेवी। पार्श्वचरित-ग्रन्थों में इनके नामों की विविधता मिलती है। आचार्य गुणभद्र (उत्तरपुराण 73/75) ने उनका नाम ब्राह्मी तथा महाकवि वादिराज ने उन्हें ब्रह्मदत्ता कहा है (पार्श्वचरितम् 9/95) तथा समवायांग सूत्र (247) में उनका नाम वामादेवी बतलाया गया है।

वरसुइणावलि-10/13/10 (वरस्वप्नावलि)- — जैन-परम्परा के अनुसार तीर्थंकर-जीव जब माता के गर्भ में आता है तब वह माता रात्रि के अन्तिम प्रहर में 16 स्वप्न देखती है— नामावलि के लिये देखें प्रस्तुत ग्रन्थ का पद्य 1/19-20। श्वेताम्बर-परम्परा के अनुसार तीर्थंकर माता सिंहासन एवं नागालय को छोड़कर केवल 14 स्वप्न देखती है।

हूण (विदेशी जाति)-2/8/11 — यह एक विदेशी लड़ाकू जाति थी, जिसने मध्य एशिया से गुप्त-सम्राट् कुमार-गुप्त (प्रथम) के राज्यकाल में भारत पर आक्रमण किया था, किन्तु स्कन्दगुप्त ने उसे असफल कर दिया था। हूण राजा तोरमाण तथा मिहिरकुल ने छठी सदी में पश्चिम भारत पर विजय प्राप्त कर वहाँ शासन किया। नौवी सदी में इन हूणों ने मालवा के उत्तर–पश्चिम में वहाँ के राजाओं को पराजित कर वहाँ अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया था, जो हूणमण्डल के नाम से प्रसिद्ध था, किन्तु दसवीं सदी के अन्त में परमार नरेश वाक्पतिराज (द्वितीय) तथा सिन्धुराज ने उक्त हूणमण्डल को समाप्त कर दिया था।

खस (एक विदेशी जाति)-4/5/8 — महाकवि श्रीधर ने नेपाल के साथ खस देश के राजा का उल्लेख किया है। इससे विदित होता है कि नेपाल के पश्चिम एवं पूर्व में इनका आधिपत्य रहा होगा। डॉ. जे.सी. जैन (Life in Ancient India as depicted in Jain canons, P. 362) के अनुसार यह जाति काश्मीर घाटी के दक्षिण में रहनेवाली एक जनजाति थी, जो वर्तमान में खाख कही जाती है। दसवीं सदी के मध्य में खस जाति के सामन्त काश्मीर पर शासन कर रहे थे। (History and Culture of Indian People, Vol. IV, P. 84)

रट्ठउड (राष्ट्रकूट राजवंश)-2/18/12 — दक्षिण भारत का अत्यन्त पराक्रमी, साहित्यरसिक, कला-प्रेमी तथा आठवीं- नवमी सदी का एक सुप्रसिद्ध राजवंश। इसकी राजधानी मान्यखेट थी। इस राजवंश के आश्रय में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं कन्नड़ के विविध विषयक विशाल साहित्य का प्रणयन किया गया। अमोघवर्ष इस राजवंश का सर्वाधिक प्रसिद्ध सम्राट् था, जो बाद में स्वयं साहित्यकार बन गया। उसकी कन्नड़प्रति– "प्रश्नोत्तर रत्नमालिका" बहुत प्रसिद्ध है। इस वंश का अन्तिम शासक राजा इन्द्रायुध (चतुर्थ, सन् 982) हुआ, जिसे चालुक्य-नरेश तैलप ने युद्ध में पराजित किया था।

टक्क-देश-2/4/10

प्राच्यकालीन उत्तर भारत का एक राज्य। जैन-साहित्य में इसका अनेक स्थलों पर नामोल्लेख हुआ है किन्तु उसकी अवस्थिति (Location) के विषय में जानकारी नहीं है। बहुत सम्भव हे कि वर्तमान राजस्थान का टोंक जिला ही प्राच्यकालीन टक्कदेश रहा हो?

कच्छाहिव (कच्छाधिप)-2/14/10

इतिहासकारों के अनुसार सन् 150 ई. में राजा रुद्रदामन् ने अनेक पश्चिमी राज्यों के साथ कच्छ पर भी विजय प्राप्त की थी। सीमान्तवर्त्ती राज्य होने के कारण इसका विशेष महत्त्व था। दसवीं सदी के मध्य में इस कच्छ राज्य पर मूलराज सोलंकी ने वहाँ के राजा लाखा (लक्ष) पर आक्रमण कर उसे पराजित कर दिया था। (देखें History and Culture of Indian People, Vol. IV, P. 103)

सेंधव-2/18/11

सिन्धु देश का राजा। सीमान्तवर्त्ती राज्य होने के कारण इसका विशेष महत्त्व था। बहुत सम्भव है कि बुध श्रीधर के पूर्व की सदियों में वहाँ सेंधव नामक राजवंश का साम्राज्य रहा हो? यहाँ के उत्तव जाति के घोड़े सैंधव के नाम से प्रसिद्ध माने जाते थे।

कुसत्थल-देश-3/2/9

पासणाहचरिउ में युवराज पार्श्व के मामा राजा रविकीर्ति के प्रसंग में इसका उल्लेख हुआ है। महाभारत के सभापर्व (14/50) के अनुसार यह द्वारकापुरी का अपरनाम है, जबकि पासणाहचरिउ (रइधूकृत) के अनुसार इसे उत्तर-प्रदेश एवं पंजाब की सीमा पर कहीं होना चाहिए। कुछ इतिहासकार इसे कान्यकुब्ज (कन्नौज) का अपरनाम मानते हैं।

बंभवल (दूत)-3/1/4

राजा शक्रवर्मा के पुत्र राजा रविकीर्ति के द्वारा भेजे गये दूत का नाम। कवि ने इस दूत के प्रसंग में सन्देश-वाहक दूत के लक्षणों पर अच्छा प्रकाश डाला है।

सक्कवम्म (शक्रवर्मा)-3/1/4

कुशस्थल का राजा। कुछ पार्श्वचरित-ग्रन्थों में राजा हयसेन एवं शक्रवर्मा का कोई सम्बन्ध नहीं बतलाया गया है जबकि महाकवि श्रीधर ने शक्रवर्मा को पार्श्व का नाना बतलाया है।

काहल-करड आदि-2/17/10

पार्श्व के लिये प्रदत्त संगीत वाद्य आदि की सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक शिक्षा प्रदान की गई। वाद्यों के नाम निम्न प्रकार हैं— मंदल, टिविल (तबला), ताल, कंसाल, भंमा, भेरी, झल्लरी, काहला-करड, कंबु (शंख), वरड (डमरु) डक्क, हुडुक्क एवं टट्टरी।

अस्त्र-शस्त्र-4/9/12

पासणाहचरिउ में वर्णित युद्ध प्रसंगों में दो प्रकार के शस्त्रास्त्रों के उल्लेख मिलते हैं– पौराणिक एवं यथार्थ। बुध श्रीधर क काल वस्तुतः युद्धों का काल था। उसके निकटवर्त्ती पूर्वकाल में तथा उसके काल में देश-विदेश के अनेक राजाओं के युद्ध हो रहे थे। अतः कवि ने समकालीन जिन शस्त्रास्त्रों के नाम देखें-सुने थे, उनका उल्लेख उसने राजा रविकीर्ति, पार्श्व एवं यवनराजा के

युद्ध-प्रसंगों में किया है। उनके नाम इस प्रकार हैं—

तोमर (4/9/9), करवाल (4/8/1), खुरपा (4/9/12), भाला (4/9/3), गदा (4/10/1), कुन्त (4/8/8), दण्डा (4/13/14), खड्ग (4/8/8), चक्र (4/8/10), प्रहरणास्त्र (4/16/7), मुग्दर (4/9/9), त्रिशूल (5/6/15), धनुष-बाण (4/9/2), महात्रिशूल (5/10/12), जूता (4/9/10), असिपुत्री (कटार) (5/15/18), भल्ली (छुरी) (4/9/6)। आदि

जालंधर (देश)-2/18/11 — पार्श्व के जन्मावसर पर जालन्धर-नरेश राजा हयसेन को बधाई देने हेतु उनकी राज्य सभा में आये थे। प्राचीनकाल में यह एक समृद्ध राज्य था, जो त्रिगर्त देश के नाम से प्रसिद्ध था। इसकी सीमा पूर्व में मण्डी और सुखेत तथा पश्चिम में शतद्रु तक विस्तृत थी।

हम्मीर-वीर-1/4/2 — हिमालय की तराई का सम्भवतः वह पराक्रमी शासक, जिसे दिल्ली के तोमर शासक अनंगपाल ने बुरी तरह पराजित किया था और इसी विजय के उपलक्ष्य में उसने दिल्ली में एक कीर्त्तिस्तम्भ का निर्माण कराया था। बुध श्रीधर ने इसका कड़वक संख्या 1/4 में रोचक वर्णन किया है।

कीर-देश-1/8/9 — वर्तमान काँगड़ा प्रक्षेत्र का पुरातन नाम। इतिहासकारों के अनुसार नवमी सदी में पालवंशी राजा धर्मपाल ने वहाँ के राजा को पराजित कर कान्यकुब्ज में आयोजित अपने राजदरबार में उसे उपहारों को लेकर उपस्थित रहने का आदेश दिया था।

कोसल-2/18/9 — बुद्धकालीन सोलह जनपदों में से एक प्रमुख जनपद। इसकी राजधानी अयोध्या थी, जिसे साकेत भी कहा जाता था। परवर्त्ती कालों में इसका भौगोलिक विस्तार हुआ और वह उत्तर-कोसल एवं दक्षिण-कोसल में विभक्त हो गया।

लाड-2/18/9 — इतिहासकारों की खोजों के अनुसार पश्चिमी भारत की माही तथा किम नदियों के मध्य का प्रदेश लाड देश के नाम से विख्यात था। कुछ विद्वान् इसे गुजरात का ही अपरनाम मानते हैं। जैन-साहित्य में इसका उल्लेख प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होता है।

थिरवारु-2/4/3 — स्थिरवार=शनिवार।

अट्ठमय (अष्टमद)-10/10/7 — आचार्य समन्तभद्र के अनुसार आठ प्रकार के मद निम्न प्रकार हैं— (1) कुलमद, (2) जातिमद, (3) रूपमद, (4) ज्ञानमद, (5) धनमद, (6) बलमद, (7) तपमद एवं (8) अधिकार मद। (रत्नकरण्डश्रावकाचार 25)।

पुंडच्छ-1/11/7 — गन्ना अथवा ईख। बुन्देली में इसे पौंडा कहा जाता है।

गुलगुल-4/1/10 — गुलगुला-गुड़ के बने हुए पकौड़े। बुन्देलखण्ड में आज भी गुलगुला बड़े चाव से खाया जाता है। पार्श्व के हाथियों को रण-प्रयाण के समय भर पेट गुलगुला खिलाये जा रहे थे।

इंदोक्ख (इन्द्रवृक्ष)-11/3/4 — अर्जुन वृक्ष। अमरकोष (2/4/45) में इसे इन्द्रद्रुः कहा गया है, जो इन्द्रद्रुम का पर्यायवाची है। इसकी छाल का काढा श्वास, काश एवं ज्वर की अक्सीर दवा माना गया है।

पंचत्थिकाय (पंचास्तिकाय)-10/6/8 — जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और आकाश इन्हें जैन सिद्धान्त के अनुसार पाँच अस्तिकाय माना गया है। क्योंकि ये निरन्तर विद्यमान रहते हैं तथा शरीर के समान ही बहुप्रदेशी हैं। (देखें पंचास्तिकायसार गाथा 4-5)।

मेहमल्लि (मेघमालिन्)-6/10/4 — इस नाम का असुर, जिसने पूर्वजन्म के बैर के कारण पार्श्व पर भीषण उपसर्ग किये थे। उत्तरपुराणकार (73/136) ने इसका नाम शम्बर तथा वादिराज (पार्श्वनाथ चरितकार) (11/58) ने भूतानन्द बतलाया है।

इंडरिय-4/2/16 — इनरसा – एक प्रकार का मिष्ठान्न है, जो मैदे में गुड़ मिलाकर गोल-गोल टिकिया बनाकर घी में छाना जाता है तथा बाद में उस पर खसखस दाना चिपका दिया जाता है। इसका दूसरा अर्थ इडली (दाक्षिणात्य-पक्वान्न) भी हो सकता है। युवराज पार्श्व के सैनिक अपने विश्राम-काल में इसे बड़े चाव से खा रहे थे।

विहंगुणाणु (विभंग ज्ञान)-7/5/5 — अर्थात् कुमति, कुश्रुति एवं कुअवधि रूप तीन प्रकार के कुज्ञानों में से एक अर्थात् कुअवधिज्ञान को विभंग-ज्ञान कहा गया है।

आसीविसु (आशीविषः)-3/4/12 — जिसके दाँतों में विष रहता है, अर्थात् सर्प।

कंदुव-घरु-4/2/16 (हलवाई की दूकान) — पार्श्व की सेना के लोग, युद्ध-मार्ग में जब विश्राम कर रहे थे, तभी गर्म-गर्म मिठाई की खुशबू पाकर वे उसकी दूकान की ओर दौड़ दौड़कर जा रहे थे।

पउमावइ-पद्मावती-8/3/6 — भगवान् पार्श्वनाथ की शासनदेवी। जैनाचार्यों के मतानुसार इस देवी का वर्ण स्वर्ण जैसा है। उसके चारों हाथों में से दाहिने वाले दो हाथों में पद्म एवं पाश है तथा बाकी बायें वाले दो हाथों में क्रमशः फल एवं अंकुश है। इसका वाहन सर्प माना गया है।

माणथंभ (मानस्तम्भ)-9/14/9 — तिलोयपण्णत्ती (4/776) के अनुसार समवशरण में तीनों कोटों के बाहिर चारों दिशाओं में तथा पीठों के ऊपर मानस्तम्भों का निर्माण किया जाता है। इनका नाम मानस्तम्भ इसीलिये कहा गया है क्योंकि इनके दर्शन करते ही मिथ्यात्वी अहंकारी व्यक्ति का मान गलित हो जाता है। पार्श्वनाथ के मानस्तम्भों का बाहल्य 2495/24 धनुष प्रमाण था।

णट्टसाल (नाट्यशाला)-8/8/15 — यह एक पारिभाषिक शब्द है। समवशरण के मध्य प्रथम बीथियों, पृथक्-पृथक् बीथियों के दोनों पार्श्व-भागों तथा सभी वनों के आश्रित समस्त बीथियों के दोनों पार्श्व-भागों में दो-दो नाट्यशालाएँ होती हैं, जिनमें भवनवासी एवं कल्पवासी स्वर्गों की देवकन्याएँ नृत्य किया करती हैं।

बारह थाणतंर-8/8/4 (द्वादश स्थानान्तर) — समवशरण बारह कोठों में विभक्त रहता है जिनमें निम्न प्रकार के जीव अपने-अपने लिये सुनिश्चित कोठे में इस प्रकार बैठते हैं– (1) गणधर-प्रमुख, (2) कल्पवासी देवों की देवियाँ, (3) आर्यिकाएँ एवं श्राविकाएँ, (4) ज्योतिष्क-देवों

	की देवियाँ, (5) व्यन्तर देवों की देवियाँ, (6) भवनवासी देवों की देवियाँ, (7) भवनवासी देव, (8) व्यन्तर जाति के देव, (9) ज्योतिष्क जाति के देव, (10) सौधर्म स्वर्ग से अच्युत स्वर्ग तक के इन्द्र एवं देव, (11) चक्रवर्ती, माण्डलिक राजा तथा अन्य मनुष्य, एवं (12) तिर्यंच जीव।
सयंभू (स्वयम्भू)-4/11/4	बुध श्रीधर के अनुसार तीर्थंकर पार्श्वनाथ का प्रथम गणधर। तिलोयपण्णत्ती, उत्तरपुराण एवं पासणाहचरिउ (पउमकित्ति) में भी स्वयम्भू को पार्श्वनाथ का प्रथम गणधर कहा गया है। किन्तु यह नाम सर्वसम्मत नहीं है। कुछ आचार्य लेखकों ने प्रथम गणधर के रूप में अन्य दूसरों के नामों के उल्लेख किये हैं।
रज्जु-9/1/4	तिलोयपण्णत्ती के अनुसार जग-श्रेणी के सातवें भाग-प्रमाण को रज्जु अथवा राजू का प्रमाण कहा गया है। यथा— जग सेढिए सत्तमभागो रज्जू पभासते। (1/32)
लोयायास (लोकाकाश)-9/1	आकाश-द्रव्य के जितने प्रदेश में धर्मद्रव्य तथा अधर्मद्रव्य के माध्यम से होने वाली जीवों एवं पुद्गलों की गति एवं स्थिति हो, उसे लोकाकाश कहा गया है। बाकी के आकाश को अलोकाकाश कहा गया है। उक्त लोकाकाश का क्षेत्रफल 343 राजू प्रमाण बतलाया गया है। विशेष जानकारी के लिये प्रस्तुत ग्रन्थ की नवमी-सन्धि देखिये।
पार्श्व के लिये प्रदत्त ज्ञान-विज्ञान, ज्योतिष, आयुर्वेद आदि सम्बन्धी लौकिक शिक्षाएँ-2/17/1-20	इनके रोचक वर्णन के लिए 2/17 कडवक तथा इस ग्रन्थ की प्रस्तावना (पृष्ठ 65) देखिये।
जंबूदीव (जम्बूद्वीप)-12/5/8	जैन-भूगोल के अनुसार मध्यलोक में असंख्यात द्वीप-समुद्रों के बीच एक लाख योजन के व्यास वाला बलयाकार जम्बूद्वीप है। इसके चारों ओर लवण-समुद्र तथा मध्य में सुमेरु-पर्वत है। इसी द्वीप की पूर्व एवं पश्चिम- दिशा में लम्बायमान दोनों ओर पूर्व एवं पश्चिम समुद्र को स्पर्श करते हुए हिमवन, महाहिमवन, निषध, नील, रुक्मि और शिखरी नामक छह कुलाचल हैं। उक्त कुलाचलों के कारण उसके 7 क्षेत्र बन जाते हैं। दक्षिण-दिशा के प्रथम भाग का नाम भरतक्षेत्र, द्वितीय भाग का नाम हैमवत, तृतीय भाग का नाम हरिक्षेत्र है। इसी प्रकार उत्तर दिशा के प्रथम भाग का नाम ऐरावत, द्वितीय भाग का नाम हैरण्यवत् एवं तृतीय भाग का नाम रम्यक् क्षेत्र है। मध्य भाग का नाम विदेह-क्षेत्र है। इनमें से भरत क्षेत्र की चौड़ाई 526—6/19 योजन है अर्थात् जम्बूद्वीप की चौडाई के एक लाख योजन के 190 भागों में से एक भाग प्रमाण है। उक्त सातों क्षेत्रों में से भरत क्षेत्र में गंगा-सिन्धु, हैमवत् में रोहित-रोहितास्या, हरिवर्ष में हरि-हरिकान्ता, विदेह-क्षेत्र में सीता-सीतोदा, रम्यक् क्षेत्र में नारी-नरकान्ता, हैरण्यवत् क्षेत्र में स्वर्णकूला-रूप्यकूला एवं ऐरावत क्षेत्र में रक्ता-रक्तोदा ये 14 नदियाँ बहती हैं।

धातकीखण्ड-द्वीप (9/17) एवं पुष्करार्ध-द्वीप-12/7/12

तिलोयपण्णत्ती के अनुसार उक्त दोनों द्वीपों के उत्तर एवं दक्षिण में दो-दो इष्वाकार पर्वत हैं, जिससे उक्त दोनों द्वीपों के दो खण्ड हो गये हैं। इन दोनों की पूर्व एवं पश्चिम दिशा में 2-2 मेरु हैं अर्थात् दो मेरु धातकीखण्ड में हैं तथा दो मेरु पुष्करार्ध में। जम्बूद्वीप से दूनी रचना धातकीखण्ड-द्वीप की तथा धातकीखण्ड द्वीप के समान ही रचना पुष्करार्ध द्वीप की है।

सम्मेदाचल-12/2/11

जैन इतिहास के अनुसार सम्मेदाचल प्रस्तुत ग्रन्थ के महानायक तीर्थंकर पार्श्व का मुक्ति-स्थल है। अतः यह एक सिद्धक्षेत्र के रूप में सुप्रसिद्ध एवं वन्दनीय माना गया है। यहाँ से ऋषभदेव, वासुपूज्य, नेमिनाथ एवं महावीर को छोड़कर अन्य सभी तीर्थंकर मोक्ष को प्राप्त हुए हैं जैसा कि आचार्य कुन्दकुन्द (ई.पू. 12) ने स्पष्ट लिखा है–

वीसं तु जिणवरिंदा अमरासुरवंदिदा धुदकिलेसा।
सम्मेदे गिरि-सिहरे णिव्वाण गया णमो तेसिं।। –(णिव्वाण भत्ति, 2)

उक्त सम्मेदाचल वर्तमान झारखण्ड-प्रान्त के हजारीबाग जिले में कलकत्ता-बम्बई रेल-मार्ग पर स्थित पारसनाथ-स्टेशन से लगभग 25 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। इस पर्वत की कुल ऊँचाई 4488 फीट एवं घेरा लगभग 28 कि.मी. है।

प्राचीनकाल से ही श्रमण-समाज तथा सराक-जाति के लोग सम्मेदाचल की तीर्थयात्रा करते रहे हैं। जब शीघ्रगामी यातायात के आविष्कार भी न हुए थे, उस समय भी तीर्थभक्त लोग बैलगाड़ी, पैदल आदि साधनों से तीर्थयात्राएँ किया करते थे। इस विषय पर 17वीं सदी के महाकवि बनारसीदास कृत अर्धकथानक (पद्य 244-243) तथा आरा (बिहार) के जैन सिद्धान्त भवन ग्रन्थागार में सुरक्षित तथा वि.सं. 1867 में लिखित– "श्री सम्मेदशिखर की यात्रा का समाचार" नामक हस्तलिखित ग्रन्थ पठनीय हैं।

अंग जनपद-2/18/10

पासणाहचरिउ के अनुसार अंग-देश में नट्टल साहू की एक व्यापारिक गद्दी थी। इसकी राजधानी चम्पा नगरी थी। पार्श्व के जन्म-समय तथा यवनराज के साथ युद्ध-प्रसंग में अंग-नरेश की चर्चा आई है। जैन साहित्य में इस देश का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है क्योंकि तीर्थंकर शलाका एवं शलाकेतर महापुरुषों से उसका घना सम्बन्ध रहा है। 12वें तीर्थंकर वासुपूज्य की तो वह मोक्ष-स्थली ही है।

अंग देश वर्तमान भागलपुर से मुंगेर तक विस्तृत था। वायुपुराण के एक आख्यान के अनुसार अनुवंश के राजा बलि के पाँच पुत्र थे—अंग, बंग, कलिंग, सुम्ह एवं पुण्ड्र। इन्हीं पाँच वालेय राजकुमारों ने पूर्व और पूर्व-दक्षिण-दिशा के पाँच जनपदों में राज्य स्थापित किये थे, जो उन्हीं के नाम से प्रसिद्ध हो गये।

जनरल कनिंघम ने भागलपुर से 24 मील दूर पत्थरघाटा पहाड़ी के पास अंगदेश की राजधानी चम्पापुरी का उल्लेख किया है। संस्कृत-काव्यों में मगध की राजधानी गिरिव्रज (राजगृही) से पूर्व और मथुरा से दक्षिण-पूर्व के भू-भाग को अंग जनपद माना गया है।

काशी–वाणारसी-1/12, 1/15

काशी जनपद की राजधानी वाणारसी, तीर्थंकर पार्श्व की जन्म-स्थली थी। भारत के प्राचीन जनपदों में काशी-जनपद का महत्त्वपूर्ण स्थान था। इतिहासकारों के अनुसार यह जनपद वाणारसी से प्रयाग के पूर्वी-भाग तक विस्तृत था। (प्राचीन भारत-मेहता)

वरुणा नदी एवं असी नामक नदियों का संगम होने के कारण वाणारसी नाम प्रसिद्ध हुआ। महाभारत में अनेक स्थलों पर इसकी कीर्त्ति का गान किया गया है।

पट्टण-1/12/16, 3/2/3

पासणाहचरिउ में पट्टण का अनेक स्थलों पर उल्लेख किया गया है। तिलोयपण्णत्ती के अनुसार 'पट्टण' उसे कहा जाता था, जहाँ उत्तम रत्नों की खदानें होती थीं। यथा–

वर रयणाणं जोणी पट्टण णामं विणिदिदट्ठं। *–(तिलोयपण्णत्ती 4/1399)*

बृहत्कल्पसूत्र (2/1090) के अनुसार नदियों एवं समुद्रों के किनारे स्थित *बन्दरगाहों को, जहाँ से कि नावों और जहाजों द्वारा वैदेशिक व्यापार किया* जाता था, वह पट्टन या जलपत्तन कहलाता था। यहाँ पर प्रधान रूप से वणिक्जन निवास करते हैं।

हस्तिनापुर-8/11

पासणाहचरिउ के अनुसार हस्तिनापुर का राजा स्वयम्भू था, जिसने पार्श्व के समवशरण में निर्ग्रन्थ-दीक्षा ली और कठोर तपश्चर्या की। बाद में वही पार्श्व प्रभु का प्रथम गणधर बना।

आचार्य जिनसेन (आदि. 43/76, 8/223) के अनुसार हस्तिनापुर की स्थापना हस्तिन् नामक राजा ने की। वर्तमान में यह गंगा के दक्षिणी तट पर मेरठ से लगभग 30 कि.मी. दूर उत्तर-पश्चिमी कोण और दिल्ली से लगभग 80 कि. मी. दूर दक्षिण-पूर्व खण्डहरों के रूप में उपलब्ध है। कभी इस नगरी को विपुल सौभाग्य एवं श्री-सम्पन्नता उपलब्ध थी। कुरुक्षेत्र की राजधानी बनने का भी इसे सौभाग्य प्राप्त हुआ था। आचार्य जिनसेन के अनुसार यहाँ तीर्थंकर मल्लिनाथ का समवशरण आया था तथा मुनि विष्णुकुमार ने राजा बलि के द्वारा हवन के लिये एकत्रित 700 मुनियों की प्राण रक्षा यहीं पर की थी। महाभारत (आदिपर्व 100/12) के अनुसार यह कौरवों की राजधानी थी।

कव्वड-खेड-मडंबारामइँ, दोणामुह-संवाहण-गामइँ, पट्टण-पुर-णयराइँ-7/1/17

कव्वड (कर्वट) खेड (खेड़ा), मडंब, आराम, दोणामुह (द्रोणमुख), संवाहन, ग्राम, पट्टन, पुर एवं नगर ये भोगौलिक इकाइयाँ हैं। कुछ प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी एवं हिन्दी कवियों ने देश-वर्णन के प्रसंग में प्रायः इनके भी उल्लेख किए हैं। उपलब्ध विविध परिभाषाओं के आधार पर उन्हें निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

कव्वड (कर्वट)-7/1/17

जिनसेन कृत आदिपुराण में इसे खर्वट कहा गया है (16/175)। उसके अनुसार इसे पार्वत्य-प्रदेश से वेष्टित माना गया है तथा उसे अनेक गाँवों का व्यापारिक-केन्द्र (मण्डी) भी कहा गया है। कौटिल्य ने खर्वट को दो ग्रामों के

मध्य माना है (कौ.अर्थ. 17/1/3)। सामरिक दृष्टि से खर्वट को विशेष महत्त्व का स्थल माना जाता था। महाकवि देवीदास के अनुसार एक चक्रवर्ती सम्राट् के अधिकार में इस प्रकार के 24000 खर्वट रहते थे –(देवीदास विलास, 3/4/3)।

खेड-7/1/17

आचार्य जिनसेन (आदिपुराण 16/171) के अनुसार नदी एवं पर्वत से घिरे हुए स्थल को खेड कहां जाता था। समरांगण-सूत्र के अनुसार ग्राम एवं नगर के बीच वाला स्थल खेड कहलाता था अर्थात् वह नगर की अपेक्षा छोटा एवं ग्राम की अपेक्षा कुछ बड़ा होता था। ब्रह्माण्ड-पुराणानुसार (10/104) नगर से एक योजन की दूरी पर खेड का निवेश अभीष्ट माना जाता था।
बृहत्कल्पसूत्र (भाग 2/1089) के अनुसार जिस स्थल के चारों ओर से धूलि का परकोटा हो अथवा जो चारों ओर से गर्द-गुवार से भरा हुआ हो, उसे खेड या खेट कहा गया है। यह स्थल कृषि-प्रधान माना जाता था।

मंडव-7/1/17

प्राचीन जैन साहित्य के अनुसार मडंव एक प्रधान व्यापारिक केन्द्र के रूप में जाना जाता था। आचार्य जिनसेन के अनुसार वह 500 ग्रामों के मध्य व्यापारिक केन्द्र होता था। (आदिपुराण 16/176) आचारांग सूत्र (1/8, 6/3) के अनुसार मडंव उसे कहा जाता था, जिसके अढाई कोस या एक योजन तक कोई गाँव नहीं रहता था। महाकवि देवीदास के अनुसार एक चक्रवर्त्ती सम्राट् के अधिकार में ऐसे-ऐसे चार हजार मडंब रहते थे।

आराम-7/1/17

आराम का अर्थ वाटिका है अर्थात् ऐसा प्रदेश, जो वाटिकाओं से हरा-भरा एवं समृद्ध रहता था।

दोणामुह (द्रोणमुख)-7/1/17

आदिपुराण (16/175) के अनुसार द्रोणमुख एक व्यावसायिक केन्द्र के रूप में मान्यता प्राप्त था, जो 400 ग्रामों के मध्य रहता था तथा उनकी प्रायः सभी आवश्यकताओं की पूर्त्ति करता था। महाकवि देवीदास के अनुसार उसे समुद्र का तटवर्त्ती प्रदेश माना जाता था (देवीदास-विलास 3/4/4) जब कि शिल्प-रत्न के अनुसार उसे बन्दरगाह माना जाता था। एक चक्रवर्त्ती सम्राट् के अधिकार में ऐसे-ऐसे एक लाख द्रोणमुख रहते थे (देवीदास 3/4/5)।

संवाहन-7/1/17

महाकवि देवीदास (3/4/5) के अनुसार यह एक ऐसा अति सुरक्षित स्थल था, जो शत्रु के लिये दुष्प्रवेश्य था। चक्रवर्त्ती सम्राट् के अधिकार में ऐसे-ऐसे 14 सहस्र संवाहन रहते थे, जिनमें 28 सहस्र सुदृढ़ दुर्ग बने होते थे। आचार्य जिनसेन के अनुसार संवाहन की भूमि बड़ी उपजाऊ होती है, जिसमें मस्तक पर्यन्त ऊँचे-ऊँचे धान्य के पौधे लहराते रहते थे (आदिपुराण 16/175)।

चउदह जीव समास-7/1/15

समस्त संसारी-जीवों को संक्षेप में बतलाने की पद्धति को 'जीवसमास' कहा गया है। ये 14 प्रकार के होते हैं। इसकी विशेष चर्चा के लिये देखिये– गोम्मटसार-जीवकाण्ड गाथा 72-73।

चउदह गुण-ठाण (चतुर्दश गुणस्थान)-7/1/17

मूलाचार (वट्टकेर, 12/154-55) के अनुसार मोहनीय कर्म के उदय, उपशम, क्षय एवं क्षयोपशम तथा त्रियोगों के कारण जीव के जो भाव बनते हैं, उनको

गुणस्थान कहा जाता है। वे चउदह प्रकार के होते हैं, जिनके नाम निम्न प्रकार हैं– (1) मिथ्यादृष्टि, (2) सासादन, (3) मिश्र, (4) असयंत, (5) देशविरत, (6) प्रमत्त, (7) अप्रमत्त, (8) अपूर्वकारण, (9) अनिवृत्तिकारण, (10) सूक्ष्म साम्पराय, (11) उपशान्त मोह, (12) क्षीणमोह, (13) संयोग-केवली एवं (14) अयोग-केवली।

ग्राम (ग्राम)-7/1/17

बृहत्कल्पसूत्र (2/1088) के अनुसार ग्राम वह है, जहाँ के निवासियों के लिये 18 प्रकार के कर देने पड़ते थे। आदिपुराण (16/66) के अनुसार ग्राम चारों ओर से बाड़ से घिरा रहता था।

णयर (नगर)-7/1/17

तिलोयपण्णत्ती (4/1398) के अनुसार नगर वह कहलाता है, जिसके चारों ओर रमणीक गोपुर बने हुए हों। यथा– **णयरं चउ गोउरेहिँ रमणिज्जं।** मानसार (दसवाँ अध्याय) के अनुसार नगर वह है, जहाँ अनेक जातियों एवं श्रेणियों के लोग निवास करते हों तथा जहाँ सभी धर्मों के धर्मायतन बने हों।

पुर-7/1/17

तिलोयपण्णत्ती (4/1398) के अनुसार पुर वह कहलाता था, जो विविध प्रकार की वृत्तियों अर्थात् व्यापारिक समृद्धियों से समृद्ध होता था। यथा– वइपरिवेढो।

गुज्जर-4/18/8

इतिहासकारों के अनुसार नवमी-दसवीं सदी के उत्तर भारत में गुर्जर-प्रतिहार वंशी राजाओं ने प्रभावक रूप में शासन किया था। महाकवि श्रीधर ने केवल गुज्जर-(गुर्जर) वंशी नरेश का उल्लेख किया है, इससे प्रतीत होता है कि वह गुजरात का कोई अन्य राजवंश रहा होगा जो कि सातवीं-आठवीं सदी में भृगुकच्छ के आसपास शासन करता था। इस वंश के दो पराक्रमी राजा प्रसिद्ध हैं— (1) राजा दद्द, प्रथम तथा (2) राजा दद्द द्वितीय। इस वंश का अन्तिम शासक जयभट्ट था, जिसे सन् 736 के आसपास अरब के आक्रमणकारी शत्रुओं ने पराजित कर वहाँ अपना अधिकार कर लिया था।

चंदिल्ल-7/18/11

दसवीं सदी का मध्य भारत का सुप्रसिद्ध तथा नन्नुक द्वारा संस्थापित एक पराक्रमी एवं कलारसिक राजवंश था। इसने दीर्घकाल तक बुन्देल भूमि पर शासन किया था। इसकी राजधानी खर्जुरवाहक (वर्तमान खजुराहो) थी। इस राजवंश ने जहाँ-जहाँ शासन किया, वह जेजाकभुक्ति के चन्दिल्ल अथवा चन्देल के नाम से प्रसिद्ध हुए। इस परम्परा का दसवीं सदी का राजा यशोवर्मन् चन्देल अपने गुणात्मक कार्यों के कारण इतिहास में काफी प्रसिद्ध है।

पंचवण्णु सुकेय (पंचरंगी ध्वजा)-1/19/1

महाकवि श्रीधर ने बतलाया है कि नट्टल साहू ने दिल्ली में उत्तुंग एवं विस्तृत प्रांगण वाला एक नाभेय मन्दिर बनवाकर उसके शिखर पर पंच परमेष्ठी अथवा पंच-महाव्रतों की प्रतीक पाँच वर्ण वाली ध्वजा-पताका फहराई थी। इसी को आदर्श मानकर भगवान् महावीर-2500वें परिनिर्वाण वर्ष के समय देश-विदेश की समग्र जैन-समाज ने इसी पंचवर्णी ध्वजा को अपनाया था। ये पाँच वर्ण निम्न प्रकार हैं– (1) गहरा लाल, (2) केशरिया, (3) सफेद, (4) हरा एवं (5) नीला।

णाहेय-णिकेय (नाभेय-निकेत)-1/9/1

ढिल्ली निवासी महासार्थवाह साहू नट्टल, जिसकी 46 देशों में व्यापारिक-

कोठियाँ थीं तथा जो समकालीन राजा अनंगपाल तोमर का परम विश्वस्त अर्थमन्त्री भी था, उसने दिल्ली में शास्त्र-सम्मत एक विशाल, उत्तुंग एवं कलापूर्ण नाभेय (ऋषभदेव)-मन्दिर का निर्माण कराया था। उसके मुख्य प्रवेश-द्वार के सम्मुख एक मानस्तम्भ भी बनवाया था। कुतुबुद्दीन ऐबक ने उन्हें तोड़-फोड़ कर कुतुबमीनार एवं कुतुव्वुल-इस्लाम नामकी विशाल मस्जिद का निर्माण कराया था (विशेष के लिये इसी ग्रन्थ की प्रस्तावना देखिये)।

वामंगे खरु रइइ (वामांग की ओर गदहा रेंगने लगा)-3/16/13 — युवराज पार्श्व जब यवनराज के साथ युद्ध करने के लिये प्रस्थान करने लगे उस समय क्या-क्या शुभ- शकुन हुए, कवि ने उनकी चर्चा की है। कवि के अनुसार उस समय बायीं ओर खर (गदहे) रेंकने लगे, तो बायीं ओर ही शृंगाली शिव-शिव रटने लगी और क्षीर-वृक्ष पर बैठा हुआ कौवा काँव-काँव करने लगा।

जउणहो णिव पंचवीर-4/15/6 — यवनराजा के पाँच वीर योद्धा, जो यवनराज की ओर से रविकीर्त्ति एवं युवराज पार्श्व के साथ लड़े थे। उनके नाम इस प्रकार हैं– (1) कल्याणमल्ल, (2) अभिमान-भंग, (3) विजयपाल, (4) गुज्जर एवं (5) तडक्क।

णवहं वि सिरि पाडिय दोहंडेहिँ-4/16/16 — यवनराज के नौ पुत्रों के सिरों को बीच से चीर डाला।

यवनराज के कल्याणमल्ल आदि पाँचों वीर योद्धाओं को मार डालने के बाद रविकीर्त्ति ने यवनराज के युद्धवीर समझे जाने वाले नौ पुत्रों को भी मारकर उनके टुकड़े-टुकड़े कर डाले।

सिरिणिवासु-4/17/7 — श्रीनिवास, यवनराज का प्रधान सेनापति।

मलयणाहु (मलयनाथ)-4/17/6 — यवनराज का एक दुर्दम योद्धा।

पोमणाहु (पदमनाथ)-4/20/8 — यवनराज का एक दुर्दम योद्धा।

विब्भाड (विभ्रावट)-4/21/17 — यवनराज का एक दुर्जेय योद्धा।

दुट्ठ कम्मट्ठ (दुष्ट अष्ट कर्म)-10/10/3 — जैन सिद्धान्त के अनुसार कर्म आठ प्रकार के हैं— ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र एवं अन्तराय। इनके अनेक भेद-प्रभेद होते हैं। ये सभी कर्म दुखदायी एवं जीव को संसार में अनन्त काल तक भटकाते रहने के लिये मूल कारण हैं।

तियरण (त्रिकरण)-10/17/7 — मन, वचन एवं काय अथवा कृत, कारित एवं अनुमोदना। इनसे हिंसादि पंच-पापों का त्याग ही श्रावक-धर्म का मूल कहा गया है।

पंच-समिदि (पंच-समिति)-10/17/1 — ईर्या, भाषा, एषणा, आदान-निक्षेपण एवं व्युत्सर्ग ये पाँच प्रकार की समितियाँ कही गई हैं। निर्दोष मुनि-चर्या के लिये इनका पालन अनिवार्य है।

गुत्तीउ त्तिण्णि (तीन गुप्तियाँ)-10/17/1 — आश्रव के कारणभूत मन, वचन एवं काय की अशुभ प्रवृत्तियों की रोक ही गुप्ति कहलाती है। इसप्रकार मनोगुप्ति, वचनगुप्ति एवं कायगुप्ति इन तीन प्रकार की गुप्तियों का पालन मुनि-चर्या के लिये अनिवार्य अंग माना गया है। अनगार धर्मामृत (4/154) के अनुसार ये गुप्तियाँ रत्नत्रय की तथा उसके धारण करने वाले की पापों से रक्षा करती हैं, अतः उन्हें गुप्ति कहा गया है।

टक्क-2/18/10

टक्क देश का नरेश राजा हयसेन के दरबार में पार्श्व के जन्म के उपलक्ष्य में उपहार लेकर बधाई देने हेतु उपस्थित हुआ था। उत्तराध्ययन सूत्र की सुख बोधा टीका में इसका उल्लेख मिलता है। डॉ. कनिंघम के अनुसार उक्त देश सिन्ध से लेकर व्यास नदी तक विस्तृत था। उन्होंने इसकी सीमा-रेखा उत्तरीय पर्वतों की तलहटी से लेकर दक्षिण में मुलतान तक निर्धारित की है। (देखें Ancient Geography, P. 125)

विन्ध्य-4/12/5

पासणाहचरिउ में उल्लिखित विन्ध्याचल वही है, जो वर्तमान भूगोल के अनुसार है। यह पर्वत भारत को उत्तर एवं दक्षिण के रूप में विभाजित करता था। आदिपुराण के (29/88) के अनुसार इसके पश्चिमी छोर को लाँघकर भरत चक्रवर्ती ने लाट एवं सोरठ देश पर आक्रमण किया था।

शब्दानुक्रमणिका

ध्यातव्य— प्रस्तुत शब्दानुक्रमणिका में प्रथम अंक **सन्धि** का, दूसरा अंक उसकी **कडवक**-संख्या का तथा तीसरा अंक उस कडवक की **पंक्ति** की संख्या से सम्बन्धित है।

अ

अइकरुण – अतिकरुण 4/6/15
अइभद्द – अत्यन्त भद्र 10/1/14
अइयार – अतिचार 8/10/11
अइरावउ – ऐरावत (हाथी) 10/8/6
अइरावअ – ऐरावत (क्षेत्र) 9/14/10
अइरूअ – अत्यन्त रूपवान् 1/13/11
अइसुरूअ – अतिस्वरूप, अत्यन्त सुन्दर 6/5/1
अउव्व – अपूर्व 7/11/3
अलयालि – अलकावली 1/18/5
अंकए – गोदी में 2/12/12
अंकिय – अंकित, चित्रित 8/8/16
अंकुर – अंकुर 2/5/7
अंकोल्ल – अशोक वृक्ष 7/2/9
अंग – अंगदेश 2/18/10
अंगए – अंगज (पुत्र) 5/15/13
अंगण – आँगन 1/4/6
अंगणा – स्त्री 6/2/5
अंगय – अंगज (पुत्र) 8/3/17
अंगारउ – मंगल-ग्रह 9/7/6
अंगुत्थली – अँगूठी 6/12/11
अंचिय-तणु – रोमांचित शरीर 5/15/2
अंचेवि – पूजा, अर्चना कर 11/14/20
अंजण – अंजन (नामका पर्वत) 7/16/15
अंजलि – अंजुली 8/7/5
अंतरिक्ख – अन्तरिक्ष, आकाश 9/19/14
अंब – आम्र 7/2/7
अंबर – आकाश 6/4/6
अंबर – वस्त्र 6/4/6
अकंप – निर्भय 3/1/10
अक्क – अर्क (का वृक्ष, बुन्देली-अकउआ) 7/2/9
अक्खत्त – अक्षत 10/4/12
अक्खिय – कहा (पंजाबी-आख्या) 9/3/4
अक्खोहिणि-बल – अक्षौहिणी-सेना (जिसमें 109350 अनुभवी पदाति – सेना, 65610 प्रशिक्षित घुड़सवार, 21870 रथ – सेना एवं इतने ही प्रशिक्षित अनुभवी हस्ति सेना सुसंगठित रहती है) 5/4/1 9
अगणंत – अगणित 5/4/10
अगहण – अगहन-मास 12/18/12
अग्घवत्त – अर्घ्यपात्र 2/11/11
अच्चरिउ – आश्चर्य 4/2/16
अच्चुव – अच्युत-स्वर्ग 12/8/6
अच्छंत – स्थित, ठहरा हुआ 3/13/13, 12/3/15
अच्छरा – अप्सरा 8/7/9
अच्छोडिउ – घुमा डालना 4/8/2
अजयरु – अजगर 12/8/4
अजिय – तीर्थंकर अजितनाथ 1/1/3
अजेउ – अजेय 1/8/12
अज्जउलु – आर्यकुल 10/9/2
अज्ज-कल्लि – आजकल 10/14/7
अज्जंतु – अर्जित किया 12/13/10
अज्जबाहु – आर्यबाहु (नामका राजा) 12/11/6
अट्ट – आर्त्त-ध्यान 12/1/5
अट्ठ – आठ 10/10/7
अट्ठम – आठ 10/17/10
अट्ठाबीस – अट्ठाईस (मूलगुण) 12/7/13
अड्ढ – आढ्य (परिपूर्ण) 1/11/6
अणाउ – अनयी, अन्यायी 8/4/6
अणंगपाल – अनंगपाल नामक दिल्ली-पत्तन का तोमरवंशी राजा 1/4/1
अणंगसरु-अनंग – सरोवर (दिल्ली स्थित) 1/3/7
अणंत – अनन्तनाथ तीर्थंकर 1/1/9
अणणीसण – असमर्थ 4/9/10

अणत्थ – अनर्थ (–दण्ड-व्रत) 10/6/7
अणभद्दु – अभद्र, अशुभ-सूचक, अपशकुन 4/6/10
अणय – अन्याय 10/11/11
अणल – अग्निकुमार (देव) 9/6/4
अणवरय – अनवरत, लगातार 1/2/4
अणसण – अनशन (तप) 12/15/7
अणाइ – अनादि 10/14/2
अणिमिस – अनिमिष, निर्निमेष 2/15/8
अणियालेहिं णयणेहिं – कटाक्षपूर्ण तिरछे नेत्रों से 7/11/10
अणिल – वायु 7/17/4
अणिवार – अनिवार्य 7/18/6
अणिहण – अनिधन 10/14/11
अणुअ – अनुज 11/13/8
अणुंधरि – अनुन्धरी (नामकी रानी) 11/7/1
अणुकंप – अनुकम्पा 10/14/8
अणुदिण – प्रतिदिन 1/7/2
अणुपेहा – अनुप्रेक्षा 12/4/6
अणुमण्णिउ – उत्साहित मन से स्वीकार किया 6/6/10
अणुरत्त – अनुरक्त 3/19/7
अणुवय – अणुव्रत 11/23/7
अणेय – अनेक 4/1/3
अण्णमण्ण – अनमना, अन्यमनस्क 7/4/8
अण्णोण्णु – अन्यान्य, परस्पर में 1/19/8
अतिसय – अतिशय 12/17/10
अत्थ – अर्थ-पुरुषार्थ 11/21/1
अत्थइरि – अस्तगिरि, अस्ताचल 3/17/13
अत्थमिय – अस्तमित, सूर्यास्त 10/7/8
अदु-अदु – जैसे-जैसे 9/11/8
अदोस – निर्दोष 11/20/13
अद्धचंद – अर्धचन्द्र 2/16/4
अद्धागय – अर्धागत, बीच में ही आकर 4/15/16
अपत्त – अपात्र 11/24/7
अपवग्ग – मोक्ष 8/10/8
अपसण्ण – अप्रसन्न 11/18/12
अप्पमाण – अप्रमाण 5/14/15
अप्पिउ – अर्पित 4/4/4
अभय – अभयदान 11/20/13
अभव्व – अभव्य 10/10/7
अभेज्ज – अभेद्य 4/2/15
अमरगिरि – सुमेरु-पर्वत 4/13/7
अमरिस – अमर्ष, क्रोध 2/10/8
अमरु – अमर (देव) 2/15/8
अमल – निर्मल 10/13/7
अमिओवमि – अमृतोपम 3/13/8
अमिस – आमिष, माँस 7/15/6
अमुत्त – अमूर्त 10/14/12
अमेय – अपरिमित 12/1/7
अमोहसत्ति – अमोघशक्ति (नामका प्रक्षेपास्त्र) 5/12/2
अयरवाल – अग्रवाल-वंश 1/5/6
अयाण – अजान 3/4/5
अरलू – अरलू नामका वृक्ष 7/2/9
अरविंद – कमल 1/1/13
अरविंद – अरविंद नामका राजा 11/5/1
अरिरि – अरे, रे 7/7/1
अरुणंभोरुह – लाल-कमल 2/2/10
अरुहणाहु – अरहनाथ तीर्थंकर 2/2/5
अलंकार – अलंकार, भूषण, आभूषण 1/10/7
अलय – अलक, केश 1/18/5
अलयालि – अलकावलि, केश-पाश 1/18/5
अलस – आलस 2/7/3
अलसिकुसुम – अलसी (तिलहन) पुष्प 3/13/4
अलहंत – प्राप्त किए बिना 2/6/11
अलिकुल – अलि-समूह 9/4/6
अलोलुअ – अलोलुपी, लोभ रहित 11/8/1
अल्लवइ – आलाप दुलराना 2/13/17
अल्हण – अल्हण साहु (राजा अनंगपाल (तृतीय) तोमर का विश्वस्त पार्षद) 1/4/6
अवज्झ – अबध्य 4/18/9
अवगयसिय – शोभा-रहित 5/7/10
अवयरिउ – अवतरित 1/3/8
अवयरे – अवतार लिया 4/14/12
अवर-दिसि – पश्चिम-दिशा 3/17/4
अवर – दूसरा 4/18/4

अवराइउ – अपराजित-देव-विमान 9/8/8
अवराह – अपराध 5/10/12
अवरुत्तरंत – पश्चिम-उत्तर का कोण 6/7/3
अवरुप्परु – परस्पर में 11/9/8
अवलेप – लपेटकर 3/14/10
अवसप्पिणि – अवसर्पिणी-कालचक्र 9/14/12
अवहिणाण – अवधिज्ञान 11/15/2
अवहेरि – अवगणना 8/4/7
अवहेरि – देखना 4/14/12
अविणस्सर – अविनश्वर (अकृत्रिम) 9/19/17
अवियारिणि – अविकारिणी 9/14/8
अविरल – लगातार 2/15/5
अविरोहिउ – अवरोधित 12/15/12
असणिघोस – अशनिघोष (नाम़का हाथी) 11/13/11
असम – असाधारण 11/4/11
असरिस – असदृश 3/12/6
असराल – लगातार, भरपूर 5/15/13
असहिय – असह्य, असहनीय 1/7/5
असि – तलवार 2/17/11
असिधेणु – कटार, असिधनुष 2/17/11; 5/15/15
असिपुत्ति – कटार 5/15/18
असिलट्ठि – असियष्टि 3/11/4
असुहर – असुधर, प्राणी 10/10/2
असुहावण – असुहावना 4/5/11
असेसिंदु – पूर्णमासी का चन्द्रमा 12/1/12
अहंगु – अभंग 11/3/3
अहरिसु – अहर्ष, विषाद 3/17/9
अहि – सर्प 4/6/14
अहिणंदउ – अभिनन्दन किया 11/10/14
अहिणउ – अभिनव 1/6/6
अहिमयर – अहिमकर (सूर्य) 1/19/13
अहिमाणभंग – अभिमान भंग 4/15/7
अहियत्तण – अधिकपना 6/9/8
अहिराम – मोहित करना, सुन्दर, 5/7/2
अहिसेउ – अभिषेक 2/2/12
अहिहाण – नामका, नामधारी 5/10/3
अहीसर – अहीश्वर (शेषनाग) 5/11/6
अहोगइ – अधोगति 9/12/7
आउल – आकुल, व्याकुल 6/15/3
आएसु – आदेश 10/4/5
आकरिसइ – आकर्षित 7/18/15
आगम – आगम-(शास्त्र) 10/16/6
आगय – आगत 11/4/7
आडोउ – आटोप, उन्नत, ऊँचा 11/4/5
आणिमि – ले आना 11/12/9
ग) 9/8/3
आणिऊ – लाया गया 6/7/10
आणेय, अणेय – अनेक 4/1/3
आपिहिय – ढँका हुआ 6/1/6
आमिस – माँस 4/10/9, 7/15/6, 11/20/8.
आयड्ढय – खींचा जाना 4/3/7
आयर – आकर, खान 3/18/3, 3/18/4, 7/18/12
आयवत्त – आतपत्र, छाता, छत्र 5/5/5
आयस – लोहा 6/1/5
आयहि – आता-जाता 10/11/8
आयार – आचार 2/5/8
आयास – आकाश 4/9/6
आरक्खिय – आरक्षित 1/5/9
आरण – आरण (नामका स्वर्ग) 9/8/3
आरणाल – कमलनाल 4/17/2
आराम – उपवन 7/18/12, 7/1/17
आराहिउ – आराधना करना 5/8/12
आरुह – आरूढ़ 5/5/8
आलाउ – आलाप 11/9/8
आलिंगणु – आलिंगन 4/4/12
आलि – भ्रमर 1/19/7
आलि – क्रीड़ा 12/15/3
आलुंचिवि – नोंचकर, खोंटकर, चुनकर, उखाड़कर 11/3/11
आवज्जिय – अर्जित, उपार्जित 6/5/7
आवय – आपद् 3/17/12
आवया – आपदा 10/8/3
आवाहिउ – आवाहन किया 2/7/10
आसंध – लक्ष्य करना 4/14/8

आसंघ – संकुचित 3/15/9
आसि – था 8/3/13
आसीवाउ – आशीर्वाद 6/19/12
आसीविस – भयानक सर्प-विष 3/4/12
आसीविसहर – भयानक सर्प-विष को दूर करने वाला 7/17/7
आहंडल – इन्द्र 3/ 9/2
आहय – आहत 1/1/4
आहरण – आभरण (आभूषण) 3/10/1
आहारदान – आहार-दान 11/20/13
इंगिय – संकेत, इशारा 11/11/1
इंडरि – इण्डरी (भोजपुरी–इनरसा, एक प्रकार का गुड मिश्रित मिष्ठान्न) अथवा इडली (दाक्षिणात्य-पक्वान्न) 4/1/16
इंधण – ईंधन 4/1/11
इक्क – एक 11/12/3
इच्छु – इक्षु 11/3/4
इट्ठ – इष्ट 8/8/4
इत्थंतरे – इसी बीच में 11/7/11
इयरे – इतर, दूसरा 4/3/2
इव – समान 1/11/8
इव्वहिं – इस समय 12/6/5
इह – यहाँ, यहीं पर 1/5/5
ईसान – ईशान (नामका स्वर्ग) 2/7/12
उअ – और, अथवा 6/11/19
उआउ – उपाय 7/8/12
उंबरि – उदुम्बर-फल 7/2/14
उक्कंठिय – उत्कण्ठित 2/18/7
उक्का – उल्का, विद्युत्पात् 5/12/3
उक्कोवण – क्रोधित करना, उत्तेजित करना 11/13/20
उक्कोविय – उत्कोपित 11/3/9
उग्गओ – उगा, उदित हआ 3/19/8
उग्घाड – उघाड़ना 9/16/16
उच्चरे – कहना 9/21/1
उच्छुअ मण – उत्सुक-मन 6/6/12, 10/19/7
उच्छंग – गोदी 8/3/7
उच्छव – उत्सव 2/11/10
उज्जुअ – ऋजुता 4/15/15
उज्जल – उज्ज्वल 9/15/4
उज्जु – ऋजु (सरल) 9/14/8
उज्झिय – उच्छेद 11/17/13
उज्झिवि – छोड़कर 6/5/3
उट्ठि – उठना, खड़ा होना 4/11/1
उडु – मुख 1/2/11
उडी – कुटी 8/9/6
उण्णय – उन्नत, उत्तुंग 1/7/11, 4/15/14
उत्तर-गुण – उत्तर-गुण (पारिभाषिक शब्द) 11/22/9
उत्तरासंग – धोती 11/24/11
उत्तिण्ण – उत्तीर्ण 1/2/3
उद्धल्लंत – लपेटना 6/8/4
उत्थरं – काम-पीड़ित, काम-प्रेरित 11/9/8
उद्दिसि – उद्देश्य 10/5/4
उद्दीह – खड़े होकर 2/14/5
उद्धु – ऊर्ध्व (गति) 9/12/8
उद्धायउ – दौड़ाया 4/9/14
उद्धुल्ललंत – ऊपर की ओर (चँवर) ढुराना 2/12/2
उप्पड – उचाट 8/3/18
उपल – पत्थर 2/17/12
उपवेइय – उपवेदिका 9/16/13
उप्पएवि – विपन्नता की स्थिति में भी 4/20/4
उब्भवे – उद्भव 1/2/3
उब्भेवि – उठकर 6/15/2
उम्मग्ग – उन्मार्ग, कुमार्ग, उन्मत्त 2/4/11
उम्मत्त – उन्मत्त 3/19/4
उयउ – उदित हुआ 9/14/1
उययगिरि – उदयगिरि 6/16/11
उयरत्थ – उदररथ, उदरस्थित 1/21/14
उरउ – उरग (सर्प) 6/9/10
उरा – वक्षस्थल 5/7/12
उरु – जंघा 1/13/6
उरे – हृदय में 12/10/6
उल्ललिउ – तमकना, उल्लसित होना 7/6/26
उल्लसंत – उल्लसित होकर 2/14/9
उल्लारिओ – उछाल दिया, 4/9/5

उल्लाव – रक्षा करो, बचाओ 7/11/9
उल्लूरिय – उजाड़ना 3/2/2
उल्हावहि – उल्हसित रहना 11/9/10
उवयर – उपकार 5/1/3
उवरि – ऊपर 11/11/12
उवरोह – उपरोध 11/19/12
उवरोहिउ – पुरोहित 12/1/13, 11/7/12
उवसग्ग – उपसर्ग 7/6/3
उवहसिउ – उपहसित, हँसा 6/10/1
उवहि – उदधि (घनोदधिवातवलय) 9/1/10
उविंद – उपेन्द्र (विष्णु) 1/12/9
उव्वास – उद्वास (निर्वासन) उजाड़ना 7/18/13
ऊधा – ऊधा (नामका व्यक्ति) (अ0प्र0)
एउ – इस प्रकार 10/8/2
एकल्लें – अकेला 4/14/13
एक्कु मयरहर – एक सागरोपम (पारिभाषिक, कालवाची) 9/10/2
एण – मृग 6/1/4
एण – इस 12/3/13
एम – इस प्रकार 12/3/13
एयारसी – एकादशी 1/21/15
एयारह – ग्यारह 12/18/11
ओरालि-मेल्लंत – गर्जना करते हुए 4/11/4
ओरालिलिंत – चक्कर लगाता हुआ 4/12/10
ओरालि – लम्बी मधुर आवाज 7/14/7
ओलंबिय – आलम्बन 7/9/7
ओलक्खिय – उपलक्षित, उपलब्ध 11/7/9
ओसह – औषधि-दान 11/20/13
ओसारण – दूर करने वाला (अन्त्यप्रशस्ति) 6/4
कइ – कवि 1/2/4
कइयण – कविजन 12/17/19
कउह – अर्जुन-(वृक्ष) 7/2/8
ककुहकुंजरा – दिग्गज 5/8/2
ककुंहवरा – दिगम्बर जैन नग्न मुनि 12/8/2
कंचणगिरिंदु – सुमेरु-पर्वत 11/3/1
कंचु – कंचुक, कवच 6/1/7
कंचुअ – कैंचुली, केंचुल, चोली 1/15/1
कंटय – काँटा 2/12/9
कंठीरव – सिंह 3/3/7, 4/3/7
कठिण-मण – क्रूर मनवाला 12/8/2
कंत – पति 3/10/5
कंति – कान्ति 1/16/1
कंदर – गुफा 3/12/12
कंदरासि – कन्द-समूह 10/6/1
कंदल – कन्दला 4/10/7
कंदुवघरु – हलवाई का घर (अथवा दुकान) 4/1/16 (अथवा वर्तमान का होटल या रेस्तरां)
कंथारी – कैंथा फल 7/2/13
कंधरु – काँधोर, ग्रीवा 1/7/11, 3/3/7
कंपाविय – कंपा देने वाली 7/5/15
कंबु – शंख 1/13/14
कँवल – कमल 2/8/4
कंस – कंस (नामका राजा) 1/3/17
कंसालय – एक वाद्य-विशेष 2/17/15
कंसासुर – कंस (नामका असुर) 4/17/9
कुंजरा – दिग्गज 5/8/2
ककुहा – दिशा 8/9/7
कचणारि – कचनार नामका वृक्ष 7/2/7
कच्चूर – कच्चूर (कदर) पुष्प 7/2/11
कच्छ – कच्छ-देश 3/13/6
कज्जल – काजल 9/4/6
कज्जारंभ – कार्यारम्भ 5/4/15
कटिरसणा – करधनी 2/15/4
कट्ट – काटना 3/8/5
कट्ठु – काष्ठ 2/12/3, 6/9/1, 6/19/1
कट्ठुबर – कठूमर नामका वृक्ष 7/2/14
कडक्ख – कटाक्ष 11/9/5
कडयण – कड़कड़ की आवाज 8/2/8
कडयडइ – कड़कड़ करना (ध्वन्यात्मक) 5/13/21
कण्णट्टिया – सरसों 2/7/9
कडि – कटि, कमर 1/13/7
कडियल – कटितल 2/8/6
कडिसुत्त – कटिसूत्र, रसना, करधनी कड्डोरा (बुन्देली) 2/8/6

कडु – कटक (सेना) 4/2/2
कडुरडि – ललकारना 5/6/6
कड्ढेवि – निकालकर, काढ़कर (बुन्देली) 4/8/3
कण – धान्य 2/7/9
कणय – स्वर्ण 3/10/1
कणय – युद्धास्त्र 7/10/5
कणयपसूण – धतूरा-पुष्प 6/8/6
कणयप्पह – कनकप्रभ (राजा) 12/12/2
कणयार – कनेर-वृक्ष पुष्प 7/2/13
कणवीर – कणवीर पुष्प-विशेष 7/2/7
कण्ण – कान 6/10/7
कण्णउज्ज – कान्यकुब्ज, कन्नौज 6/14/2
कण्णाड – कर्नाटक देश 2/18/9
कण्णावरं – कन्या का वर 5/4/15
कणिल्ल – वाणों से परिपूर्ण 1/3/14
कत्तउ – कर्त्ता 10/14/12
कत्तरिया – कतरनी (बुन्देली), कैंची 6/8/7
कत्थइ – कहीं 2/4/1
कद्दमा – कर्दम, काला, मलिन 4/11/5
कद्दमु – कर्दम, कीचड़ 7/2/4
कढु – कट्ठु, कठोर 2/12/3
कप्पामर – कल्पवासी देव 9/7/9
कप्पि – कल्प 12/5/2
कप्पूर – कर्पूर 4/2/5
कम – पैर 1/16/1
कमतल – चरणतल 1/13/2
कमठ – कमठ नामका असुर 6/8/12
कम्म – कर्म 6/1/6
कम्मभूमि – कर्मभूमि (पारिभाषिक) 10/19/2
कम्मतर – कर्मान्तर 10/14/3
कम्मिंधण – कर्म रूपी ईंधन 1/20/11
कयंत – कृतान्त (यम) 6/9/5
कयली – कदली, केला 1/13/6
कयावि – कदापि 1/12/10
करंडु – पिटारा 2/5/5
करइ – करना 1/7/12
करऊँ – करुँ 12/7/5
करग्ग – कराग्र 1/15/2
करड – एक वाद्य-विशेष 2/7/15, 4/7/2
करडयाल – गजगण्ड-स्थल 3/17/2
करडि – (समय-सूचक) घण्टा 1/3/5
करण – इन्द्रियाँ 7/1/5
करवत्त – आरा (चीरने वाला) 12/8/8
करवाल – तलवार 7/10/4
करसररुह – हस्तकमल 2/14/2
करह – ऊँट 2/3/11
कराल – भयंकर 3/6/3
करि – हाथी 7/15/11
करिंद – करीन्द्र, श्रेष्ठ हाथी 5/1/2
करिणि – हस्तिनी 12/3/3
करीसर – करीश्वर 8/7/7
करुण – करुण, करुणा 11/12/10
करेवि – करके 2/9/2
कल – खेलना, स्पर्श करना 4/4/16
कलगल – सुन्दर गला 8/12/7
कलचुरि – कलचुरि-राजवंश 2/18/12
कलत्त – कलत्र, पत्नी 4/7/9
कलमि – स्पर्श करना 4/4/16
कलयंठी – कलकण्ठी (कोयल) 11/7/1
कलयलु – कलकल-ध्वनि (ध्वन्यात्मक) 4/12/2
कलरव – मधुर-आवाज 2/8/15
कलवाणि – मधुर-वाणी 6/8/1
कलस – कलश 1/3/2
कलहंस – राजहंस 2/8/15
कला – कला 1/17/8
कलाउ – कलाप, समूह 2/12/4
कलालउ – कलायुक्त 3/1/3
कलाव – पुच्छ 1/14/1
कलिंग – कलिंग-देश 2/18/10
कलिमल – पाप 2/10/8
कलिल – कीचड़ से सना हुआ, गन्दा 3/13/9
कलुस – पाप 2/10/8
कल्लाणमल्लु – कल्याणमल्ल (नामक योद्धा) 4/15/7
कल्लोल – तरंग 1/11/5

कवड – कवच 4/3/13
कवाड – कपाट 12/17/15
कवाल – कपाल 4/4/15
कवित्त – कवित्व 7/4/7
कवोलयल – कपोलतल 1/18/4
कव्व – काव्य 3/1/5
कव्वड – कर्वट (भौगोलिक इकाई) 7/1/17
कव्वसत्ति – काव्य-शक्ति 1/10/1
कव्वुरिय – कर्वुरित, चित्रित 8/9/11
कसग – काँसा धातु 9/15/4
कसगुज्जलजल – कांस्य के समान सफेद जल 9/15/5
कसण – कृष्ण 3/10/4
कसणट्ठमी – कृष्ण-पक्ष की अष्टमी 12/18/12
कसाय – कषाय (पारिभाषिक) 4/19/6
कागणि – काकिणी-रत्न-तूलिका 11/14/10
कातंत–पंजिका – कातन्त्र-व्याकरण की पंजिका-टीका 1/3/10
कामएव – कामदेव 4/17/9
कामिणी – कामिनी 1/3/16
कामुअ – कामुक 3/19/9, 3/19/16
कामो – कामना करने वाला 4/21/27
कायर – कायर, भीरु 4/8/12
कालंतर – कालान्तर 1/9/3
कालंबि – कादम्बिनी (मेघमाला) 4/18/15
कालअद्धि – कालोदधि-समुद्र 9/19/9
कालत्तउ – कालत्रय 11/15/3
कालपास – मृत्यु-पाश 2/16/2
कालाहिवासु – कालपाश (नागपाश) 12/12/6
कालोवहि – कालोदधि 12/14/7
कावि – कोई 1/18/4
काविट्ठ – कापिष्ठ-स्वर्ग 9/8/2
कासु – कोई, किसी 4/3/12
काहल – एक वाद्य-विशेष 2/17/15
किंकणी-किंकिणी – नूपुर 2/15/4
किंपुरुष – किंपुरुष जाति के देव 9/6/9
किंसुअ – किंशुक वृक्ष पुष्प 6/4/13
किडि – शत्रु 5/13/21
किडिकडयडइ – शत्रु की कट-कट की आवाज 5/13/20
कित्तणु – कीर्तन, सत्कीर्ति गान 1/5/2
कित्ति – कीर्त्ति 1/6/7
किन्नर – किन्नर (जाति के देव) 12/17/13
किमि – कृमि 11/24/5
किम्मीर-कम्म – चित्र-विचित्र, चित्र कर्म 7/3/8
कियंतु – कृतान्त 3/8/7, 3/12/1
किरणवेउ – किरणवेग नामका विद्याधर 12/6/5
किलकिल – किलकिलाना, (ध्वन्यात्मक शब्द) 8/2/13
किवाण – कृपाण 4/7/2
किविण – कृपण 7/4/8
कीर – तोता 1/18/9
कीरइ – करना चाहिये 11/21/9
कील – क्रीड़ा 2/8/11
कीलि – क्रीड़ा 7/2/5
कीलिर – कीलित 4/14/2
कीलिर – क्रीड़ा रत 1/2/7
किवि – कोई 2/3/10
किसि – कृषि 2/17/14
कुइय – कुपित 3/8/7
कुचंति – 2/7/5
कुंजर – श्रेष्ठ हाथी 4/9/7
कुंडल – कान का आभूषण 2/8/7
कुंडलेसु – कुण्डलगिरि 9/20/4
कुंत – भाला 2/17/11
कुंत – कुन्तल (केश) 3/12/5
कुंथ – कुन्थुनाथ (तीर्थंकर) 1/1/10
कुंभ – कलश 11/9/4
कुंभीस – श्रेष्ठ हाथी 4/2/14
कुकइ – कुकवि 7/4/7
कुक्कुड – कुक्कुट-सर्प 12/4/10
कुचंति – बजाने लगे 2/7/5
कुज्जय – कुब्जक 2/11/4
कुट्टंत – कूटना 5/2/15
कुट्टिणी – कुट्टिणी, छली-कपटी स्त्री 1/11/10
कुट्ठा – क्रोधित 4/21/9

कुठार – कुठार (एक अस्त्र) 6/8/12
कुडिल-सिरोरुह – कुटिल-केश वाला 6/12/3
कुबेरु – कुबेर (उत्तर-दिशा के स्वामी) 2/3/11
कुमइ – कुमति, कुज्ञान, कुबुद्धि 10/14/10
कुमारु – कामदेव 6/11/23
कुमिलाण – कुम्हलाना 3/18/8
कुमुअ – कुमुद-पुष्प 3/20/5
कुम्भ – कलश 11/9/4
कुम्म – कूर्म (कछुआ) 7/13/10
कुरंग – हिरण 2/3/11
कुरवअ – कुरवक नामका एक वृक्ष 7/2/11
कुरु – करो 6/11/7
कुरुकुरु – (ध्वन्यात्मक) कुरकुराना 3/20/8
कुल – वंश 9/2/15
कुलगयण – कुलरूपी-आकाश 1/4/5
कुलणेसर – कुल रूपी सूर्य 10/6/12
कुलधरणीहर – कुलाचल 11/6/6
कुलायल – कुलाचल, पर्वत 9/20/2
कुलिस – वज्र 2/10/2
कुलीर – केंकड़ा 7/13/8
कुसत्थल – कुशस्थल नगर 3/2/9
कुसमयवासिउ – कुधर्मवासित 11/23/12
कुसस्थल-णंदण – कुशत्थल-नगर का नन्दन-वन 10/1/13
कुसीस – कुशिष्य 7/17/14
कुसुम – पुष्प 4/1/15
कुसुमंजलि – पुष्पांजलि 4/15/1
कुसुमकंडु – कामदेव 6/18/10
कुसुमाउह – कुसुमायुध (कामदेव) 12/11/11
कुसुमालउ – कुसुमालय (कामदेव) 3/1/3
कुहरंतर – पर्वत-गुफा के भीतर 3/5/14
कुहिण – मार्ग-जनित 4/1/12
कूड – कूट 1/7/2
कूर – क्रूर 2/7/8
कूरग्गह – क्रूर-ग्रह 3/15/7
के – कौन 11/1/12
केण – कौन 11/1/12
केणवि – किसी ने भी 4/9/4
केतु – केतु नामका ग्रह 5/11/10
केत्तरि – कैंची 6/8/7
केयइ – केतकी-पुष्प 7/2/11
केयार-पुराणु – केदार-पुराण, शिवपुराण 6/8/9
केर – सम्बन्धकारक प्रत्यय 6/7/9
केरिसु – कैसा 2/1/1
केलि – क्रीड़ा 6/4/10
केव (किव) – कृपा 3/5/10, 4/1/5
केसायवट्टण – केशाकर्षण 3/10/12
कोइल – कोयल 6/4/4
कोऊहल – कौतुहल 1/2/2
कोक्कइ – ललकारना, भूँकना, गुर्राना 4/14/5
कोढ – कुष्ठ, कोढ़, रोग 12/11/12
कोढुल्ल – कोढ़ीजन (उल्लू-समूह) 3/19/7
कोढु – उल्लू 3/19/7
कोमल – कोमल 8/3/5
कोरंटिय – कोरंटक पुष्प 7/2/9
कोलाहल – कोलाहल, शोरगुल 1/11/1
कोवि – कोई 6/8/1
कोवीण – कौपीन 6/8/4
कोस – म्यान 4/8/3
कोह – क्रोध 8/10/7
कोंत – युद्धास्त्र 7/10/4
खंचइ – खींचना 12/3/5
खंभ – स्तम्भ 7/10/3, 7/10/13
खग्ग – खड्ग, तलवार 3/12/3
खडखडइ – खड़खड़ाना, खड़खड़ करना (ध्वन्यात्मक) 5/13/21, 8/2/11
खण – (ध्वन्यात्मक) खण-खण करना 2/8/12
खण – खोदना 4/1/4
खण्डेलवाल – खण्डेलवाल जाति (प्रतिलिपिकार प्रशस्ति)
खमायल – पृथिवीतल 4/3/4
खयकाल – पृलयकाल 7/12/2
खयमरु – प्रलयकालीन वायु 4/6/19
खयरुयलु – वैताढ्य-पर्वत 12/5/11
खयरी – खेचरी, खचरी, (देवी) 1/14/12

खयसिहिव – क्षयकालीन अग्नि के समान 10/14/8
खरं – खरे, तीक्ष्ण 3/6/1, 3/10/13
खर – गधा 11/11/12
खर – नीरस 12/8/8
खलबलंत – खलबल करती हुई (ध्वन्यात्मक) 8/3/8
खलियक्खर – स्खलित अक्षर (बोलने में लड़खड़ाना) 2/14/2
खसु – खस-देश 4/5/8
खामोयरि – कृशोदरी 2/4/6
खालियं – प्रक्षालित 3/9/12
खिज्जइ – क्षीयमान्, नष्ट होना 3/4/2
खिब्भिस – किल्विष नामक देव 2/7/5
खीर – क्षीर (वृक्ष-विशेष) 3/17/1
खीरंबुहि – क्षीर-समुद्र 2/8/3
खीरण्णव – क्षीरार्णव (क्षीरसागर) 6/13/2
खुज्जयादेव – कुब्जक जाति के देव 2/7/5
खुद्दवाइ – क्षुद्र-वादी 12/8/8
खुर – खुर 2/4/2
खुरुप्प – खुरुप्प नामका अस्त्र 4/9/12
खुहिय – खुभित, क्षुब्ध 11/11/8
खेड – खेड़ा 7/1/17
खेम – क्षेम, कुशल 3/17/1
खेमंकर – जिणवर – क्षेमंकर – जिनवर 12/10/6
खेयर – खेचर (देव) 2/7/6
खेयर – खेचर (विद्याधर) पर्वत 9/20/3
खेरि – खार खा जाने वाले, विरोधी 2/16/14, 5/10/11
खेवें – खोये 5/9/1
खोणि – पृथिवी 8/2/15
खोह – क्षुब्ध 8/2/15
गइडुअ – गडुआ, लोटा 6/8/5
गउड – गौड देश 2/18/12
गउरीसु – गौरीश, शंकर (शिवजी) 6/9/2
गओ – गया 6/15/8
गंगा – गंगा-नदी 4/1/6
गंगेरि – गंगेरि नामका कन्द, गंगेरुआ 7/2/15
गग्गर – गदगद 3/7/7
गच्छमाण – जाती हुई 5/12/3
गंजमि – गाँज देना, धँसेड़ देना 3/15/12
गंजेवि – गाँजकर, मरोड़कर 3/4/8
गंजोल्ल – गाँजना 5/5/7, 11/1/6
गज्जंत – गरजते हुए 1/14/7
गज्जमाण – गर्जना करते हुए 2/3/2
गंडय – गैंडा 7/1/20
गंडीउ – गाण्डीव-धनुष 4/16/15
गंढिता – प्रायश्चित 9/21/11
गंधव्व – गंधर्व-कुमार देव 9/6/9
गंधिल्ल – गन्धिल-देश 12/8/11
गंधुक्क – तीव्र गन्ध 3/19/4
गंधोवय – गन्धोदक 6/13/13
गढ – महल 7/18/12
गणहर – गणधर 12/17/3
गणिउ – प्रशंसित, सम्मानित 1/5/14
गणिय – गणिका, गणिनी (पारिभाषिक) 12/16/7
गत्त – गात्र, शरीर 3/17/2
गब्भु – गर्भ 1/2/4
गयउर – गजपुर-नगर 6/13/8
गयघड – गजघटा 3/10/15
गयण – गगन 1/3/1
गयदंत – गजदन्त-पर्वत 9/20/1
गयराय – गतराग, वीतराग 7/6/22
गयवर – श्रेष्ठ-हाथी 5/3/18
गय – गदा 5/2/15
गयालसु – आलस्य रहित, सावधान, सावधानी पूर्वक 12/3/11
गयाहिव – गजाधिप 7/2/1
गयाहीस – गजाधीश 12/1/10
गरहण – गर्हा, निन्दा 11/23/10
गरिट्ठ – गरिष्ठ, महान् 1/19/2
गरुअ – महान् 10/6/4
गरुड़ – गरुड़ 4/15/3
गरुहवीण – गारुडी की वीणा 1/1/7
गलि – गला 5/9/15
गलिय – गलित 3/1/11
गलियंबर – वस्त्र का गिरना 6/10/5

गवक्ख – गवाक्ष, रोशनदान 7/3/7
गवेसउ – गवेषणा, खोज 11/12/12
गसइ – ग्रसना 5/13/19, 11/24/5
गसंती – ग्रास करती हुई 3/19/4
गहण – ग्रहण 11/20/3
गहयण – ग्रह-गण 10/18/6
गहीर-राउ – गम्भीर उद्घोष करने वाला 4/5/8
गहीर-वाणी – गम्भीर-वाणी 11/4/10
गाम – ग्राम 7/1/17, 7/18/12
गामंतर – ग्रामान्तर 4/2/7
गामीयण – ग्रामीण जन 1/2/14
गायइँ – गाती हैं 2/4/6
गाविउ – गायें 1/11/3
गिज्जावलि – ग्रीवावलि 5/1/9
गिम्ह – ग्रीष्म 5/12/14
गिरिंदु – गिरीन्द्र, सुमेरु-पर्वत 11/13/1
गिरिकडिणि – गिरिकटिनी 3/7/13
गिलंत – निगलना 7/9/14
गिहत्थ – गृहस्थ 10/3/8
गीउ – गीत 1/18/7
गुंजा – गुंजा-वृक्ष 7/2/9
गुज्जर – इस नामका यवनराज का एक पराक्रमी योद्धा 4/15/8
गुड़ – गुड़ 10/5/5
गुडरूप – (Good) सुन्दर 5/2/14
गुण – डोरी 4/17/14
गुणठाण – गुणस्थान (पारिभाषिक) 8/6/3
गुणरयण – गुणरत्न 1/5/5
गुणसिरि – गुणश्री नामकी गूजर-भार्या (प्रतिलिपिकार-प्रशस्ति)
गुणालय – गुणालय 8/9/14
गुणिल्ल – गुणी 1/7/6
गुप्फ – गुल्फ 1/13/3
गुरुभत्ति – गुरुभक्ति 1/5/14
गुलुगुलु – गुलगुला, (बुन्देली-गुड की मिठाई) या गुड़ के पकौड़े, मीठा पुआ 4/1/10
गूजर – गूजर व्यक्ति (प्रतिलिपिकार प्रशस्ति)
गूढ – रहस्य 1/13/3
गेउ – गेय, संगीत 10/16/3
गेंडुव – गेंद 2/14/2
गेण्ह – ग्रहण करना 4/11/4
गेरु – गेरु; लाल-मिट्टी 7/9/2
गेवज्ज – ग्रैवेयक नामका स्वर्ग 12/11/1
गेह – घर 2/8/1
गेह – ग्रह 4/10/6
गेहंगणि – घर के आँगन में 11/24/11
गेहंतरि – घर के भीतर 10/13/2
गेहवास – गृहावास 11/7/8
गोउर – गोपुर 8/8/15
गोत्तम – गौतम 1/4/10
गोधूलि – प्रदोषकाल, सायंकाल 6/6/5
गोरसिल्लु – सरस, मधुर गोरस 1/3/14
गोरि – गीय-गोपियों का संगीत 7/4/9
गोरीस – गौरीश, महादेव 3/19/6
गोल्हु – कवि श्रीधर के पिता का नाम 1/2/4
गोवाल – गोपाल 4/13/14
गोहण – गोधन 11/3/7
घंघल – व्यसन, दरिद्रता 11/5/11
घट्टइ – घटना 9/15/6
घडणो – घटित 6/13/15
घडहडंतु – घडघड़ाना (ध्वन्यात्मक) 7/13/15
घडेव्वउ – बनाना, निर्मित करना, रचना करना 3/10/12
घणु – घनवातवलय (पारिभाषिक) 9/1/10
घणविंद – मेघसमूह 4/17/15
घणसार – कर्पूर 5/5/4
घणायार – घनाकार 9/1/9
घणि – घना, घनी 12/3/14
घणोह – मेघसमूह 7/15/18
घम्मावरणु – छाता 2/5/10
घय – घृत 11/9/4
घरसाणु – घरु कुत्ता, पालतू कुत्ता 5/2/10
घरित्थि – गृहस्थी 3/13/8
घरु – घर 4/1/16
घल्लि – घालना, डालना 4/9/11

घाइ – घात 4/9/9
घाइ – घातिया-कर्म 8/6/4
घाएँ – घात 6/10/1
घाय – घात 11/9/8
घायंत – घात करना 8/6/4
घिप्पइ – ग्रहण करना 10/17/8
घिवंतु – ग्रहण करना, पीना 2/14/1
घुट्ठउ – घोषित करना 4/18/3
घुम्माविय – घुमा-घुमाकर 5/6/15
घुरहुर – घुरघुराना (ध्वन्यात्मक) 7/2/3, 7/14/6
घुलियउ – लौटने लगा, घुमने लगा 3/3/2
घुसिण – चन्दन (आलता) 3/18/3
घूए – उल्लू 3/20/12
घूएयर – उल्लूओं के शत्रु-पक्षी 3/20/12
घोस – चीत्कार 5/8/2
चंचु – चोंच 11/3/6
चंचुर – चंचुर (प्रवीण) 6/14/18
चंड – प्रचण्ड 4/4/6
चंडि – प्रचण्ड रण 4/4/6
चंडीस – महादेव 11/5/9
चंडीसहाससम – महादेव के हास्य के समान 11/5/9
चंद – चन्द्र 1/9/4
चंदकंती – चन्द्रकान्ति 3/19/9
चंदण – चन्दन-वृक्ष 7/2/14
चंदण – चन्दन 6/2/10
चंदधाम – चन्द्रलोक 1/9/4
चंदप्पहास – चन्द्रप्रभा की कान्ति 1/4/7
चंदाहवत्त – चन्द्रमुखी 3/19/8
चंदिरं – क्षणिक् 6/14/20
चंदिरे – चाँदनी 1/14/8
चंदिल्ल – चेदि या चन्देरी 2/18/11
चइत्त – चैत्रमास 8/6/6
चउव्विहु – चार प्रकार का 1/6/6
चउगइ – चतुर्गति 3/4/14
चउगुणु – चौगुना 7/9/15, 7/9/19
चउबारा – चौबारा, चार द्वार 9/16/15
चउरासी – चौरासी 9/4/2
चउबिहु-बलु – चतुरंगिणी-सेना 8/1/13
चउहान – चौहान-वंश 2/18/16
चकायरु – चक्राकार 3/20/1
चक्कवइ – चक्रवर्ती 12/12/5
चक्कंकिय – चक्रांकित 12/9/6
चक्कवाय – चक्रवाक-पक्षी 3/8/12
चक्काउहु – राजा चक्रायुध, (राजा वज्रवीर का पुत्र) 12/9/8
चडावेवि – चढ़कर 11/11/2
चडियउ – चढ़ गया 2/3/8
चडेज्जसु – चढ़ते जाओ 9/11/3
चणय-चूरण – चने का चूरण, वेशन 1/17/11
चतुरउ – चतुर्थ 9/15/6
चत्त – त्यक्त 11/11/4
चप्प – चाँपना, दबाना 3/15/1, 7/11/14
चप्पिउ – चाँपना, दबाना 2/16/10
चमक्कि – चौंकना 8/2/14, 8/12/14
चम्मट्ठिय – चर्मअस्थि 6/3/3
चयंत – छोड़ना 3/20/6
चयंतो – त्याग करता हुआ 12/1/5
चयारि – चार 12/3/18
चर – (घास)-चरना, चलना 1/11/3
चरुंभोरुह – चरणकमल 3/16/5
चरण – चरण 3/18/10
चरिउ – चरित, चरित्र 1/4/7
चल – चंचल 7/10/17
चल•– चलायमान 7/3/9
चल्ल – चलना 11/9/1
चवइ – कहना 3/13/14
चवल – चपल 1/19/7
चविऊण – चयकर 1/21/21
चवेवि – कहकर 11/8/10
चहुट्टु – चारों ओर से फँस कर चिपक जाना 12/4/3
चाएण – त्यागपूर्वक 1/4/10
चाड – कपटी 3/18/10
चामर – चँवर 2/11/2
चारण – चारण-भाट 11/4/9

चारि – चार 4/19/3
चारु – सुन्दर 11/21/1
चालइ – चलाना 1/8/6
चिंचिणी – चिंचिणी-वृक्ष 7/2/14
चिंतामणी – चिन्तामणि-रत्न 11/5/10
चिंधु – ध्वजा 4/9/1
चिक्कण – चिकना 12/4/3
चिक्करंत – चीत्कार करते हुए 3/12/4, 4/3/3
चिक्कार – चीत्कार 5/1/5
चिक्खिल – चिकना कीचड़ 12/4/3
चिण्णु – चीन्हा, पहचाना 10/16/6
चित्त – चित्र 1/18/4
चिम्मित्त – चैतन्यमात्र 10/14/11
चियणं – चेतना 4/20/9
चिर-चरिय – चिरकाल से आचरित 1/2/1
चिराउसु – चिरायुष्य 11/25/6
चीरु – वस्त्र 1/4/2
चुंबण – चुम्बन 4/4/10
चुंविवि – चूमकर 2/12/12
चुक्क – चूक, भूल, चूकना 11/8/7
चुल्ली – चूल्हा 4/1/13
चूअ – चूत (आम) 6/4/2
चूडामणि – चूड़ामणि-रत्न, शिरोमणि, 3/6/8
चूरइ – चूरना 4/14/3
चूरण – चूर्ण 1/17/11
चूरेसइ – चूर-चूर करना 1/20/3
चूल – चोटी 7/15/8
चेइअ – चैत्य (वृक्ष) 9/6/15
चेलंचलु – वस्त्र-खण्ड आँचर 12/7/9
चोचुब्भव-जल – डाभ (नारियल) से उत्पन्न जल
चोज्जु – आश्चर्य 2/13/24, 6/18/9
चोड – चोड देश 2/18/11
चोर – चोर 11/4/2
चोरण – चुराने वाला 3/1/3
च्छिंदेवि – छेदकर, काटकर 7/6/5, 11/20/4
च्छुडु – शीघ्र 3/18/3
च्छुद्ध – छुद्र 11/24/5
छइल्ल – छैला, विदग्ध 1/2/8, 8/4/14
छंगुल – छह-अंगुल 9/3/12
छक्कट्ठ – षडष्टक 6/5/12
छडउल्ल – छिड़कना 6/2/7
छडय – छिड़काव, छिड़कना 1/15/10
छडरस – षट्रस 6/3/2
छणरयणीयर – पूर्ण-चन्द्रमा 2/14/9, 4/17/11
छणरोहिणीवइ – पूर्णचन्द्र एवं राहु 4/17/11
छत्त – छत्र 3/12/9
छमास – छह-मास 1/18/13
छवग्ग – षट्वर्ग 5/4/3
छाइउ – आच्छादित 7/13/7
छायंत – आच्छादित 4/14/1
छाय – छाया 3/12/9
छायासय – षट्आवश्यक 7/1/10
छार – भस्म 6/8/4
छिंकियउ – छींकना 4/6/13
छिंद – छेदकर 3/4/14
छिद्दिक्क-गवेसणु – छिद्रान्वेषक 10/14/4
छुई – छुई-मिट्टी 6/6/7
छुडु – छूटते ही, तत्काल ही 3/17/16, 3/18/3
छुहरस – छुई (बुन्देली), पोतने वाली सफेद मिट्टी 6/6/7
छेत्त – क्षेत्र 2/2/7
छेत्तूण – छेदकर 2/7/9
छोणि – पृथिवी, भूमि 1/17/8
जइ – यदि 11/11/5
जई – यदि 3/6/5
जईह – यदि ऐसा ही है तो, 8/4/10
जउण – जमुना (नदी) 6/19 प्रश0
जउण – जउण (राजा) यवनराजा 3/5/5
जंगम – चलता-फिरता 4/5/9
जंघ – जंघा 1/13/4
जंत – जाते हुए 6/17/3
जंबीर – जंभीरी-नीबू 7/2/7
जंबू – जामुन 7/2/8
जंबूदीप – जम्बूद्वीप 12/5/8

जगणाह – जग के नाथ 6/6/11
जट्ट – इस नाम का एक देश, पृ. 263
जड – जड़ मूल 6/8/3
जडवप्पण – जल-सेचन-क्रिया 6/8/5
जण – जन 1/5/4
जणणयणराम – लोगों के नेत्रों को आनन्दित करने वाला 1/5/9
जणवय – जनपद 3/5/4
जणेरु – जनक, उत्पादक 11/15/9
जत्त – यात्रा 6/16/7
जम – यम (दक्षिण-दिशा) 2/3/12
जमरायराधा – यम राज की राधा-भैंस 7/17/2
जम्मु – जन्म 10/5/3
जम्मुच्छव – जन्मोत्सव 2/12/13
जयंत – जयन्त नामका देव-विमान 9/8/8
जयम्मि – विजय प्राप्त करने में 5/6/2
जयहि – जयवन्त 8/10/1
जर – जीर्ण 11/6/9
जल – जलकायिक जीव 10/11/3
जलंतो – जलती हुई 3/19/10
जलण – अग्नि 11/9/4
जलणगिरि – ज्वलनगिरि 12/10/8
जलणिहि – समुद्र 2/14/4
जलवारण – छाता, छत्र 3/17/6, 4/7/10
जलबिब्भम – जलावर्त्त 7/10/15
जलबुब्बुअ – जलबुद्बुद् 10/13/10
जलहर – मेघ 2/12/6
जसा – नसें 5/7/9
जसु – यश 1/5/2
जहजाय – यथाजात, नग्न, दिगम्बर मुनि 10/4/3
जहण्ण – जघन्य 11/18/12
जाइ – जाना 3/17/5
जाइ – जाकर 11/11/5
जाइवंत – उच्च जाति वाला, कुलीन 3/1/7
जणज्जवि – जब तक नहीं 12/7/4
जाणियउ – जाना, समझा 1/16/3
जाणुअ – जानु 1/13/5
जाम – जहाँ यहाँ, 3/2/9
जामेक्क – एक प्रहर 3/19/7
जायय – जुअलं – मीन-युगल 1/20/6
जायरुक्ख – सुवर्ण-वृक्ष 8/9/1
जायरूव – सुमेरु-पर्वत 3/15/9
जायवेय – जातवेद (अग्नि) 1/19/12
जाया – हो जाना, हो गया 5/6/2
जालाउल – प्रज्ज्वलित-अग्नि-समूह 3/6/14
जालावलि – ज्वालावली 12/8/7
जालोलि – ज्वालावली 7/9/14
जालंधर – जालन्धर-देश 2/8/11
जावण – जपा-कुसुम 6/2/7
जासवण – जासौन-चमेली-वृक्ष 7/2/10
जाह – जिसका 1/13/1
जिगजिगंतु – जगमगाता हुआ 2/14/2
जिमियउ – जीमना, आहार लेना 6/13/17
जिय – जीता, जीत लेना 8/1/1
जीमूअ – जीव 4/6/11
जीमूअ – मेघ, 3/2/4, 3/8/9
जीवगामु – जीव-समूह 1/5/9
जीवयव्वु – जीवितव्य 11/21/3
जीवेव्वउ – जीवितव्य, जीवन का सार 11/21/1
जीह – जीभ 3/7/12, 4/7/7
जुअ – युगल (राग-द्वेष) 5/8/9
जुअ – जुआ, ज्वांरी (बैलगाड़ी की) 10/14/9
जुइ – द्युति 7/15/19
जुइणेसरा – प्रथम दो स्वर्गों के देव 9/11/14
जुज्जए – उपयुक्त 3/6/9
जुम्म – युगल 1/19/9
जूड – (जटा-) जूट 6/8/3
जूर – कँपा देना 4/6/5
जूह – यूथ, हाथियों का समूह 4/5/3
जेजा – जेजा (नट्टल-साहू का दादा) 1/5/5
जेट्ठ – ज्येष्ठ, जेठा, बड़ा 11/13/5
जेम – जिससे 6/6/9
जेवि – जो भी 5/6/8
जोइ – बाठ जोहना, प्रतीक्षा करना 3/6/5

जोइ – योगी 10/4/7
जोइस-सुअ – ज्योतिष-श्रुत-शास्त्र 2/17/3, 6/5/10
जोड – जोडना 1/10/1
जोणि – योनि 10/5/10
जोव्वण – यौवन 10/13/10
जोह – योद्धा 5/6/5
झंकार – झनकार 11/19/6
झंप – (Jump) कूँदना 8/2/10
झंपण – झाँपना, झाँकना, 2/5/6
झंपिउ – झाँपा, ढाँका 11/10/8
झंपियउ – ढँक लिया 11/11/18
झति – शीघ्र 4/11/7
झलमल – झलमलाना-(ध्वन्यात्मक) 8/2/11
झल्लरि – झालर 2/11/4
झस – मछली 1/19/9
झसर – युद्धास्त्र 7/10/4
झाडंतउ – झड़ाना, झड़वाना 7/9/9
झिंदुअ – झिन्दुक, झींगुर 11/9/2
झुणं – ध्वनि 6/8/1
टउह – पलाश 7/2/8
टक्क – टक्क नामका देश 2/18/10
टक्कार – टनकार 7/2/8
टणटणिय – (ध्वन्यात्मक) टणटण की आवाज 2/2/2
टलटलिय – (ध्वन्यात्मक) टलटलाना 8/2/7
टसत्ति – (ध्वन्यात्मक) टसटसाकर 1/10/1
टालंतउ – टालते हुए 7/10/11
टिविल – एक प्रकार का टणटण करने वाला वाद्य 2/17/15
ठंति – स्थित, ठहरना 7/14/21
ठवंतउ – रखते हुए 3/2/9
ठवेज्ज – स्थापित 3/16/2
ठवेप्पिणु – स्थापित कर 2/6/4
ठाइवि – रखकर, ठहरकर 4/7/10
ठा – ठाहे – ठहरिये, ठहरिये 11/24/12
ठाण – स्थान 3/19/2
ठाय – स्थितकर 4/7/10
डंभ – आडम्बर 10/9/5
डज्झ – दग्ध 7/6/20
डमरु – डमरु 7/15/7
डाइणि – डाकिनी 7/15/14
डामर – सुरत-देवता (कामदेव) 8/6/11
डामरु – डमरु नामक वाद्य 8/9/9
डालु – डाल, शाखा 2/16/3
डिंडीर-पिंड – फेन-पुंज 1/2/7
डोहइ – मन्थन करना 4/14/10
डोहिय – मथित, बिलोड़ित 12/3/9
ढाल – ढालना, छोड़ना 6/8/5
ढिल्ली – दिल्ली 1/2/16
ढुक्क – ढूँका, झाँकना 3/17/11, 4/19/7
ढुक्कउ – ढुका 3/18/6
णंदण वण – नन्दन-वन 4/2/6
णंदय – नन्दक (एक प्रकार का मध्यकालीन शस्त्र) 7/13/10
णंदीसर – नन्दीश्वर-द्वीप 9/20/6
णउलोरय – नकुल-उरग, नेवला एवं साँप 7/1/19
णक्खत्त – नक्षत्र 1/5/13
णच्चंत – नृत्य करते हुए 1/17/14
णज्जवि – जानकर 12/7/5
णट्टलु – नट्टल साहु (आश्रयदाता) 1/5/13, 1/6/11, 1/7/10, 1/7/8, 1/9/8, 1/10/6, 5/15/19
णट्टसाल – नृत्यशाला 8/8/15
णट्ठ – नष्ट 6/10/11
णडु – नट 4/9/8, 10/10/2, 10/10/10
णण्णु – अन्य कोई नहीं (आद्य स्वरलोप) 2/1/15
णमंसिउ – नमस्कार किया 4/2/10
णय – नय 1/5/1
णयमग्ग – नयमार्ग, न्यायमार्ग 10/14/1
णयरु – नगर 3/5/4, 7/1/18, 7/18/12, 10/19/10
णरट्ठि – मनुष्यों की हड्डी 4/14/1
णरुत्तम – नरोत्तम, उत्तम पुरुष 11/8/2
णलिण – नलिन, कमल 1/18/14
णलिणपत्त – कमलपत्र 1/19/10
णलिणायर – कमल की खान, कमल-समूह 1/19/10
णवकोडि – नवकोटि विशुद्ध आहार 12/13/11

णवकंधरु – नवीन काँधौर वाला 8/12/7
णवपियंगु – नवोदित-सूर्य 2/14/10
णवरस – नौ रस 10/10/10
णवियाणण – नतमुख, नतमस्तक 7/14/21
णहयरराय – नभचर-राज, गरुडराज, पवनराज 3/15/8
णहर – णिवाय – नखाघात 3/10/13
णाइँ – मानों (उत्प्रेक्षा) 1/3/13
णाइणि – नागिनी 6/12/8
णाएण – न्याय 11/5/6
णाणावण – नाना प्रकार की दुकानें 11/4/12
णाम – नाम-कर्म (पारिभाषिक) 12/13/10
णायकुमार – नागकुमार देव 9/6/2
णाय – णिहेलण-न्याय-नीति वाले 3/3/8
णायण्णइँ – नहीं सुनना 1/8/2
णायराउ – नाग वंशी राजा, नागराज धरणेन्द्र 1/4/4, 11/2/9
णायरिणिहउ – सिंह के द्वारा निहत 4/18/13
णायालय – नागालय 1/19/12
णारइय – नारकी 11/15/4
णारायण – नारायण (शलाकापुरुष) 1/3/17
णालिएर – नालिकेर, नारियल 7/2/9
णाव – नाव 3/18/3
णावइ – मानों (उत्प्रेक्षा.) 6/12/5
णावागय – नाव पर चढ़कर आना 3/18/3
णासंत – नाश करता है 3/20/1
णासग्ग – नासाग्र (दृष्टि) 7/3/4
णासा – नाक, घ्राण 1/7/6
णाहेय-णिकेय – नाभेय (ऋषभदेव)-मन्दिर (ढिल्ली-पत्तन में साहू नट्टल द्वारा निर्मित) 1/9/1
णिउंचिय – संकुचित कर, सिकोड़कर 4/3/3
णिएऊण – देखकर 3/19/9
णिंदा – निन्दा 11/23/10
णिक्कंप – निष्कम्प 3/2/9
णिक्कंटु – निष्कंटक 6/19/8
णिक्कालिउ – निकाल दिया 11/3/6, 11/12/5, 11/12/8
णिक्कालिओ – निकाल दिया 11/13/6
णिक्किट्ट – निकृष्ट 11/22/5
णिक्खवण – निष्क्रमण 6/13/4
णिकेउ – निकेत-घर, भवन 11/24/8
णिग्गउ – निकला 10/8/12
णिग्घंटु – निघण्टु (आयुर्वेदिक-चिकित्सा-सम्बन्धी ग्रन्थ) 2/17/19
णिग्घिणु – निर्घृण्य 10/14/8
णिच्चल – निश्चल 1/7/12
णिच्चलंग – निश्चलअंग 9/19/5
णिच्चेयर – नित्येतर, नित्य इतर 10/11/3
णिज्ज – निन्द्य 7/6/23
णिज्जण – निर्जन 5/12/14
णिज्जिय – निर्जित 7/3/5
णिज्झाय – ध्यान कर 7/11/9
णिहोल्लिवि – निहोरा करके, समझाकर 6/15/14
णिट्ठुर – निष्ठुर 2/8/10
णित्तुल – निस्तुल, निष्प्रभ 3/5/14
णित्तुलउ – अनुपम 6/15/7
णिदेउ – नृदेव, पुरुषोत्तम 10/1/6
णिंद्दंगउ – निन्द्य-शरीर वाला 12/10/11
णिद्दंदु – निर्द्वन्द्व 4/4/14
णिद्ददलिय – निर्दलित 4/8/5, 6/10/7
णिद्ददक्खिण – निर्लक्षण, मूर्ख 7/11/6
णिद्दारहिउ – निद्रा-रहित 7/3/3
णिद्दालस – निद्रा-आलस 5/10/4
णिद्दोस – निर्दोष 7/3/5
णिद्धण – निर्धन 11/15/4
णिप्पह – निष्प्रभ 7/3/2
णिपीडिय – अत्यन्त पीडित 5/1/5
णिब्भच्छिय – भर्त्सना करने वाला, नष्ट करने वाला, मिटाने वाला 12/17/11
णिब्भरु – निर्भर 7/5/10
णिब्भूसण – भूषण-रहित 10/3/11
णिभिच्च – निर्भीक-भृत्य 11/11/10
णिमण्णु – निमग्न 11/15/8
णिमिस – निमिष, देखते-देखते 4/12/13
णिम्मच्छरु – निर्मत्सर 7/3/5
णिम्महिय – निर्मथित 11/3/10

णिय – निज 10/17/4, 11/10/8
णियंत – देखता हुआ 11/16/19
णियंति – देखना-जानना 9/11/14
णियंब – नितम्ब 1/2/13
णियम – नियम 10/17/12
णियमिज्ज – नियमित 10/17/2
णियरु – निकर, समूह 1/3/15
णियाणु – निदान 11/24/10
णिरंगु – निःअंग (कामदेव) 6/10/13
णिरत्थ – निरर्थक 1/8/1
णिरवेक्ख – निरपेक्ष 7/3/3
णिरसण – निरसन 1/4/3
णिरसिय – निरासक्त, विरक्त 7/3/2
णिरहंकार – अहंकार-रहित 7/3/4
णिरहु – निरघ, निर्दोष, निष्पाप 7/3/1
णिरामउ – निरामय 7/3/2
णिराय – निराग, वीतराग 5/4/3
णिरारिउ – लगातार 7/16/7
णिराहरणु – आभरण-रहित 7/3/5
णिरुंभमि – रोक दूँ, स्तम्भित कर दूँ 3/15/8, 9/6/10
णिरुदल – निर्दल, सेना-रहित 1/4/4
णिरुवम – निरूपम 7/3/1
णिरोस – रोष रहित 7/3/5
णिल्ल – नीला 1/2/7
णिल्लग्ग – लगे-पगे, घनिष्ठ 2/18/6
णिल्लूरिय – उन्मूलन करने वाला 4/16/14, 5/14/7
णिवणंदण – नृपनन्दन, राजकुमार 1/1/4
णिराय – रागरहित, 5/4/3
णिवाय – निपात 8/4/11
णिवारिय – निवारित, दूर करना 10/19/4
णिवासु – नृप-आशा, राजाओं की आशा 11/5/8
णिविट्ठ – निपटकर, बैठकर 2/2/9
णिवीडिय – निपीड़ित 3/9/7
णिव्वंगि – निर्दोष 1/13/19
णिव्वसाय – व्यवसाय-रहित 7/4/14
णिव्वाण – निर्वाण 2/3/7
णिव्विसाउ – निर्विषाद, विषाद-रहित 7/3/2
णिसुढिगत्त – शिथिल-शरीर 11/9/12
णिसह – निषध-(पौराणिक पर्वत) 9/4/1
णिसिय – निशित, (तीक्ष्ण-मुख) 4/14/2
णिसियर – निशाचर, चोर 7/3/4
णिसियरी – राक्षसिनियाँ 3/18/10
णिसुणिवि – सुनकर 1/8/7
णिहालिय – निहारना, देखकर 11/5/6
णीडु – नीड़, आवास, घर 6/12/6
णीडंतर – नीड़ (आवास) के मध्य में 3/18/9
णीरय – नीरद, मेघ 1/4/3
णीरोय – निरोग 10/19/13
णीरंति – प्रेरणा-क्रीड़ा करते हुए 1/19/9
णीलइरि – नीलगिरि-पर्वत 9/14/5
णीलुप्पल – नीलोत्पल 5/4/4
णीसारए – निस्सार, असार 10/10/12
णीसारिउ – निकाल दिया 11/11/12
णीसेस – निःशेष, समस्त 7/14/23
णेऊर – नूपुर 3/12/14
णेत्त – रेशमी वस्त्र 1/3/11
णेमि – नेमि 6/3/8
णेरिय – नैऋत्य-दिशा 2/3/11
णेवाल – नेपाल-देश 4/5/8
णेह-णिहियंत रंगु–स्नेह के रंग में रंगा हुआ 6/16/1
णेहावरिउ – स्नेहाभरित 1/7/12
णेहीर – कुंकुम, केशर, 1/15/10, 3/9/4, 6/2/7
ण्हवण – स्नपन, स्नान, 2/3/9
ण्हावई – स्नान कराया 1/18/11
तओ – तब 3/19/8
तइयइ – तुल्य 5/4/14
तंवचूल – ताम्रचूड, मुर्गा 2/15/2
तंक्चूलरउ – मुर्गे की आवाज 3/19/14
तंबोलु – पान 1/8/1
तक्करु – तस्कर (चोर) 7/18/5
तच्च – तत्व 7/1/1
तज्जिय – छोड़कर 4/21/2
तडक्क – तड़कना 4/5/18
तडत्ति – तड़ से, देखते ही देखते (टूटना) 12/16/12

तडयड (ध्वन्यात्मक) – तडतड़ाना 7/12/13
तडिदंड – विद्युत् दण्ड 5/15/9
तडिलया – विद्युल्लता 7/17/1
तड्डंति – तड़कते हुए 4/1/14
तणिय – 6/7/9
तणु – तनु (वातवलय–पारिभाषिक) 9/1/10
तणुरुह – पुत्र 12/7/10
तणुविसग्गु – कायोत्सर्ग 11/16/13
तणूअ – पुत्री 6/5/1
तणूउ – पुत्र 2/2/11
तत्थवि – वहाँ भी 2/12/1
तवणायुध – तपनास्त्र 5/10/5
तम – अन्धकार 3/20/1
तमप्पहु – तमप्रभा-नरक 9/2/7
तमाल – तमाल (अशोक) वृक्ष 7/2/6
तमोह – अन्धकार-समूह 10/1/10
तमोहरु – तम का हरण करने वाला (सूर्य) 9/14/1
तरच्छु – तार्क्ष्य, व्याघ्र 2/3/11
तरण-पोय – पार करने के लिये पोत-वाहन 10/9/8
तरल – चंचल 4/5/10
तरुणि – युवती 12/1/13
तरुणु – तरुण 8/6/10
तवसिरि – तपश्री 3/4/8
तसंती – त्रस्त हो रहे थे 4/1/10
ताउ – ताप 4/6/17
ताडंतउ – मार दिया, चूर कर दिया 11/13/10
ताडेइ – ताड़ना 12/8/8
ताणवि – तानकर 5/5/7
ताम – वहाँ 3/2/9
तारमि – तारना 3/3/11
तारा – तारा–नक्षत्र 7/9/10
ताराहिवइ – ताराधिपति (चन्द्रमा) 3/2/13
तारिसु – तादृश, वैसा 3/7/1
तालूर – तालूर नामका वृक्ष 7/2/6
तावस – तापस 6/7/5
तासंतउ – त्रास देना 3/20/10
तिउणु – तिगुनी 7/9/14
तिंदुअ – तिन्दुक-वृक्ष 7/2/11
तिगुत्ति – त्रिगुप्ति 12/7/5
तिजगु – त्रिजग 4/2/11
तिजयणाहि – त्रिजगत्-नाभि 9/12/6
तिज्जहु – तीजा, तीसरा 1/5/13
तिणयण – त्रिनेत्र-धारी (शिव) 6/8/9
तिणु – तृण 11/16/9
तिण्णि – तीन 10/7/2
तिण्ह – तृष्णा 7/7/11
तित्ति – तृप्ति 11/20/6
तित्थंकर – तीर्थंकर 1/6/3
तित्थयरु – तीर्थंकर 9/1/11
तिपल्य – तीन-पल्य 4/10/2
तिमिरक्करु – अन्धकार फैलाने वाला 3/18/6
तिमिराउहु – तिमिरायुध 5/10/4
तिययाहिण – तीन प्रदक्षिणा 2/11/1
तियरण – त्रिकरण (मन, वचन एवं काय) 8/3/11, 10/7/3
तियस – त्रिदश, देव 5/10/3
तियसतिय – त्रिदंशांगना, देवांगना 7/7/16
तियसतियंबर – सुरांगनाओं के वस्त्र 7/7/16
तियसेसरा – त्रिदशेश्वर-इन्द्र 9/11/14
तियाला – तेतालीस 9/1/9
तिरयण – सम्यग्दर्शनादि त्रिरत्न 1/6/5, 8/3/11, 10/7/3
तिरयण – त्रिकरण-मन वचन काय एवं कृत् कारित, अनुमोदना 8/3/11, 10/7/3, 11/5/3
तिरिय – तिर्यंच 8/1/5
तिलय – तिलक-वृक्ष 7/2/11
तिलोय – त्रिलोक 8/3/17
तिव्व – तीव्र 3/20/17
तिसूल – त्रिशूल (अस्त्र) 5/6/15, 5/10/12
तिहुअण – त्रिभुवन 7/7/6
तिहुवणवइ – त्रिभुवनपति (ढिल्ली का राजा) 1/3/15
तिहुवणवइ – त्रिभुवनपति (शंकर) 4/17/9
तीमन – तीमन-(तीक्ष्ण शस्त्र) 4/15/11
तुंग – ऊँचा 4/4/16, 6/3/7

तुट्ट – टूटना 1/10/1, 3/8/12
तुट्ठ – सन्तुष्ट 11/18/1
तुडि – त्रुटि 8/6/16
तुरं – तुरन्त 4/9/11
तुरंग – घोड़ा 2/3/11
तुरिय – चतुर्थ 9/4/10
तुल्लउ – तुल्य, समान 10/19/10
तुह – तुम्हारा 8/4/13
तुहार – (भोजपुरी) तुम्हारा 8/4/13
तूर – वाद्य-विशेष 2/12/14
तेलोक्क – त्रैलोक्य 1/4/6
तेवीसमु – तेईसवें 8/9/16
तोडिय – तोड़कर 1/4/1, 12/10/12
तोणु – तूणीर 4/5/5, 7/10/12
तोलिओ – तौलना, झुलाया, झुलाना 5/3/10
थइ – स्थिति 3/12/8
थक्कउ – स्तम्भित 5/5/14
थट्ट – थट्ट, ठट्ट (बुन्देली), भीड़, 3/6/12
थण – स्तन 4/4/16
थणधरा – पुत्र 11/12/3
थणिय – स्तनितकुमार नामके देव 9/6/4
थणंधउ – स्तनन्धय, पुत्र 1/21/17, 11/12/3
थणयल – स्तनतल, चूचुक 2/14/12
थणहरग्गु – स्तनाग्र 1/5/2
थणोरुत्थलं – स्तन और उरस्थल 4/11/10
थणिल्ल – स्तन 1/2/7
थत्ति – थाती, धरोहर, न्यास 11/8/10
थत्ति – स्थिति 3/11/3
थरहरिउ – थर-थर काँपना 5/13/20, 8/8/11
थवेव्वउ – स्थापित किया जाएगा 1/20/10
थाइ – स्थित रहना 7/5/11
थावर – स्थावर जीव 10/10/5
थाहर – घर में बन्द 10/13/2
थिउ – स्थिर 2/4/3
थिणि – (Thin) क्षीण, पतला 3/13/12
थिय – स्थित 3/18/14
थी – स्त्री 10/16/7
थुव्व – स्तुति 4/2/5
थूल – स्थूल 3/13/12
थोडो – थोडा सा 10/5/3
थोर – स्थूल 4/4/16
थोर – थोड़ा 10/5/3
थोव्वड – विकट 1/2/7
दइगंबरिय-दिक्ख – दिगम्बरी (दीक्षा) 11/16/5
दंड – डण्डा 11/3/4
दंड – एक प्रकार की ध्यानावस्था, समुद्घात (पारिभाषिक) 12/17/5
दंतच्छय – दन्तच्छद 3/10/12
दंति – दिया, देना 4/5/9
दंति – हाथी 6/1/5
दंतोट्ठ – दन्त्योष्ठ, दाँतों से, ओठों को 5/15/3
दंद – द्वन्द्व 1/19/7
दंसण – दर्शन 4/1/10
दक्ख – द्राक्षा, दाख, (किशमिश) 7/2/13, 11/3/11
दक्खलेवि – दृष्टिलता 1/3/10
दच्छु – दक्ष, प्रवीण 4/5/11
दड्ढ – दग्ध 12/8/7
दत्त – दिया हुआ 10/17/8
दप्पण – दर्पण 1/18/6
दमइ – दमन 6/17/2
दर – ईषत् (थोड़ा) 11/11/3
दरफुडिय – कुछ-कुछ खुला हुआ, दरार वाला 1/2/11
दरमलंत – रौंदते हुए 4/3/4
दल – पत्र 7/10/17
दलण – दलना, नष्ट करने के लिये 2/10/8
दव-जलण – दावाग्नि 12/8/7
दव-दहण – दावाग्नि, वन की आग 5/12/7
दवट्टि – वाट (मार्ग) में वेग पूर्वक 2/2/7
दवत्ति – शीघ्र, तत्काल 2/3/8, 5/11/13
दव्व – द्रव्य, धन 11/16/6
दसणग्ग – दन्ताग्र 12/4/12
दह – द्रह, सरोवर 1/10/5
दहइ – दग्ध करना 3/14/10
दहणु – अग्नि 5/4/9

दही – दही 6/2/10
दाढ – डाढ़ 1/19/5
दाण – दान 1/11/12
दाणंबु – हस्ति-मदजल 1/19/3
दाणव – दानव 7/5/15
दामोयर – दामोदर (भगवान् श्रीकृष्ण) 11/13/8
दायारु – दातार 11/18/2
दारइँ – चीरना 4/14/8
दारिय – चीर कर 5/15/14
दारंत – चीरते हुए 3/12/5
दारहिं – विदीर्ण करते हैं 1/13/20
दारु – लकड़ी 6/9/3
दावइ – दिखलाना 2/16/8
दावइ – दबाना 4/14/4
दाविवि – दिखाकर, दिलाकर 11/11/12
दास – सेवक 10/6/7
दासत्तण – दासत्व 8/6/16
दासि – सेविका 10/6/7
दासेरु – खच्चर, गधा 4/1/11
दाहिण – दक्षिण-दिशा 11/3/2
दाहु – जलन 10/10/1
दिक्करडि – दिग्गज 5/9/4
दिक्ख – दीक्षा 10/8/6
दिट्ठिचार – दृष्टि-संचार 3/19/3
दिढ-पग्गह – सुदृढ़ प्रसाधन 4/12/22
दिढयर – दृढ़तर 3/9/7
दिणणाह – दिवसनाथ (सूर्य) 2/1/17
दिणदीव – सूर्य 9/10/8
दियवरु – द्विजवर 3/1/12
दिवायर – दिवाकर 10/7/8
दिसा – दिशा 10/6/10
दिसावाल – दिक्पाल 2/7/10
दिसाणारि – दिशा रूपी नारि 2/11/11
दिहि – धृति (देवी) 1/16/1
दीवंति – देना, चढ़ाना 11/4/3
दीव – द्वीप 10/19/10
दीवउ – दीपक 7/12/17
दीवंति – देते हैं 11/4/3
दीवकुमार – दीपकुमार नामके देव 9/6/5
दीवावलि – दीपावली, दीपमालिका 3/20/6
दीह – दीर्घ 4/2/9
दीहत्व – दीर्घत्व 1/13/19
दीहर – दीर्घ 1/2/9
दीहरयर – दीर्घतर 4/4/7
दीहिया – दीर्घिका-बावड़ी 6/4/9
दुइज्ज – दूसरा 3/7/12
दुंदुहि – दुन्दुभि-वाद्य 8/7/10
दुगुणिय-सत्ता – सात के दुगुने अर्थात् चौदह 7/10/14, 7/10/19
दुग्गह – दुष्ट-ग्रह 4/15/12
दुज्जण – दुर्जन 1/4/3
दुज्जस – दुर्यश 7/6/19
दुज्जोहण – दुर्योधन 4/17/8
दुण्णय – दुर्नय 1/4/3
दुण्णिरिक्ख – दुर्निरीक्ष्य 4/13/8
दुत्तर – दुस्तर 7/13/16
दुद्धर – दुर्धर 4/10/3
दुप्पुत्त – दुष्पुत्र, कपूत 7/17/8
दुमणि – द्युमणि, सूर्य 5/13/5
दुम्मुह – दुर्मुख 7/17/7
दुरय-जूह – दुर्दान्त हाथी-समूह 4/1/4
दुरसणु – द्विरसन (सर्प) 6/9/4
दुरिय – दुरात्मा 8/1/3
दुरीह – दुष्ट रूप 8/4/10
दुरेह – द्विरेफ (भ्रमर) 4/3/1
दुल्लह – दुर्लभ 5/8/3
दुवार – द्वार 12/6/10
दुव्वांकुर – दूर्वांकुर 6/2/10
दुह – दुख 3/4/12
दुहिय – पुत्री 3/5/9
दूअ – दूत 3/1/2
दूण – दुगुना 9/4/2
दूम – द्रुम 7/6/9
दूसमि – दोष देना 6/9/11

दूसह – दुस्सह 8/6/1
दूसासणु – दुःशासन 3/11/10
दूसिय – दूषित 4/12/24
देउल – देवालय 7/18/11, 8/2/11
देवघोस – देवताओं की उद्घोषणा 3/16/11
देवत्तण – देवपना 7/16/2
देवर – देवर, (द्वितीय वर) 11/10/15
देविंद – देवेन्द्र 7/3/14
देस – देश 8/12/13
देसभासा – देश्य भाषा, देशभाषा 8/12/3
दोण – द्रोण; (एक भौगोलिक इकाई) 7/1/17
दोदहचक्क – (2 + 10 x 4) अड़तालीस 9/19/9
दोमयलंछणि – दो-मृग लाच्छन (दो चन्द्रमा) 12/8/10
दोह – द्रोह 10/17/5
धगधगंतु – धगधग करना (ध्वन्यात्मक) 4/18/11
धडु – धड़ 4/19/9
धणवइ – धनपति (कुबेर) 8/6/14
धणु – धनुष 9/3/12
धण्ण – धन्य 1/4/8
धण्णवंत – धन्यवन्त, सौभाग्यशाली 1/4/8
धत्थ – धरा गया, घिर गया 5/3/5
धत्थ बुद्धि – ध्वस्त-बुद्धि 6/14/5
धम्मन – वृक्ष-विशेष 7/2/10
धम्मविद्धि – धर्मवृद्धि 11/17/6
धम्मिउ – धार्मिक, धर्मात्मा 11/19/4
धर – धरती 1/11/11
धरणिंद – धरणेन्द्र देव 6/10/8
धरणियल – पृथिवीतल 1/5/2
धरणिवीढे – पृथिवीपीठ 4/8/12
धरायल – पृथिवीतल 3/17/1
धरावाल – धरती का भिखमंगा, टुकड़खोर 3/6/4
धव-धव – गोंद-वृक्ष 7/2/10
धवल – उज्ज्वल 1/4/9
धाह – दहाड़, धाड़ 6/15/2
धिक्कारिउ – धिक्कारा 12/14/12
धिट्ठ – धृष्ट 3/6/4, 5/9/11, 6/14/5
धीय – पुत्री 12/16/7
धीरा – धैर्यवान् 4/8/7
धीवर – धीवर, ढीमर, मछुआरा 12/14/9
धुणइ – धुनना 5/13/16
धुत्ति – कुट्टिनी, धूर्त्तिनी 5/12/5
धुत्तु – धूर्त, चतुर, प्रवीण 3/12/2, 4/13/3, 12/6/8, 12/9/12
धुरंधर – पारंगत 8/12/7
धुव्विर – शुभ्रवर्णवाली, सफेद रंग वाली 4/10/10
धूमकेउ – धूमकेतु नामका ग्रह 5/5/11
धूमप्पह – धूमप्रभा नामका नरक 9/2/6
धूमाउलु – धूमाकुल, धुएँ से युक्त 9/2/6
धूमालउ – धुएँ का घर 7/12/10
धूमोज्झिउ – धूम-रहित, निर्धूम 1/19/12
धूलि-धूसर – धूल से रंगा हुआ, मटमैला 2/15/5
धूलीरउ – धूलिकण 7/9/13
धूव-हड – धूप-घट 8/8/15
धूसरिय – धूसरित 6/9/3
धोव – धोना 3/18/2
धोवणत्थु – धोने के लिए 3/18/2
पइ-पउ – पद 10/10/6, 11/8/6
पइज्ज – प्रतिज्ञा 3/8/8
पइट्ठावि – प्रतिष्ठित कराकर 1/6/3
पईबु – प्रदीप 4/4/13
पउमप्पह – पद्मप्रभु तीर्थंकर 1/1/6
पएस – प्रदेश 10/11/1
पओय – प्रबोध 10/10/10
पओहर – पयोधर, स्तन 11/9/3
पंक – मल 5/4/1
पंकप्पय – पंकप्रभा नरक 12/14/6
पंकय – पंकज 7/12/16
पंकरुह – कमल 6/9/2
पंगण – प्रांगण, आंगन 1/18/13, 11/4/8
पंचग्नि – पंचाग्नि (तप) 6/2/8
पंचु – पंचत्व, मृत्यु 6/10/3
पंचम – पाँचवाँ 6/8/1
पंचसर – पाँच-बाण धारी कामदेव 7/11/7, 11/5/4
पंचांग-मंत – पंचांग-मंत्र 11/5/5

पंचाणणु – सिंह 3/14/8
पंचाणुव्वय – अहिंसा आदि पंचाणुव्रत 10/6/9
पंचुंबर – बड़, पीपल आदि पाँच उदुम्बर फल 10/5/9
पंजर – पिंजड़ा 6/1/2
पंडुर – पीला, निष्प्रभ 3/20/6
पंडुसिला – पाण्डुक शिला 2/6/11
पंति – पंक्ति 2/6/6
पंसु – धूलि, रजकण 1/6/2
पक्क – पके 12/11/5
पक्कल – पक्के, सुदृढ़ 4/3/11, 4/8/7
पक्कल-करडि – दर्पयुक्त हाथी 7/1/5
पक्ख – पक्ष, पंख 4/15/14
पक्ख – प्लक्ष, पाखर-वृक्ष 7/2/13
पग्गह – (पगहा-बुन्देली) बड़ा, मोटा रस्सा 4/3/6
पग्गह – सुदृढ़ प्रसाधन 4/12/22
पच्च – उलीचना 3/15/2
पच्चारिओ – फटकारना 4/9/5, 7/8/6
पच्चालमि – उछाल सकता हूँ 3/15/2
पच्चुत्तर – प्रत्युत्तर 6/17/3
पच्चूस – प्रत्यूष 3/19/13
पच्चेलिउ – प्रत्युत, इसके बदले में 3/4/10
पच्छाइय – आच्छादित 7/17/2
पच्छा – पीछे 6/9/12
पज्जालिय – प्रज्ज्वलित 6/7/5
पज्झरइ – प्रवाहित होना, झरना 2/4/3
पट्ट – राज्य-पट्ट, राज्याभिषेक 11/16/2
पट्टण – पत्तन 1/2/16, 3/2/3, 7/1/18, 7/18/12, 9/13/7
पट्टिस – युद्धास्त्र 7/10/4
पडरडिय – प्रतिध्वनित 3/11/14
पडिकूल – प्रतिकूल 4/6/17
पडिखलंतु – स्खलित होते हुए 2/13/12
पडिखलणु – प्रतिस्खलित 4/3/14
पडिच्छह – प्रतीक्षा करना 3/10/15
पडिणारायण – समरपरायण-प्रतिनारायण (युद्धप्रेमी) 9/15/8
पडुयर – पटुतर, विवेकीजन, कुशल, 2/11/6
पडुपडह – वाद्य-विशेष 12/5/8
पड्डलु – पड्डा, एक पक्षी विशेष 2/14/12
पढम – प्रथम 1/6/3, 4/20/3
पढमेयर – प्रथमेतर अर्थात् द्वितीय 11/8/5
पण – पाँच 8/7/3
पणउ – प्रणम्य, विनम्र 1/6/12
पणएण – प्रेमपूर्वक 6/6/8
पणच्चइ – उत्तम कोटि का नृत्य 1/18/6
पणट्ठ – प्रनष्ट-अदृश्य 8/2/9
पणवीस – पच्चीस 12/18/14
पणाम – प्रणाम 6/7/7
पणासओ – प्रणाशक, नाश करने वाला 6/4/14
पणासिय – प्रणाशक 5/4/16
पण्णाय – पन्नग, सर्प 7/13/2
पण्हीए-लत्थारिओ – पन्हैयों (बुन्देली), जूतों से लताड़ दिया 4/9/4, 12/8/9
पत्त – आना, आए हुए, पहुँचे हुए 6/1/7, 10/7/7
पत्त – पात्र 10/7/7
पत्तलु – पतला 1/13/10
पत्तु – पहुँचना 7/13/5
पत्थाउ – प्रस्ताव 11/11/3
पत्थार – प्रस्तार (पारिभाषिक) 9/3/3
पद्धारि – पछाड़ना 4/9/4
पद्मनंदि – पद्मनन्दि-भट्टारक (प्रतिलिपिकार-प्रशस्ति)
पफुल्लिय – प्रफुल्लित 4/3/8
पब्भट्ठ – प्रभ्रष्ट 6/9/14
पमाउ – प्रमाद 7/17/4
पमाणु – प्रमाण 7/16/16
पयंग – सूर्य 12/5/12
पयड – प्रकट 7/1/13
पयत्तँ – प्रयत्न 11/17/14
पयर – (वर्ण-व्यत्यय) पराग 9/10/1
पयरु – प्रतर 12/17/15
पयवडण – पदाघात 5/1/5
पयहि – पैदल 3/13/7, 5/14/11
पयाव – प्रताप 3/20/7
पयासण – प्रकाशन 1/6/5

पर – दूसरे 7/14/15
परए – शत्रु (यवनराज) 3/8/2
परचक्क – परचक्र-शत्रु की सेना 1/2/15
परजइ – परजाया, (हरयाणिवी) परोत्पन्न पति 3/10/4
परणारी – दूसरे की स्त्री 1/6/9
परदोस – दूसरे का दोष 1/6/5
परपिहंत – दूसरों के द्वारा बन्द 9/16/16
परमाउस – उत्कृष्ट आयु 9/4/7
परम्मुह – परांगमुख 11/23/13
परसणु – पवन 2/16/9
परसमय – परमत, मिथ्यात्व 2/10/2
परहुव – परभृत, कोयल 11/6/1
पराय – पराग 7/10/7
परि – अत्यन्त 10/5/3
परिओस – परितोष 6/15/13
परिखिण्ण – दुखी 5/10/9
परिघोलिर – फरफराने वाला, स्फुरायमान 7/7/16
परिचत्त – परित्याग 6/7/6
परिचलिर – स्फुरायमान गति से चलते हुए 4/2/4
परिज्जिय – शत्रुजनों को जीतने वाला 6/8/2
परिट्ठिय – परिस्थित, स्थित 6/8/3
परिठविवि – स्थापित कर 5/6/4
परिणि – परिणय कर, वरण कर 6/6/9
परिणिट्ठा – परिनिष्ठा, श्रद्धान् 10/4/7
परिणिहसन – घिसना 12/7/11
परिपिहिय – ढाँक कर, आच्छादित कर 3/12/9
परिपेल्लिय – ढकेलना 7/13/12
परिबद्ध – बाँधा, बाँधना 5/10/11
परिभमिय – परिभ्रमण कर 2/13/23
परिभमिवि – घूमकर 8/7/26
परिभावेविणु – अनुभव कर 6/17/12
परिमल – सुगन्ध 7/10/8
परिमिय – परिमित 5/4/19
परिमुत्त – परिमुक्त 3/11/2
परिरंजण – रंजायमान 1/2/8
परिरंभ – सन्तोष 3/10/13, 6/15/13
परिवाडि – परिपाटी 10/14/3
परिवाडिउ – परिवेष्टित 5/15/7
परिवेस – परिवेश (मण्डल) 5/4/11
परिसेसिउ – परिसेवन 4/3/14
परिहच्छिय – परिहस्तित, जीत लेने वाले 1/2/2
परिहा – परिखा 1/3/2
परीसह – परीषह 11/16/6
परंतरंगु – दूसरे का अन्तरंग 3/1/7
पलंब – प्रलम्ब (लम्बी) 11/17/5
पलंबबाहु – आजानुबाहु 12/11/6
पलहत्थिय – पलटे हुए, उलटे किये गये 9/1/16
पलाउ – पलायन 5/1/3
पलास – पलाश-वृक्ष 7/2/10
पलोइवि – देखकर 2/16/9
पलोट्ट – पगचंपी 1/18/3
पल्लट्ट – पलटना 6/11/10, 12/4/3
पल्लव – पत्ते 11/20/7
पल्लविउ – पल्लवित 3/15/14
पल्लोवम – पल्योपम – कालवाची एक विशेष पारिभाषिक शब्द 9/10/5
पवट्टमि – प्रवर्तित, तैयार 9/1/3
पवणासण – पवनभक्षी (सर्प) 6/9/7
पवरच्छरु – श्रेष्ठ अप्सरा 3/9/1
पवाह – प्रवाह 11/9/10
पविइण्ण – वितीर्ण करना 1/4/2
पवियार – विचारपूर्ण दिव्यध्वनि 8/9/13
पवित्ति – प्रवृत्ति 11/23/4
पविधर – इन्द्र 2/15/9
पविमल – निर्मल 6/13/2
पवीण – प्रवीण 11/23/10
पसंगु – प्रसंग 6/10/13
पसाउ – प्रसाद 11/12/9
पसाय – प्रसाद 4/4/18
पसाहण – प्रसाधन 4/7/13
पसिद्ध – प्रसिद्ध 1/4/1
पसु – पशु 11/7/8
पसुवइ – पशुपति (ईशान-दिशा का स्वामी) 2/3/12
पसुवइ – पशुपति (शिवजी) 2/12/5

पसूअ – प्रसूत 11/8/4
पसूण-संदोह – प्रसून-पुंज 1/15/10
पह – पथ 3/19/3
पहंकरि – प्रभंकरी (नगरी) 12/9/1
पहंकरी – प्रभंकरी (रानी) 12/9/1, 12/11/7
पहंजण – प्रभंजन (राजा) 10/8/7
पहंजण – प्रभंजन (वायु) 7/5/18
पहंतर – पथान्तर 1/14/8
पहणिय – प्रहत 6/2/5
पहर – प्रहर 3/18/1
पहरण – प्रहरण, वज्र 4/13/6
पहाड्या – पहाड्या (गोत्र-वाला) अ0प्र0
पहाण – प्रधान 2/18/12
पहावई – राजा रविकीर्त्ति की पुत्री प्रभावती 6/5/1
पहावई – कान्तियुक्त 10/8/4
पहुत्त – प्रभुत्व 10/12/5
पाइक्क – पैदल 3/12/4
पाउ – पाप 6/13/19
पाउ – चौथाई (पावभर) 9/10/10
पाउस – वर्षा 3/8/9
पाड – पटकना 8/7/24
पाडलि – पाटलि-पुष्प 7/2/12
पाडिओ – पटक दिया 4/9/2
पाणय – प्राणत स्वर्ग 9/8/3
पाणलएवि – प्राण लेकर 4/8/12
पाणि – हाथ – 3/1/2
पाणि–संगहेवि – (उनके-) हाथों को अपने हाथों में लेकर 6/6/8
पाणि – पाणि(ग्रहण) 3/10/15
पाणु – प्राण 11/21/5
पामरजन – समृद्ध कृषकगण 11/3/4
पायडणर – प्राकृतनर, साधारण जन 11/8/8
पायव – पादप 7/16/16
पायालि – पाताल 6/10/8
पारंभ – प्रारम्भ 2/7/2, 4/18/7, 10/9/3
पारावय – पारावत, कबूतर 3/19/6
पारावार – आर-पार 1/3/15
पावंधयारु – पाप रूपी अन्धकार 1/20/6
पावणासु – पापों का नाश 11/2/10
पासंड – पाखण्ड 8/11/11
पासणाह – पार्श्वनाथ (तीर्थंकर) 3/13/14
पासु – पार्श्व-प्रभु 2/9/15
पासु – पाश, फन्दा 2/9/15
पाहुड – प्राभृत 3/1/11
पिंगल – पीला 7/15/8
पिंजर – पिंजड़ा 11/24/5
पिंड – पिण्ड, समूह 1/2/7
पिंडिदला – अशोक वृक्ष के पत्ते 1/16/8
पिय – कोयल 10/1/4
पिय – प्रिय 11/6/1
पियंगु – पतंग (सूर्य) 2/14/10
पियंगु – प्रियंगु नामका वृक्ष 7/2/10
पिययम – प्रियतम 3/7/9
पियर – पितर 11/20/6
पियाणुरत्त – प्रियानुरक्त 1/2/12
पिव – पीना 2/14/1
पिसाअ – पिशाच 3/15/11
पिसुण – दुष्ट 2/2/10
पिसुणवित्ति – दुष्टवृत्ति 5/12/2
पिहाणु – ढक्कन 2/5/6
पिहिय – पिहित, आच्छादित 6/2/9
पिहियासव – पिहिताश्रव मुनि 11/6/4
पीणिय – पोषण 6/7/6
पीलु – हाथी 2/15/1
पुक्खरद्ध – पुष्करार्द्ध द्वीप 12/7/12
पुग्गल – पुद्गल 10/10/11
पुच्छ – पूँछ 1/19/4
पुणरवि – पुनरपि, पुनः 5/15/14
पुंडिच्छु – गन्ना 1/11/7, 11/3/4
पुण्डरीक – कमल-पुष्प 4/3/8
पुण्णय – पुन्नाग 7/2/14
पुण्णालिव – पुंश्चली के समान 3/11/3
पुण्णाली – धौंकनी 5/12/7
पुरंदर – इन्द्र 4/20/3

पुरंधी – पुरन्ध्री 6/17/12
पुर – पुर, नगर 7/1/18, 7/8/12, 9/13/7
पुरस्सर – पूर्वक 1/18/2
पुरिसरयण – पुरुष-रत्न 3/3/10
पुरोहिउ – पुरोहित 11/7/12
पुलिण – किनारा, तट 1/2/13
पुव्वजम्म – पूर्वजन्म 8/2/2
पुहवी – पृथिवी 4/2/13
पूजारुह – पूजा के योग्य 8/9/8
पूरंत – पूरना, भरना 7/17/3
पूस – पूस का महिना 6/12/1
पेक्खागिह – प्रेक्षागृह (Auditorium) 1/3/11
पेम्म – प्रेम 3/20/10
पेमाइ – प्रेमपूर्वक 4/9/9
पोढ – प्रौढ़ 3/16/9
पोढि – प्रौढ़ा 1/14/12
पोण – पवन 3/13/5
पोम – लक्ष्मी 1/1/5
पोमणाह – पद्मनाथ (राजा) 4/20/2
पोमावई – पद्मावतीदेवी 8/2/17, 8/5/4
पोमिणी – पद्मिनी 3/19/10
पोय – पोत, जहाज 10/9/8
पोयणाहीस – पोदनपुर नरेश 12/1/10
पोरिस – पौरुष 4/10/12
पोसिय – पोषित 4/10/9
फट्टिस – पट्टिस नामका अस्त्र 7/10/5
फणि – धरणेन्द्र 2/4/5
फणिवइ – फणिपति, धरणेन्द्र 8/1/20
फणिस – वृक्ष-विशेष, फल-विशेष 7/2/11
फरुस – परुष, कर्कश 7/16/8
फलिह – स्फटिक 9/8/7
फलु – फल 5/11/6
फागुण – फागुन-मास 8/6/6
फाड – फाड़ना 12/8/8
फारु – फाड़कर 6/9/10
फाल – चौकड़ियाँ भर कर दौड़ना 7/2/2
फासुअ – प्रासुक 11/21/1
फुडंति – भरना 1/3/5
फुरंतो – स्फुरायमान 7/3/9
फुरहुर – फुरफुराना (ध्वन्यात्मक) 7/14/16
फुरिस – युद्धास्त्र 7/10/4
फुलिंग – स्फुलिंग 5/12/7
फुल्लवाण – पुष्पवाण 6/4/16
फुसिय – स्पर्श 12/5/2
फेड़िऊण – हटाकर 2/9/14
फेणावलि – फेनावली, फैन-समूह 7/18/5
फंसिउ – स्पर्श 3/11/14
बओहर – वचोहर, सन्देश-वाहक 3/3/1
बंधवजणं – बन्धु-बान्धव जन 1/5/8
बंभ – ब्रह्म स्वर्ग 9/8/1
बंभणकुल – ब्राह्मणकुल 12/14/10
बंभणो – ब्राह्मण 12/1/11
बंभोत्तर – ब्रह्मोत्तर स्वर्ग 9/8/1
बज्जवाहु – बज्रवाहु राजा 12/11/6
बडवानल – बाडवानल 7/9/13
बद्ध – बाँधना 1/13/13, 11/11/11
बप्प – बाप, पिता 1/10/2
बबूल – बबूल-वृक्ष 7/2/8
बम्हबल – ब्रह्मबल नामका देव 3/1/11
बल – सेना 4/6/15
बल – शक्ति 5/2/10
बली – झुर्री 6/4/2
बहिरंतर – बाह्याभ्यन्तर 6/10/13
बहु – वधु 11/10/1
बहुणा – बहुत प्रकार से 5/4/16
बहुत्तु – बहुत प्रकार के 1/10/6, 1/11/10, 7/8/1, 8/2/5, 11/17/8
बाण – बाण वृक्ष विशेष 7/2/15
बावल्ल – बावले, उन्मत्त, पागल, 5/6/5
बार-बार – बार-बार 3/11/5
वाणारसी – बनारस 1/14/12, 6/14/7
बाल – केश 5/2/10
बाल – बालपन 12/14/10
बावण – बामन-देव 2/7/5

बाहुरक्खु – बाजूबन्द 6/12/9
बिइण्ण – बिखरे हुए 1/18/9
बिंब – बिम्ब 1/9/4
बिंबा – बिम्बा-फल 1/13/16
बिरंचि – ब्रह्मा 5/4/14
बुज्झिज्जहिं – जानना चाहिए 11/17/13
बुल्ल – बुलाना 2/14/9
बुहसिरिहर – 1/21, 2/18, 3/20, 4/21, 5/15, 6/19, 7/18, 8/12, 9/21, 10/19, 11/25, 12/18 की पुष्पिकाएँ
बुहु – बुधग्रह-मण्डल 9/7/5
बेरा – इस नामका देव-विमान 9/8/6
बेरोयण – इस नामका देव-विमान 9/8/6
बोहंतु – प्रबोधित करता हुआ 11/16/9
बोहि – बोधि-लाभ 12/18/2
भंगि – भंगिमा चढ़ाकर, तानकर 1/7/6
भंगुर – क्षणिक, चपल 6/14/19
भंजण – भंजन करने वाला 4/16/10
भंति – भ्रान्ति, 10/10/5
भंभाभेरि – वाद्य-विशेष 2/17/15
भंसु – भ्रंश 10/5/9
भज्ज – भार्या 11/9/11
भडा – भट 3/6/11
भडोह – भट-समूह 4/8/3
भण – कहना 4/4/5
भणेप्पिणु – कहकर 11/24/12
भत्तु – भक्त 6/9/2
भमर – भ्रमर 10/9/6
भमिर – घूमना 10/9/6
भयण – भगण (ज्योतिष सम्बन्धी) 6/5/11
भर – भरना 3/19/1
भरेण – भारी हथौड़े से 5/3/10
भल्ली – छुरी 4/9/6
भवसमुद्र – संसार-रूपी समुद्र 2/2/10
भवियास – भव्यों की आशा 10/9/8
भव – भव, संसार 7/12/5
भवोवहि – भवोदधि, संसार रूपी समुद्र, 10/9/8
भसइ – ललकारने वाला 5/13/19
भाइणेज्ज – भागिनेय, भानजा 4/2/11
भाउ – भाव 1/13/3
भाणु – तेजस्वी-सूर्य 11/15/2
भाणुकित्ति – रविकीर्त्ति (राजा पार्श्व के मामा) 3/2/7, 5/3/3, 6/3/5
भामंडल – आभा-मण्डल 10/2/7
भामिय – घुमाना 4/8/10
भायर – भाई 3/7/9
भारहवरिसु – भारतवर्ष 11/3/2
भाल – भाल, मस्तिष्क 11/16/2
भावण – भवनवासी (देव) 8/12/12
भासण – भाषण, उपदेश 10/9/10
भासिएण – कहना 5/4/16
भासुर – भास्वर (चमकीला) 3/8/4
भिउडि – भृकुटि 4/11/1
भिंगारु – जल-कलश 11/1/9
भिंद – भेदना 4/11/10
भिच्च – भृत्य 11/11/10
भिल्ल – भील 12/10/10
भीमाडइ – भीमाटवी, घना-जंगल 12/10/8
भीमावइ – भीमाटवी, 7/1/18
भीम – भयंकर 4/7/3
भीमसेण – भीमसेन पाण्डव 4/17/8
भीमाणणा – भयानक मुख वाला 4/11/4
भीरु – भीरु, कायर 4/14/12
भीसण – भीषण 4/11/1
भुअ-सिहरोवरि – भुज-शिखर के ऊपर 7/10/13
भुजंग – सर्प 3/14/13
भुंजि – खाना 10/6/1
भुव – भुजा 1/13/13
भुवण – संसार 7/6/9
भुसुंडि – युद्धास्त्र 7/10/4
भू-पएस – भू-प्रदेश 10/11/1
भूआरण्ण – भूतारण्य 9/18/10
भूउ – भूत-पिशाच 3/6/6
भूभंग – भ्रूभंग 4/19/13

भूदेव – भूदेव नामका ब्राह्मण 12/15/2
भूमिदेउ – भूमिदेव नामका ब्राह्मण 1/8/2
भूसियंग – भूषित अंग 1/4/5
भेरी – भेरी-वाद्य 3/9/10
भेसिय – कँपाना, डराना 3/12/9
भोय – भोग 10/6/11
भोयणेसरो – भुवनों के ईश्वर 1/14/8
भोयभूमि – भोगभूमि (पारिभाषिक शब्द) 11/3/13
मइ – मेरा 3/13/13
मइपसरु – मति-प्रसार, ज्ञानविस्तार 8/1/15
मइल – मैल 4/7/5
मउ – मद 4/2/2
मउ – मृग 7/4/9
मउलिवि – मुकुलित कर, जोड़कर 2/16/14
मंगलं – कल्याण 2/7/4, 2/16/14
मंजरं – मार्जार, वन-विलाव 7/2/3
मंजीर – नूपुर 1/19/6
मंडलियायारु – मण्डलाकार (गोलाकार) 7/9/12
मंडव – मण्डप 1/3/1
मंत – मन्त्र 2/7/10
मंतणहर – मन्त्रणागृह 6/4/18
मंति – मन्त्री 3/1/2
मंतिवग्गं – मन्त्रि-वर्ग 12/13/1
मंदर – भवन 3/19/3
मंदल – मेरुदण्ड 4/10/7
मंदिरु – सुमेरु-पर्वत 7/17/2
मंदु – मन्द 12/3/12
मं भीसेविणु – डरे बिना ही, निडर रहकर 6/1/14
मंस – माँस 5/1/2
मक्खि – मक्खी 12/4/4
मक्खियाउल – मक्खी-समूह 12/4/4
मग्गंत – माँगते हुए 3/7/11
मच्चंत – उछलते-कूदते हुए 7/2/1
मच्चु – मृत्यु 12/1/4
मच्छ – बड़ी मछली 7/3/11
मच्छर – मत्सर-भाव 3/9/1
मज्ज – डूबना 3/4/12
मज्जण – स्नान 4/1/9
मज्जाय – मर्यादा 4/6/8
मज्जु – मद्य 10/5/9
मज्झत्थ – मध्यस्थ (भाव) 7/7/15
मज्झु – मेरे 6/6/9
मज्झु – सरीरउ-मेरा पुत्र 11/14/19
मडंब – मडम्ब (भौगोलिक इकाई) 7/1/17
मढ – मठ 7/18/11
मणपज्जय – मनः पर्यज्ञान 12/17/6
मणमोहण – मन को मोहने वाली 4/2/6
मणसिय – मनसिज (कामदेव) 6/12/6
मणुअत्तु – मनुष्यत्व, मनुष्य-पर्याय 11/15/11
मणुओवमं – मनुष्योपम 11/3/13
मणोहर – मनोरथ 4/2/13
मणझेंदु – कामदेव 1/13/4
मण्णु – ईर्ष्या, क्रोध 6/11/5
मत्थरिल्ल – माथा, गर्दन 1/7/6
मद्दल – तबला 2/11/4
मम्मण – मन्मथ (कामदेव) 7/11/10
मय – मृग 3/7/11
मय – मद 12/22/10
मयंग – हाथी 11/5/5
मयंगलोह – हाथी-समूह 4/5/1
मयच्छी – मृगाक्षी 1/19/2
मयणकंड – मदन-बाण 11/3/4
मयणसर – मदन के बाण 1/12/4
मयणाहि – मृगनाभि (कस्तूरी) 7/10/15
मयर – मगर 4/1/6
मयरद्धय – मकरध्वज 3/4/7
मयरहरणाह – समुद्र का स्वामी-वरुण 2/3/12
मयारि – मृगारि 4/6/2
मयासणं – मृगासन (सिंहासन) 1/14/3
मयाहिव – मृगाधिप 4/11/2
मरहट्ठ – महाराष्ट्र (देश) 2/18/10
मराल – हंस 2/4/10
मरु – वायु 4/12/23
मरुद्धअ – पवन से फरफराती हुई ध्वज 7/3/10

मरुभूइ – मरुभूति, नामक व्यक्ति (पार्श्व का पूर्ववर्त्ती जीव) 11/7/4
मरुवह – आकाश 2/8/5
मरुहय – वायु में लहराना 8/8/16
मल – णिसुंभ – निर्मल 6/2/9
मलंतु – मसलता हुआ, रौंदता हुआ 5/15/4
मलयणाह – मलयनाथ नामका प्रतिपक्षी योद्धा 4/17/4
मल्ल – योद्धा 2/4/8
मल्हइ – बैठाना 2/4/11
मल्हण-सहाउ – मर्दन-स्वभाव 1/15/6
मसाण – श्मशान 10/13/13
मसि – स्याही 3/13/14
महंती – महान, बड़े 4/4/5
महणायराएण – महान् आदर से 7/6/21
महण्णवि – महार्णव 11/15/8
महत्थु – महार्ध 7/7/15
महना – मथना 6/10/5
महमइयवट्टि – महान् मार्ग 2/2/7
महमयंत – महकते हुए, सुगन्धित 9/16/4
महमहीणु – महामहिम, सम्राट 10/1/3
महव्वय – महाव्रत 3/2/8
महाजोयण – महायोजन 9/1/22
महाणइणाह – महा नदियों के नाथ, समुद्र 3/3/11
महादह – महाद्रह, महान गहरे सरोवर 9/16/2
महारइ – महारति 7/11/8
महारउ – महार्घ्य, महान् तपस्वी 6/9/6
महारंध – महारन्ध्र, बड़े-बड़े गड्ढे 3/19/5
महारि-णिसुंभण – महाशत्रुओं का नाश करने वाले 9/6/10
महारा – (वर्ण-व्यत्यय) हमारा 5/8/5
महारी – (वर्ण-व्यत्यय) हमारी 3/5/10
महासमण – महाश्रमण (पार्श्व) 8/10/18
महिदरमलंत – पृथिवी को रौंदते हुए 2/13/2
महिय – मही, मट्ठा 11/3/10
महिवइ – महिपति (राजा) 2/18/14
महिवीढि – महीपीठ, पृथिवीतल 7/15/17
महिस – भैंसा 11/4/3
महिहर – पर्वत 2/10/8
महीरुह – वृक्ष 3/17/1
महीहर – पर्वत 3/12/12
महु – मेरा 3/7/9
महुज्ज मत्तो – महत्वाकांक्षाओं की पूर्त्ति के कारण मदोन्मत्त 3/6/5
महुर – मधुर 3/1/9
महेहु – महान् (गज) 4/18/13
मा – नहीं 5/1/3
माइ – समाना 7/18/8, 8/1/7
माउलिंग – मातुलिंग, बिजौरा (नीबू) 7/2/8
मागह – मागध, (देश) 2/18/10
माण-मडफ्फर – अभिमान रूपी पर्वत 3/15/11, 4/10/12
माणथंभ – मानस्तम्भ 9/14/9
माणिक्क – माणिक्य 2/8/11
माणिह – वापिस मत लाओ 11/12/10
मामा – मामा 4/21/23
मायंग – चाण्डाल 5/9/11
माया – माया 5/12/11
माया – माता 10/17/8
मारु – कामदेव 1/6/10
मारुअ – वायु 4/3/7
मारुव – वायव्य-दिशा का स्वामी 2/3/12
मारुवीर – कामवीर, कामदेव 2/16/8
मालव – मालव (देश) 2/18/9
माला – माला, समूह 2/13/16
मालूर – देवदारु 7/2/6
माहिंद – माहेन्द्र स्वर्ग देव 9/7/14
मिच्छतरु – मिथ्या रूपी वृक्ष 7/1/4
मिय – मित, संक्षिप्त 11/6/1
मियंक – चन्द्रमा 6/1/10
मिल्लेविणु – छोड़कर 3/2/12
मिहुण – मिथुन, जोडा, युगल 3/20/10
मुअंति – दूर करना 4/1/12
मुएवि – छोड़कर 9/10/6
मुंडमाल – मूडों (सिरों) की माला 4/4/15

मुक्ख – मूर्ख 11/12/8
मुक्खमग्गु – मोक्षमार्ग 10/14/10
मुक्क – छोड़कर 11/9/1
मुग्गर – मुद्गर 4/9/1
मुच्च – मुक्त, रहित 9/6/1
मुच्छंगउ – मूर्च्छित, मूर्च्छा को प्राप्त 5/15/4
मुच्छिय – मूर्च्छित 4/11/7
मुट्ठि – मुष्ठि 10/6/2
मुणाल – मृणाल 2/12/9
मुणिंद – मुनीन्द्र 12/17/3
मुणि – अगस्तिया नामका वृक्ष 7/2/11
मुत्ता – मुक्ता, मोती 7/3/7
मुमुक्खु – मुमुक्षु 11/5/5
मुसंति – लूटते हैं, चोरी करते हैं 11/4/2
मुसल – मुसल नाम का अस्त्र 3/10/5, 7/10/4
मुसुमूरण – खोलने वाले 8/10/7
मुसुमूरिय – मसल डालना 5/9/14
मुह – मुख (एक भौगोलिक इकाई) 3/17/5, 7/1/17
मुहुल्लउ – उल्लसित मुख 10/19/14
मूल – मूलगुण 11/22/9
मेच्छ – म्लेच्छ 9/13/6
मेमडिय – आश्रयदाता नट्टल साहू की माता 1/5/7
मेरउ – मेरा 11/14/22
मेहमालि – मेघमाली असुरेन्द्र देव 6/10/4
मोग्गर – मुद्गर 7/10/4
मोडण – मरोड़ डालना 1/7/6
मोडि – मरोड़ना 4/8/2
मोर – मोर-पक्षी 2/14/12
मोहोदय – मोह का उदय 10/15/1
रइ – रति 1/6/9
रइ – राग 6/1/25
रइदूइ – रति रूपी दूती 2/8/6
रइवइ – रतिपति 10/8/6
रईसु – कामदेव 6/11/4
रउद्धि – रौद्र 10/8/2
रउरव – रौंरव नरक 12/5/6
रएवि – रचकर 4/15/5
रंक – दरिद्र, गरीब 3/14/9
रंगतु – रेंगना 2/14/3
रंगावली – रंगोली, चौक 6/2/4
रंध – रन्ध्र (छिद्र) 4/7/6
रक्खवालु – रक्षपाल, रक्षक 7/5/6
रक्खसु – राक्षस 7/15/4
रज्जु – राजू 9/1/4
रट्ठउड – राष्ट्रकूट, राठौड़ देश नरेश 2/8/12
रट्ठि – ऋद्धि, सिद्धि 5/15/14
रडंतउ – विलाप करना, रोना, चिल्लाना 12/5/6
रण – आरण्य (आद्य स्वर लोप) 1/3/1
रणतूर – युद्ध के नगाड़े 3/11/13
रण्णि – (आद्य स्वर लोप) अरण्य, जंगल 11/25/10
रत्तत्तणु – लालपना 1/13/2
रत्तलित्तु – रक्त में लिप्त 5/3/15
रत्ती – रात्रि 3/19/7
रमा – लक्ष्मी 3/20/7
रमावंत – लक्ष्मीवान् 1/19/11
रम्म – रम्य, सुन्दर 7/3/8
रम्मय – रम्यक् क्षेत्र 9/14/6
रय – रत, संलग्न 11/14/18
रयण – रत्ना, राजा विद्युद्वेग की रानी 12/6/3
रयण – रदन (दाँत) 3/3/2, 7/15/19
रयणतिलउ – रत्नतिलक नामका नगर 12/6/1
रयणपहि – रत्नप्रभा नरक 12/14/8
रयणभूमि – रत्नभूमि 10/5/5
रयणवीढ – रत्नपीठ 6/11/8
रयणसंदोह – रत्नसमूह 1/19/12
रयणालए – रत्नाकर, समुद्र 7/4/15
रयणियरिव – रज-समूह के समान 5/12/4
रयपूर – रजपूरित 4/8/4
रयविहीणु – चार घत्तिया कर्मरूपीरज से रहित 10/1/3
रवाल – मधुर-ध्वनि 2/12/14
रविकंतमणि – सूर्यकान्त-मणि 11/4/6
रविकित्ति – रविकीर्ति राजा (पार्श्व का मामा) 3/2/7, 5/3/3
रवियरइँ – सूर्य-किरणें 11/4/5

रविवेय – रविवेग राजकुमार (राजा किरणवेग का पुत्र) 12/7/5
रविसुउ – रविसुत (शनि) 9/7/7
रस – चूना 2/10/5
रसा – पृथिवी 5/7/9
रसंत – शब्द करना 1/13/14
रसंतो – चिल्लाकर दौड़ते हुए 3/6/11
रसड्ढ – रसपूर्ण, सरस 1/18/6
रसणा – कटिसूत्र, करधनी 2/15/4
रसणु – जीभ 7/11/4
रसिल्लउ – रसीला 8/9/13
रसिल्लु – रसिकजन 2/4/7
रसोइ – भोजन 4/12/28
रहंग – रथांग 1/2/7
रहसें – (वर्ण-व्यत्यय) हर्ष 8/1/7
रह – रथ 3/6/11
रहुवइ – रघुपति 4/7/11
रहोरुह – रथसमूह 4/8/9
राइ – राजि, पंक्ति 7/13/7
राउ – राजा 5/4/11
राउ – राजा (चन्द्रमा) 5/4/11
रामा – सुन्दर रमणी 10/18/4
रामालिंगण – लक्ष्मी का आलिंगन 3/12/6
रायरंग – रागरंग 1/13/15
रालिऊण – पटककर 5/3/15
रावण – रावण 4/17/11
राहउ – राघव, (साहू नट्टल का बड़ा भाई) 1/5/10
राहउ – राधा 7/10/4, 7/10/16
राहा – भैंसा 7/17/2
राहु – राहु–ग्रह 9/7/7
रिउ – रिपु 1/4/1, 12/10/11
रिउ – ऋजु 9/7/12
रिक्ख-पंति – नक्षत्र-पंक्ति, नक्षत्र-माला 2/6/6
रिच्छ-माला – नक्षत्र-माला, नक्षत्र-मण्डल 3/13/6
रिण – ऋण 4/12/8
रिसह – ऋषभदेव तीर्थंकर 1/1/2
रिसीस – ऋषीश्वर 9/1/7
रूअ – रूप 10/15/3
रुंधंतु – रोकता हुआ 5/15/5
रुंभ – रोकना 10/9/6
रुचक – रुचकगिरि 9/20/4
रुद्दं – रौद्रध्यान 12/1/5
रुणझुणंति – रुणझुण की आवाज (ध्वन्यात्मक) 4/1/15
रुण्णु – रुछन 11/25/10
रुप्पं – रौप्य, चाँदी 11/20/1
रुप्पहरि – रुक्मि-पर्वत 9/14/7
रुलुघुलिय – इधर-उधर भटकने लगे 8/2/12
रुहिरावट्टण – रुधिर का आवर्तन 1/2/16
रूहिरोह – रुधिर-समूह 4/6/12
रेक्कारिओ – "रे" कहकर ललकारना 4/9/12
रेण – रज, पराग 6/4/4
रेलिज्ज – रेला, बाढ़, दबाब 7/16/13
रेल्लिउ – फैलना, बाढ़, प्रवाह 5/14/14
रेहइ – सुशोभित 1/3/9
रोक्कइ – रोकना 4/14/5
रोधु – घिरा हुआ 5/3/6
रोमंचिय – रोमांचित 3/18/10
रोमु – रोम 7/16/8
रोमराइ – रोमराजि 1/13/8
रोमावल्लि – रोमावलि 1/2/8
रोवण – रोना, रुदन, 4/6/15
रोविज्जइ – रोता है 6/19/3
रोहंत – अवरुद्ध, लिप्त 3/17/4
रोहंतउ – रोकने वाले 6/13/19
रोहिणिवइ – राहु 4/17/11
लइउ – लिया 10/8/2
लइयउ – ले लिया 12/5/1
लउड – लगुड (लाठी) 4/10/7
लंकिय – अलंकृत (आद्य स्वर लोप) 1/5/7
लंगूल – पूँछ 7/14/5
लंपड – लम्पट 11/8/7
लंब – लम्बा 9/19/15
लक्कड – बड़ा लक्कड, लकड़ा 6/8/12
लक्खण – लक्षण 2/17/3

लग्गंति – लगते हैं 10/9/10
लग्गु – लगे 12/13/1
लग्गेवि – लगकर 8/3/18
लग्गोसा – लग़ी हुई ओस 10/13/7
लच्छि – लक्ष्मी 1/5/1
लज्ज – लज्जा 5/1/4
लज्जए-परिहरिय – लज्जा से खोया-खोया 6/18/2
लउडोह – लाठियों का समूह 4/10/7
लत्थारियो – लताड डाला 4/9/4
ललिय – ललित (सुन्दर) 2/2/13
ललक्क – ललकार, भयंकर 7/15/15
लवंग – लौंग 7/2/8
लवंतु – ललकारता हुआ 5/15/6
लवण-णिहि – लवणोदधि (समुद्र) 9/18/11
लहु – शीघ्र 6/9/3
लहुउग्गउ – तत्काल उठा, झपट्टा मारा 4/20/18
लहेवि – लेकर 11/11/3
लाड – लाड-देश 2/18/9
लाडी – लाडी नामकी महिला (दे0 प्रतिलिपिकार प्रशस्ति)
लाल – लार, राल (फेन) 4/20/15
लालस – अभिलाषा 4/7/11
लावंतउ – लाता हुआ, लगाता हुआ 11/16/7
लावण्ण – लावण्य 4/1/2
लिज्जउ – लीजिये 11/24/12
लिंतउ – लेकर, लेता हुआ 8/11/3
लिंपए – लेप करना 2/9/4
लिल्लउ – लील लिया 8/3/8
लिवि – लिपि 2/17/4
लिहावेवि – लिखवाकर 11/22/3
लीला – क्रीड़ा 3/19/1
लुणइ – काट डाला 5/13/16
लुलावेवि – लुंजपुंज करना 3/8/3
लुहेवि – खींचकर 5/5/8
लूआ – लूता, मकड़ी 2/17/13
लूरइ – चीर डालना, उखाड डालना 4/14/3
लेढ़ि – छूना, स्पर्श करना 12/12/7
लेमि – ले लूँ 4/4/10
लोइय – लौकिक 10/15/1
लोट्टालिय – लौटा डालना, जमीन पर गिरा देना 3/6/12, 3/9/5
लोडिउ – बिलोडा गया, मथा गया 7/7/13
लोण – नामक 4/1/9
लोयकला – लोककला 1/16/8
लोयंतिए – लौकान्तिक देव 6/11/3
लोयवाल – लोकपाल 5/3/11
लोलंतउ – क्रीड़ा करते हुए 3/20/3
लोवणउ – लोप, लुप्त करने वाला 4/6/15
लोहावणीयवण – लोहा पृथिवी, वन 8/10/12
लोहाविट्ठ – लोभाविष्ट 7/4/10
वइज्जंतु – वैजयन्त पर्वत 12/14/4
वइणतेउ – वैनतेय, गरुड़ 5/9/3
वइराउ – वैराग्य 11/7/6
वइसाणर – वैश्वानर, अग्नि 3/14/10
वइसेप्पियणु – बैठकर, 12/4/11
वउ – व्रत 3/4/10
वंचइ – वंचित करना 4/14/7
वंदि – बन्दीजन 10/11/12
वंदियणु – बन्दीजन 3/16/6
बंधु – भाई 10/13/6
वंस – वंश 3/9/8
वंसग्गणि – वंश के ज्येष्ठ पुरुष का अग्रणी 2/11/5
वक्कल – वल्कल-वस्त्र 6/8/4
वक्खार – वक्षार-पर्वत 9/20/2
वग्ग – वर्ग 3/8/3
वग्गंतु – घेर में लेता हुआ, 5/15/6
वग्गिय – वर्गित, उछलती हुई 4/8/8
वग्घ – व्याघ्र 10/14/6
बच्छत्थल – वक्षस्थल 4/9/9
वच्छल्ल – वात्सल्य 11/23/8
वज्ज-घाएण – बज्राघात से, वज्र-प्रहार से 7/8/3
वज्जरइ – बोली, कहा 3/10/8
वज्जरण – कहना 12/13/1
वज्जवीर – बज्रवीर नामका राजा (राजा चक्रायुध का पिता) 12/9/11

वट्टमाण – रहता था 12/15/3
वट्टुल – वर्त्तुल 1/13/4
वट्टि – वाट, मार्ग 1/1/10
वट्टिय – रौंदना 1/4/2
वणफ्फइ – वनस्पति 10/11/5
वडल – पटल 7/17/2
वडवासिहि – वाड़वानल 2/12/7
वण – व्रण (घाव) 3/18/2
वणकरि – वन्यगज, जंगली हाथी 1/11/12
वण – तंबेरमु – वन्यगज 4/21/29
वणदेवी – वनदेवी 8/8/9
वणरुह – वनवृक्ष 5/13/20
वणवाल – वनपाल 10/2/3
वणवासि – वनवासी 7/1/19
वणेसाणियारुणा – व्रण-घावों से रिसते हुए रक्त के समान 4/19/9
वणियरु – वनेचर 3/14/9
वण्ण – वर्ण 10/15/3
वण्णइ – वर्णन करना 1/13/1
वत्तु – मुख 11/23/11
वत्तुल – वर्त्तुल 1/13/4
वत्थ – वस्त्र 3/18/11
वत्थु – वस्तु, तत्त्व पदार्थ 1/3/9
वप्प – बाप-रे बाप (विस्मयबोधक) 5/4/7, 10/5/5
वमाल – पुष्पमाला 2/13/16
वम्मा – बामादेवी (पार्श्वनाथ की माता) 6/10/5
वम्मु देवि – वामादेवी 3/13/14
वयण – वृत्तान्त 4/1/18
वयणहर – सन्देशवाहक 3/3/1
वयणंतरि – मुख में 2/14/1
वयणुब्भ – वचनों में उद्भट 4/12/26
वयरयण – व्रत रूप रत्न 6/12/13
बरंगण – वरांगना, अ0प्र0
बरंगु – उत्तमांग 1/15/4
वरंतु – वरण 6/11/1
वरंतु – रुकता हुआ 5/15/5
वर – बर्र, हड्डा 7/14/2
वरदत्त – वरदत्त राजा 6/13/8
वराय – वराक, बेचारा 11/20/7
वराह – शूकर 11/5/3
वरि – बल्कि 7/11/5
वरिट्ठ – वरिष्ठ 6/9/6
वरिस – वर्ष 12/3/18
वरिसण – बरसना, वर्षा 4/6/12
वरुणु – वरुण देव 8/6/12
वरुणकंत – वरुणकान्ता (कमठ की पत्नी) 11/7/5
वलंति – दौड़े जा रहे थे 4/1/16
वलय – कड़े 1/2/9
वलि – बलात्, व्यर्थ 11/12/5
वलिय – घिरे हुए 4/1/3
वल्लहु – वल्लभ, प्रशस्त 10/18/12
वस – वश, वसीभूत, 1/3/17
वसंगउ – वशंगत, वशीभूत 7/7/14
वसणु – वस्त्र 7/3/2
वसह – वृषभ, बैल 4/1/14, 12/11/8
वसा-चर्बी 5/7/13
वसुंधरि – वसुन्धरी (मरुभूति की पत्नी) 11/7/6
वसुणंदा – वसुनन्दा नामकी तलवार 5/14/3
वह – पथ (मार्ग) 10/16/3
वहमि – धारण करना 5/9/15
वहल – बहुल, प्रभूत 1/12/3
वहिणि – बहिन 6/16/1
वहिरिय – वधिर 4/21/10
वाइय – जाल 6/1/4
वाइंद – वादीन्द्र (जिनेन्द्र की स्तुति करने वाले) 12/18/6
वाउ – वायु 8/6/15
वाएसरि – वागेश्वरी 1/10/10
वाणर – बन्दर 7/1/20
वाणारसि – बनारस नगरी 1/14/12, 6/14/7
बाणावलि – वाणों की पंक्तियाँ 3/11/9
वाणासणु – धनुष बाण 3/11/9
वाणिओ – वणिक्, बनिया 11/17/1
वाणियों – वैश्य 11/4/2

वामंग – बाँयी ओर 3/16/23
वायबेए – वायु-वेग 7/3/12
वायरणु – व्याकरण 7/17/16
वायव्व – वायव्व-विदिशा 6/7/3
वायस – कौआ 2/3/10
वायसारि – उलूक 3/18/9
वार – दिन 10/20/3
वार – द्वार 7/3/11
बार – बार (दफे) 7/5/7
वारण – रोकना 7/3/12
वारण – हाथी 11/4/6
वारस – बारस 10/17/10
वारह – बारह 8/6/3
वारिरासि – समुद्र 1/3/6, 9/19/3
वारिहर – वारिधर (मेघ) 6/5/6
वारेवि – हटाकर 10/13/12
वालि – वारि-जल 8/5/9
वालुप्पह – बालुकाप्रभा नरक 12/14/7
वावण्णइ – बावन (52) 9/20/6
वावल्ल-सल्लिया – बावलों से बींधे हुए 4/13/1
वासइ – बैठा था 3/17/1
वासर – सूर्य 3/16/4
वासरेस – सूर्य 4/20/6
वासारत्ति – वर्षा की रात्रि 5/13/24
वासिउ – बासा (भोजन) 8/1/11
वासु – निवास स्थल 1/21/11
वासुएव – वासुदेव (कृष्ण) 4/17/9
वासुपुज्ज – वासुपूज्य-तीर्थंकर 1/1/10
वाह – व्याघ्र 5/5/6
वाहइ – चलाना, हाँकना, वहन करना 6/17/2
वाहि – व्याधि, बीमारी 8/9/3, 10/11/2
विमाणु – विमान 8/4/17
विइण्णु – वितीर्ण, प्रदान करना, बिखरे हुए 1/18/9, 4/5/11, 11/17/6
विउणयरु – द्विगुणितकर, दुगुना, 5/13/24
विउणउ – द्विगुणित 5/11/16
विउणु – दुगुना 7/9/15
विउत्तु – वियुक्त, रहित 1/6/5
विउलु – विपुल 1/2/13
विंजण – व्यंजन 4/1/16
विंतर – व्यन्तर-देव 7/15/15
विंद – बृन्द, समूह 8/4/5
विंदु – (जल–) बिन्दु 5/3/13
विक्कम – शक्ति, पराक्रम 4/7/15
विक्किरिय – विक्रिया-ऋद्धि 3/18/5, 12/17/5
विक्खवाय – विख्यात 8/3/15
विगयंगो – विकृत अंग 4/10/1
विगय – पंकयं – विगत मल, निर्मल 5/4/2
विगय-पंकयं – विगत-मल, निर्मल 5/4/2
विगुणयरु – द्विगुणतर 5/13/24
विग्गह – विग्रह, शरीर 3/3/9
विजयाहिहाणु – विजय नामका (देश) 12/11/5
विजयवालु – विजयपाल नामका सैनिक (यवनराज का पराक्रमी सुभट) 4/15/7
विजया – विजया नाम की रानी (राजकुमार चक्रायुध की पट्टरानी) 12/9/10
विज्जकुमार – विद्युत्कुमारदेव 9/6/4
विज्जुदंड – विद्युत्दण्ड (विद्युत्रेखा) 5/12/14
विज्जवेउ – विद्युत्वेग (रत्नतिलक नगर का राजा) 12/6/7
विज्जाहरु – विद्याधर देव 5/8/5
विज्जण – विजना (पंखा) 6/16/7
विट्ठरे – सिंहासन पर 2/2/9
विट्ठउ – विष्ठा 11/11/5
विणए – विनय 3/5/1
विणयवित्ति – विनयवृत्ति 10/17/3
विणयासुअ – विनयासुत्त नामक गरुड़-वाण 5/10/7
विणिवाइय – विनिपात (प्राण-हानि) 5/9/6
विणिवेस – विनिवेश करना, रखना, स्थापित करना 7/15/19
विणीसर – मौनधारी 11/17/2
विण्णाविओ – विज्ञापित किया, निवेदन किया 5/4/2
विण्णत्तउ – विनम्र शब्दों में निवेदन किया 6/3/5
विण्णिवि-जण – दोनों ही जन 6/7/11

विण्णाणि – विज्ञानी 11/18/1
वित्थरिय – विस्तृत, विस्तारित 1/3/15
विदेहखेत्त – विदेह-क्षेत्र 12/5/9
विद्दवइ – विशेष रूप से द्रवित होना 11/9/4
विद्दवणु – विद्रवित कर देने वाला 1/5/10
विद्धा – वेधा 4/9/3
विप्फारिय – विस्फारित, दैदीप्यमान 4/3/8
विब्भम – विभ्रम-विलास 11/7/2
विब्भावड – विभ्रावट नामक यवनराज का योद्धा 4/21/17
विभासा – अशिष्ट-भाषा, विकृत-भाषा 3/6/5
विभुक्क – जोरों से भूँकना 9/2/4
विभूइ – विभूति 7/16/2
विमद्द – उथल-पुथल मचा देने वाला 3/16/12
विमीसिय – विमिश्रित 6/2/7
विमुज्जहि – विमोहित होना 10/5/12
वियडुल्लउ – अति विकट 5/11/8
वियक्खण – विचक्षण 11/8/5
वियप्प – विकल्प 5/8/13
वियलिय – विगलित 4/4/15
वियसंत – विकसित 11/23/11
वियसंतवत्त – विकसित-मुख 4/12/4
वियाणु – जानो 11/21/4
वियारणिउ – विचारणीय 7/6/7
विरएवि – रचना कर, प्रणयन कर 1/2/1
विरंचि – ब्रह्मा 1/12/9
विरंतउ – निवारण करना 7/1/16
विरमइ – विरमित 4/10/2
विरयण – विचरण, करने के लिये 6/7/7
विरयाविरयउ – विरताविरत (प्रतिमाधारी) 11/22/8
विरयमि – करना चाहिए 6/10/12
विरस – रस-रहित 10/6/2
विरह – विरह 3/18/8
विराइओ – विराजित, सुशोभित 4/4/1
विरिय – बर्रेया, बर्र, हड्डा 7/14/5
विरोउ – रोग-रहित 11/21/10
विरोम – निर्लोम, रोम-रहित 1/13/4
विरोह – विरोध 2/13/15
विलउ – विलय 3/17/3
विलवंत – विलाप करता हुआ 9/21/3
विलसंत – विलास करते हुए 11/12/13
विलुलंत – लुंज-पुंज होकर 4/10/4
विलेवण – विलेपन 4/1/9
विवित्तसत्तु – शक्तिहीन बनाकर 8/8/6
विसहर-विराय – गरुड 5/4/3
विसु – कमलनाल 2/15/2
विसंठुल – अस्त-व्यस्त, अव्यवस्थित 6/1/7
विसज्ज – विसर्जन, छोड़ना 5/9/8
विसहर – विषधर, नाग 2/17/14
विसाण – सींग 7/14/15
विसिट्ठ – विशिष्ट 11/8/5
विसुलिंतु – विसकन्द 11/3/6
विस्सभूइ – विश्वभूति नामका राजा 11/6/11
विहंग – विभंग अवधिज्ञान 7/5/5
विहंगमु – पक्षी 3/14/13
विहंसिय – विध्वंसित 7/13/16
विहट्ठण – विध्वस्त करने में 6/3/6
विहप्पइ – वृहस्पति-ग्रह 9/7/6
विहल – विफल, व्यर्थ 10/12/9
विहलंघल – विह्वल, व्याकुल 11/9/1, 11/22/8
विहि – विधि (भाग्य) 11/17/14
विहियायर – आदर-भाव रखने वाला 1/7/1
विहुणंत – धुनते हुए 11/10/18
विहुर – विधुर 3/8/10
विहूसण – विभूषण 3/18/11
वीण – गरुड़ – वीण 1/1/10
वीयउ – दूसरा 1/5/11
वील्हा – वील्हा नामकी महिला (कवि बुध श्रीधर की माता) 1/2/2
वुहु – बुधग्रह 9/7/5
वूह – ब्यूह, घेरा 5/3/5
वेइय – वेदिका 9/7/4
बेएँ – वेग पूर्वक 7/3/12
बेढिउ – घेरा डालना 4/16/8

वेढाविउ – घिरवाया, घिरवा देना 5/3/2
वेणाराय – दो बाण 4/19/1
वेण्णिवि – घेरकर, घेराकार बनाकर 7/11/13
वेयणा – वेदना 6/15/3
वेयाल – वेताल 7/15/2
वेरि – बैरी, शत्रु 2/16/14
वेलंधर – बेलंधर कुमार देव 8/5/11
वेला – समय 6/6/5
वेवहि – काँपना 8/5/11
वेसायणु – वेश्यागण 7/17/10
वोज्जु – वजन, भार 2/8/17
वोडिय – निमग्न करना, डुबा देना 7/13/9
वोमोयरे – आकाश के मध्य 3/19/9
वोर – वोर नामक वृक्ष – बेर – फल 7/2/15
वोहंतु – बोधित करना 3/20/14
सइ-सइँ – स्वयं 4/11/1, 10/17/8
सइरिउ – स्वेच्छाधारी 5/13/17
सइत्तइँ – प्रेमिका के साथ 11/3/13
सइरिणि – स्वैरिणी-स्त्री 4/3/8
सइवाली – शैवाली, शेफाली (साहू नट्टल की धर्मपत्नी) 1/9/6
सई – स्वयं, अपनी 1/14/12
सउच्च – शौच-धर्म 11/23/5
सउण – शकुन 3/17/4
सउणिउ – शकुनि-पक्षी 3/20/8
सउमणस – सौमनस देव 7/5/16
सउरीपुर – शौरीपुर 10/8/9
संक – शंका 3/18/14
संकंति – संक्रान्ति-पर्व 11/20/3
संकास – तुल्य, समान 1/14/1, 4/16/4, 6/3/5
संकुल – संकीर्ण, सिकुड़े हुए 5/7/19
संकोड – सिकोड़ना, संकोच करके, अल्प करके 10/6/8
संख – संख्यात 1/3/15
संगर – युद्ध-भूमि 3/6/10
संगिलियउ – पूरा निगल लिया 12/8/4
संग्राम – संग्राम, युद्ध 3/7/9
संगु – परिग्रह 10/7/10
संघ-जुत्तु – चतुर्विध-संघ के साथ 10/8/6
संचुण्ण – उत्तम चूर्ण, चुन्नी 1/3/13
संछण्णु – पूरी तरह आच्छादित 1/19/10
संजणिय – संजनित, उत्पन्न 1/5/5
संजलणु – संज्वलन-कषाय 4/6/11
संजाउ – संयोग, 6/5/6
संजोयण – संयोजन 1/12/14
संझ – सन्ध्या 3/17/14
संढ – नपुंसक 8/3/19
सत्थ – स्वच्छ, सद्य 1/18/11
सत्थर – विस्तर 11/3/13
संतई-वमाल – सन्तति-परम्परा 6/12/10
संताव – सन्ताप 6/9/9
संताविय – सन्तापित 8/6/11
संथुव – संस्तुत 1/5/11, 5/4/5
संदणि – स्यन्दन (रथ) 4/10/13
संदाण – बाँधना 10/3/11
संदिण्ण – प्रदत्त, दी हुई 7/3/11
संदोह – पुंज, समूह 1/15/10
संधिवि – चढ़ाकर, सन्धान-कर 4/9/2
संधेषिणु – सन्धान कर 12/10/12
संपज्जइ – सम्पन्न 11/19/9
संपया – सम्पदा 10/8/1
संपा-समाण – दूब में लगे हुए ओसविन्दु के समान 10/13/8
संबोहिय – सम्बोधित 6/19/12
संभरंत – स्मरण कर 4/18/14
संभाविया – सम्भावित, आदर-प्राप्त 4/11/11
संभासंत – सम्भाषण करते हुए 6/8/10
संभूए – सम्भूत (उत्पन्न) 8/3/11
संभूसयंति – विभूषित करती हुई 3/19/2
संलत्तउ – संलग्न 6/7/2
संलिहिय – संलिखित 6/18/11
संवाहण – संवाहन (एक भौगोलिक इकाई) 7/1/17
संसग्ग – संसर्ग 1/5/4
संसारतरु – संसार रूपी वृक्ष 3/4/14

संसिवि – प्रशंसा कर 11/8/4
संकर – साँकल 6/3/13
सकामाबलाणां – कामिनी-अबलाओं के 3/19/2
संसरणु – समवशरण 10/9/2
सक्कइ – सकना, सकता है 1/7/7
सक्कंदणु – इन्द्र ने 8/11/10
सक्कवम्मु – शक्रवर्मा नामक राजा 3/2/4
सचक्कु – चक्र-सहित 8/4/24
सच्चउ – सत्य धर्म 3/14/1
सच्चहाव – सत्यभाव 1/7/2
सच्चेयण – सचेतन 11/23/2
सच्छंदु – स्वच्छन्द 11/3/8
सज्जणं – सज्जन 11/8/6
सज्जिरह – सजा हुआ रथ 4/1/4
सडद्दउ – छह का आधा (तीन) 9/5/4
सड्ढउ – अढ़ाई 9/10/3
सढु – शठ, मूर्ख 11/24/5
सणकुमार – सनतकुमार देव 9/7/14
सणवइ – नव्वे सहित 12/18/15
सणवासी – नवासी 12/18/11
सणामो – अपने ही नामवाला (भुवनेश यवन-सुभट) 2/21/27
सणाह – इन्द्र, पूर्व दिशा का स्वामी 2/3/12
सणिच्छरु – शनिश्चर-ग्रह 4/20/9
सण्णा – आज्ञा का संकेत 3/10/2
सण्णाणि – संज्ञानी, विज्ञानी 11/18/6
सण्णाह – कवच 3/10/2, 4/4/3
सण्णीर – स्वच्छ जल 3/17/7
सतचक्क – (अट्ठाईस) 7 × 4 = 28 (अट्ठाईस) 9/19/9
सतदल – शतदल, शतखण्ड 4/12/27
सतारउ – सुन्दर तारा (नयन-तारा) 1/3/16
सत्तभंगी – सप्तभंगी 8/10/13
सत्ती – शक्ति 4/9/1
सत्ती – शक्ति नामक अस्त्र 5/6/15
सत्थवाह – सार्थवाह 11/16/14
सत्थर – संस्तर, विस्तर 11/3/12
सदप्पु – दर्प-सहित 6/9/7
सदोस – दोष-सहित 6/9/4
सद्दधामु – व्याकरण 1/10/7
सद्दंसणिल्लु – दर्शनीय, दर्शन करने योग्य 1/3/13
सद्द-संघाय – शब्द-संघात, उद्भट-वचन 3/10/13
सद्दिदऊण – आवाज देकर (बुलाया) 1/14/5
सद्दिदज्जइ – शब्दों में उसका नाम है– 12/6/5
सद्धावंत – श्रद्धावान् 11/18/2
सपयाव – स्वप्रताप, प्रतापपूर्ण 5/5/5
सप्तभय – सात प्रकार के भय 10/8/7
सबाला – बालों वाले, केश-सहित 4/21/12
सब्भावेँ – सद्भाव पूर्वक 1/7/2
सम – श्रम 3/19/9
समइ – अपनी बुद्धि 10/13/1
समंति – मन्त्री के साथ 5/5/1
समग्ग – समग्र 10/15/1
समचउरस – संठाण-समचतुरस्र-संस्थान 2/14/8
समज्जिउ – समार्जित, उपार्जित करने वाले, 6/11/25
समण – श्रमण 8/10/12
समण – शमन 10/16/1
समण – अपना मन 6/5/11
समणुच्छवेण – हर्षित एवं उत्साहित मन से 6/6/10
समत्त – सम्यक्त्व 1/4/5
समत्थ – समर्थ 1/1/4
समभडा – समान-योद्धा, योद्धा के साथ 4/8/10
समय-करडि – समय-सूचक घण्टा 1/3/5
समरधुर – युद्ध में प्रवीण 3/3/13
समरस – शान्तरस 6/5/7
समल – श्यामता 7/8/15
समवाइसरण – समवसरण 8/12 पुष्पिका
समागओ – आना, आया 6/4/1
समासिएण – संक्षिप्त कहने से 1/8/5
समाहया – बजवाया 4/2/1
समाहि – समाधि 12/18/12
समिच्छिय – समिच्छित, चाहना 6/12/8
समिद्ध – समृद्ध 12/9/6
समिला – सैल, (ज्वांरी में पिरोइ जाने वाली) 10/14/9

समीर – वायु 1/4/3
समु – शीघ्र 3/5/14
समुट्ठंति – उठती रहती हैं 11/4/4
समुद्दत्त – समुद्रदत्त (सार्थवाह) 11/17/1
समुद्धाविओ – दौड़ा दिया, हाँक दिया 4/9/7
समुव्वहंति – पहिनना, धारण करना 4/4/5
समोहरो – समता के धारी 11/17/2
समोवडिय – सम्मुख उपस्थित 7/10/21
सम्मत्त – सम्यक्त्व 11/19/4
सम्मेयगिरि – सम्मेदगिरि 12/2/11
सयंभुह – स्वयम्भू नामका हस्तिनापुर का राजा (पार्श्व का गणधर) 8/11/8
सयंवर – स्वयंवर 2/1/11
सयण – पलंग 6/16/10
सयदलु – शतदल-कमल 5/10/1
सयमह – शतमख (इन्द्र) 2/8/5
सयर – सचर (गुप्तचर) 3/5/7
सयरायरु – चराचर सहित 10/3/12
सयल – समस्त 8/6/5
सयवत्त – शतपत्र, शतदल कमल 2/4/13
सयसक्करु – सहस्रखण्ड, टुकड़े 7/7/5
सयाचार – सदाचार 3/6/8
सयाणउ – सयाना, चतुर 3/4/5
सयार – शतार-स्वर्ग 9/8/3
सर – कामदेव 2/15/13
सरई – स्मरण करना 2/9/5
सरकण – सरकण्डा 6/8/2
सरण – शरण 7/1/1
सरदूसणु – स्मर को दूर भगाने वाले 10/3/11
सरय – सरोवर 8/2/8
सरयणि – रात्रि सहित 8/1/2
सरयब्भ – शरदकालीन मेघ 6/10/11
सरयामलघण – शरदकालीन निर्मल मेघ 10/13/7
सरसइ – सरस्वती 11/6/4
सरह – शरभ (अष्टापद) 5/10/6
सरसिय – सरीसृप (पेट के बल दौड़ने वाले जीव) 9/5/6
सरा – शरास्त्र 7/10/4
सरिसु – सदृश 2/2/11
सरेविणु – सरककर,, खिसककर 11/10/15
सरोउ – रोग-सहित 11/21/10
सरोय-राय – रक्ताभ-कमल 2/9/4
सरोवर – तालाब 10/8/5
सरोरुहासु – विकसित कमल 2/11/9
सरोस – रोष पूर्वक 4/15/17
सलग्घु – श्लाघा, प्रशस्त-प्रशंसा 5/15/11
सलज्ज – लज्जाशील 1/5/7
सलवलंति – (ध्वन्यात्मक) सलबलाना, सलबल करना 5/12/4
सल्ल – शल्य, शंका 4/17/2
सल्लइतरु – सल्लकी-वृक्ष 7/2/9, 11/13/11
सल्लि – शल्यित (घायल) 4/9/11
सल्लेहण – सल्लेखना 10/7/10
सवक्ख – स्वपक्ष वाले जन 5/5/5
सवक्खि – सापेक्ष 7/11/18
सवण – श्रवण, कर्ण 5/1/6
सवणोवरि – कानों के ऊपर 8/2/14
सवर – शवर, भील 1/1/16
सवलिय – सवलित, बलसहित 7/16/5
सवाणु – बाण सहित 8/4/24
सवाणतोणु – बाण सहित तूणीर 4/4/5
सवासु – अपने निवास गृह 1/21/11
सव्वत्थ – सर्वत्र 1/5/11
सव्वत्थसिद्धि – वाण सहित तूणीर 4/4/5
सव्वत्थसिद्धि – सर्वार्थसिद्धि-स्वर्ग-विमान 9/8/9
सव्वल – सव्वल (युद्धास्त्र) 7/10/4
ससंक – शशांक, चन्द्रमा 11/5/7
ससि – शशि, चन्द्रमा 1/5/3
ससिवल – चन्द्रबल ग्रह 6/5/12
ससुह – पुत्र सहित 3/5/13
सरसत्थ – कामशास्त्र (कला) 2/17/5
सहरस – सहर्ष 12/15/12
सहसत्ति – सहसा ही 4/6/8
सहल – सफल, सहज, 12/13/8
सहहिं – सुशोभित 5/6/7

सहारउँ – सुन्दर 1/3/16
सहाव – स्वभाव 1/7/11
सहिज्जो – सहिष्णु, सहने वाला 3/19/11
सहुँ – साथ 3/13/3
सहोयर – सहोदर 11/13/8
साइणि – शाकिनी 7/15/4
साउ – श्राप 6/9/12
साडिय – नष्ट कर दिया 5/2/8
साणु – श्वान, कुत्ता (घरेलू) 5/2/10
साणुराउ – सानुराग, अनुराग सहित 10/5/6
साम – शान्ति 5/15/13
सामंत – सामन्त 10/9/11
सामण्ण – श्रामण्य 10/16/5
सामाइय – सामायिक 11/23/2
सामि – स्वामी 4/1/14
सामिण – स्वामिन् 5/4/16
साय – शाक 10/6/1
सायर – सागर 12/6/11
सारंग – हिरन 5/5/6, 11/4/7
सारय – शरद-ऋतु 11/5/7
सारस – सारस-पक्षी 9/18/6
सारहि – सारथी 5/4/8
सारि – हाथी की झूलें 5/2/13
साल – शाल-वृक्ष 7/2/6
साल – कोट 1/3/1
सालि – धान्य 2/7/13
साले – विशाल 7/3/6
सावज्ज – सावद्य, पापकारी 11/23/6
सावन – सावन-मास 12/17/17
सावय – श्रावक 6/7/4
सावय – श्वापद (हिंसक-पशु) 7/14/2
सावरहिउ – शाप-रहित 10/1/3
सावहाण – सावधान 3/5/3
सासय – शाश्वत 8/6/9
साहंत – साधते हुए 6/8/2
साहण – साधन 4/11/13
साहामउ, साहामय – शाखामृग (बन्दर) 2/14/12, 8/2/13
साहार – सहकार, आम्र-वृक्ष 1/11/6
साहुक्कार – साधुवाद 6/13/13
साहेवि – साधकर 12/6/9
सिउ – शुभ्र, धवल 11/3/7
सिंगार – श्रृंगार 3/10/17
सिंचिय – सिंचित, सींचना 11/11/5
सिंदूर – सिन्दूर 3/17/14
सिंदूरी – सिन्दूरी नामका वृक्ष 7/2/12
सिंधु – सिन्धु-नदी 11/13/2
सिंधुर – हाथी 3/3/6
सिंभि – कफ 12/4/4
सिंह – सिंह 7/14/2
सिक्क – सींका 6/8/7
सिक्ख – शिक्षा, सीख, शिक्षक 12/17/4
सिज्झंति – सिद्ध होते हैं, सिद्धपना 10/10/8
सिणेह – स्नेह 8/1/14
सित्त – सिक्त 6/4/7
सित्तउ – सिंचित 3/7/2
सिद्धत्थ-सरिसु – सिद्धार्थ (सरसों) के समान 2/2/11
सिद्धयण – सिद्धजन 9/11/10
सिद्धविलासिणी – सिद्धि रूपी वधु 3/4/8
सियभाणु – सितभाणु, शुभ-चन्द्रमा, पूर्ण-चन्द्रमा 1/19/8
सिरदाण – सिर का दान 4/19/15
सिरि – श्री, शोभा 1/3/2
सिरिपासणाह – श्रीपार्श्वनाथ 12/18/13
सिरिवंत – श्रीवंत, श्रीमन्त, 1/4/8
सिरिहर – श्रीधर (विष्णु) 11/7/3
सिरिहिल्ल – गुंजा, घुमची-वृक्ष 7/2/9
सिरि-रहियं – श्रीविहीन 4/10/12
सिरीस – शिरीष-पुष्प 7/2/10
सिल – शिला 11/13/10
सिलिंध – शिलिन्ध्र-पुष्प 3/13/10
सिलिंबु – (Slum) कृश 2/8/17

सिलीमुह – भ्रमर 4/1/15
सिलीमुह – बाण 7/17/17
सिव – कल्याण 5/15/8
सिव – मोक्ष 7/1/4
सिवणयर – शिवनगर (मोक्ष) 8/6/20
सिसिरयर – शुभ्र शीतल चन्द्र-किरणें 1/5/1
सिसुत्त – शिशुत्व (काल) 2/15/13
सिहरि – शिखरी-पर्वत 9/14/9
सिहि – मयूर 1/3/8
सिहि – अग्निकायिक (जीव) 10/11/13
सिहिकंठ – मयूरकण्ठ 7/9/3
सीयर – शीकर, जल-कण 5/1/8
सीरु – हल 5/14/8, 12/9/2
सील – शील 3/4/2
सीलाहरण – शीलाभरण 1/5/7
सीसंति – सूँ-सूँ करना 11/4/7
सीह – सिंह 2/2/3
सुअ – सुता-पुत्री 6/5/10
सुअ – श्रुत-आगम शास्त्र 2/17/3
सुइ – शुचि, पवित्र 6/12/12
सुइ – श्रुति (कान) 3/9/16, 7/10/18
सुइ – सुई, सूची (वज्रनिर्मित) 2/8/6
सुइणं – स्वप्न 10/13/10
सुउ – सुना, सुनी 3/19/14
सुएण – सुपुत्र ने 5/14/4
सुंडाल-सुंडु – डाल के समान सुन्दर लम्बी सूँड 5/2/6
सुकइत्तण – सुकवित्व, 1/4/10
सुकच्छ – सुन्दर कच्छ-देश 12/5/10
सुकित्तण – सत्कीर्तन 1/4/10
सुक्क – शुक्ल ध्यान 8/6/3
सुक्कु – शुक्र-स्वर्ग 9/8/2
सुक्कु – शुक्र-ग्रह 2/6/8
सुच्चत्तु – शुचिता, पवित्रता 8/1/18
सुच्छिण्णउ – छिन्न-छिन्न कर डालना 7/11/7
सुज्झमि – शुद्ध होना 4/4/18
सुण्ण – शून्य 6/17/4
सुत्ती – सोती हुई 1/19/1
सुत्तु – आगमसूत्र 10/11/10
सुदंसण – सुदर्शन, सुन्दर 3/1/4
सुदक्खइँ – सुन्दर स्वादिष्ट द्राक्षा फल (किशमिश) 7/2/13
सुधातु – वीर्यादि उत्तम धातु 7/4/11
सुपहु – सुपथ 7/17/9
सुबुद्धि – अच्छी बुद्धि 1/16/1
सुब्भे – शुभ, उज्ज्वल 12/11/10
सुमइ – सुमतिनाथ तीर्थंकर 1/1/5
सुमेसु – मेंढा, 2/15/2
सुर-गुरु – सुर या सूरि नामक गुरु 12/7/6
सुरचाव – इन्द्रधनुष 7/17/3
सुरदिसि – पूर्वदिशा 12/5/9
सुरय – सुरति 2/10/14
सुररयणायर – क्षीरसागर 5/12/10
सुरस – मधुर, स्वादिष्ट 1/11/5
सुरसरि – गंगा-नदी 7/10/15
सुरसिहरि – सुमेरु-पर्वत 12/5/9
सुवेय – वेद 2/17/3
सुसंकेय – सुसंकेतित 3/19/2
सुसंचइ – सरयाना, सुसंचित करना 1/18/2
सुसील – सुशील – 1/5/2
सुसार – सुन्दर, सार्थक, श्रेष्ठ 7/3/6
सुस्सरं – सस्वर, सुन्दर स्वर 2/9/9
सुहंकर – शुभकारी, कल्याणकारी 10/6/4
सुहजण – स्वजन 10/3/5
सुहपयास – सुखप्रकाशक 2/4/9
सुहा – सुधा (चूना) अ0प्र0
सुहाइ – सुहावना 12/6/10
सुहासिय – सुभाषित 11/6/14
सुहासी – सुधाशी (अमृतभोजी) 2/12/1
सूणागार – कसाईघर 11/20/2
सूर – सूर्य 10/9/8
सूल – त्रिशूल 3/15/10
सूलि-णिवंधय – शूली-निबन्धन 2/17/11
सूवर – शूकर 8/2/12
सेंबल – शाल्मलि-वृक्ष 7/2/15

सेज्ज – शैया 3/20/3
सेणिय – श्रेणिक राजा 1/10/13, 1/10/14
सेयभाणु – श्वेत-भानु 12/11/8
सेयवारि – श्वेत-जल, पसीना 5/3/13
सेरिहु – सेही, जंगली-जानवर 2/15/2
सेलराय – शैलराज, सुमेरु-पर्वत 5/6/12
सेव – सेव्य, (भुवन द्वारा सेवित) 11/12/8
सेवा-रय – सेवारत 11/14/18
सेविज्जमाण – सेव्यमान 4/2/3
सेसा – शेष 12/4/8
सेहर – शेखर 2/18/5
सोहाउरिउ – शोक के कारण व्याकुल 3/4/4
सोआदण्णउ – शोकग्रस्त 6/16/9
सोक्ख – सुख 1/5/8
सोढल – सोढल (नट्टल साहू का मंझला भाई) 1/5/12
सोणिय – श्रोणित (रक्त) 5/14/14
सोम – चन्द्रमा 3/1/4
सोम – प्रकीर्णक-विमान 9/8/6
सोमयं – सौम्य 8/7/12
सोमरूउ-सोमरूप – प्रकीर्णक-विमान 9/8/7
सोमा – सौम्य 3/19/10
सोमालउ – सौम्य-वदन 3/14/2
सोय – स्रोत 10/9/7
सोलह – सोलह 8/7/3
सोवंति – सोते रहते हैं 11/3/13
सोवण्णवार – स्वर्णद्वार 7/3/11
सोस – दुख, अफसोस 10/7/6
सोहग्ग – सौभाग्य 2/12/8
सोहमाण – शोभायमान 4/2/4
सोहम्म – सौधर्म-स्वर्ग 2/7/12
हइरण्णवंत – हैरण्यवत् क्षेत्र 9/14/8
हइमवंत – हिमवंत क्षेत्र 9/13/9
हंतूण – बजाकर, पीटकर 2/7/1
हंस – हंस-पक्षी 4/19/13
हंसीव – हंसिनी के समान 1/5/8
हक्क – हाँकना 3/12/4, 4/3/11
हक्क – ललकारना 11/11/11
हक्केप्पिणु – ललकार कर भगाना 12/10/12
हट्ट – हाट, बाजार 1/3/9
हड – घट 8/8/15
हणु हणु – मारो मारो 9/3/1
हणु – मारना 7/15/2
हत्थि – हाथी 11/3/2
हत्थे – हाथ 2/11/14
हम्महँ – हमारी, हमारा 5/4/17
हम्म – घात, हिंसा 11/19/9
हम्मीर – हम्मीर-देश 4/11/3
हयपुच्छ – घोड़े की पूँछ 4/6/11
हयवउ – हतवय, वृद्धावस्था 3/3/11
हयसेण – अश्वसेन राजा (पार्श्व के पिता, वाणारसी-नरेश) 2/5/3
हया – घोड़ा 4/9/3
हयास – हताश 7/8/4
हर – महादेव 5/4/14
हरंती – हरण करना 3/19/9
हरि – इन्द्र 2/6/12
हरि – घोड़ा 3/12/3
हरि – हरि-क्षेत्र 9/13/12
हरि – विष्णु 5/4/14
हरियंदण-तरु – हरिचन्दन-वृक्ष (कल्पवृक्ष) 10/18/19
हरिण – हिरन 7/18/10
हरिणारि – मृग-शत्रु, सिंह 1/19/5
हरिणारिविट्ठरि – सिंहासन 2/7/1
हरियाणए देसे – हरियाणा-देश में 1/2/14
हरिसियमण – हर्षित-मन 6/7/12
हल – एक प्रकार का विशेष युद्धास्त्र 7/10/4
हलधर – हलधर 10/12/10
हल्लाविय – हिलाकर रख देना, मन्थन कर डालना 3/12/7
हल्लोहलि – कोलाहल मच गया 4/18/4
हारोहर – घड़ियाल 7/13/7
हास – हास्य-रस 6/5/7
हिउ – अपहृत 4/4/11
हिंडंत – घूमते हुए, भटकते हुए 11/13/1

हिंडमाण – घूमते हुए, भटकते हुए 12/15/4
हिंताल – हिंताल-वृक्ष 7/2/6
हिंस – हिंसा 5/12/12
हिमयर – चन्द्रमा 3/20/2
हिमवंत – हिमवान् पर्वत 9/13/12
हिय – हित 11/6/1
हियय – हृदय 1/2/4
हिलिहिलंत – हिनहिनाना (ध्वन्यात्मक) 4/3/4
हीर – हीरा 11/17/12
हुअवह – हुतवह, अग्नि 4/1/13, 5/10/8
हुओ – हो गया 3/19/10
हुंकार – हुंकार करना 7/15/10
हुणंत – होम करना 6/8/1
हुडक्क – एक वाद्य-विशेष 2/17/15
हुवउ – हो, होना 7/12/5
हूण – हूण-देश 2/18/11
हेम – सोना 11/19/11
हेमकुमार – हेमकुमार देव 9/6/9
हेलए – लीला-लीला से 3/17/1
होंति – होते हैं 11/1/12
होम – हवन 3/20/10

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश ग्रन्थ

ग्रन्थ नाम	लेखक / सम्पादक	प्रकाशन
अनगार धर्मामृत	पं. आशाधर सम्पादक – पं. खूबचन्द्र सिद्वान्तशास्त्री	दिगम्बर जैनोन्नति फण्ड, आकलूज (शोलापुर) 1927 ई.
अभिज्ञान शाकुन्तलम्	महाकवि कालिदास सम्पादक – कपिल देव द्विवेदी	चौखम्बा, वाराणसी
अमरकोष	सम्पादक – वासुदेव शर्मा	निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, सन् 1905
आदिपुराण	महाकवि जिनसेन सम्पादक – पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी,, सन् 1965
आचारांग सूत्र		जैन विश्व भारती लाडनूँ, राजस्थान
आवश्यक निर्युक्ति		
आवश्यक सूत्र		देवचन्द लाल भाई, अहमदाबाद
उत्तराध्ययन सूत्र	सम्पादक – आत्मानन्द जी महाराज एवं पं. इन्द्रचन्द्र शास्त्री	आत्माराम जैन प्रकाशन समिति, लुधियाना, सन् 1954
इन्द्रप्रस्थ प्रबन्ध	अज्ञात कर्तृक	जोधपुर, सन् 1993
उपासकाध्ययन	सोमदेव सूरि सम्पादक – पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी,, सन् 1964
उवसग्गहरस्तोत्र (भद्रबाहु)	सम्पादक – ही.र. कापड़िया	देवचन्द लाल भाई जैन पुस्तकोद्धार फण्ड, सूरत, सन् 1932
ऋग्वेद संहिता	–	प्रकाशक – वैदिक संशोधन मण्डल, पूना, सन् 1936–44
करकंडचरिउ	कनकामर सम्पादक – डॉ. हीरालाल जैन	गोपाल अंवादास चवरे, दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, कारंजा, सन् 1934
कल्पसूत्र	सम्पादक प्रकाशक – साराभाई मणिलाल नवाब	अहमदाबाद
कल्याण मन्दिर स्तोत्र		अमरावती
कौटिल्य अर्थशास्त्र	सम्पादक – आर.आर. शास्त्री,	मैसूर, 1909
खारवेल शिलालेख	डॉ. काशी प्रसाद जायसवाल	बनारस 1928
गोम्मटसार (कर्मकाण्ड)	सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र सम्पादक – पं. मनोहर लाल शास्त्री	रायचन्द्र जैन शास्त्रमाला, अगास, बम्बई, सन् 1928
गोम्मटसार (जीवकाण्ड)	सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमिचन्द्र सम्पादक – पं. खूबचन्द्र शास्त्री	रायचन्द्र जैन शास्त्रमाला, अगास, बम्बई, सन् 1959
चारित्रभक्ति		
णायाधम्मकहाओ		आगमोदय समिति, बम्बई, सन् 1919

तत्त्वार्थसूत्र	गृद्धपिच्छ सम्पादक – पं. फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री	गणेशवर्णी जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी, वी.नि.सं. 2476
तिलोयपण्णत्ती (भाग 1-2)	यतिवृषभ सम्पादक – डॉ. हीरालाल जैन डॉ. ए.एन. उपाध्ये	जीवराज ग्रन्थमाला, शोलापुर, सन् 1943, 1952
नीतिवाक्यामृत	सोमदेव सूरि	माणिक दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, वि.सं. 1989
पउमचरियं	विमलसूरि	प्राकृत टैक्स्ट सोसाइटी,, वाराणसी, सन् 1892
पार्श्वाभ्युदय	जिनसेन	निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, वि.सं. 1966
पार्श्वनाथचरित	वादिराज	माणिक. सीरीज, बम्बई
पासणाहचरिउ	पउमकित्ति सम्पादक – डॉ. पी.के. मोदी	प्राकृत टैक्स्ट सोसाइटी, अहमदाबाद, सन् 1895
पासणाहचरिउ	रइधू सम्पादक – डॉ. राजाराम जैन	जीवराज ग्रन्थमाला, शोलापुर, सन् 1935
भगवती आराधना	शिवार्य	
महापुराण	जिनसेन सम्पादक – पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, सन् 1944
महापुराण (भाग 1-3)	पुष्पदन्त सम्पादक – डॉ. पी.एल. वैद्य	माणिक दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, सन् 1937-1941
मूलाचार (भाग 1-2)	वट्टकेर सम्पादक – पं. मनोहरलाल शास्त्री	अनन्तकीर्त्ति दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, सन् 1919
रत्नकरण्ड श्रावकाचार	आचार्य समन्तभद्र सम्पादक – पं. जुगल किशोर मुख्तार	माणिक दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, बम्बई, वि.सं. 1982
वक्रोक्तिजीवित		वाराणसी
वसुनन्दी श्रावकाचार	वसुनन्दी सम्पादक – पं. हीरालाल शास्त्री	भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, सन् 1952
वड्ढमाणचरिउ	विबुध श्रीधर सम्पादक – डॉ. राजाराम जैन	भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, सन् 1985
वास्तुसार–प्रकरण	पं. ठक्कुर फेरु सम्पादक – पं. भगवान दास	जयपुर, सन् 1939
विश्वधर्म की रूपरेखा	क्षुल्लक पार्श्वकीर्त्ति	दिल्ली, सन् 1958
श्रीमद् भागवत		गीता प्रेस, गोरखपुर, वि.सं. 2033
समवायांग सूत्र		भाव नगर संस्करण

सर्वार्थसिद्धि	पूज्यपाद सम्पादक – पं. जिनदास पार्श्वनाथ फडकुले	सखाराम नेमचन्द्र ग्रन्थमाला, शोलापुर सन् 1939
सागारधर्मामृत	पं. आशाधर सूरि	जैन साहित्य प्रसारक कार्यालय, बम्बई, सन् 1929
स्थानांग सूत्र		भावनगर संस्करण
स्वामिकार्त्तिकेयानुप्रेक्षा	कार्त्तिकेय सम्पादक – डॉ. ए.एन. उपाध्ये	रायचन्द्र शास्त्रमाला, अगास, बम्बई, सन् 1960
त्रिषष्ठिशलाकामहापुरुष-चरित	हेमचन्द्राचार्य	जैनधर्म प्रसारक सभा, भाव नगर, सन् 1806-13

हिन्दी ग्रन्थ

अपभ्रंश दर्पण	डॉ. जगन्नाथ राय शर्मा	पटना, सन् 1955
अपभ्रंश साहित्य	डॉ. हरिवंश कोछड़	भारतीय साहित्य मन्दिर, फव्वारा, दिल्ली वि.सं. 2016
तपोभूमि : प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल	रामगोपाल मिश्र	हिन्दी सा.स., प्रयाग, वि.सं. 2007
पदमावत	मलिक मुहम्मद जायसी सम्पादक – डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल	चिरगाँव, सन् 1955
पाइय सद्दमहण्णवो	हरगोविन्ददास सेठ	बनारस सन् 1963
दिल्ली के तोमर	पं. हरिहर प्रसाद द्विवेदी	विद्या मन्दिर प्रकाशन, ग्वालियर, सन् 1973
रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन	डॉ. राजाराम जैन	वैशाली, सन् 1974
पार्श्वनाथ का चातुर्याम धर्म	धर्मानन्द कोसंवी	बम्बई, सन् 1957
प्राचीन भारत	डॉ. राधा कुमुद मुखर्जी	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1963
प्राचीन भारत	गंगा प्रसाद मेहता	बी.एच.यू. वाराणसी, सन् 1933
प्राचीन भारत का भौगोलिक स्वरूप	डॉ. अवध बिहारी लाल अवस्थी	कैलाश प्रकाशन, लखनऊ, सन् 1964
प्रेमी अभिनन्दन ग्रन्थ	सम्पादक – पं. बनारसी दास चतुर्वेदी	टीकमगढ़, सन् 1946
बाबरनामा	मुंशी देवीप्रसाद	जोधपुर, वि.सं. 1967
बुद्धकालीन भारतीय भूगोल	डॉ. भरत सिंह उपाध्याय	हिन्दी सा.स. प्रयाग, वि. संवत् 1947
भट्टारक सम्प्रदाय	विद्याधर जोहरापुरकर	जीवराज ग्रन्थमाला, शोलापुर, सन् 1958
भारत की जन-जातियाँ	सत्यव्रत	विद्या विहार, देहरादून, सन् 1890
भारतीय संस्कृति के विकास में जैनधर्म का योगदान	डॉ. हीरालाल जैन	भोपाल, सन् 1983

मध्य एशिया एवं पंजाब में जैनधर्म	हीरालाल दुगड़	दिल्ली,, सन् 1979
मध्यकालीन भारत की सामाजिक एवं आर्थिक अवस्था	यूसुफ अली	हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, सन् 1929
महाभारत की नामानुक्रमणिका		गीता प्रेस, गोरखपुर, वि.सं. 2016
मध्यकालीन भारतीय संस्कृति	गौ. हि. ओझा	हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद
संक्षिप्त पृथिवीराजरासो	चन्दवरदाई सम्पादक – पं. हजारी प्रसाद द्विवेदी	वाराणसी, सन् 1951
राजनय के सिद्धान्त	डॉ. गाँधी जी राय	भारती भवन, पटना, सन् 1978

English Books

Dr. A. Cunningham	Ancient Geography of India	Varanasi, 1963
Dr. B.C. Law	Historical Geography of Ancient India	France, 1954
N.L. Day	Geography of Ancient India	London, 1927
V.D. Mahajan	Muslim Rule in India	Delhi, 1962
H. Jacobi	Studies in Jainism (S.B.E. Series, Vol. 45, Introduction 31-35)	Ahmedabad
K.S. Lal	Twilight of the Sultanate	Bombay, 1963
S. Radhakrishnan	Indian Philosophy, Vol. 1-2	Calcutta
Dr. G.C. Chaudhary	Political History of Northern India	P.V. Jain Research Institute, Varanasi, 1954
W. Geiger	Pali Literature and Language	Calcutta, 1956
H.C. Ray	Dynastic History of Northern India. Vol. II	Calcutta 1936
V.A. Sangaway	Jain Community : A Social Survey	Bombay, 1959

पत्रिकाएँ

जैन साहित्य संशोधक	जुलाई, 1923
अनेकान्त	वीर सेवा मन्दिर, दिल्ली
जैन सिद्धान्त भास्कर and Jain Antiquary	जैन सिद्धान्त भवन, आरा (बिहार)
प्राकृत-विद्या	कुन्दकुन्द भारती, नई दिल्ली
कादम्बिनी (हिन्दी मासिक)	दिल्ली

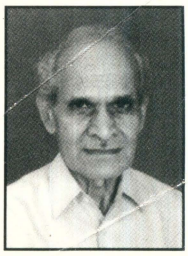

राजाराम जैन

जन्म : 1 फरवरी 1929 को मालथौन (सागर,म.प्र.) में।

काशी विश्वविद्यालय से उच्च शिक्षा। गवर्नमेंट कॉलेज शहडोल (म.प्र.), प्राकृत शोध संस्थान वैशाली तथा मगध वि.वि. सेवान्तर्गत ह.दा.जैन कॉलेज आरा (बिहार) में शिक्षण कार्य। मगध यूनिवर्सिटी से प्रोफ़ेसर तथा विभागाध्यक्ष पद से अवकाश।

प्रकाशन : अभी तक 34 ग्रन्थ —मौलिक एवं सम्पादित। प्रमुख हैं— रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, वड्ढमाणचरिउ (विबुध श्रीधर),रइधू-ग्रन्थावली भाग.1-2, पुण्णासवकहा (रइधू),भद्रबाहु-चाणक्य-चन्द्रगुप्त कथानक (रइधू), शौरसेनी प्राकृत भाषा और उसके साहित्य का इतिहास, आरामसोहाकहा (संघतिलक गणि), भविष्यदत्त-काव्य (प्राकृत, महेश्वर सूरि), अगडदत्तचरियं (देवेन्द्र गणि), मध्यकालीन जैन सट्टक नाटक, षट्खण्डागम लेखन-कथा, भारतीय ज्ञान-विज्ञान के महामेरु : आचार्य कुन्दकुन्द, राजा भोज और कालिदास, हिन्दी के मध्यकालीन लोककवि, आदि। अनेक स्मृति-ग्रन्थों, अभिनन्दन-ग्रन्थों तथा अन्य उच्चस्तरीय ग्रन्थों एवं पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन।

कुन्दकुन्द स्मृति पुरस्कार सहित राष्ट्रिय स्तर के अनेक पुरस्कारों से सम्मानित, राष्ट्रपति-द्वि-सहस्राब्दी सम्मान से अलंकृत। अनेक विश्व-विद्यालयों, शोध-संस्थानों तथा U.G.C., N.C.E.R.T., दिल्ली आदि की समितियों के मानद सदस्य, अ.भा.दि.जैन विद्वत्परिषद् के पूर्व राष्ट्रिय अध्यक्ष तथा Man of the Year-2004 (U.S.A.).

भारतीय ज्ञानपीठ

18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली - 110 003

संस्थापक : स्व. साहू शान्तिप्रसाद जैन, स्व. श्रीमती रमा जैन